जस पनिहार
धरे सिर गागर
भगवान श्री रजनीश

धरमदास

आज जिस फकीर की चर्चा हम शुरू करते हैं उसका नाम है, धनी धरमदास। कबीर के शिष्य थे धनी धरमदास। बहुत बड़े धनी थे। बहुत धन कमाया, बहुत पद-प्रतिष्ठा थी। कबीर के पास जब कभी आते थे तो कबीर उन्हें कुछ और नहीं, धरमदास कहकर ही पुकारते थे।'

'फिर एक दिन फूल खिला, भीतर की आत्मा जगी। गुरु की चोट काम आयी और धरमदास ने सारा धन लुटा दिया। उस दिन कबीर ने उन्हें कहा, 'धनी धरमदास। अब तू धनी हुआ। अब तेरी आंख भीतर मुड़ी। अब तेरी खोज बाहर नहीं है। अब बाहर पर तेरी पकड़ गयी।'

'धन भी भीतर है, पद भी भीतर है क्योंकि परमात्मा भीतर है। उससे बड़ा और क्या पद होगा? इसलिए तो उसे परमपद कहा है।'

'समाधि भीतर है। और समाधि ही सारे प्रश्नों का, समस्याओं का समाधान है; इसीलिए तो उसे समाधि कहा है—जहां समाधान हो जाए।'

सब मिलता है उत्तर मिल जाने पर; जैसे पानी खिलता है कमल खिल जाने पर। कमल के खिलते ही कमल ही नहीं खिलता, उसके आसपास का सरोवर भी खिल जाता है। जब तुम्हारे भीतर उत्तर का जन्म होता है तो तुम्हारी आत्मा ही नहीं खिलती, तुम्हारी देह भी खिल जाती है तुम्हारा केंद्र ही नहीं खिलता, परिधि भी खिल जाती है।

सब मिल जाता है उत्तर मिल जाने पर; जैसे पानी खिल जाता है कमल खिल जाने पर।

तब तुम हुए धनी!

जस पनिहार धरे सिर गागर

भगवान श्री रजनीश

जस पनिहार धरे सिर गागर

(धरमदास-वाणी)
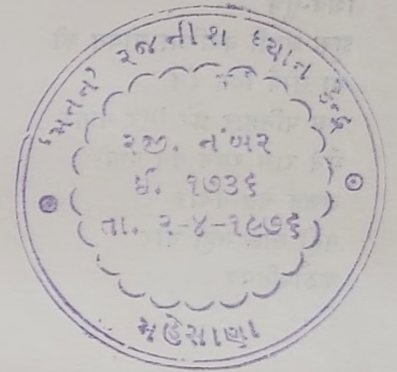
रजनीश फाउंडेशन
१९७८

रजनीश फाउंडेशन

नये प्रकाशन

ताओ उपनिषद भाग : ४
अथातो भक्ति-जिज्ञासा भाग : १
जिन-सूत्र भाग : ४
शिव-सूत्र
झुक आयी बदरिया सावन की
का सोवै दिन रैन
जस पनिहार धरे सिर गागर
मैंने राम रतन धन पायो
अजहूं चेत गंवार
नहीं सांझ नहीं भोर
कठोपनिषद

जस पनिहार धरे सिर गागर

भगवान श्री रजनीश
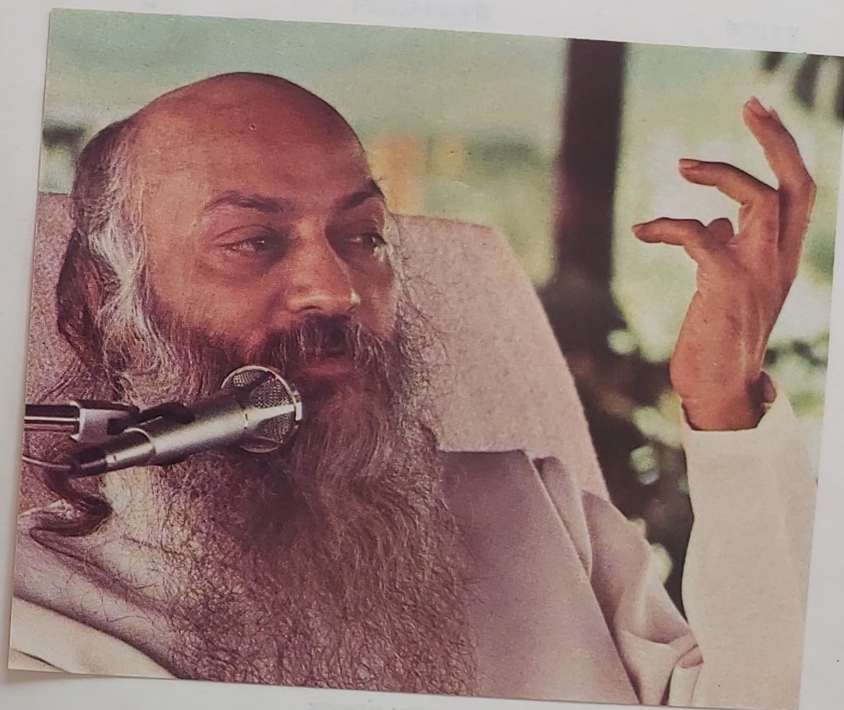
प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन
श्री रजनीश आश्रम
१७ कोरेगाव पार्क
पूना ४११ ००१ महाराष्ट्र

संकलन-संपादन
मा अमृत साधना

मूल्य
रु. ५०

मुद्रक
गो. आ. जोशी
के. जोशी एंड कं.
ब्लॉक मेकर्स एंड आर्ट प्रिंटर्स
निकट भिकारदास मारुति टेंपल
पूना--४११ ०३०

सजावट
आर. आर. पीर

प्रथम संस्करण
प्रति ३०००

अनुक्रम

पूर्वरंग

एक ऐसी सौभाग्य की या दुर्भाग्य की घड़ी है, जब जीवन का सब व्यर्थ हो जाता है। जहां-जहां मूल्य देखे थे वहां-वहां राख दिखाई पड़ती है। जहां-जहां फूल देखे थे वहां-वहां कांटे। जहां सोचा था सौंदर्य है, वहां सपना। जहां धन मानकर चले थे वहां कुछ भी नहीं।

जैसे रात सोया हुआ आदमी सुबह जागता है और सपनों में देखे सारे महल और सपनों में देखे सारे व्यवसाय व्यर्थ हो जाते हैं। ऐसी भी एक सौभाग्य या दुर्भाग्य की घड़ी है, जब जीवन में आदमी एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। जो सोचा था ठीक है, सब व्यर्थ हो गया और इसके अतिरिक्त किसी सार्थक की कोई खबर नहीं है।

मैं दोनों शब्दों का उपयोग कर रहा हूं--सौभाग्य या दुर्भाग्य की; सोचकर। क्योंकि यह घड़ी सौभाग्य की हो सकती है और दुर्भाग्य की भी हो सकती है। अगर तुम्हारे जीवन के द्वार-दरवाजे बंद हों और तुमने पहले से ही अनास्था में आस्था कर रखी हो, अविश्वास को विश्वास बना रखा हो, नकार और नास्तिकता तुम्हारी जीवन की पद्धति हो तो यह घड़ी दुर्भाग्य की घड़ी है। फिर तुम अंधेरे और अंधेरे में गिरते जाओगे और गर्त में खो जाओगे। फिर यह घड़ी बड़ी निराशा की घड़ी है। फिर तुम्हें जीवन अर्थहीन मालूम होगा।

लेकिन यह घड़ी सौभाग्य की भी हो सकती है। अगर तुमने अपनी चेतना के द्वार-दरवाजे बंद नहीं किये हैं और नकार तुम्हारी जीवन-शैली नहीं है, तो तुम आंखें उठाकर अभी भी देख सकते हो। यह जीवन व्यर्थ हुआ इससे केवल उस जीवन के द्वार खुलते हैं। यह धन मिट्टी साबित हुआ इससे धन मिट्टी साबित नहीं होता, इससे नये धन की खोज, नये धन की यात्रा शुरू होती है।

यह बड़ा महत्वपूर्ण दोराहा है। और हर जीवन इस दोराहे पर आता है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, एक न एक दिन तुम्हें इस दोराहे पर आना ही होता है, जहां विकल्प होते हैं दो--या तो निराशा में डूब जाओ या नयी आशा के गीत को फूटने दो। या तो सब व्यर्थ मानकर हार जाओ, पराजित हो जाओ या कुछ और भी विजय हो सकती है उसके अभियान पर निकलो।

धनी धरमदास के जीवन में यह घड़ी आ गयी थी। सब था उनके पास। धन था, पद था, प्रतिष्ठा थी, यश था। सफलता ही सफलता के ढेर लगे थे। और एक दिन जाग आयी और यह दिखाई पड़ा कि यह सब तो बेकार है। क्योंकि जो भी मैंने इकट्ठा किया है, मौत छीन लेगी। मेरे पास ऐसा क्या है जो मौत न छीन सकेगी?

यह प्रश्न जिस दिन उठा उसी दिन नींद टूट गयी। उसी दिन से एक दूसरी खोज शुरू हुई। इस खोज में सद्‌गुरु अनिवार्य है। क्योंकि जब तुम अनजान की खोज पर निकलते हो तो किसी ऐसे व्यक्ति खोजना होगा जो उस अनजान में गया हो। जब तुम सागर की यात्रा पर निकलते हो तो किसी ऐसे नाविक को खोजना होगा जिसने यात्रा की हो।

--भगवान श्री रजनीश

गुरु मिले अगम के बासी ।।
उनके चरणकमल चित दीजै सतगुरु मिले अविनासी ।
उनकी सीत प्रसादी लीजै छुटि जाए चौरासी ।।
अमृत बूंद झरै घट भीतर साध संत जन लासी ।
धरमदास बिनवे कर जोरी सार सबद मन बासी ।।

वो नामरस ऐसा है भाई ।।
आगे-आगे दहि चले पीछे हरियल होये ।।
बलिहारी वा बृच्छ की जड़ काटे फल होये ।
अति कड़वा खट्टा घना रे वाको रस है भाई ।।
साधत-साधत साध गये हैं अमली होये सो खाई ।
सूंघत के बौरा भये हो पियत के मरि जाई ।।
संत जवारिस सो जन पावै जाको ज्ञान परगासा ।
धरमदास पी छकित भये हैं और पीये कोई दासा ।।

प्रवचन : १
दिनांक : ३१।१।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना ।

खरोखश उठे रास्ता तो चले
मैं अगर थक गया काफिला तो चले
चांद सूरज बुज़ुर्गों के नक्शे कदम
खैर बुझने दो इनको, हवा तो चले
हाकिमे शहर, यह भी कोई शहर है
मस्जिदें बंद हैं, मयकदा तो चले
बेलचे लाओ, खोलो जमीं की तहें
मैं कहां दफ्न हूं, कुछ पता तो चले

आदमी के जीवन की समस्या एक, समाधान भी एक। आदमी के जीवन में बहुत समस्याएं नहीं हैं और न बहुत समाधानों की जरूरत है । एक ही समस्या है कि मैं कौन हूं ? और एक ही समाधान है कि इसका उत्तर मिल जाए। जीवन की सारी समस्याएं इस एक समस्या से उठती हैं। यह एक समस्या जड़ है।

और इस समस्या में उलझाव भारी है । उत्तर खोजनेवाले भी उत्तर नहीं खोज पाते, उलझाव में भटक जाते हैं। क्योंकि बहुत उत्तर दिये गये हैं। और बाहर से दिया गया कोई भी उत्तर काम नहीं आता। उत्तर आना चाहिए भीतर से और बाहर उत्तरों की कतार खड़ी है। और हर उत्तर तुम्हारा उत्तर बन जाने को आतुर है। हर उत्तर तुम्हें फुसला रहा है, समझा रहा है, राजी करने की कोशिश में संलग्न है--मैं हूं तुम्हारा उत्तर। और स्वभावतः जिसके भीतर समस्या खड़ी हो वह किसी भी उत्तर को पकड़ने लगता है। कहते हैं न, कि डूबते को तिनके का सहारा भी बहुत मालूम होता है। हालांकि तिनकों के सहारे कोई कभी बचता नहीं। लेकिन डूबते आदमी के पास तिनका भी आ जाए तो उसी को पकड़ लेता है।

ऐसे ही तुमने बहुत तिनके पकड़ लिये हैं। उन तिनकों को पकड़ने से तुम बचोगे नहीं। नाव तुम्हारे भीतर है। जहां से समस्या उठी है, वहीं समाधान छिपा

है। समस्या के भीतर ही उतरना है तो समाधान मिलेगा। प्रश्न भीतर और उत्तर बाहर, अगर ऐसा होता तो सभी को उत्तर मिल गये होते। प्रश्न भी भीतर है और उत्तर भी भीतर है। इसलिए जो भीतर जाते हैं वे ही उत्तर पाते हैं।

तो पहला ध्यान रखना-- मैं कौन हूं, शास्त्रों से इसका उत्तर मत ले लेना अन्यथा तुम सदा को भटक जाओगे। मैं कौन हूं, इसका उत्तर स्वयं से लेना है।

कोई उधार उत्तर काम न आयेगा। सब उधार उत्तर झूठे हैं। इसलिए नहीं कि जिन्होंने वे उत्तर दिये थे उन्हें पता नहीं था, बल्कि इसलिए कि यह उत्तर ऐसा है कि कोई दूसरा किसी दूसरे को नहीं दे सकता।

मैं जानता हूं फिर भी तुम्हें दे नहीं सकता। और दूंगा तो देने में ही झूठा हो जायेगा। तुम लोगे, लेने में ही बेईमानी हो जायेगी। यह उत्तर ऐसा है जिसकी तलाश करनी होती है। तलाश में ही निर्मित होता है। खोज में ही इसका जन्म है।

कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है। किस कारण तुम हिंदू हो? क्योंकि तुमने कोई उत्तर स्वीकार कर लिया है बाहर से। किस कारण तुम मुसलमान हो? क्योंकि तुमने कोई उत्तर स्वीकार कर लिया है बाहर से। तो न तो हिंदू धार्मिक है, न मुसलमान धार्मिक है; न जैन, न ईसाई, न यहूदी। धार्मिक आदमी वह है जो बाहर से कोई उत्तर स्वीकार नहीं करता। जो अपनी अंतर्खोज में जाता है। जो कहता है, समस्या मेरी है, समाधान भी मुझे खोजना होगा। समस्या मेरे प्राणों के प्राण में उठी है, वहीं से समाधान भी उठना चाहिए। वहीं कहीं समाधान छिपा होगा। अपने उत्तर में जो जाता है उसे जवाब मिलता है। अपने प्रश्न में जो जाता है उसे जवाब मिलता है।

लेकिन हम बाहर भटकने आदी हैं। हम हर चीज बाहर खोजते हैं। हम धन भी बाहर खोजते हैं। हम पद भी बाहर खोजते हैं। हम समाधान भी बाहर खोजते हैं। न धन बाहर है, न पद बाहर है, न समाधान बाहर है। असल में समाधि के ही ये अलग-अलग नाम हैं। धन कहो, समाधि का नाम है।

आज जिस फकीर की चर्चा हम शुरू करते हैं उसका नाम है, धनी धरमदास। कबीर के शिष्य थे धनी धरमदास। बहुत बड़े धनी थे। बहुत धन कमाया, बहुत पद-प्रतिष्ठा थी। कबीर के पास जब भी आते थे तो कबीर उन्हें कुछ और नहीं, धरमदास कहकर ही पुकारते थे। फिर एक दिन फूल खिला। भीतर की आत्मा जगी। गुरु की चोट काम आयी। और धरमदास ने सारा धन लुटा दिया। उस दिन कबीर ने उन्हें कहा, 'धनी धरमदास। अब तू धनी हुआ। अब तेरी आंख भीतर मुड़ी। अब तेरी खोज बाहर नहीं है। अब बाहर पर तेरी पकड़ गयी।'

धन भी भीतर है, पद भी भीतर है क्योंकि परमात्मा भीतर है। उससे बड़ा और क्या पद होगा? इसलिए तो उसे परमपद कहा है।

समाधि भीतर है। और समाधि ही सारे प्रश्नों का, समस्याओं का समाधान है। इसीलिए तो उसे समाधि कहा है—जहां समाधान हो जाए। सब मिल जाता है उत्तर मिल जाने पर। जैसे पानी खिल जाता है कमल खिल जाने पर। कमल के खिलते ही कमल ही नहीं खिलता; उसके आसपास का सरोवर भी खिल जाता है। जब तुम्हारे भीतर उत्तर का जन्म होता है तो तुम्हारी आत्मा ही नहीं खिलती, तुम्हारी देह भी खिल जाती है। तुम्हारा केंद्र ही नहीं खिलता, तुम्हारी परिधि भी खिल जाती है।

सब मिल जाता है उत्तर मिल जाने पर। जैसे पानी खिल जाता है कमल खिल जाने पर। तब तुम हुए धनी।

एक ही खोज है कि मैं कौन हूं? और एक ही उपद्रव है कि बाहर सस्ते उत्तर मिल जाते हैं। मुफ्त मिल जाते हैं। बिना कुछ दांव पर लगाये मिल जाते हैं। यह महत उत्तर बिना दांव लगाए नहीं मिल सकता।

कल एक युवा संन्यासी ने मुझे आकर कहा--आनंद कबीर ने; विचारशील युवक हैं। कुलीन घर से आते हैं। उनके दादा ख्यातिनाम हैं। उनके दादा के सैंकड़ों शिष्य हैं। पुष्ठिमार्ग के अनुयायी हैं। संन्यास ने खलबली पैदा कर दी है। दादा चौरासी वर्ष के हैं और एक विशेष संप्रदाय के विशेष व्यक्ति हैं। वे कबीर को समझाते हैं कि मैं मर जाऊं फिर तू संन्यास ले लेना। फिर तुझे जो करना हो करना, मेरे जीते-जी मत कर। मेरी प्रतिष्ठा को चोट लगती है। कबीर ने आकर कल मुझे कहा हैं कि मैं क्या करूं? बड़ी अड़चन हो गयी है। मैंने उनसे कहा, कि चौरासी वर्ष तक किसी मार्ग पर चलने के बाद भी अगर व्यक्ति को प्रतिष्ठा का मोह नहीं मिटा है तो कुछ भी नहीं मिला। जाकर अपने दादा को समझाना कि तुम भी संन्यस्त हो जाओ।

प्रतिष्ठा! नाम! यश! प्रतिष्ठा तो दूसरे देते हैं। दूसरों से दी गयी प्रतिष्ठा कोई प्रतिष्ठा है? ज्ञानियों ने आत्मप्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा कहा है। जो अपने में ठहर गया उसको प्रतिष्ठित कहा है। जो अब डांवाडोल नहीं होता उसको प्रतिष्ठित कहा है। जिसको अब हवा के झोंके हिलाते नहीं, जो निस्पंद हुआ है, तरंगशून्य हुआ है। आयें अंधड़, आयें तूफान, लेकिन उसके भीतर लहर नहीं उठती। और फिर जो व्यक्ति जान चुका है वह दूसरे को स्वतंत्रता देगा। ज्ञान का अनिवार्य परिणाम है स्वतंत्रता। वह दूसरे का सम्मान करेगा।

लेकिन बाहर के उत्तर सस्ते हैं। आदमी उनको पकड़े-पकड़े मर जाता है।

उनसे कुछ हल नहीं होता। सारी उलझन वैसी की वैसी बनी रहती है। आत्मवंचना है बाहर के उत्तर। सावधान रहना बाहर के उत्तरों से।

धनी धरमदास की भी ऐसी ही अवस्था थी। धन था, पद था, प्रतिष्ठा थी। पंडित-पुरोहित घर में पूजा करते थे। अपना मंदिर था। और खूब तीर्थयात्रा करते थे। शास्त्र का वाचन चलता था, सुविधा थी बहुत, सत्संग करते थे। लेकिन जब तक कबीर से मिलन न हुआ तब तक जीवन नीरस था। जब तक कबीर से मिलना न हुआ तब तक जीवन में फूल न खिला था। कबीर को देखते ही अड़चन शुरू हुई। कबीर को देखते ही चिंता पैदा हुई। कबीर को देखते ही दिखाई पड़ा कि मैं तो खाली का खाली रह गया हूं। ये सब पूजा-पाठ, ये सब यज्ञ-हवन, ये पंडित और पुरोहित किसी काम नहीं आये हैं। मेरी सारी अर्चनायें पानी में चली गयी हैं। मुझे मिला क्या? कबीर को देखा तो समझ में आया कि मुझे मिला क्या? मिले हुए को देखा तो समझ में आया कि मुझे मिला क्या?

इसलिए तो लोग जिसे मिल गया है उसके पास जाने से डरते हैं। क्योंकि उसके पास जाकर कहीं अपनी दीनता और दरिद्रता दिखाई न पड़ जाए। लोग उनके पास जाते हैं जो तुम जैसे ही दरिद्र हैं। उनके पास जाने से तुम्हें कोई अड़चन नहीं होती, चिंता नहीं होती, संताप नहीं होता।

अब तुम थोड़ा समझना, आमतौर से लोग साधु-संतों के पास संतोष पाने जाते हैं, संताप पाने नहीं। लोग कहते हैं संतुष्ट नहीं हैं हम इसलिए तो जाते हैं। सांत्वना चाहिए। संताप तो वैसे ही बहुत है। लेकिन मैं तुमसे कहूं कि सच्चे साधु के पास जाकर तुम पहली दफा संताप से भरोगे। पहली दफा तुम्हारी जिंदगी में असली चिंता का जन्म होगा। पहली दफा बवंडर उठेगा। पहली दफा आंख खुलेगी कि अब तक जो किया, वह व्यर्थ है। और जो सार्थक है वह तो अभी शुरू भी नहीं हुआ। स्वभावत: प्राण कंप जायेंगे, छाती हिल जायेगी। फिर छाती चाहिए आगे बढ़ने को। लेकिन फिर पीछे भी नहीं लौटा जा सकता है। एक बार किसी ज्ञानी से आंख मिल जाए तो फिर पीछे भी लौटा नहीं जा सकता। इसलिए लोग ज्ञानियों से आंख चुराते हैं, आंख बचाते है। जिनके पास कुछ भी नहीं है उनके चरण छूने में कोई अड़चन नहीं है। ज्ञानियों के पास लोग सम्हल-सम्हल कर जाते हैं। उनसे लगाव लगाना खतरे का सौदा है।

जिस साधु के पास जाकर तुम्हें सांत्वना मिलती हो समझ लेना, वह साधु ही नहीं है। साधु सांत्वना देने को थोड़े ही होते हैं! सांत्वना से तो तुम जैसे हो वैसे के वैसे रहोगे; मलहमपट्टी हो गयी। दर्द था थोड़ा, वह भी भूल गया। घाव था, उसे भी छिपा दिया। चिंताएं थीं, उनको भी हल कर दिया। कम से कम

ऐसा अहसास दिला दिया कि हल हो गयीं चिंताएं। असली साधु के पास तुम्हारी चिंताएं पहली दफा उमगती हैं। पहली दफा फूट पड़ता है तुम्हारा सारे भीतर का सांत्वना का बना-बनाया संसार, सब बिखर जाता है। तुम पहली दफा अपने को खंडहर की भांति देखते हो। तुम्हारे हाथ में जो धन है वह कचरा; तुम्हारे पास जो ज्ञान है वह कचरा; तुम्हारे पास जो चरित्र है वह दो कौड़ी का। तुम्हारा आचरण, तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारा यश किसी मूल्य का नहीं है। स्वभावत: आदमी घबड़ा जायेगा। लेकिन उसी घबड़ाहट से क्रांति की शुरुआत होती है।

साधु के पास सांत्वना नहीं मिलती, संक्रांति मिलती है। और क्रांति हो जाए तो एक दिन सांत्वना आती है। लेकिन वह सांत्वना नहीं है फिर, वह परम संतोष है; वह परितोष है। वह किसी के दिये नहीं आता, वह तुम्हारे भीतर जब कमल खिल जाता है तो सब खिल जाता है। वह ऊपर से आरोपित नहीं होता।

धनी धरमदास खोजते थे। तीर्थ जाते, साधु-सत्संग करते। खूब सांत्वना बटोरते थे। फिर मथुरा में सौभाग्य से--उस दिन तो दुर्भाग्य ही लगा था--कबीर से मिलना हो गया। कबीर ने तो झंझावात की तरह सब झकझोर दिया। मूर्ति मूढ़ता मालूम होने लगी। सगुण की उपासना अज्ञान मालूम होने लगा। वे पूजा पाठ, वे यज्ञ-हवन, सब अंधविश्वास थे। कबीर की चोट तो ऐसी पड़ी कि धरमदास तिलमिला गये। मथुरा छोड़कर भाग गये। अपने घर चले गये वापिस। बांधवगढ़ में उनका घर था। लेकिन कबीर जैसे व्यक्ति की चोट पड़ जाए तो तुम भाग नहीं सकते। कहीं भागो, कबीर तुम्हारा पीछा करेंगे। कहीं जाओ, तुम्हारे सपनों में छाया आयेगी। आदमी, आदमी जैसा होना चाहिए वैसा पहली दफा देखा था, भूलो भी तो कैसे भूलो! बड़ी बेचैनी हो गयी। प्रार्थना फिर भी करते लेकिन प्रार्थना में रस जाता रहा, उत्साह जाता रहा। मंदिर में थाली भी सजाते, पूजा भी उतारते लेकिन हाथों में प्राण न रहे। शास्त्र भी सुनते, लेकिन अब दिखायी पड़ने लगा कि सब कूड़ा-करकट है। दूसरों के उत्तर अपने उत्तर नहीं हैं; नहीं हो सकते हैं।

कबीर ने ऐसी चोट मारी कि नींद लेना मुश्किल हो गया। उदास रहने लगे, चिंता से भरे रहने लगे। और फिर यह भी चिंता पकड़ी कि एक ज्ञानी के पास से भाग आया। कमजोर हूं, कायर हूं। फिर कबीर की तलाश में जाना ही पड़ा। काशी में जाकर कबीर से मिले। कबीर से मिलने की घटना उन्होंने अपनी किताब 'अमर सुखनिधान' में गायी है। वह घटना बड़ी प्यारी है। वे वचन धनी धरमदास के समझने जैसे हैं।

धरमदास हरसित मन कीन्हा
बहुर पुरुस मोहि दरसन दीन्हा

जिसको देखा था मथुरा में फिर वही पुरुष का दर्शन हुआ। फिर वही ज्योति, फिर वही आनंद, फिर वही नृत्य।

धरमदास हरसित मन कीन्हा

मथुरा से तो लौट गये थे बहुत चिंता लेकर, उद्विग्न होकर।

यहां रोज यह घटता है। कभी कोई आ जाता है भूला-चूका तो उद्विग्न हो जाता है, परेशान हो जाता है। बस जो परेशान हो गया वह आज नहीं कल हर्षित भी हो सकता है। जो यहां से उद्विग्न होकर लौटा, वह आज नहीं कल आयेगा। आना ही पड़ेगा। क्योंकि यहां से जो बीमार होकर लौटा उसका इलाज फिर कहीं और नहीं हो सकता।

जाना ही पड़ा कबीर के पास। कहा, 'धरमदास हरसित मन कीन्हा।' लेकिन इस बार कबीर को देखकर बड़ा हर्ष हुआ। क्या हो गया? वह जो चार-छः महीने भगोड़ेपन में बिताये कबीर से, उन चार-छः महीनों ने सारी धूल झाड़ दी। कबीर ने जो कहा था उसका सत्य दिखायी पड़ा। उसका स्वयं साक्षात्कार हुआ। आधी यात्रा पूरी हो गयी।

व्यर्थ व्यर्थ की तरह दिखायी पड़ जाए तो सार्थक को सार्थक की तरह देखना सुगम हो जाता है। व्यर्थ को जब तक हम सार्थक मानते हैं तब तक सार्थक को देखें तो अड़चन होती है। झूठ को सच माना है, सच सामने खड़ा हो जाए तो बेचैनी होती है क्योंकि जिसे तुमने सच माना था, वह झूठ होने लगता है। इतने दिन उसमें लगाये, इतना धन-मन, समय लगाया। तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ हो जाता है उसमें। अगर कोई व्यक्ति तीस साल तक एक बात को पकड़े रहा, फिर अचानक कोई और बात सुनाई पड़े जो तीस साल को गलत करती हो, तो बड़ी हिम्मत चाहिए कि मेरे तीस साल व्यर्थ गये इसे स्वीकार कर लूं। आदमी का मन होता है, मेरे और तीस साल व्यर्थ गये? मैं इतना मूढ़ हूं क्या? आदमी रक्षा करता है, बचाने की कोशिश करता है।

इन चार-छः महीनों में धरमदास ने अपने को बचाने की सब तरह कोशिश की। लेकिन कबीर का टेंड़पा ऐसा है कि पड़ जाए तो सिर खुल गया था। चोट भारी थी। सब दिखाई पड़ने लगा। जो कबीर ने मथुरा में कहा था, वह दिखायी पड़ने लगा कि मूर्ति पत्थर है, किसकी पूजा कर रहे हो? ये पंडित-पुजारी, जिनकी तुम सुन रहे हो, खुद दो कौड़ी के नौकर हैं। इन्हें खुद भी कुछ पता नहीं है। ये दूसरों के कान फूंक रहे हैं, इनके कान अभी परमात्मा ने खुद नहीं फूंके हैं। ये दूसरों को मार्ग दे रहे हैं, इन्हें खुद मार्ग मिला नहीं है। इनके हृदय में अभी फूल खिला नहीं। इनके पास खुद भी सुगंध नहीं। ये सत्य बांटने चल पड़े हैं और सत्य की इन्हें कोई भी

खबर नहीं है। ये छः महीने तक जो-जो कबीर ने कहा था, एक-एक बात सही मालूम पड़ी। आधी बात तो पूरी हो गयी। अब कबीर की बात सुनकर चोट लगने का कोई कारण नहीं था, अब तो हर्षित होने की बात थी।

धरमदास हरसित मन कीन्हा
बहुर पुरुस मोहि दरसन दीन्हा

एक दिन जिससे भाग गये थे भयभीत होकर, आज उसके पास वापस लौटे हैं और इसलिए आनंदित हैं कि कबीर ने उन्हें पुनः दर्शन दिया। कबीर ने फिर वही झलक दी। कबीर ने वही झरोखा फिर खोला।

मन अपने तब कीन्ह बिचारा
इनकर ज्ञान महाटकसारा

इस आदमी के पास कुछ है। असली सिक्के हैं। टकसाल से निकले सिक्के हैं। मैं झूठे नकली सिक्कों में पड़ा रहा हूं।

इनकर ज्ञान महाटकसारा
दोई दिन के करता कहाई
इनकर भेद कोऊ नहीं पाई

आज पहली दफा प्रेम से भरकर, हर्ष से भरकर कबीर को देखा। पहली बार तो झिझक से देखा होगा, डरते-डरते देखा होगा, अपने को दूर-दूर रखा होगा, बीच में फासला रखा होगा, दीवाल रखी होगी। अपनी धारणाएं, अपने पक्षपात, अपना विचार, अपना सिद्धान्त, उन सबकी दीवाल स्वभावतः रही होगी। उसके पार से कबीर को देखा था। आज सब हटाकर देखा। छः महीने में वे सब दीवालें अपने आप हट गयीं।

गुरु मिल जाए, उसकी भनक भी पड़ जाए कान में तो फिर मिथ्या गुरु की पकड़ ज्यादा देर नहीं चल सकती। थोड़ी-बहुत देर तुम अपने को धोखा दे लो, दे लो।

इनकर भेद कोऊ नहीं पाई

आज पहली दफा आंख भरकर देखा। असीम था सामने। इस छोटी-सी देह में जैसे द्वार था असीम का; जैसे अगम का मार्ग खुलता था।

इतना कह मन कीन्ह बिचारा
तब कबीर उन ओर निहारा

पहले कबीर ने जो बातें कही थीं, कह दी थीं। लेकिन गुरु निहारकर तो शिष्य की तरफ तभी देखता है, जब शिष्य हर्ष से प्रमुदित होकर गुरु के पास बैठता है।

जुन्नैद ने कहा है कि मैं अपने गुरु के पास था। तीन साल तक तो उन्होंने मेरी तरफ देखा ही नहीं। बैठा रहता उनके पास मगर वे मेरी तरफ न देखते। और लोग आते, और बातें होतीं, मैं बैठा रहता, बैठा रहता। तीन साल बाद उन्होंने मेरी तरफ निहारा। मैं धन्यभागी हो गया। फिर तीन साल तक ऐसे ही बैठा रहा, बैठा रहा। फिर तीन साल के बाद, उन्होंने मेरी तरफ देखकर मुस्कुराया। फिर और तीन साल बीत गये बैठे-बैठे। फिर एक दिन उन्होंने मुझे छुआ, मेरे कंधे पर हाथ रखा। और तीन साल बीत गये तब उन्होंने अपने गले से मुझे लगाया, आलिंगन किया। बारह साल गुरु के पास बैठे-बैठे आलिंगन की घड़ी आती है।

तब कबीर उन ओर निहारा

गुरु देखता ही तब है... इस बात को समझना। गुरु के देखने से मेरा मतलब यह नहीं है कि कबीर पहली दफा जब धरमदास को देखे तो आंख बंद रखे होंगे। कि कबीर को नहीं देखा, कि कबीर को दिखाई नहीं पड़े होंगे धरमदास। देखा था, बस यह ऊपर की आंख से देखा था। एक और आंख है गुरु की, उस आंख से तो कोई तभी देखा जाता है जब कोई तैयार हो जाता है। वह आंख तो तुम्हारे भीतर तभी उतर सकती है जब हर्ष तुम्हारे भीतर द्वार खोल दे। तुम्हारे भीतर चिंताएं खड़ी हैं, बेचैनियां खड़ी हैं, फिक्रें खड़ी हैं, सही-गलत का हिसाब खड़ा है, संदेह खड़े हैं, अश्रद्धा खड़ी है, अनास्था खड़ी है, तो गुरु अपनी वह आंख खराब नहीं करता। उस आंख की अभी तुम्हें जरूरत नहीं है। उस आंख की जब जरूरत होती है तभी वह आंख तुममें डाली जाती है। वही आंख वास्तविक दीक्षा है। वही है गुरु के साथ जुड़ जाना। उसी आंख की झलक, और जोड़ बन जाता है। फिर जोड़ नहीं टूटते।

इतना कह मन कीन्ह बिचारा

इस हर्ष का विचार ही उठा था, यह आनंद का भाव ही उठा था,

तब कबीर उन ओर निहारा
आओ धरमदास पगु धारो

कबीर ने कहा धरमदास को—

आओ धरमदास पगु धारो
चिहुक-चिहुक तुम काहे निहारो

ऐसे दूर-दूर से, चिहुक-चिहुक! ऐसे डरते-डरते, ऐसे भयभीत...!

आओ धरमदास पगु धारो

कबीर ने कहा, अब रखो पग। यह खुला मार्ग। मैं हूं मार्ग, रखो पग।

आओ धरमदास पगु धारो

अब दूर खड़े रहने से न चलेगा। पहली दफा तो कबीर ने खंडन किया था कि मूर्ति गलत, कि पूजा गलत कि प्रार्थना गलत कि शास्त्र गलत। पहली दफे तो सारे आकार और सगुण की धारणा का खंडन ही खंडन किया था। इस बार निमंत्रण दिया।

आओ धरमदास पगु धारो
चिहुक-चिहुक तुम काहे निहारो

अब दूर रहने की कोई जरूरत नहीं। अब दूर-दूर से देखने की कोई जरूरत नहीं। आ जाओ पास, निकट आ जाओ। इस निकट आ जाने का नाम सत्संग है। और धन्यभागी हैं वे जिन्हें गुरु बुला ले और कहे,

आओ धरमदास पगु धारो
चिहुंक-चिहुंक तुम काहे निहारो
कहिये छिमा कुसल हो नीके

कबीर कह रहे हैं धरमदास से,

कहिये छिमा कुसल हो नीके?

सब ठीक-ठाक है?

सुरत तुम्हार बहुत हम झींके

कितने-कितने समय से तुम्हारी सूरत की याद कर रहे थे।

सुरत तुम्हार बहुत हम झींके

यह मत सोचना कि शिष्य ही गुरु को खोजता है। गुरु शिष्य से ज्यादा खोजता है। शिष्य की खोज तो अंधी है, अंधेरी है। शिष्य को तो पता नहीं ठीक-ठीक क्या खोज रहा है। गुरु को पता है। इजिप्त के पुराने शास्त्र कहते हैं, जब शिष्य तैयार होता है तो गुरु उसे खोज लेता है। शिष्य तो कैसे खोजेगा? शिष्य तो कैसे पहचानेगा कौन गुरु है? गुरु से मिलन भी हो जायेगा तो भी प्रत्यभिज्ञा नहीं होगी। गुरु सामने भी खड़ा होगा तो भरोसा नहीं आयेगा। हजार बाधाएं पड़ेंगी, हजार चिंताएं अड़चन डालेंगी। हजार संदेह उठेंगे। मैं भी इस बात से राजी हूं कि पहला कदम गुरु उठाता है, शिष्य नहीं। पहला निमंत्रण गुरु देता है।

आओ धरमदास पगु धारो
चिहुक-चिहुक तुम काहे निहारो
कहिये छिमा कुसल हो नीके?
सुरत तुम्हार बहु हम झींके

मथुरा में देखा था धरमदास को। तब धरमदास तो नहीं पहचान सका था अपने गुरु को लेकिन गुरु अपने शिष्य को पहचान लिया था। देखा होगा बीज धरमदास में। देखी होगी संभावना इसके वृक्ष बन जाने की, किसी दिन आकाश में फूल खिल जाने की। देखी होगी इसकी अनंत संभावना। गुरु उसी दिन चुन लिया था। धरमदास को तो उस दिन पता भी नहीं था। धरमदास को तो कुछ पता हो भी नहीं सकता था।

सुरत तुम्हार बहुत हम झीके
धरमदास हम तुमको चीन्हा

कबीर कहते हैं कि हमने तुम्हें पहचाना।

बहुत दिनन में दरसन दीन्हा

इतनी देर लगायी और हम राह देखते और राह देखते।

बहुत ज्ञान कहसीं हम तुमहीं
बहुर के तुम अब चीन्हों हमहीं

हम तो तुम्हें चीन्ह लिये, अब तुम हमें चीन्हो। हम तो तुम्हें पहचान लिये, अब तुम हमें पहचानो। गुरु पहले पहचानता है तभी शिष्य के पहचानने की संभावना प्रगाढ़ होती है। गुरु पहले चुनता है, तब शिष्य चुनता है।

भली भई दरसन मिले बहुरि मिले तुम आये
जो कोऊ मोंसे मिले सो जुग बिछुरि न जाए

कबीर कहते हैं, अच्छा हुआ, भली भई दरसन मिले। आ गये तुम। ये बड़े सम्मान से कहे गये वचन हैं। सद्गुरु के मन में शिष्य के प्रति बड़ा सम्मान होता है। और जिस गुरु के मन में शिष्य के प्रति सम्मान न हो वह गुरु ही नहीं; उसे पता ही नहीं। क्योंकि शिष्य और गुरु में भेद क्या है? भेद शिष्य की तरफ से होगा, गुरु की तरफ से कुछ नहीं हो सकता। गुरु तो जानता है, जो मेरे भीतर विराजमान है वही शिष्य के भीतर विराजमान है। मेरे भीतर जाग गया, शिष्य के भीतर सोया है लेकिन सोने-जागने से क्या फर्क पड़ता है? स्वभाव तो एक है। शिष्य को भेद पता चलता है कि मैं कहां, गुरु कहां! मैं अंधेरा-भरा, गुरु रोशन। मुझे कुछ मिला नहीं, गुरु को सब मिला। लेकिन गुरु को तो यह दिखाई पड़ता है ना, कि जैसा मुझे मिला वैसा ही तुझे अभी मिल सकता है, इसी वक्त मिल सकता है। तेरी अपनी संपदा है। कहीं मांगने नहीं जाना। कहीं खोजने नहीं जाना। अभी परदा उठा, अभी भीतर झांक और अभी पा ले। क्षण भर की भी देर करने की जरूरत नहीं है। इसलिए गुरु के मन में शिष्य के प्रति उतना ही सम्मान होता है, जितना शिष्य का गुरु के प्रति होता है।

भली भई दरसन मिले बहुरी मिले तुम आये

फिर से तुम आ गये! मैं राह देखता, मैं प्रतीक्षा करता था। जो कोऊ मोंसे मिले—और जो मुझसे मिल जाता है, सो जुग बिछुरि न जाए। फिर बिछुड़ना संभव नहीं है। अब तुम आ गये तो आओ ही मत, मिल ही जाओ ताकि फिर बिछुड़ना न हो सके।

और ऐसा ही हुआ। धरमदास फिर न लौटे। लौटकर नहीं देखा। कायर ही लौटकर देखते हैं। हिम्मतवर आदमी आगे देखता है, पीछे नहीं देखता। वहीं से सब लुटवा लिया। घर भी लौटकर नहीं गये। लुटाने को भी नहीं गये। अब उसके लिये भी क्या जाना! वहीं से खबर भेज दी कि सब बांट दो। जो है सब बांट-बूंट दो। जिनको जरूरत है, ले जाएं। सारे गांव को कह दो जिसको जो ले जाना है ले जाए। लौटकर भी नहीं गये। असल में लौटकर भी जाते तो थोड़ी चूक हो जाती। देने के मजे में भी तो अहंकार भरता है। इतना लुटा रहा हूं, इतना दे रहा हूं, यह मजा लेने भी चले गये होते तो थोड़ा अहंकार घना होता। धन का मूल्य तो फिर भी स्वीकार कर लिया होता कि धन बड़ी कीमती चीज है, जाऊं, लुटाऊं, बांट आऊं। धन का कोई मूल्य ही न रहा। इधर कबीर से आंख क्या मिली, सब मिल गया। वहीं से खबर भेज दी। अपने आदमी भेज दिये होंगे जो साथ आये थे कि भाई जाओ, मैं तो गया। तुम जाओ, जो है, सब बांट-बूंट दो। जैसा है निपटा-सिपटा दो। मेरा अब आना न हो सकेगा।

जब कबीर कहते हैं, सो जुग बिछुरि न जाए; जो मुझसे आ मिला फिर कभी बिछुड़ता नहीं, तो अब इतना भी बिछोह न सहूंगा। फिर धरमदास कबीर की छाया होकर रहे। कबीर के समाधि-उपलब्ध शिष्यों में एक थे धरमदास। और जिस दिन धरमदास ने सब लुटवा दिया, उस दिन से कबीर ने उनको कहा धनी धरमदास।

एक धन है जो बाहर का है। जिससे कोई आदमी धनी नहीं होता, सिर्फ भिखारी बनता है। और एक धन है भीतर का, जिससे आदमी वस्तुतः धनी होता है। धन की परिभाषा क्या है? धन की परिभाषा है जो बांटने से बढ़े। जो बांटने से घट जाए वह धन नहीं। यह भीतर का धन ऐसा है, जितना बांटो उतना बढ़ता है। इसलिए कबीर ने उनको धनी कहा। अब अटूट धन मिल गया, अखूट धन मिल गया। धनों का धन मिल गया।

शिष्य और गुरु का जहां मिलन होता है वहीं परमात्मा प्रगट होता है। उस मिलन की घड़ी में ही परमात्मा प्रगट होता है। तुमने देखा? एक प्रेमी और प्रेयसी मिलते हैं, एक प्रेमी और प्रेयसी के मिलने पर संभोग का क्षणिक सुख पैदा

होता है। जहां शिष्य और गुरु मिलते हैं, वह भी प्रेमी और प्रेयसी का मिलना है–किसी बहुत दूसरे आयाम में, तब वहां समाधि फलित होती है। प्रेमी और प्रेयसी मिलते हैं तो जीवन का आविर्भाव होता है, एक बच्चे का जन्म होता है। जहां शिष्य और गुरु मिलते हैं, वहां ईश्वर का आविर्भाव होता है, वहां जीवन के मूल का आविर्भाव होता है।

सब लुटाकर धरमदास धनी हुए। इनके वचन अपूर्व हैं। उन्हीं के वचनों की यात्रा हम आज शुरू करते हैं।

गुरु मिले अगम के बासी

अगम का अर्थ होता है, जहां बुद्धि की गति न हो। जहां तक बुद्धि की गति है वहां तक तो गुरु की जरूरत भी नहीं है, वहां तक तो तुम्हारी बुद्धि ही गुरु है। जहां बुद्धि हारती, थकती, ठहर जाती, ठिठक जाती, जहां से आगे चलने से बुद्धि इन्कार कर देती, वहीं से गुरु की जरूरत है। इसलिए बुद्धिमान आदमी अक्सर गुरु से वंचित रह जाते हैं। उन्हें यह भ्रांति होती है कि उनकी बुद्धि सदा उनके काम आती रहेगी। उन्हें यह भ्रांति होती है कि जहां तक बुद्धि ले जाती है बस वहीं तक यात्रा है। उसके आगे कुछ है ही नहीं। जो आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है वह क्या कह रहा है? वह यह कह रहा है कि मेरी बुद्धि के बाहर है। और जो मेरी बुद्धि के बाहर है वह हो कैसे सकता है? मेरी बुद्धि के भीतर जो है, वही है। मेरी बुद्धि कसौटी है अस्तित्व की।

यह बड़ी मूढ़तापूर्ण बात है। बुद्धि कसौटी नहीं है अस्तित्व की। जीवन में तुम ऐसी बहुत-सी बातों को जानते हो जो बुद्धि के बाहर हैं—जैसे प्रेम। तुम्हारा किसी स्त्री से प्रेम हो गया, किसी पुरुष से प्रेम हो गया। बुद्धि के भीतर इसमें कुछ भी नहीं है। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी जब प्रेम में पड़ता है तो वैसे ही प्रेम में पड़ता है जैसे मूढ़ से मूढ़ आदमी पड़ता है। कुछ भेद नहीं होता। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी वैसा ही पगला जाता है प्रेम में, जैसा बुद्धू पगला जाता है। इसलिए तो प्रेम को बुद्धिमान अंधा कहते हैं। समझदार प्रेम को नासमझी कहते हैं। लेकिन प्रेम है, इसे तो इन्कार न कर सकोगे। बुद्धि के बाहर है, फिर भी है। बुद्धि की पकड़ में नहीं आता, फिर भी है। बुद्धि परिभाषा नहीं कर सकती कि क्या है, फिर भी है। ऐसी ही प्रार्थना है, ऐसा ही परमात्मा है। वे प्रेम के ही और-और ऊंचे रूप हैं। वहां बुद्धि की कोई गति नहीं है। इसलिए उन लोगों को अगम कहा है।

जिस व्यक्ति को यह अनुभव शुरू हो जाता है कि मेरी बुद्धि जहां तक ले जाती है वहां अस्तित्व समाप्त नहीं होता, अस्तित्व आगे भी फैला है, आगे भी गया है, तब गुरु की जरूरत अहसास होती है। तो किसी ऐसे का हाथ पकड़ूं जो आगे गया हो। बुद्धि जहां तक ले आयी, ठीक। मैं बुद्धि का दुश्मन नहीं हूं। बुद्धि जहां तक ले जाए वहां तक बुद्धि के साथ जाना। लेकिन जहां बुद्धि कहे कि बस अब मेरी सीमा आ गयी, वहीं मत रुक जाना; उसके आगे बहुत कुछ है। असली उसके आगे है। मूल्यवान उसके आगे है। परम उसके आगे है।

गुरु मिले अगम के बासी

जब तुम्हें कोई अगम का वासी मिल जाए, जो उस अगम में रहता हो जो बुद्धि के आगे है, तभी समझना कि गुरु मिला। और ऐसा नहीं है कि गुरु सदा जो बातें कहता है वे बुद्धि के विपरीत होती हैं। बुद्धि के अतीत होती हैं, विपरीत होना आवश्यक नहीं है। अतीत होने के कारण विपरीत मालूम हो सकती हैं। कबीर की बातें तो बुद्धि के विपरीत नहीं हैं। कबीर तो बड़े बौद्धिक व्यक्ति हैं। इस पृथ्वी पर थोड़े-से ऐसे बौद्धिक संत हुए हैं जिनके पास तर्क का बड़ा प्रांजल रूप है। कबीर तो एकदम बौद्धिक हैं। जो बुद्धि में न आये, जो बुद्धि में न समाए ऐसी बात वे कहते नहीं। लेकिन वहीं समाप्त नहीं हो जाते। जहां तक बुद्धि ले जाती है वहां तक तुम्हें बुद्धि के साथ ले जाते हैं, जहां बुद्धि समाप्त हो जाती है वहां वे कहते हैं, अब छलांग लो; अब बुद्धि-अतीत में कूदो। जो बुद्धि-अतीत है वह बुद्धि के विपरीत नहीं है सिर्फ अतीत है, आगे है।

बुद्धि की सीमा है, अस्तित्व असीम है। बुद्धि छोटी-सी है। एक छोटी-सी खोपड़ी, कितना इसमें समाता है; जितना समाता है वह भी चमत्कार है। इतना समझ में आ जाता है वह भी चमत्कार है। जिस व्यक्ति की वाणी में तुम्हें और जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में तुम्हें कुछ पार की बात की झलक मिलती हो उसका साथ पकड़ लेना। उसके पास कुछ राज है। उससे सीख ही लेना राज।

गुरु मिले अगम के बासी
उनके चरणकमल चित दीजे
सतगुरु मिले अविनासी

यहां तो सभी मरणधर्मा हैं। उस अर्थ में तो कबीर भी मरणधर्मा हैं। लेकिन जब शिष्य भाव से भरकर झुकता है, गुरु की आंख में आंख डालकर देखता है, झांकता है, जब मौन और शांति में गुरु को सुनता है, समझता है तो उसे दिखाई पड़ता है कि शरीर तो मरणधर्मा है लेकिन भीतर अमृत का वास है। जिसके भीतर तुम्हें अमृत का वास दिखाई पड़ जाए वही तुम्हारा गुरु।

तुम किस भांति अपने गुरु चुनते हो? तुम जैन धर्म में पैदा हुए इसलिए जैन मुनि तुम्हारा गुरु? न तुम्हें अमृत की झलक मिलती है, न तुम्हें अगम का कुछ पता चलता है, लेकिन संस्कारवश जो तुम्हें सिखाया गया है कि ऐसा होना

चाहिए, वैसा तुम्हारा मुनि कर रहा है। रात भोजन नहीं करना तो वह रात भोजन नहीं करता है। बस गुरु हो गये! पानी छानकर पीना हो, पानी छानकर पीता है, गुरु हो गये! कसौटियां क्या हैं तुम्हारी? किस क्षुद्र-सी कसौटियों के आधार पर तुम गुरु खोज रहे हो! ब्राह्मण घर में पैदा हुए तो ब्राह्मण गुरु हो गया, मुसलमान घर में पैदा हुए तो मुसलमान गुरु हो गया। इतना आसान है गुरु को खोजना?

अगम का वासी होना चाहिए। फिर हिंदू हो कि मुसलमान कि ईसाई, क्या फर्क पड़ता है! फिर ब्राह्मण हो कि शूद्र, क्या फर्क पड़ता है! अमृत का धनी होना चाहिए। जिसके पास तुम्हें अमृत की झंकार सुनाई पड़ती हो, जिसकी आंखों में झांककर तुम्हें लगता हो कि कुछ शाश्वत है। और पहले-पहले तो सिर्फ लगेगा ही। सिर्फ प्रतीति होगा, हल्की-हल्की झलक होगी। उसी झलक के सहारे आगे बढ़ोगे तो धीरे-धीरे प्रगाढ़ हो जायेगी अनुभूति।

उनके चरणकमल चित दीजे

गुरु के चरणों को कमल कहा है शास्त्रों ने। क्यों? जिसके मस्तिष्क का कमल खिल गया है, जिसका सहस्त्रार खिला गया है . . .सात चक्र योगी कहते हैं। मूलाधार पहला: जहां से कामऊर्जा उठती है, जहां से वासना उठती है। अधिकतर लोग वहीं जीते हैं, वहीं मर जाते हैं। और अंतिम चक्र है सहस्त्रार। जब कामऊर्जा उठते-उठते अपनी आखिरी मंजिल पर पहुंच जाती है और तुम्हारे भीतर कामऊर्जा का कमल खिलता है। कमल प्रतीकात्मक है। जैसे कीचड़ से कमल खिलता है, ऐसे ही कामऊर्जा कीचड़ जैसी है। इसी कीचड़ से उठती है कोई रहस्यमय शक्ति और तुम्हारे पूरे चैतन्य पर कमल की तरह खिल जाती। हजार पंखुड़ियोंवाला कमल कहा है उसे। हजार सिर्फ सूचक है। जिनकी पंखुड़ियों की गिनती न हो सके, यह उसका अर्थ है। असीम का कमल खिलता है। अगम का कमल खिलता है।

जिसकी चेतना में अगम का कमल खिल गया है उसके चरण भी पकड़ लो तो भी धन्यभागी हो। क्यों? क्योंकि जिसका अंतिम खिल गया है उसका प्रथम भी कमल खिल जाता है। इसे थोड़ा समझना। तुम वही होते हो जो तुम्हारे चैतन्य में घटता है। अगर तुम्हारी चेतना में कामवासना ही घूमती रहती है तो तुम्हारे सिर को भी कोई छुए तो भी कामवासना को ही छुएगा। तुम्हारा सिर भी अपवित्र है। तुम्हारे सिर में भी अश्लील विचार घूमते रहेंगे। तुम्हारा सिर भी छूने योग्य नहीं है। जिसकी चेतना में राम का कमल खिल जाए, प्रेम का कमल खिल जाए, परमात्मा का उदय हो, प्रकाश पैदा हो, जो जाग गया हो

उसके पैर में भी वही जागृति है। क्योंकि हम इकठ्ठे हैं। जो होता है वह हमारे पूरे व्यक्तित्व पर फैल जाता है। उसके पैर से भी तुम्हें परमात्मा की ही भनक सुनाई पड़ेगी।

एक बात–कि तुम अखंड हो। काम में होते हो तो तुम पूरे के पूरे काम होते हो। और राम में होते हो तो तुम पूरे के पूरे राम होते हो, इस बात की सूचना।

और दूसरी बात––कि शिष्य तो चरण में ही झुक सकता है क्योंकि अभी लेना है। जिसे लेना है उसे झुकना चाहिए। क्योंकि झुकने में ही लेना घट सकता है। जितने तुम झुकोगे उतने ही ज्यादा तुम भर जाओगे। स्वीकार करना है, ग्रहण करना है, तो झुकना होगा।

उनके चरणकमल चित दीजे
सतगुरु मिले अविनासी
उनकी सीत प्रसादी लीजे

और गुरु की झूठन मिल जाए गिरी पड़ी, तो प्रसाद है।

उनकी सीत प्रसादी लीजे छूटि जाए चौरासी

सीत प्रसादी का अर्थ होता है गुरु का झूठा भी मिल जाए तो भी अमृत है। अमृत को जिसने छुआ वह अमृत हो गया।

यह प्रतीक है। ये बड़े प्यारे प्रतीक हैं। और यह इस देश में ही सिर्फ पैदा हुए क्योंकि इस देश ने ही इन ऊंचाइयों पर उड़ान भरी है। पश्चिम से कोई आता है, उसकी समझ में नहीं आता कि किसीके चरणों में क्यों झुका जाए। क्यों? उसे पता ही नहीं है कि चरणों में झुकने की एक कला है। सिर्फ झुक-झुक कर कुछ चीजें हैं, जो पायी जाती हैं।

कुछ चीजें लड़कर पायी जाती हैं। धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, इन में लड़ना पड़ता है। इन में झुकोगे तो नहीं मिलता। इनमें जूझना पड़ता है। इनमें संकल्प की जरूरत है। इनमें अहंकार की जरूरत है। आक्रमण की जरूरत है, हिंसा की जरूरत है। अब तुम ऐसे झुके-झुके रहोगे तो बाजार में पिट जाओगे। बाजार में तो लड़नेवाला चाहिए, जूझनेवाला चाहिए। चाहे पास एक कौड़ी न हो, लेकिन अकड़कर ऐसा चले कि लाखों बैंक में जमा हैं। उससे काम चलता है। चाहे भीतर कुछ न हो, लेकिन बाहर किसी को खबर नहीं होना चाहिए। बाहर तो दीवाली रहे, चाहे भीतर दिवाला हो। कोई फिकर नहीं। क्योंकि दुनिया बाहर के देखे चलती है।

बैंक उसको लोन देती है जिसको लोन की जरूरत नहीं। जिसको जरूरत हो

उसको नहीं देती। दुनिया बड़ी अजीब है। बैंक का यह नियम है कि जिसको जरूरत नहीं है, बैंक का मैनेजर उसकी तलाश करता आता है कि भाई कुछ ले लो। जिसको जरूरत है वह बैंक के मैनेजर की तलाश करता है। उसको कुछ नहीं मिलता। जिसको जरूरत हो उसको कौन देता है? जो होशियार है वह अपने को दीन नहीं बताता बाजार में। बाजार में दीन बताया कि गये, काम से गये! फिर न टिक सकोगे। बहां तो अपनी अकड़ कायम रखनी जरूरी है। वहां तो किसी को कानों कान खबर न लगे कि तुम्हारी हालत खराब है। वहां तो कुछ भी ना हो तुम्हारे पास तो भी दिखाना चाहिए। टेलिफोन ना भी हो ऑफिस में तो ऐसे ही चोर बाजार से टेलिफोन उठाकर लाकर रख लेना। कनेक्शन की उतनी जरूरत नहीं है, मगर लोगों को दिखायी पड़ता है कि टेलिफोन है। लाखों से नीचे की बात मत करना। चाहे कौड़ियां न हों घर में, बात लाखों की करना। लोग सुनें कि लाखों की बात चलती है। बाजार अहंकार पर खड़ा है।

एक और दूसरी दुनिया है जहां यही बातें बाधाएं हो जाती हैं। गुरु के पास जाकर अगर अपने ज्ञान की अकड़ बताओगे तो चूक जाओगे। क्योंकि गुरु तुम जो दिखाते हो वह नहीं देखता, तुम जो हो वह देखता है। उसकी आंखों से तुम बच ना सकोगे। उसकी आंखें पारदर्शी हैं। उसकी आंखें एक्स-रे हैं। वह तुम्हारे भीतर देख रहा है। वह देख रहा है कि वहां कुछ भी नहीं है, तुम दीन-हीन हो। उसे तुम्हारा दिवाला दिखाई पड़ रहा है। ये तुम जो दीये हाथ में सजाकर आ गये हो ये उधार दीये हैं। ये दूसरों से तेल मांग लिया और दूसरों की बाती और रोशनी भी किसी और की। ये सब दीये गुरु को धोका न दे सकेंगे। वहां तो गिर पड़ना। वहां तो घोषणा कर देना कि मैं दीन हूं। तुम्हारी दीनता की घोषणा ही तुम्हारे धनी होने का सबूत होगी। तुम गड्ढे की तरह गुरु के पास जाना ताकि गुरु तुम्हें भर दे। तुम इस अकड़ में मत जाना कि मैं भरा हुआ हूं। नहीं, भरने की कोई जरूरत ही नहीं है। तो गुरु के पास जो अकड़कर जाता है वह चूक जाता है। वहां जो दीन होकर जाता है, दरिद्र होकर जाता है, वहां जो भिखारी होकर जाता है, जो कहता है मेरे पास कुछ भी नहीं; कि मैं एक रिक्त अस्तित्व हूं, मुझे भरो; जो झुकता है।

और अगर गुरु के जूठन का हिस्सा भी हाथ लग जाए—उनकी सीत प्रसादी लीजे। वही प्रसाद है। जिसे गुरु के ओठों ने छू दिया वही प्रसाद है। जो गुरु बोलता है वही प्रसाद है। उसे सम्हालकर रख लेना, वही संपदा है। कई बार ऐसा भी लगेगा कि अपने किसी काम की नहीं यह बात। आज ना हो काम की, कल हो जायेगी काम की, परसों हो जायेगी काम की। गुरु तुम्हें तयार कर रहा है

अंतिम यात्रा के लिए। कब कौनसी चीज काम पड़ जायेगी नहीं कहा जा सकता। गुरु ने कही है तो काम की होगी ही। तुम अपने हिसाब मत रखना कि मुझे जंचे तो सम्हालूं, न जंचे तो न सम्हालूं। तुम अपना ही हिसाब रखोगे तो चूकोगे। तुम्हारी बुद्धि इन बातों को नहीं समझ पाएगी। गुरु चोट भी करे तो अनुग्रह से स्वीकार कर लेना। चोट भी तुम्हारे हित में होगी। और गुरु के सामने नग्न हो जाना। सब खुला छोड़ देना। कुछ बचाना मत, कुछ छिपाना मत, जूठन भी मिल जाए : उसकी सीत प्रसादी लीजे—तो स्वीकार कर लेना। वही तुम्हारा भोजन बन जाए। वही तुम्हारी पुष्टि हो।

छुटि जाए चौरासी

फिर तुम्हें बार-बार नहीं आना होगा। जिसने गुरु को पकड़ा उसे फिर बार-बार नहीं आना होगा। उसे यह चक्कर, यह जन्म और मरण की पीड़ा, ये नरकों की यात्रा फिर नहीं करनी होगी। अहंकार करवाता है ये सारी यात्राएं—ये चौरासी कोटि की यात्राएं, ये नरकों का आवागमन अहंकार करवाता है। अहंकार अग्नि है, नरकों में जो जलती है।

तुमने सुना नर्क में अग्नि जलती है, उसमें तुम जलाए जाओगे? उस अग्नि को ईंधन कहा से आता है? तुम्हीं ले जाते हो। तुम्हारा अहंकार ही ईंधन बनता है। और सच यह है कि नर्क थोड़े ही जाना पड़ता है जलने के लिए! अभी तुम जल रहे हो। जब तक अहंकार है तब तक तुम जल रहे हो। जहां अहंकार है वहां जलन है वहां पीड़ा है, वहां दुख है। गुरु के चरण पकड़नेका अर्थ है, अहंकार छोड़ा। समर्पण का और क्या अर्थ होता है! इतना ही कि अब मैं नहीं तुम। कोई एक ऐसा व्यक्ति मिल गया जिसके सामने हम कह सकते हैं अब मैं नहीं, तुम। अब मेरे हृदय में तुम विराजो। मैं हटता हूं, मैं सिंहासन खाली करता हूं, तुम आओ।

गुरु के इस सिंहासन पर बिठाने का प्रयोजन क्या है? एक ही प्रयोजन है कि इस बहाने अहंकार गिर जाए। गुरु वहां बैठता थोड़े ही है! गुरु तुम्हारे सिंहासन को भरता थोड़े ही है! गुरु तो सिर्फ निमित्त है। वह तो सिर्फ तुम्हारा अहंकार छूट सके इसलिए एक निमित्त है। जैसे ही अहंकार छूट जाता है... गुरु तुम्हारे सिंहासन पर कभी नहीं बैठता। अहंकार छुटाने का उपाय है गुरु। जैसे ही अहंकार छूट जाता है, परमात्मा को तुम अपने सिंहासन पर बैठा हुआ पाओगे। इसलिए तो गुरु को भगवान कहा है। क्योंकि बुलाया था गुरु को, आता भगवान है। गुरु नहीं बैठता। और अगर कोई गुरु तुम्हारे सिंहासन पर बैठ जाए तो फिर चौरासी की यात्रा शुरू हो गयी। वह गुरु गुरु ही नहीं था, जो तुम्हारे सिंहासन

पर बैठ गया। वह तो सिर्फ एक उपाय था।

बुद्ध ने इस शब्द का उपयोग किया : उपाय। गुरु के चरणों में सिर झुकाने का मतलब यह नहीं है कि अब वे चरण तुम्हारे हृदय में विराजमान हो गये। उनको विराजमान करने की चेष्टा में अहंकार हट जायेगा। अहंकार के हटते ही परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है। कबीर ने कहा न ! 'गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागू पांव।' इधर अहंकार गया कि दोनों एक साथ खड़े होते हैं सामने। 'गुरु गोविंद दोई खड़े। बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।' तो गुरु की बलिहारी वही है कि जैसे अहंकार हटा, शिष्य के सामने दोनों खड़े होंगे--गुरु और गोविंद।

और गुरु गोविंद की तरफ इशारा कर देगा कि अब उन्हें बैठने दो। मेरा काम पूरा हो गया। मेरा काम औषधि की तरह था। तुम्हारा अहंकार थी बीमारी, मैं था औषधि, यह रहा स्वास्थ्य। गोविंद आकर खड़े हो गये। बीमारी गयी, औषधि भी जाने दो। औषधि को क्या करोगे अब ? अब परम स्वास्थ्य उतरता है इसे अंगिकार करो। गुरु संसार से छुड़ाता है, और परमात्मा से मिलाता है। कोटि, एक यात्रा चौरासी कोटियों की अचानक समाप्त हो जाती है। एक दूसरी यात्रा शुरू होती है-अनंत की, अगम की।

अमृत बूंद झरे घट भीतर साध संत जन लासी

और जैसे ही तुम झुकोगे वैसे ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर अमृत की बूंदें झरने लगी। अकड़े रहे, जहर से भरे रहोगे। अकड़ की गांठ जहर पैदा करती है। इसलिए अहंकार से भरा हुआ आदमी सदा दुखी है।

अमृत बूंद झरे घट भीतर-जो झुका उसके घट के भीतर अमृत की बूंद झरने लगती हैं।

साध संत जन लासी--यही साधु-संतों का पेय है। यही उनकी लस्सी है। यही उनकी चाशनी है--लासी। वे इसी को पीते, इसी को पी-पी कर मस्त होते हैं। यही उनकी शराब है।

धरमदास बिनवे करजोरी सार सब्द मन बासी

धरमदास कहते हैं, मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूं, इस ढंग से मैंने पाया, तुम भी पा लो। यह रास्ता था मेरे पहुंचने का, तुम भी पहुंच जाओ।

धरमदास बिनवे करजोरी सार सब्द मन बासी

सार शब्द को मन में बसाओ। सार शब्द यानी क्या ? जिसने जान लिया, जिसने पा लिया, उसकी ध्वनि को अपने भीतर जाने दो। उसके लिए सब द्वार खुले छोड़ दो। उसकी किरणों को बुलाओ, पी जाओ। गुरु को पियो। गुरु को

पचाओ।

...सार सब्द मन बासी

और जैसे-जैसे तुम गुरु को अपने भीतर बसाओगे और उसकी वाणी को अपने भीतर गूंजने दोगे, तुम चकित हो जाओगे। क्या होगा चमत्कार ? चमत्कार ये होगा कि गुरु की वाणी जैसे ही तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होनी शुरू होती है निर्बाध, वैसे ही तुम्हारे भीतर जो शब्द सोया पड़ा है जन्मों-जन्मों से वह जाग उठता है।

समझो, तुम सो रहे हो। मैं आया और मैंने तुम्हें पुकारा कि उठो। मेरे उठने-उठाने, मेरे शब्द से तुम्हारे भीतर क्या होता है ? जो सोया है वह जग जाता है। 'उठो' शब्द थोड़ी काम आता है ! 'उठो' शब्द का तो सिर्फ इतना प्रयोजन था कि तुम्हें चौका गया। लेकिन उसी चौकने में नींद टूट गयी। तुम्हारे भीतर जागरण खड़ा हो गया। जागरण की क्षमता तुम्हारे भीतर है। जागोगे तुम। गुरु के शब्द तुम्हारे भीतर पड़े सार शब्द को ध्वनित कर देते हैं। गुरु की मौजूदगी, तुम्हारे भीतर वह जो परमात्मा सोया पड़ा है उसकी तुम्हें स्मृति से भर देगी। गुरु बार-बार तुम्हें तुम्हारे ऊपर फेंकता है। चोटें करता है। पुचकारता भी है, भागने भी नहीं देता। हर चेष्टा करता हैं कि तुम्हारे भीतर जो चेतना है दबी पड़ी है, वह बीज की तरह फूट जाए।

धरमदास बिनवे करजोरी सार सब्द मन बासी
नामरस ऐसा है भाई

वह नाम का रस ऐसा है कि अगर पड़ जाए तुम्हारे भीतर तो तुम्हारे भीतर जो राम सोया पड़ा है वह जग जाए।

नामरस ऐसा है भाई
आगे आगे दहि चले पीछे हरियल होई

यह बड़ा प्यारा वचन है। यह कहता है कि अगर तुम इस रस में डूबोगे तो तो आगे-आगे तो यह जलाता है, और पीछे-पीछे हरा करता है। यह बड़ा अद्भुत वचन है। पहले तो सूली पर चढ़ा देता है। और उसी सूली पर चढ़ने में सिंहासन निर्मित होता है। पहले तो मार डालता है और मृत्यु में नये जन्म का आविर्भाव है —आगे आगे दहि चले।

तो गुरु से घबड़ा कर भाग मत जाना। क्योंकि गुरु पहले तो जलायेगा।

मथुरा में वही हुआ था। कबीर से जब मिलना हुआ धरमदास का--आगे आगे दहि चले ! तो कबीर टूट पड़े धरमदास पर। जैसे अंगारों की वर्षा हो गयी।। जैसे कहा कि सब पाखंड है तेरी यह पूजा और तेरी यह आराधना, और तेरे यह मंदिर और तेरी मूर्ति और तेरे शास्त्र, सब पाखंड है। आग बरस गयी होगी। जो आदमी

जीवन भर से मूर्तिपूजा में तल्लीन रहा हो, जिसने बड़ी आवभगत से मंदिर में प्रतिष्ठा की हो, भगवान जिसने शास्त्रों को सदा सिर पर रखा हो, सिर झुकाया हो, यह सुनकर एकदम चौंक गया होगा। जल गया होगा। भारी चोट खायी होगी। घाव लग गये होंगे। 'आगे आगे दहि चले'। छः महीने तक वह जलन रही। वह आगजलाती रही। और फिर जब कबीर को देखा जाकर--

धरमदास हरसित मन कीन्हा
बहुर पुरुस मोहि दरसन दीना

फिर पीछे हर्ष उदय हुआ, आनंद उदय हुआ। फिर सब हरा हो गया। कहते हैं यह अनूठी प्रक्रिया है; पहले जलाती है और सुखा डालती है। और जब तुम बिल्कुल सूख जाते हो तब नये पत्ते लगते हैं, नये फूल लगते हैं। पुराने से मुक्त होना ही पड़ता है तभी नये का जन्म होता है। अतीत से छुटकारा चाहिए तभी कुछ हो सकता है। अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता है। तुम इतने अतीत से दबे हो... इसीलिए दबे हो। अतीत को हटा दो। यह राख हटा दो अतीत की तो तुम्हारा अंगारा प्रगट हो जाए।

बलिहारी वह वृक्ष की जड़ काटे फल होई

मथुरा में मिलकर तो लगा होगा कि कबीर ने जड़ें काट दीं। धर्म की जड़ें काट दीं। यही तो मेरे पास जो पहली दफे आता है उसको लगता है कि धर्म की जड़ें काट दीं। यह तो धर्म का विनाश हो गया।

बलिहारी वह वृक्ष की जड़ काटे फल होई

पहले तो सोचा था कि जड़ें काट दीं। और अब देखते हैं धरमदास तो फल लगे हैं; जड़ काटकर फल लगे हैं। यही जीवन का सार-सूत्र है। यहां भी जीवन का वृक्ष ऐसा ही है। इसमें जीवन के मूल को जड़ को काट देता है--जीवेषणा। जीवेषणा मूल है, जीवन की जड़ है। जीने की इच्छा--कि जीऊं, और सदा जीऊं, कभी मरूं न। मैं रहूं, और रहूं यह जीवन की जो मूल आकांक्षा है यही जड़ है। इसी जड़ के कारण तुम मरते हो, और मरते हो। चाहते हो जीओ, चाह के कारण मरते हो। बारबार मरते हो। पुनः मरते हो। जिसने इस जड़ को काट दिया, जीवेषणा को काट दिया, फिर नहीं मरता। अमृत हो जाता है।

बात जरा उलटबासी है, उलटा लगता है। मगर जीवन के बहुत से सत्य ऐसे ही हैं, विरोधाभासी हैं। धन के पीछे दौड़ो और तुम निर्धन बने रहते हो। और धन की तरफ पीठ कर लो, धनी धरमदास! तुम धनी हो गये। सम्मान के पीछे दौड़ो और सम्मान नहीं मिलता, उल्टे अपमान मिलता है। उपेक्षा से भर जाओ और अचानक तुम पाते हो, सम्मान आने लगा। जीवन बड़ा बेबूझ है। 'बिन मांगे मिले न चून'। बड़ा अजीब है जीवन का शास्त्र। यहां जिनके पास सब कुछ है, तुम पाओगे उनके पास कुछ भी नहीं। और कभी ऐसा आदमी मिल जायेगा जिसके पास कुछ नहीं और सब है। यहां भिखारियों में सम्राट मिल जाते है और सम्राटों में भिखारी।

यहां जीवन के परम अनुभव को कौन उपलब्ध हुए? जिन्होंने जीवन की आकांक्षा छोड़ दी--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कबीर, कोई नानक। जिन्होंने जीवन की आकांक्षा छोड़ दी ये परम जीवन को उपलब्ध हुए। इनके व्यक्तित्व में जैसा जीवन खिला वैसा सिकंदर, या तैमूरलंग या नादिरशाह के व्यक्तित्व में थोड़े ही खिलता है! बुद्ध में जो फूल खिलता है वह अडोल्फ हिटलर में थोड़े ही खिलता है? और मजा यह है कि अडोल्फ हिटलर जीना चाहता है, सदा जीना चाहता है। और बुद्ध, इसी क्षण मौत आती है तो इसी क्षण मरने को तैयार हैं। एक क्षण नहीं टालेंगे। जब मौत आ जाए तब राजी। ये जो मौत के लिए इस भांति राजी हैं इनकी आंखों से अमृत झलकता है। और जो मरने से भयतीत हैं, वे जीते भी क्या खाक जीते हैं। वे रोज मरते हैं, मरते हैं। कहते हैं न, कायर हजार बार मरता है! जरा-सरा सी बात उसे मौत की खबर ले आती है।

बलिहारी वह वृक्ष की जड़ काटे फल होय

जीवन का जो वृक्ष है उसकी जड़ है आसक्ति, जीवेषणा। उसके काट जाने पर मुक्ति का फल लगता है।

अति कड़ुवा, खट्टा, घना रे वाको रस है भाई

लेकिन अपने अनुभव से धरमदास कहते हैं कि अति कड़ुवा, खट्टा घना। क्योंकि पहले जब चखा था तो बहुत कड़ुवा था। मथुरा में चखा था तो बहुत कड़ुवा था।

अति कड़ुवा खट्टा घना रे वाको रस है भाई

सद्गुरु जब मिलेगा तो ख्याल रखना, पहले तो कड़ुवा ही लगेगा। जो पहले से मीठा लगे उससे बचना। क्योंकि वह जो पहले से मीठा लग रहा है वह असली फल नहीं है। वह तो मीठा लग रहा है इसलिए कि तुम्हें फांस लेना चाहता है। उसकी मिठास तुम्हें फासने के लिये जाल है। उसकी मिठास तो निर्मित है। असली फल तो कड़ुवा होगा।

ज्ञानी की बात कड़ुवी लगती है। क्योंकि ज्ञानी की बात तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच लेती है। तुम भले-चंगे चले जा रहे थे और ज्ञानी तुम्हें उलझन में डाल देता है। सब ठीक-ठाक चलता था और मुश्किल खड़ी हो जाती है। पछताते हो कि कहां सुन ली यह बात! किस दुर्भाग्य के क्षण में इस आदमी के पास

पहुंच गये। अच्छा होता न गये होते। यह क्या सत्संग हुआ कि दिन और रात का चैन भी गया। अपने जले जाते थे मसजिद, पढ़ लेते कुरान, हो आते थे मंदिर कभी, चढ़ा देते थे दो पैसे, सब ठीक-ठाक चल रहा था। यह संसार भी ठीक चल रहा था, उस लोक को भी सम्हाल रह थे, दे देते थे ब्राह्मण को भोजन, कि कन्या भोज करवा देते थे कि सत्यनारायण की कथा करवा देते थे। सस्ता था धर्म, सुविधापूर्ण था।

यह क्या बात सुन ली कि सत्यनारायण की कथा से कुछ भी न होगा; कि ब्राह्मण को भोज देने से कुछ भी न होगा; कि ब्राह्मण तो ब्राह्मण है ही नहीं। किसी ब्रह्म के जानेवाले को खोजो, तब ब्राह्मण मिला। ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी। अब कहां खोजो ब्राह्मण को? अब कहां खोजो ब्रह्मज्ञानी को? तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच गयी। तो कड़वा तो लगेगा।

यहां रोज यह घट जाता है। मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि हम आये तो सांत्वना के लिये थे, हमारी जो और बची-खुची सांत्वनाएं थीं वह भी टूट गयीं। हम तो सोचते थे कि सब ठीक ही चल रहा है, इसी दिशा में थोड़े और जले जायेंगे तो सब ठीक हो जायेगा। लेकिन सब हमारी आधारशिलाएं उखड़ गयीं। आपने हमारी बुनियाद हिला दी। अब हम निश्चिंत न हो सकेंगे। अब हम मंदिर में जायेंगे भी, तो घबड़ाहट लगेगी। लगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं? इसमें कुछ सार नहीं। उत्साह नहीं होगा। जो हमारा धर्म था वह तो आपने नष्ट कर दिया। और आपका धर्म पता नहीं कितने दूर है, कैसा है; हमें मिल सकेगा कि नहीं मिल सकेगा?

> अति कड़ुवा खट्टा घना रे वाको रस है भाई
> साधत साधत साध गये अमली होय सो खाई

लेकिन अगर कोई साधता रहे, साधता रहे, साधता रहे, साधते-साधते सध जाता है। और बड़ा अमृत है। 'अमली होय सो खाई।' जिसमें साहस और परमात्मा को खोजने का अपूर्व अनुराग हो, जो सत्य को खोजने के लिये हर किमत चुकाने को राजी हो, अमली हो, वही उस फल को खा सकता। जो कहे सत्य को खोजने के लिये अगर सब गंवाने पड़ेगा तो राजी हूं, कुछ बचाऊंगा नहीं। वही उस फल को चख पायेगा।

और उस फल की पहली मुलाकात बड़ी कड़ुवी है। कड़ुवी क्यों है? सत्यका फल कड़ुवा क्यों है? इसे थोड़ा समझो। सत्य का फल वस्तुतः कड़ुवा नहीं है तुम असत्य के फल को बहुत दिन तक अभ्यास किये हो। वह तुम्हें मीठा लगने लगा

है। अभ्यास से चीजें मीठी हो जाती हैं। तुमने कभी पहली दफा शराब पी है? पहली दफा शराब पिओगे तो बड़ी तिक्त मालूम पड़ती है। कड़ुवी मालूम पड़ती है। तुम्हें भरोसा ही नहीं आयेगा कि आखिर लोग शराब किसलिए पीते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन शराब पीता। उसकी पत्नी, जैसी सभी पत्नियाँ शराबियों को समझाती रहती है, उनका काम ही यही है। पतियों का काम शराब पियो, पत्नियों का काम समझाते रहो, ऐसे दोनों की जिंदगी खराब होती है। पत्नी समझाते समझाते थक गयी। एक दिन उसे एक बात सूझी। उसने कहा कि बहुत हो गया। अब और कोई उपाय नहीं है। मुल्ला शराब घर गया था, वह भी पीछे-पीछे पहुंच गयी। वहां मुल्ला पी रहा था मजे से बैठकर अपने पियक्कड़ों के बीच। वह भी जाकर टेबल कुर्सी पर बैठ गयी। मुल्ला बहुत घबड़ाया, कि ये तो कभी आयी नहीं थी शराबघर। और यह भला भी नहीं लगता, कि घर में रहनेवाली स्त्री, बुर्का पहननेवाली स्त्री और बुर्का उघाड़कर शराब घर आ गयी। और उसने कहा, आज मैं भी पीऊंगी। वह सिर्फ चोट करने के ख्याल से उसने कहा था। अब मुल्ला कुछ कह भी न सका। पत्नी ने तो बोतल से उंडेल ही ली ग्लास में। पत्नी ने कभी तो शराब पी ही नहीं थी। न उसे सोडा मिलाने का पता था। कि ऐसी खालिस शराब नहीं पी जाती, नहीं तो जल जाओगी बुरी तरह। वह तो पानी ही पीती रही थी और तो कुछ उसने पीना कभी जाना नहीं था। गटागट पी गयी। फिर बड़ा मुंह बिगाड़ा, उसने कहा कि यह तो जहर है। मुल्ला ने कहा; और तू समझती थी हम यहां मजा कर रहे हैं? अब तुझे पता चला कि यह मजा नहीं है। यह बड़ी कठिन चीज है।

शराब पहले दफा पियोगे तो कड़ुवी लगेगी ही। लेकिन पीते ही रहे तो शराब भी मधुर मालूम होने लगेगी।

असत्य को जन्मों-जन्मों तक पचाया है। असत्य कड़ुवा है, जहर है लेकिन जन्मों-जन्मों का अभ्यास—रुचिकर हो गया है। और जिसे असत्य मीठा लगने लगे उसे सत्य कड़ुवा लगेगा ही। क्योंकि असत्य से सत्य बिल्कुल उलटा है। इसलिए शुरू-शुरू में कड़ुवा लगता है। इसलिए कबीर कठोर मालूम होते हैं। इसलिए सद्गुरु तीर की तरह चुभ जाता है। तुम्हारी गलत आदतों का परिणाम है, और कुछ भी नहीं।

सिगरेट पहली दफा पियो तो खांसी आती है, आंख में आंसू आ जाते हैं। फिर पीते ही रहो तो खांसी भी बंद हो जाती है, आंखों में आंसू भी आने बंद हो जाते हैं, फिर तो बिना पिये नहीं चलता। अभ्यस्त हो गये। जहर का भी अभ्यास हो सकता है। तब जहर में भी माधुर्य मालूम होने लगेगा।

और अगर जन्मों-जन्मों तक अभ्यास चला हो तो सब सत्य तुम्हारे कान में पहली दफे पड़ेगा, तो तुम्हें बिलकुल भी रुचिकर मालूम नहीं होगा। दुर्गंध का अभ्यास हो गया है, सुगंध समझ में नहीं आती। शोरगुल का अभ्यास हो गया है, शांति काटती है। शब्द का बहुत अभ्यास हो गया है, मौन डराता है। भीड़-भाड़ की आदत हो गयी है, अकेले नहीं बैठा रहा जाता। भीड़-भाड़ चाहिये। चाहिये ही भीड़-भाड़।

अति कड़वा खट्टा घना वाको रस है माई
साधत साधत साध गये हैं अमली होय सो खाई

लेकिन अगर कोई साधता रहे साधता रहे, तो अब जहर भी मीठा हो जाता है साधते-साधते तो अमृत तो मीठा है ही। साधते-साधते हो जायेगा। साधने का इतना ही अर्थ है कि साधते-साधते जहर की आदत छूट जायेगी। और जहर मीठा है यह भ्रांति साफ हो जायगी। यह भ्रांति मिट जायेगी। उसी दिन अमृत का स्वाद पहली बार मिलेगा। वही स्वाद मुक्ति है।

सुंघत के बोरा भये हो, पियत के मरि जाई

प्यारे वचन हैं। धनी कहते हैं, 'सुंघत के बौरा भये हो'। कि जो उसे सूंघ लेता है, उस सत्य के रस को, वह बावला हो जाता है, पागल हो जाता है। क्योंकि जिसे तुमने अभी समझदारी समझी है वह समझदारी नहीं है। तुम जिसे अभी समझदारी कहते हो वह एक तरह का पागलपन है।

क्या है तुम्हारी समझदारी? धन इकट्ठा कर लो और मर जाओ। अब धन में से कुछ ले जा न सकोगे। अब यह बड़े मजे की बात है, एक आदमी जिंदगी भर इकट्ठा करता है जिसमें से कुछ ले जा न सकेगा। इसको तुम समझदार कहते हो? यह कैसी समझदारी हुई? ऐसी चीज इकट्ठी की, जो ले जा न सकेगा। और इसको इकट्ठा करने में न कभी चैन से सोया, न कभी चैन से बैठा। जिंदगी खराब हुई और बाद में सब पड़ा रह गया। इसको तुम समझदारी कहते हो? यह समझदारी तो नहीं हो सकती। मगर इसीको लोग समझदारी मानते हैं।

इसलिए जब पहली दफा धरमदास ने धन लुटवा दिया होगा तो लोगों ने कहा, पागल हुआ। स्वभावतः उन सबने मिलकर कहा होगा--बाजार में लोगों ने कि गया। भला-चंगा था, भजन-पूजन कीर्तन करता था, सब ठीक ठाक चल रहा था, यह कबीर की झंझट में पड़ गया। यह मालूम होता कबीर से सम्मोहित हो गया। यह पागल हो गया। लोगों ने कहा होगा हम तो पहले ही से जानते थे। लोग सदा यहीं कहते हैं कि हम तो पहले से ही जानते थे। हमने कहा नहीं था पहले ही कि यह आदमी झंझट में पड़ेगा! ये जाता तीर्थाटन करता और मेला जाता, और

मंदिर जाता, और गलत आदमियों का साथ जोड़ता, उसको सत्संग कहता था। अब फंसा! अब हुआ बरबाद। अब अपने हाथसे अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली।

तो सांसारिक लोग तो इसे पागल कहेंगे ही। बुद्ध को उन्होंने बुद्धू कहा था; उसीसे तो बुद्धू शब्द पैदा हुआ। महावीर को कोई सम्मान नहीं दिया था, पागल कहा था,पत्थर मारे थे। जीसस को सूली पर लटकाया। सुकरात को जहर पिलाया। इतने पागल कि तुम उन्हें बरदाश्त ही न कर सके। अब जीसस किसीका कुछ न बिगाड़ रहे थे। इन्हें सूली देने की क्या जरूरत थी? लेकिन जिन्होंने सूली दी उनके पीछे कारण है। जीसस किसी का कुछ न बिगाड़ रहे थे लेकिन लोगों को यह लगने लगा, इस आदमी के साथ कई लोग पागल हुए जा रहे हैं।

सुकरात को जब जहर दिया गया तो अदालत ने उससे यह कहा था कि तुम्हें हम मौका देते हैं। तुम आदमी अच्छे हो, तुमने कोई ऐसा प्रगट नुकसान किसीका कभी किया नहीं। तुम अथेन्स छोड़कर चले जाओ। यह नगर छोड़ दो, और इसमें दुबारा मत आना। हम तुम्हें छोड़ दे सकते हैं। तो तुम्हारी मृत्यु बच सकती है। सुकरात ने पूछा, क्या फिर मैं कभी नहीं मरूंगा? अदालत ने कहा, यह तो बात फिजूल की कर रहे हो। मरना तो पड़ेगा ही। हम तुम्हें अभी मारने से रोक सकते हैं अपने को, लेकिन मौत तो आएगी ही। तो सुकरात ने कहा, जब मौत आनी है तो आज कि कल, क्या फर्क पड़ता है? फिर तुम्हारी दया, और तुम्हारी भिक्षा क्या मांगनी? फिर से बचने के लिए अथेन्स छोड़कर क्या जाना? फिर कायरता क्या करनी? फिर भगोड़ापन क्या करना, फिर आने दो। जब आनी है तो दिन-दो दिन और ज्यादा जिये, उससे क्या सार है?

अदालत को बड़ी दया थी। क्योंकि आदमी यह प्यारा था। ये आदमी सब प्यारे थे। सुकरात हो, कि मन्सूर हो, कि जीसस हो, कि बुद्ध, कि महावीर, ये प्यारे लोग थे। इनसे प्यारे लोग जमीन पर और कहां हुए? लेकिन जमीन पर बसे लोगों को ये बेचैन तो करते थे। इनकी मौजूदगी कांटे की तरह चुभती थी।

अदालत ने कहा, हम दूसरा विकल्प देते है, अथेन्स में ही रहो, मगर अब तक तुम जो बातें लोगों से करते थे वे बातें करना बंद करो। सुकरात ने कहा, यह तो और भी मुश्किल है। क्योंकि जो मुझे मिला है वह मुझे बांटना है। उसके मिलने में ही बांटना आ गया है। वह मुझे बांटना ही पड़ेगा। वह मेरा दायित्व है, परमात्मा के प्रति। नहीं तो मैं वहां में गुनहगार हो जाऊंगा। तुम्हारी अदालत में गुनहगार होनेसे मुझे कोई अड़चन नहीं। लेकिन उसकी अदालत में मैं गुनहार नहीं होना चाहता। जो मुझे मिला है, मुझे बांटना पड़ेगा। उसके साथ ही यह शर्त जुड़ी है कि बांटो। तो सत्य बोलना मैं नहीं रोक सकता। वह तो मेरा

धंधा है। सत्य तो मैं बोलूंगा, तुम्हें मारना है तो मारो।

लेकिन सत्य बोलनेवाले लोग इतने हमें बेचैन क्यों करते हैं कि हमें जहर देना पड़ता है? हमारा असत्य डगमगाता है। उनकी मौजूदगी से हमारे भीतर हीनता पैदा होती है। उन्हें देखकर हमें ऐसा लगता है कि होना तो ऐसा चाहिये था, और हम हो क्या गये! उनके कारण हमारे अहंकार को चोट होती है। मिटा दो इन्हें, हटा दो इन्हें, तो हम निश्चित हो जाते हैं। हम घोषणा करते हैं कि ये लोग पागल हो गये हैं और इनसे बचो। इनके पास मत जाओ।

बड़ा मजा है। संसारी समझते हैं संन्यासियों को पागल। और संन्यासी समझते हैं कि संसारी पागल हैं। अगर दोनों में विचार करोगे तो तुम एक दिन पाओगे कि संसारी ही पागल है। क्योंकि संन्यासी वह जोड़ता है जो मौत में भी साथ जायेगा। वह ध्यान इकट्ठा करता है, धन नहीं। ध्यान उसका धन है। वह पद नहीं जोड़ता, प्रेम जोड़ता है। प्रेम उसका पद है। वह इस संसार की व्यर्थ चीजें इकट्ठी नहीं करता, वह सिर्फ परमात्मा को पाने की पात्रता जुटाता है। वह अपने पात्र को खालिस करता है, शुभ्र करता है, परिशुद्ध करता है कि किसी दिन परमात्मा उसमें बरसे तो वह तयार रहे। वह जीवन में जो महत्वपूर्ण है वही करता है। अब ऐसा ही समझो कि तुम गये समुद्र के तट पर, वहां हीरे भी पड़े थे, और कंकड़-पत्थर भी पड़े थे। तुम कंकड़-पत्थर बीनते रहे, और संन्यासी ने हीरे बीन लिये। हालांकि तुम उसे पागल कहोगे क्योंकि तुम अपने कंकड़-पत्थरों को हीरा समझते हो। और वह तुम्हें पागल कहेगा। क्योंकि वह जानता है, हीरा क्या है।

और एक बात ख्याल रखना, संन्यासी संसार का भी अनुभव रखता है, तुम संन्यास का अनुभव नहीं रखते। तुम्हारी बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। उसने दोनों बातें जानी हैं। उसने संसार जाना है और संन्यास जाना है। ऐसा ही समझो कि एक जवान आदमी है, और बूढ़ा आदमी है। हम बूढ़े आदमी की बात को ज्यादा मूल्य क्यों मानते हैं? इसलिए कि उसने जवानी भी जानी और बुढ़ापा भी जाना। तुमने सिर्फ जवानी जानी है। तुम्हें अभी दूसरे पहलू का कुछ पता नहीं है। इसलिए जवान आदमी के बात का कोई बहुत मूल्य नहीं माना जाता। पहले जवानी को जाने दो। पहले इसका उतार भी देखो। अभी तुमने वसंत ही देखा है, पतझाड़ भी देखो। फिर तुम जो कहोगे उसमें जादा संतुलन होगा। ऐसे ही हमने इस देश में बूढ़े को आदर दिया। क्योंकि बूढ़े का अनुभव जवान से ज्यादा है। जवान को हम आदर देते हैं बच्चे से ज्यादा, क्योंकि बच्चे से जवान का अनुभव ज्यादा है।

और हम संन्यासी को ज्यादा आदर देते हैं संसारी की तुलना में। क्योंकि उसका अनुभव--इस जगत का और उस जगत का, बाह्य का और भीतर का।

साधत साधत साध गये हैं अमली होय सो खाई
सूंघत के बौरा भये हो...

धनी धरमदास कहते हैं कि सूंघते ही पागल हो जाते हैं लोग। ऐसी बात है यह।

...पियत के मर जाई

और जो इसको पी लेते हैं वे मर जाते हैं। मगर ध्यान में पागल हो जाना बुद्धिमत्ता की अंतिम ऊंचाई पा लेना है। और ध्यान में मर जाना अमर जीवन की शुरुआत है। सूली ही पुनर्जन्म है।

सूंघत के बौरा भये हो पियत के मर जाई

इसलिए तो मैं कहता हूं, मैं मृत्यु सिखाता हूं। क्योंकि मृत्यु के द्वारा ही तुम जीवन को जान पाओगे।

नाम रस जो जन पिये धड़ दर सीस न होई।

और जिनसे नाम का रस पिया, वह अचानक पाता है कि धड़ तो बचा, शीश नदारद हो गया। शीश नदारद हो गया। शीश नदारद हो गया अर्थात अहंकार खो गया। अब अकड़ न रही। सिर तुम्हारी अकड़ है।

नाम रस जो जन पिये धड़ पर सीस न होई

और इस संबंध में यह भी ख्याल रख लेना जरूरी है कि कबीर का यह ध्यान-प्रयोग है, जो अपने शिष्यों को कराते थे। वह प्रयोग बड़ा महत्वपूर्ण है। तुम्हारे भी काम का है इसलिए उसे समझ लेना चाहिए। वह अपने शिष्यों को कहते थे, दर्पण के सामने खड़े हो जाओ। दर्पण में अपने सिर को देखो और एक ही भाव अपने भीतर करो कि मेरा कोई सिर नहीं। यह सिर दिखाई पड़ रहा है लेकिन है नहीं, यह भ्रांति है। इस भाव में गहरे उतरो कि कि सिर भ्रांति है, है नहीं। मेरे सिर हैं नहीं। दो-चार-छः महीने के निरंतर अभ्यास से तुम चकित हो जाओगे। एक दिन दर्पण में तुम देखोगे, सिर दिखाई नहीं पड़ रहा है। घबड़ा भी जाओगे।

अगर तुम्हें भरोसा न हो तो स्वभाव वहां पीछे बैठे हैं, स्वभाव से तुम पूछना। यह प्रयोग मैंने स्वभाव को दिया था। फिर एक दिन बहुत घबड़ाहट आ गयी। सिर खो गया! दर्पण के सामने खडे रहोगे, सिर दिखाई नहीं पड़ेगा तो घबड़ाहट तो आएगी ही कि यह हुआ क्या! हो गये पागल, अब हुए पागल। वह जो स्वभाव के घर के लोग समझते हैं कि गया काम से। पागल हो गया!

लेकिन एक बार तुम्हें समझ में आ जाए, दिखाई पड़ जाए कि सिर है ही नहीं, परम शांति फैल जाती है। भीतर सब शांत हो जाता है। फिर अकड़ नहीं होती।

इसलिए तो गुरु के चरणों में सिर रखते हैं कि ले लो मेरा अहंकार; कि मैं थक गया हूं। उतार लो मेरे अहंकार को। यह मेरा सिर रहा। इसलिए सिर गंवाने की हिंमत हो तो ही कोई संन्यासी होता है।

सूंघत के बौरा भये हो पियत के मर जाई
नाम रस जो जन पिये धड़ पर सीस न होई
संत जवारिस सो जन पावै जाको ज्ञान परगासा
धरमदास पी छकित भये हैं और पिये कोई दासा
संत जवारिस सो जन पावे जाको ज्ञान परगासा
धरमदास पी छकित भये हैं और पिये कोई दासा
संत जवारिस जो जन पावे जाको ज्ञान परगासा

इतने पागल होने की हिम्मत हो, साहस हो अपना सिर गंवाने का तो ही वह परम औषधि मिलती है। जवारिस का अर्थ होता है; परम औषधि, समाधि। जिसमें सारी व्याधियां खो जाती हैं; इसलिए उसका नाम औषधि।

संत जवारिस जो जन पावे--यह उसी को मिलती है जो दुनिया की आंखों में पागल होने को तयार है। यह उसीको मिलती जो दुनिया की आंखों में शून्य होने को तयार है। यह उसीको मिलती है जो अपने हाथ से सूली पर चढ़ने को तयार है। यह उसीको मिलती है जो अपने हाथ से अपने सिर को उतारकर रख देता है।

संत जवारिस सो जन पावे जाको ज्ञान परगासा

और जब यह समाधि फलती है, यह परम औषधि भीतर उतरती है, यह संजीवनी आती है, तो प्रकाश होता है। वही प्रकाश ज्ञान है। ज्ञान शास्त्र से नहीं आता, उस समाधि के दीये जलने पर जो प्रकाश भीतर होता है उसका नाम ज्ञान है--जाको ज्ञान परगासा।

ज्ञान जानकारी नहीं है, ज्ञान अनुभव है। तुम्हारा साधारणतः जिसे तुम ज्ञान कहते हो वह तो अंधे के द्वारा प्रकाश के संबंध में सुनी गयी बातों जैसा है। या बहरे के द्वारा संगीत की संबंध में पढ़ी गयी बात जैसा है। उसका कोई मूल्य नहीं है। अंधे की आंख खुले--ज्ञान परगासा, तब प्रकाश होता है तब प्रकाश का अनुभव होता है। और अनुभव से ही जानना है। इसलिए मैंने तुम्हें शुरू में कहा, कि एक ही सवाल है : मैं कौन हूं ? और एक ही उत्तर है। मगर उत्तर तुम्हारे भीतर है और तुम बाहर खोजते हो, इसलिए नहीं पाते हो।

धरमदास पी छकित भये हैं ...

धरमदास कहते हैं, मैंने पिया। मेरी सुनो। मेरी गुनो। मैं पिया और छक गया। ऐसा भर गया लबालब, भरपूर, कोई कमी ना रही, कोई छिद्र ना रहे, कोई आकांक्षा न रही। परितृप्त हो गया हूं।

धरमदास पी छकित भये हैं और पिये कोई दासा

और धरमदास कहते हैं कि मैं तो ऐसा भर गया हूं लबालब, ऊपर से बहा जा रहा हूं। अगर किसी और की हिम्मत हो तो वह भी आये और मुझसे पी ले।

... और पिये कोई दासा

लेकिन तयारी चाहिये परमात्मा के दास होने की। वहां मालकियत नहीं चलती। वहां संकल्प नहीं चलता, वहां समर्पण चलता है। वहां झुकने में जीत है, वहां हारने में जीत है। तुमने सुना न, बार-बार लोगों को कहते कि प्रेम की हार जीत है। और परमात्मा के साथ तो परम प्रेम का संबंध है, तो परम हार का संबंध है। वहां तो तुम बिलकुल हार जाओगे, सर्वहारा ही जाओगे, सब हार दोगे। वहां चरणों में पड़ जाओगे बिलकुल सूने होकर; वहीं जीत फलित हो जायेगी।

धरमदास पी छकित भये हैं और पिये कोई दासा

तुममें भी जो दास होने के लिए तयार हों उनके लिए निमंत्रण है।

धरमदास के ये वचन तुम्हारे जीवन में क्रांति का कारण बन सकते हैं। इन्हें सुनना जागकर, हृदयपूर्वक, तन्मय होकर।

आज इतना ही।

प्रश्न–सार

- शिष्यों का चोरी-छिपे दूसरे गुरु को सुनने जाना क्या है––जिज्ञासा, अवज्ञा या और अधिक खोज ?
- आपकी बातें सीधी और साफ होने के बावजूद भी शिक्षाशास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों की समझ में क्यों नहीं आतीं ?
- भगवान, मैं कितना हूं कि मुझे आप मिले !
- सभी भक्त अपने-अपने धर्मगुरु की प्रशंसा में अतिशयोक्ति क्यों करते हैं ?

प्रवचन : २

दिनांक : १।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना ।
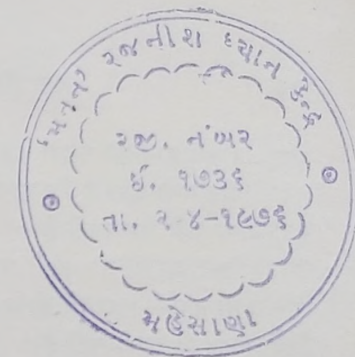
माधव जन्म तुम्हारे लेखे !
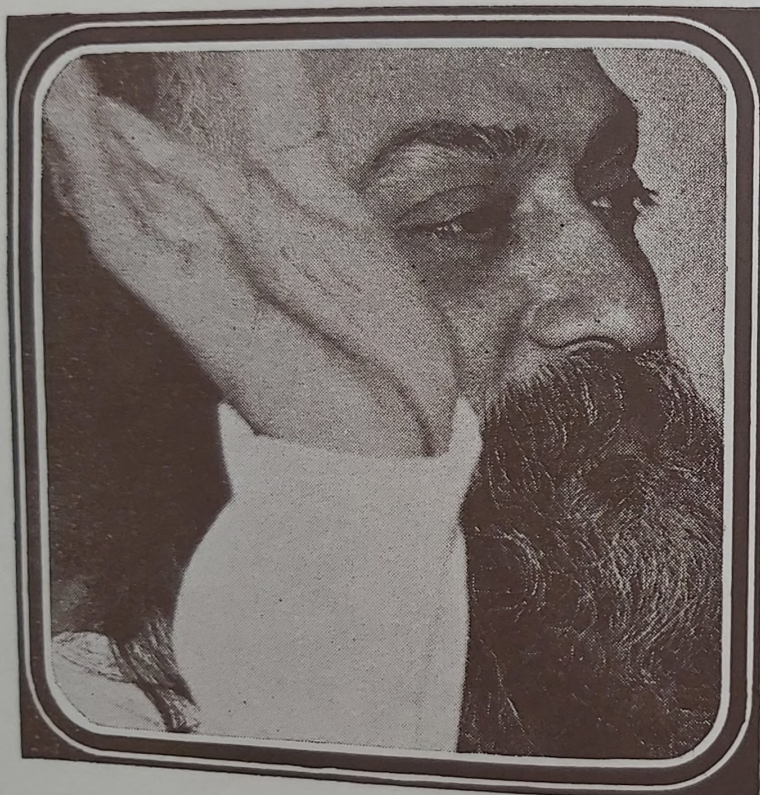
पहला प्रश्न : यदि समर्पित शिष्य चुपचाप चोरी-छिपे किसी दूसरे बुद्धपुरुष को सुनने जाएं तो क्या वह मात्र जिज्ञासा है, या अवज्ञा है या और अधिक की खोज है ?

कृष्ण मुहम्मद, ऐसे व्यक्ति दया के पात्र हैं। उन्होंने जाना ही नहीं प्रेम क्या है। और प्रेम को बिना जाने कोई समर्पण नहीं है। और जो समर्पित नहीं है, वह शिष्य नहीं है। शिष्य होने का ढोंग एक बात है, शिष्य होना बड़ी दूसरी बात।

शिष्य तो वही है, जो अपने सिर को काटकर जमीन पर रख दे; जो अपने को पोंछ ले, मिटा ले। अहंकार जरा-सा भी बचा हो तो शिष्यत्व कहां! जो ऐसा झुके कि उठे नहीं, वही शिष्य है। शिष्य को कहां फुरसत! शिष्य को अपने गुरु में सब मिल गया। शिष्य को अपने गुरु में सारे बुद्धपुरुष मिल गये—अतीत के, वर्तमान के, भविष्य के। उसने सार-संपदा पा ली। अब कहां जाना? अब क्यों जाना? अब किसलिये जाना?

तुम्हारी प्यास बुझ गयी हो तो तुम झरने नहीं खोजते फिरोगे, कुएं नहीं खोदते फिरोगे। प्यास न बुझी हो तो अनिवार्यतया झरने खोजने पड़ेंगे, कुएं खोदने पड़ेंगे।

शिष्य और विद्यार्थी का यही फर्क है। विद्यार्थी का अर्थ है: जो ज्ञान बटोर रहा है। जहां से मिल जाए! कहीं से भी मिल जाए! विद्यार्थी अपने अहंकार को ज्ञान से भर लेने में उत्सुक है। जितना ज्यादा जान लेगा, उतना ज्यादा होगा। जानकारी उसका लक्ष्य है।...तो ऐसा ही नहीं है कि बुद्धपुरुषों को सुनने जायेगा; जो बुद्धपुरुष नहीं हैं, उनको भी सुनने चला जायेगा। कहीं भी कुछ हो, विद्यार्थी तो सिर्फ ज्ञान बटोर रहा है। अज्ञानी से भी मिलता हो तो उसको भी बटोर लेना है। ज्ञानी से ही थोड़े! ज्ञान और अज्ञान का विद्यार्थी को क्या प्रयोजन! कहीं से कुछ सूचनायें मिल जाएं, कुछ तथ्य मिल जाएं, थोड़ी संपत्ति ज्ञान की और बढ़

जाए....। उस ज्ञान की संपदा की तलाश में लोग खोजते हैं, भटकते हैं।

और मजा ऐसा है कि ज्ञान बटोरने से नहीं मिलता। ज्ञान के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यही जानकारी है।

शिष्य वह है, जो अपनी जानकारी छोड़ देता है; जो कहता है : 'अब मुझे जानना ही नहीं--अब मुझे होना है।' होने के लिये एक काफी है। जानने के लिये अनेक भी काफी नहीं हैं!

बुद्ध और महावीर एक साथ हुए; एक ही समय में हुए; एक ही प्रदेश में हुए। कभी-कभी ऐसा हुआ कि एक गांव में बुद्ध गुजरे, दूसरे दिन महावीर गुजरे। कभी ऐसा हुआ कि एक ही गांव में दोनों ठहरे भी; चौमासा एक ही गांव में हुआ। एक बार तो ऐसा हुआ कि एक ही धर्मशाला के आधे हिस्से में बुद्ध ठहरे, आधे में महावीर ठहरे।

यह सवाल तब भी उठता था। यह सवाल पुराना है। यह कृष्ण मुहम्मद का नया सवाल नहीं है। बुद्ध का कोई शिष्य महावीर को सुनने गया कि महावीर का कोई शिष्य बुद्ध को सुनने गया, तो दूसरे शिष्यों के मन में स्वभावतः प्रश्न उठा कि बुद्ध का जो शिष्य महावीर को सुनने गया है, क्या उसे बुद्ध से नहीं मिल रहा है? बुद्ध तो बरसा रहे हैं। औरों को मिल रहा है; उसे नहीं मिल रहा है? कहीं चूक उससे हो रही है। जो महावीर का शिष्य है, उसे महावीर से नहीं मिल रहा है। महावीर तो बरसा रहे हैं। लेकिन उसके पात्र में नहीं समाता, नहीं आता। उसके द्वार बंद हैं। तो बजाय द्वार खोलने के, वह यही सोचता है कि शायद महावीर के पास नहीं है, बुद्ध के पास मिल जाए; बुद्ध के पास नहीं है, मक्खली गोशाल के पास मिल जाए; मक्खली गोशाल के पास नहीं है, अजित केशकंबल के पास मिल जाए! यहां जाऊं, वहां जाऊं--कहीं से बटोर लूं!

और मजा यह है कि उसे पाने की कला नहीं आती। तो बुद्ध के पास भी चूकेगा और महावीर के पास भी चूकेगा और अजित केशकंबल के पास भी चूकेगा। सदियों-सदियों तक चूकेगा। क्योंकि पाने का बहुत संबंध बुद्ध और महावीर से नहीं है।

ऐसा समझो कि एक अंधा आदमी है। उसे दिखाई नहीं पड़ता, तो वह कहता है; 'यह दीया रोशनी नहीं देता, मैं दूसरा दीया तलाशूंगा। मैं और अच्छा दीया खरीदूंगा। मैं ऐसा दीया लाऊंगा, जिसमें मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाए।' वह दूसरा दीया ले आता है। लेकिन अंधे आदमी को क्या फर्क पड़ता है! यह दीया हो कि वह दीया हो--सब दीये बराबर हैं! अंधा आदमी अंधेरे में रहता है। फिर इस दीये से भी थक जाता है तो और दीया खोजता है। मगर एक बात

उसे ख्याल नहीं आती कि मैं अपनी आंख का इलाज करूं, उपचार करूं।

बुद्ध में भी मिल जायेगा, महावीर में भी मिल जायेगा, कृष्ण में भी मिल जायेगा, क्राइस्ट में भी मिल जायेगा। हजारों दीये जले हैं। सभी दीयों में एक ही रोशनी है। मगर अंधे को किसी में न मिलेगा। पर अंधे का अहंकार यह भी मानने के लिये राजी नहीं होता कि मेरी आंखों की कोई खराबी है, इसलिए नहीं दिखाई पड़ता। अंधे का अहंकार यही कहता है, इस दीये में रोशनी न होगी, कोई और दीया तलाशूं; इस कुएं में पानी नहीं है, किसी और कुएं को खोजूं। और मेरे कंठ को पीना नहीं आता, यह बात अहंकार स्वीकार नहीं करता। अहंकार दोष अपने पर नहीं लेता।

तो कृष्ण मुहम्मद, वे दया के पात्र हैं! जो इस तरह भटकते हैं, उन्हें भटकने से कुछ भी न मिलेगा। भटकने से हो सकता है, कुछ कूड़ा-करकट इकठ्ठा कर लें, कुछ जानकारियां इकट्ठी कर लें। वे जानकारियां ज्ञान के मार्ग में और बाधा बन जायेंगी।

और फिर, एक सद्गुरु का एक ढंग होता है, दूसरे सद्गुरु का दूसरा ढंग होता है। इस तरह के लोग बिबूचन में पड़ जाते हैं। इस तरह के लोग न यहां के होते हैं न वहां के। न घर के न घाट के--धोबी के गधे हो जाते हैं। आधे में लटक जाते हैं! विपरीत बातें सुन लेते हैं। और मुश्किल बढ़ जाती है, घटती नहीं। क्योंकि एक ने ऐसा कहा, दूसरे ने ऐसा कहा। और दोनों ठीक ही कहते होंगे। अपने-अपने रास्ते पर बात ठीक ही होगी।

लेकिन इस तरह के आदमी की हालत वही हो जाती है, जैसे कोई बीमार होम्योपैथ के पास जाए, आयुर्वेदिक चिकित्सक के पास जाए, ऐलोपैथिक डॉक्टर के पास जाए, नेचरोपैथिक डॉक्टर के पास जाए, हकीम के पास जाए और सब की बातें सुन ले! और उन सब की बातें बीमारी को तो हटायेंगी नहीं; इस बीमार के शरीर को ही बीमार नहीं, इसके मन को भी बीमार कर देंगी। यह अब और मुश्किल में पड़ जायेगा। क्योंकि वे अलग-अलग मार्ग हैं। उन सब की अलग-अलग दृष्टियां हैं। अलग-अलग बिंदु से देखा गया सत्य है।

तुम्हारे पास आंख नहीं है। इसलिए तुम एक भी बिंदु को नहीं समझ पा रहे हो। सारे बिंदुओं को तो कैसे समझ पाओगे! तुम सिर्फ उलझन में पड़ जाओगे। तुम्हारी गांठ और उलझ जायेगी। ग्रंथि खुलेगी नहीं--ग्रंथियां ही ग्रंथियां हो जायेंगी। फिर ऐसी मुसीबात होगी कि तुम यह करोगे, तो भीतर से एक स्वर कहेगा : यह गलत। और जो स्वर कह रहा है गलत, वह करोगे, तो दूसरा स्वर कहेगा : यह गलत!

मेरे पास कृष्णमूर्ति को माननेवाले कोई व्यक्ति कभी आ जाते हैं। मैं उनसे पूछता हूं कि यहां आने की जरूरत क्या! वे कहते हैं: लेकिन कृष्णमूर्ति के पास रहकर बीस वर्षों से हम सुनते हैं, अभी कुछ हुआ नहीं। तो मैं कहता हूं कि यह बात साफ हो गयी कि कुछ नहीं हुआ? तो ध्यान करो। वे कहते हैं लेकिन ध्यान से क्या होगा? कृष्णमूर्ति तो कहते हैं ध्यान करने से कुछ न होगा।

अब यह उलझन हो गयी! कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, उससे हुआ नहीं। अगर मैं कुछ कहता हूं तो उसमें कृष्णमूर्ति बाधा बनेंगे, क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैं, ध्यान से क्या होगा?

मेरे पास कोई है। ध्यान कर रहा है और ध्यान से नहीं हो रहा। और कृष्णमूर्ति के पास जायेगा और उनसे कहेगा कि मैं वहा हूं और ध्यान करता हूं, ध्यान से कुछ नहीं हो रहा। वे कहते हैं, ध्यान से कभी कुछ हुआ ही नहीं!

तब तुम जो मुझे सुनते रहे हो, बार-बार, निरंतर--तुम्हारे मन में भीतर ख्याल उठेगा: 'बिना ध्यान के कैसे हो सकता है?' और ध्यान से कुछ हुआ नहीं! नहीं तो तुम जाते क्यों? जाने का प्रयोजन क्या था?

लेकिन अब एक और झंझट हो गयी, अब ध्यान करोगे तो कृष्णमूर्ति बाधा बनेंगे। और कृष्णमूर्ति की मानकर चलोगे तो मैं बाधा बनूंगा। अब तुम दो तरफ खींचे जाओगे।

यह तो मैं सरल उदाहरण ले रहा हूं। अगर तुमने दस-पच्चीस मार्गों की बातें जान लीं तो तुम पच्चीस तरफ खींचे जाओगे। तुम वैसे ही मुर्दा हो, और मर जाओगे।

पूछा है तुमने: 'यदि समर्पित शिष्य चुपचाप चोरी-छिपे किसी दूसरे बुद्ध-पुरुष को सुनने जाएं....'

तो पहली तो बात: जो दूसरे को सुनने जाएं वे शिष्य नहीं हैं, विद्यार्थी होंगे। विद्यार्थियों को आज्ञा है: जहां उनकी मर्जी हो जाएं; जिसको सुनना हो, सुनें। विद्यार्थियों में कुछ ऐसा मूल्यवान नहीं है, जिसके लिये चिंता करने की कोई जरूरत हो। विद्यार्थी ही हैं।

मुझे बचपन में एक ख्याल आता है--मेरे गांव में वह शब्द चलता है। पता नहीं, तुम्हें पता है या नहीं। बड़े बच्चे जब खेलते हैं और कोई छोटा बच्चा भी बीच में आ जाता है, ऊधम करने लगता है कि मैं भी सम्मिलित होऊंगा....तो मेरे गांव में उसे सम्मिलित कर लिया जाता था। और उसका एक खास नाम था: दूध की दुहनियां। उसकी कोई फिकिर नहीं करता था! उसको उछलने-कूदने दो, उसको ख्याल रहने दो कि वह सम्मिलित है। लेकिन वह सम्मिलित नहीं है।

जो खेलनेवाले हैं, वे जानते हैं कि वह हिस्सा नहीं है। मगर उसको हटाना मुश्किल है। वह रोता है, शोरगुल मचाता है, पंचायत खड़ी करता है। तो उसको स्वीकार कर लिया। लेकिन एक कोडवर्ड था: दूध की दूहनियां! ठीक है। अभी दूधमुंहा बच्चा है, खेलने दो। इसको उछलने-कूदने दो। वह नाहक ही उछलकूद रहा है और बड़ा प्रसन्न हो रहा है। खेल का वह हिस्सा है ही नहीं। उसकी कोई गणना नहीं है खेल में। उससे न हार होगी, न जीत होगी। न उसके उछलने-कूदने का कोई परिणाम होगा।

जो विद्यार्थी है, वह दूध की दुहनियां है! वह आए, जाए, जहां सुनना हो, जिसको सुनना हो, जैसा करना हो, करे। लेकिन शिष्य वह नहीं है। शिष्य का जाना-आना समाप्त हुआ, वही शिष्य है।.... समर्पित भी वह नहीं है। समर्पण का अर्थ ही होता है, बात समाप्त हो गयी। मुझे मेरा सत्य मिल गया। मुझे वे आंखें मिल गयीं, जिनके द्वारा मैं देखना चाहूंगा। मुझे वे हाथ मिल गये, जिन हाथों के द्वारा मैं चलना चाहूंगा मेरे लिये सारा संसार खाली हो गया।

समर्पण का क्या अर्थ होता है? यह व्यक्ति मेरा गुरु और इस व्यक्ति के अतिरिक्त मेरा कोई गुरु नहीं: समर्पण का यह अर्थ होता है। इसका यह अर्थ नहीं होता कि दूसरे गुरु नहीं हैं। दूसरे गुरु हैं। वे किन्हीं दूसरे समर्पित लोगों के गुरु होंगे। जब तक तुम किसी के प्रति समर्पित नहीं हो, तब तक वह व्यक्ति तुम्हारे लिये गुरु नहीं है।

ख्याल रखना, गुरु कोई ऐसी चीज नहीं है कि किसी के ऊपर छाप लगी है गुरु होने की। गुरु तो शिष्य और ज्ञानी के संबंध का नाम है।

समझो, एक गुरु के पास हजारों शिष्य हैं। वे सब शिष्य छोड़कर चले गये, अकेला गुरु रह गया। तब भी तुम उसे गुरु कहोगे? तब वह गुरु नहीं है। ज्ञानी होगा, परम ज्ञानी होगा; मगर गुरु नहीं है। गुरु तो होता है वह किसी शिष्य के संदर्भ में।

कृष्णमूर्ति किसी के गुरु होंगे। रमण किसी के गुरु होंगे। रामकृष्ण किसी के गुरु होंगे। 'किसी' के होंगे। गुरु होना कोई ऐसा गुण नहीं है कि जैसे सोना सोना है, ऐसा गुरु गुरु है--कि चाहे कोई छोड़कर चला जाए तो भी सोना तो सोना रहेगा। गुरु गुरु नहीं रह जायेगा।

ऐसा ही समझो कि कोई पत्नी है। अब, पत्नी होना कोई गुणधर्म नहीं है। यह पति के संदर्भ में है। अगर पति न रहा तो पत्नी न रही। फिर वह स्त्री होगी, पत्नी नहीं होगी। पुरुष होगा, पति नहीं होगा। ये संबंध हैं।

गुरु एक अंतर्संबंध है। शिष्य समर्पित होकर गुरु को जन्म देता है। उसके

समर्पण में दो घटनायें घटती हैं। एक तरफ शिष्य घटता है, दूसरी तरफ गुरु घटता है। उसके समर्पण के दो छोर हैं। एक तरफ वह स्वयं है--मिट गया, शून्य हुआ। और दूसरी तरफ कोई है, पूर्ण हुआ--जिसको वह अपने भीतर आमंत्रित करता है।

समर्पण कीमिया है।

तो जो ऐसा करते हों, वे न तो शिष्य हैं, न समर्पित हैं।

और फिर चोरी-छिपे करने की तो कोई जरूरत ही नहीं है। चोरी-छिपे इसलिए करते हैं कि हैं तो विद्यार्थी, लेकिन दिखलाना चाहते हैं कि शिष्य हैं! क्योंकि शिष्य होने की जो गरिमा है वह भी अहंकार छोड़ना नहीं चाहता। यह मानकर मन में कष्ट होता है कि मैं और विद्यार्थी! . . . तो चोरी-छिपे करते हैं।

कुछ हर्जा नहीं है। जो करना हो सीधे-सीधे करना चाहिये। चोरी–छिपे करने की क्या जरूरत है? चोरी–छिपे तो और उलटा पाप हुआ! चोरी-छिपे तो यह मतलब हुआ कि तुम मुझसे छिपाते हो। मुझसे छिपाना है, तो मुझसे सारे संबंध टूट गये। मेरे सामने खुलोगे तो संबंध गहन होंगे। मेरे साथ छिपाओगे तो कैसे संबंध गहन होंगे!

कृष्णप्रिया को जाना था कृष्णमूर्ति को सुनने। कोई हर्जा की बात नहीं है। मेरे मन में कृष्णमूर्ति का अपार सम्मान है--उतना ही जितना बुद्ध का, उतना ही जितना कृष्ण का, उतना ही जितना कबीर का। गयी तो ठीक किया। लेकिन बताकर गयी कि बीमार है और अस्पताल में भर्ती होने जा रही है।

अब यह हद्द हो गयी! कृष्णमूर्ति के पास जाने में कोई हर्जा नहीं था। लेकिन यह मुझसे झूठ इस तरह बोलना, इससे हानि हो गयी। कृष्णमूर्ति के पास जाने से कुछ हानि नहीं हो गयी थी। अच्छा था। शुभ था। किसी भी सत्पुरुष के पास थोड़ी देर बैठना शुभ है। लेकिन जो मेरे पास रहकर इतना झूठ बोलती हो, जो मेरे पास नहीं हो सकती, वह कृष्णमूर्ति के पास कैसे हो सकेगी! जो मेरे पास वर्षों रहकर झूठ बोलती हो, वह एक घंटे भर के लिये कृष्णमूर्ति के पास जाकर सच कैसे हो सकेगी? असंभव है। कृष्णमूर्ति से तो जोड़ बनेगा नहीं, मुझसे जोड़ टूट गया। लाभ नहीं हुआ, हानि हो गयी। चोरी-छुपे इसलिए गयी कि ताकि यहां भी ख्याल रहे कि वह मेरी शिष्या है; जाने की कहीं कोई जरूरत नहीं है। इसलिए अस्पताल का बहाना करके गयी।

और भी दो-चार लोग गये। सब के अलग-अलग कारण होंगे। तुमने पूछा है कि जो इस तरह के लोग हैं, वे जिज्ञासा से जाते हैं, अवज्ञा से या और अधिक की खोज से? अलग-अलग लोगों के अलग-अलग कारण होंगे।

जो विद्यार्थी हैं, वे जिज्ञासा और कुतूहल से जायेंगे। वे बचकाने हैं। क्योंकि

जो दीया यहां जला है, वही दीया कृष्णमूर्ति में जला है। अगर कुछ भेद होंगे, तो वे मिट्टी के दीये में होंगे, रोशनी में नहीं हैं। अगर यहां रोशनी नहीं दिखी, वहां भी रोशनी नहीं दिखेगी। रोशनी देखने की कला आनी चाहिए, तो कहीं भी दिखेगी। वहां भी दिखेगी, यहां भी दिखेगी। और मजा तो यह है कि जिसे रोशनी देखने की कला आती है, उसे उनमें भी दिखायी पड़ती है रोशनी, जो बिलकुल बुझे मालूम होते हैं।

इसलिए बुद्ध ने कहा: जिस दिन मैं बुद्ध हुआ, मेरे लिये सारा जगत बुद्ध हो गया। जिस दिन मैंने जाना कि मैं कौन हूं, उसी दिन मैंने सबको पहचान लिया कि कौन हैं। उस दिन मुझे सबके भीतर छिपा हुआ सत्य दिखायी पड़ गया।

जिसको देखना आता है, उसे तो बुझे दीयों में भी रोशनी दिखायी पड़ेगी। उसे तुममें भी रोशनी दिखायी पड़ेगी। तुम्हारी तो बात ही छोड़ दो, उसे वृक्षों में, पत्थर-पहाड़ों में परमात्मा दिखायी पड़ेगा। उसके लिये सारा जगत परमात्मा से भर गया।

तो कोई जिज्ञासा से गये होंगे। वे विद्यार्थी हैं। जैसे स्वामी योग चिन्मय गये। वे विद्यार्थी हैं। उनकी जिज्ञासा पंडित होने की जिज्ञासा है। ज्ञान घटित नहीं होगा इस जिज्ञासा से। उन्हें शिष्य होने का कुछ भी पता नहीं है। शायद शिष्य होने से पहले गुरु होने की धारणा है। शिष्य भी शायद इसलिए बने हैं कि किसी तरह गुरु हो जाएं! तो जितना जादा इकट्ठा कर लें, जहां से इकट्ठा कर लें जिस तरह से भी जो कुछ जानकारी पकड़ में आ जाए, सबको बांधकर रख लेना है--वह काम पड़ेगी! तिजोड़ी भर लेना है!

और मजा यह है कि जो खाली हो जाते हैं, उन्हें भरना नहीं पड़ती है-तिजोड़ी भर जाती है। उस शून्य में पूर्ण अपने से उतर आता है।

फिर कोई अवज्ञा से भी गये होंगे। क्योंकि मेरे पास रहते हो, तो सदा मीठा ही मीठा नहीं होता। हो ही नहीं सकता। कल तुमने धनी धरमदास के वचन देखे: 'अति कड़ुवा, खट्टा घना ...' तो जो सत्य मैं तुमसे कह रहा हूं वह कई बार बहुत कड़ुवा होता है। तुम नाराज भी होते हो। कई बार चोट मैं सीधी करता हूं। तुम तिलमिला भी जाते हो। तुम मुझसे बदला भी लेना चाहते हो। बदला लेने का तुम्हारे पास कोई उपाय भी नहीं है।

इस तरह तुम बदला ले सकते हो। यह अवज्ञा से भी कोई जा सकता है। और अगर मुझे तुम्हें बदलना है तो मुझे चोट करनी ही पड़ेगी। अब कोई मूर्तिकार अगर अनगढ़ पत्थर को मूर्ति बनाना चाहता है तो छैनी-हथौड़ा उठाना ही पड़ेगा। तुम अनगढ़ पत्थर हो। तुमसे बहुत से टुकड़े पत्थर के तोड़ डालने हैं।

पीड़ा भी होगी, क्योंकि उन टुकड़ों को तुमने अपनी आत्मा समझा है; यद्यपि वे तुम्हारी आत्मा नहीं हैं। उनके टूटने पर ही तुम्हारी आत्मा प्रगट होगी। मगर अभी तो तुमने उन्हें अपनी आत्मा समझा है। अभी तो मैं तुमसे जो भी छीनता हूं, तुम्हें लगता है कि 'बडा कष्ट हो रहा है। मुझे घटाया जा रहा है, मुझे छोटा किया जा रहा है, मुझे काटा जा रहा है।'

जब कोहिनूर हीरा मिला तो आज जितना बड़ा है, उससे तीन गुना बड़ा था। लेकिन तब तुम्हें मिलता अगर तो तुम पहचानते भी नहीं। जिसको मिला था, वह पहचाना भी नहीं था। उसने बच्चों को खेलने को दे दिया था। पत्थर समझ कर! चमकदार पत्थर! आज दुनिया का सबसे बड़ा हीरा है। हालांकि उसका वजन तीन गुना कम हो गया। क्योंकि निखारा गया, काटा गया। पहलू रखे गये उस पर। कारीगर की छैनी चलती रही। जितनी छैनी चली है उतनी चमक आयी है। वजन कम हुआ है, चमक बढ़ी है। मूल्य बढ़ा है। तब हीरा नहीं था, तब अनगढ़ पत्थर था। अब हीरा है।

तुम अनगढ़ पत्थर की तरह मेरे पास आये हो। आये ही इसलिए हो कि अनगढ़ पत्थर हो। खदान से सीधे निकाले गये हो। मैं तुम्हे काटूंगा, छाटूंगा, तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करूंगा। पीड़ा भी होगी, कष्ट भी होगा। तुम्हारी बहुत दिन की पोषित मान्यतायें टूटेंगी। तुम्हारे बहुत दिन के माने हुए विचार खंडित होंगे।

लेकिन अगर समर्पण है तो तुम उस संघर्ष को आनंद भाव से स्वीकार करोगे। तुम मुझे शत्रु नहीं मानोगे। तुम मुझे सर्जन मानोगे कि मैं अगर काट रहा हूं और तुम्हें पीड़ा भी दे रहा हूं, तो तुम्हारे हित के लिये दे रहा हूं।

इसीलिए केवल शिष्य पर ही काम किया जा सकता है, विद्यार्थियों पर नहीं। शिष्य का मतलब है: वह ऑपरेशन की टेबल पर लेटने को तयार है। इतना भरोसा करता है कि तुम बेहोश करके जब उसका पेट काटोगे तो उसे मार ही नहीं डालोगे। इतनी उसकी श्रद्धा है, कि तुम्हारे हाथों में अपना जीवन सौंप देता है।

गुरु सर्जन है। अब तुम उससे लड़ने लगोगे कि यह मेरा खून निकाल दिया, कि यह मेरी चमड़ी काट दी, कि क्या मुझे मार ही डालोगे, मैं तो वैसे ही पीड़ा से भरा आया हूं और तुम और पीड़ा दे रहे हो! --तो फिर सर्जन काम नहीं कर पायेगा।

तो बहुत हैं, जिनके मन में अवज्ञा भी आती होगी। ज्यादा नहीं हैं। कोई पांच-सात लोग गये थे। उनमें कुछ, जिनके मनमें अवज्ञा हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनके मन में लोभ है कि यहां तो इतना मिल रहा है, थोड़ा और कहीं से मिल जाए।

मगर लोभी भी शिष्य नहीं है। लोभी का भी संबंध गुरु से बनता नहीं है। यह नाता लोभ का नहीं है, प्रेम का है। जहां लोभ है, वहां प्रेम नहीं। जहां प्रेम है, वहां लोभ नहीं।

तो अलग-अलग ढंग से गये होंगे। कोई कुछ कहकर गया, कोई बिना कुछ कहे गया, कोई चुपचाप भाग गया।

और कुछ भी बुरा न था। गये सो ठीक ही किया। गये तो अच्छा ही किया तुम्हारे बाबत कुछ खबर दे दी।

मेरे लिये यह सब सार्थक है। क्योंकि मैं जो बड़ा काम लेने जा रहा हूं, उसमें मुझे उपयोगी होंगी ये सब बातें कि किन-किन को छोड़ दूं, कि किन-किन को विदा कर दूं; कौन हैं, जिनको और गहराई में ले जाना संभव नहीं होगा; कौन हैं, जो परिधि पर ही रखने ठीक हैं, जिनको केंद्र तक लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

तो अच्छा ही है। मुझे इससे सुविधा होती है। काम में आसानी होती है।

कृष्णमूर्ति और मेरे काम में बुनियादी फर्क है। कृष्णमूर्ति किसी को शिष्य की तरह स्वीकार नहीं करते। कृष्णमूर्ति का संबंध केवल बौद्धिक है; आत्मिक नहीं है, हार्दिक नहीं है। कृष्णमूर्ति ने कह दी बात, बात समाप्त हो गयी। मानना हो मान लो, न मानना हो न मानो। जो तुम्हें करना हो, करो। कृष्णमूर्ति तुम्हारी जुम्मेवारी नहीं लेते।

मैं तुम्हारी जुम्मेवारी लेता हूं। कृष्णमूर्ति तुम्हारे साथ तटस्थ हैं। उनका कुछ लेना-देना नहीं है। मैं तटस्थ नहीं हूं। मैं तुमसे प्रतिबद्ध हूं। तुम्हारे भीतर मैंने अपने को नियोजित किया है। मैंने अपने को तुम्हारे भीतर साथ दांव पर लगाया है। कृष्णमूर्ति ने एक बात कह दी। चलना हो, चलो। न चलना हो, न चलो। मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर चल रहा हूं। मैं तुम्हारे साथ तुम्हारी यात्रा के सारे कष्ट उठा रहा हूं।

तो यह अच्छा ही है, मुझे इस तरह पता चलता रहे कि कौन-कौन व्यर्थ है, कौन-कौन इस योग्य नहीं हैं कि मैं उनको बहुत प्रतिबद्धता दूं; कौन-कौन इस योग्य हैं कि उन्हें किनारे पर रखा जाए; कौन-कौन इस योग्य हैं कि उन्हें अंतस्तल में लिया जाए।

तय मंजिलें हुई हैं यूं इश्के आरजू की
कुछ मैंने जुस्तजू की, कुछ उसने जुस्तजू की
यह जो यात्रा है, गुरु और शिष्य की-आधी-आधी है।
कुछ मैंने जुस्तजू की, कुछ उसने जुस्तजू की

कुछ मैं चलूं, कुछ तुम चलो। कुछ तुम चलो, कुछ मैं चलूं। तो यह यात्रा पूरी होनेवाली है।

जो उच्छृंखल हैं, जिनका कोई प्रेम के आकाश के प्रति समर्पण नहीं है, जो अभी अपनी अहंता से भरे हैं,...। और अहंकार है तो वहीं क्रोध है, अवज्ञा है। और अहंकार है तो वहीं लोभ है। थोड़ा और जानने को कहीं से मिल जाए, क्या पता कुछ हीरा हाथ लग जाए! या जो कुतूहल से भरे हैं, बचकाने हैं....। वह भी अहंकार है। क्योंकि प्रौढ़ व्यक्ति वही है, जिसका अहंकार विदा हो गया हो।

शिष्य तो वही है, जो कहे : 'माधव, जन्म तुम्हारे लेखे'। वह कहे कि अब यह जीवन तुम्हारा, यह जन्म तुम्हारा। अब तुम जैसा चाहो बनाओ, अब तुम जसा चाहो मिटाओ। मैं तुम्हारे हाथों में मिट्टी की तरह हूं; घड़ा बनाओ, मूर्ति बनाओ, न बनाओ।

'माधव, जन्म तुम्हारे लेखे!'——वही शिष्य है।

अब मिट्टी कभी मेरे हाथ से छलांग लगाकर किसी और के हाथ में चली जाए और कहे कि थोड़ा वहां भी देखें, शायद वहां कुछ हो जाए·——तो यह घड़ा कभी बन नहीं पायेगा। मैं कुछ बनाऊंगा, दूसरा कुछ और बनायेगा, तीसरा कुछ और बनायेगा। यह मिट्टी मिट्टी ही रह जायेगी। तुम मिट्टी के लौंदे ही रहोगे।

और मुझे खबर है : कौन क्या कर रहा है यहां! कौन कैसे चल रहा है! ध्यान रखना, तुम जो भी कर रहे हो, उससे तुम्हारा भविष्य निर्मित हो रहा है!

अनजान तुम बने रहे, ये और बात है
ऐसा तो क्या है, तुमको हमारी खबर न हो!

ध्यान रखना, अनजान भला मैं बना रहूं, तुमसे कुछ कहूं भी न——तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि तुमने कब मुझे खो दिया। तुम्हें पता भी नहीं होने दूंगा, क्योंकि तुम्हें कोई अकारण कष्ट थोड़े ही देने हैं! चुपचाप हाथ सरका लूंगा। देखूंगा कि हाथ गलत आदमी को दे दिया था——उसको दे दिया था, जिसको हाथ का कोई समादर नहीं था। चुपचाप हाथ सरका लूंगा। तुम्हें कानोंकान पता भी नहीं चलेगा। शायद तुम्हें जिंदगी भर पता नहीं चलेगा कि हाथ कभी का हट गया है।

मैं तो उन्हीं के साथ जुड़ा हूं, जो मुझसे कह सकें :
आरजू तेरी बरकरार रहे,
दिल का क्या है, रहा, रहा न रहा!
जो सब दांव पर लगाने को तैयार हैं।
जीना भी आ गया मुझे, मरना भी आ गया

पहचानने लगा हूं तुम्हारी नजर को मैं

इस नज़र को पहचानना शुरू करो। ऐसे भी बहुत देर हो गयी है। अब और बच्चों जैसे व्यवहार मत करो।

समर्पण का अर्थ होता है, शिष्य होने का अर्थ होता है : अब जाने को कोई जगह न रही; मिल गया मंदिर। न मिला हो तो खोजो! मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं हूं। अगर यह मंदिर तुम्हारा मंदिर नहीं है तो निश्चित ही तुम खोजो। मैं तुम्हें खुद ही धक्के दूंगा कि तुम जाओ और खोजो।

लेकिन तब यहां लौटकर आने की जरूरत नहीं है। जब यह मंदिर तुम्हारा नहीं है, तो इस मंदिर के तुम नहीं हो।

मगर तुम बेईमान हो! तुम दो नावों में पैर रखना चाहते हो। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। दो नावों में कोई यात्रा नहीं कर सकता।

और ध्यान रखना, मैं तुमसे यह नहीं कर रहा हूं कि तुम इसी नाव में सवार हो जाओ। मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं : किसी एक नाव में सवार हो जाओ। मुझे कोई निस्बत नहीं है कि तुम इसी नाव में सवार हों जाओ। तुम उस किनारे पहुंच जाओ, यह लक्ष्य है।

तुम कृष्णमूर्ति का सहारा लेकर पहुंचे, शुभ...। तुम गुरजिएफ का सहारा लेकर पहुंचे, शुभ....। पहुंच जाओ। मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। उस किनारे पहुंच जाओ। मगर एक नाव में ही पहुंच सकते हो। तुम चाहो कि सब नावों में सवार हो जाओ, कि एक नाव को हाथ से पकड़े हैं, एक नावें पर पैर रखे हुए हैं, एक पर लेटे हुए हैं——तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। ये नावे सब अलग ढंग से चलेंगी। इनकी गति अलग-अलग है। कोई पाल से चलती है, कोई पतवार से चलती है। किसी में मोटर का इंजिन लगा है। ये सब अलग-अलग हैं। इनके ढंग अलग–अलग हैं। ये सब उस तरफ पहुंचा देती हैं, यह सच है।

और उस तरफ पहुंचना गंतव्य है। आम थोड़े ही गिनने हैं, आम खाने हैं। लेकिन तुम किसी के तो पूरे हो जाओ। तुम्हारे किसी के भी पूरे हो जाने में तुम मुक्त हो जाओगे।

ऐसे आधे-आधे, बंटे-बंटे चलोगे, तुम खंड-खंड हो जाओगे।

जीने को इस जहां में काफी है यह सहारा
तुझ से मेरा तआल्लुक, निस्बत तेरी गली से

कोई तो एक गली तुम्हारी हो।....तुझ से मेरा तआल्लुक, निस्बत तेरी गली से।

इतना सहारा काफी है। लेकिन अगर तुमने इस तरह की बेईमानियां कीं,

तो तुम कुछ किसी और को नुकसान नहीं पहुंचाते हो, ध्यान रखना।

इसलिए मैंने कहा, कृष्ण मुहम्मद, ऐसे लोगों पर सिर्फ दया की जा सकती है। क्योंकि वे अपने को नुकसान पहुंचा रहे हैं, किसी और को नहीं।

दूसरा प्रश्न : आपकी बातें इतनी सीधी और साफ और करुणापूर्ण हैं कि आश्चर्य है कि संसार के लोगों को समझ में क्यों नहीं आतीं--विशेषकर शिक्षा जगत के महारथियों एवं राजनीतिज्ञों को ! क्या वे बिलकुल ही अंधे हैं ?

पहली बात : शिक्षा का सारा प्रयोजन एक है--और वह है कि तुम्हें अतीत से न टूटने दिया जाए। शिक्षा का सारा न्यस्त स्वार्थ एक है, कि तुम्हें परंपरा से मुक्त न होने दिया जाए। शिक्षा परंपरा की सेवा में नियोजित है। और मैं जो कह रहा हूं वह परंपरा नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह अतीत नहीं है; वर्तमान है। शिक्षा का वर्तमान से कोई संबंध नहीं है।

शिक्षा पीछे की तरफ देखती है। शिक्षा की आंखें चेंथी पर लगी हैं; वह पीछे की तरफ देखती है। जो पहले ही गया है, उसको ही पढ़ाये जाती है, उसको ही समझाये जाती है। जो आज हो रहा है, उसका शिक्षा से कभी कोई संबंध नहीं होता। अब यह भी अतीत हो जायेगा, तब शिक्षा इसको भी पढ़ायेगी, ध्यान रखना। कभी तुम्हारे शिक्षाशास्त्री मुझे पढ़ायेंगे, लेकिन वे तब पढ़ायेंगे जब मैं काम का न रहा।

शिक्षाशास्त्री तभी पकड़ता है किसी चीज को जब वह राख हो जाती है जब उसमें से अंगारा खो जाता है। कबीर जब जिंदा थे तो शिक्षाशास्त्री कबीर से कोई संबंध नहीं जोड़ सका; अब कबीर पर कितनी पी. एच. डी लिखी जाती हैं, तुम देखते हो !

जितने शोध-ग्रन्थ कबीर पर लिखे गये उतने किसी पर नहीं लिखे गये। गंवार कबीर पर इतने शोध-ग्रन्थ ! अगर कबीर ने नौकरी की आकांक्षा की होती किसी विश्वविद्यालय में तो चपरासी की भी जगह न मिलती; आचार्य के पद की तो बात ही अलग। कबीर को ये विश्वविद्यालय विद्यार्थी की तरह भी प्रवेश देने को राजी होते, यह भी संदिग्ध है। बे-पढ़े-लिखे कबीर को कौन विश्वविद्यालय में घसने देता ! और आज तुम्हारे तथाकथित पंडित और आचार्यगण, और शोधकर्ता, अपनी जिन्दगी कबीर में गंवाते हैं--कि कबीर का क्या मतलब है, कबीर का क्या अर्थ है। कबीर की उलटबासियों को सुलट कर रहे हैं, समझाने की कोशिश में लगे हैं। कबीर भी अपनी कब्र में खूब हंसते होंगे कि यह भी खूब मजा हुआ।

जीसस को जिन लोगों ने सूली दी, वे पंडित थे, रबाई, पढ़े-लिखे लोग, सुसंस्कृत। और अब वे ही जीसस पर शोध करते हैं; दो हजार साल हो गये, उसी काम में लगे हैं। वे ही लोग, उसी तरह के लोग।

कारण समझो। शिक्षा का संबंध अतीत से है। शिक्षा मरे की शिक्षा है, जीवंत की नहीं। शिक्षा केवल मरे की ही अंगीकार करती है। शिक्षा पोस्टमार्टम है, शव-परीक्षा है। तुम जैसे नहीं पूछते न कि आप का शरीर इतना सुंदर है, लेकिन डॉक्टर आपकी शव-परीक्षा क्यों नहीं करते ? यह प्रश्न बेहूदा मालूम होगा कि इतना सुंदर प्यारा शरीर, और हम डॉक्टरों को देखते हैं कि मुर्दों को चीर-फाड़ रहे हैं; ऐसे सुंदर आदमी के रहते हुए, आपकी चीर-फाड़ क्यों नहीं करते, आपकी शव-परीक्षा क्यों नहीं करते ? जैसे यह प्रश्न गलत होगा, क्योंकि शव-परीक्षा होती ही मुर्दे की है, जीवित की नहीं होती--वैसे ही शिक्षा मुर्दे की है। शिक्षा एक शव-परीक्षा है, पोस्टमार्टम। जब कोई चीज मर जाती है, इतिहास का हिस्सा हो जाती है, जब व्यक्ति तो जा चुका होता है, सिर्फ उसके चरण-चिह्न रह जाते हैं रेत पर समय की--बुद्ध के हों, कि नानक के, कि धनी धरमदास के--फिर शिक्षाशास्त्री एकदम उत्सुक हो जाता है। वह जल्दी से इसको आत्मसात कर लेना चाहता है। वह इसको परंपरा का हिस्सा बना लेना चाहता है।

वर्तमान में होती है बगावत; और शिक्षा में बगावत नहीं है। शिक्षा में विद्रोह का कोई तत्त्व नहीं है। इसीलिए तो शिक्षा दो कौड़ी की है। जिस दिन शिक्षा में विद्रोह का तत्त्व होगा, उस दिन शिक्षा का मूल्य होगा; उस दिन असली शिक्षा होगी पृथ्वी पर। उस दिन शिक्षा केवल तुम्हें आजीविका कमाने में कुशल बनायेगी, उन दिन शिक्षा तुम्हें जीवन भी देगी। अभी केवल रोटी-रोजी देती है और जीवन तो छीन लेती है। रोटी-रोजी जरूरी है; लेकिन जीसस ने जैसा कहा है कि रोटी के सहारे ही तो कोई नहीं जी सकता--कुछ और भी चाहिए। वह 'और' अभी शिक्षा से नहीं मिलता। अभी उस 'और' को मिलने के सब उपाय नष्ट कर दिए जाते हैं। अभी विश्व-विद्यालय से अपनी बुद्धि को बचाकर लौट आना बड़ा मुश्किल है; नष्ट हो ही जाती है।

शिक्षा की ईजाद ही इसलिए की गयी थी, ताकि पुरानी पीढ़ी अपनी जानकारी को नयी पीढ़ी को दे जाए। शिक्षा का प्रयोजन ही शुरू में यही था। वही अब भी है। बापने जो जाना है वह अपने बेटे को देना चाहता है। फिर जानकारियां इतनी हो गयी कि बाप इस काम को खुद नहीं कर सकता था, नहीं तो और काम न कर सके--तो फिर नौकर मध्यस्थ रखे गये, वे ही शिक्षक हैं। शिक्षक बाप की नौकरी में हैं--बेटे को पढ़ाने को।

ख्याल रखना इस बात को, इसमें सारा रहस्य छुपा हुआ है। शिक्षक बाप की नौकरी में है--बेटे को पढ़ाने को। शिक्षक बेटे की सेवा में नहीं है, बाप की सेवा

में है। इसलिए जो बाप के हित में है, वह बेटे को पढ़ाया जाता है। जो बाप के हित में है, वह बेटे को सिखाया जाता है। जो बाप निर्णय करता है, वह बेटे तक पहुंचाया जाता है।

इसलिए रूस में एक तरह की शिक्षा है, क्योंकि वहां बाप दूसरी बात तय कर रहे हैं : कम्यूनिज्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहुंचना चाहिए बच्चों तक, ईश्वर का नाम नहीं पहुंचना चाहिए। यह बाप ने तय किया है, तो बेटे तक ईश्वर का नाम नहीं पहुंचता।

हिंदुस्तान में बाप तय करता है कि धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए तो बेटे तक धार्मिक शिक्षा पहुंचती है। यह बाप नियन्ता है। बाप ने जो अनुभव किया है, जो ज्ञान की संपदा जुटाई है, वह चाहता है : मेरे बेटे पर आरोपित हो जाए; मैं तो मर जाऊंगा लेकिन मेरी अस्मिता मेरे बेटे में चले। वह बेटे के कंधे पर जीना चाहता है।

मैं जो कह रहा हूं वह अंगार है, बगावत है, विद्रोह है। वह बाप के पक्ष में नहीं है, वह बेटे के पक्ष में है। वह अतीत के पक्ष में नहीं है, भविष्य के पक्ष में है। वह जो होनेवाला है, उसकी सेवा में रत होनी चाहिए शिक्षा, न कि जो हो चुका है। क्योंकि जो हो चुका वह हो चुका; अब नहीं होगा; अब उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पिता के प्रति सम्मान नहीं होना चाहिए। पिता के प्रति निश्चित सम्मान होना चाहिए। असल में तो तुम्हारा भविष्य जितना सुंदर होगा, उतना ही तुम्हारा पिता के प्रति सम्मान भी अधिक होगा; क्योंकि पिता ने ही तो तुम्हें जीवन दिया है—तुम्हें स्वतंत्रता दी, तुम्हें सुरभि दी।

खलील जिब्रान का वचन है : अपने बच्चों को प्रेम देना, स्वतंत्रता देना लेकिन अपना ज्ञान नहीं। क्योंकि ज्ञान तो तुम्हारा पुराना पड़ चुका। बच्चे दूसरी ही दुनिया में जियेंगे; वहां यह ज्ञान काम न आयेगा। वहां नया ज्ञान काम आयेगा। और यह बात रोज-रोज जादा महत्त्वपूर्ण होती गयी है।

आज से तीन हजार साल पहले बाप और बेटे की जानकारी में कोई फर्क नहीं होते थे। इसलिए शिक्षा बिलकुल कारगर थी, क्योंकि जो बाप ने जाना था वही बेटे को जानना था।

समझें, एक बाप जूता सीता रहा जिंदगी भर, तो बेटे को जूता सिखाना, जोड़ना, जूता बनाना सिखाया जाता था। इसलिए बहुत समय तक गुरुओं की जरूरत ही नहीं थीं, शिक्षकों की कोई जरूरत नहीं थी। हर बाप... बढ़ई अपने बेटे को बढ़ईगिरी सिखा देता था; दुकानदार अपने बेटे को दुकानदारी सिखा देता था; क्षत्रिय अपने बेटे को युद्ध में लड़ना सिखा देता था; ब्राह्मण अपने बेटे को पौरोहित्य सिखा देता था। अपने-अपने बेटों को अपने-अपने लोग सिखा लेते थे। परंपरा से बात चलती चली जाती थी।

फिर धीरे-धीरे ज्ञान का संग्रह बढ़ता चला गया। फिर संग्रह इतना हो गया कि हरेक बाप अलग-अलग अपने बेटे को शिक्षा दे, यह संभव नहीं रहा। तो फिर हमें स्कूल निर्मित करने पड़े, पाठशाला बनानी पड़ी। फिर उस पाठशाला के द्वारा हम सिखाते रहे, बापों ने जो जाना था। वह जरूरी था सिखाना अतीत में, क्योंकि अगर वह न सिखाया जाए तो बच्चों को फिर अ, ब, स से शुरू करना पड़ेगा उससे बहुत नुकसान होगा। इसलिए तो पशु-पक्षी विकसित नहीं हो पाये, क्योंकि उनके पास शिक्षा का कोई जाल नहीं है।

तो हर बाप जहां से शुरू किया था, हर बेटे को भी वहीं से शुरू करना होता है। मनुष्य की यही खूबी है : जहां बाप ने अंत किया बेटा वहां से शुरू करता है, इसलिए विकास होता है। बाप की सीढ़ी का उपयोग कर लेता है बेटा।

शिक्षा का बड़ा बहुमूल्य दान रहा अतीत में। लेकिन अब धीरे-धीरे, शिक्षा सहयोगी की जगह बाधक हो रही है, क्योंकि रोज नयी घटनाएं घट रही हैं। ज्ञान इतनी तीव्रता से फूट रहा है, इतना विस्फोट हो रहा है...। वैज्ञानिक कहते हैं कि पिछले पांच हजार सालों में जितना ज्ञान का विकास हुआ था, उतना पिछले पचास सालों में हुआ है। और पिछले पचास सालों में जितना विकास हुआ है उतना पिछले पांच सालों में हुआ है। और पिछले पांच सालों में जितना विकास हुआ है, उतना पिछले पांच महीनों में हुआ है। यह गति इतनी तीव्रता से हो रही है कि हमारे शिक्षा-संस्थान करीब-करीब व्यर्थ हो गये हैं।

अब समझो इस बात को : अगर तुम स्कूल में जाते हो पढ़ने, मनोविज्ञान पढ़ने जाते हो, तो तुम्हारे प्रोफेसर ने जब मनोविज्ञान पढ़ा था तीस साल पहले, वह मनोविज्ञान गलत हो चुका। वह वही पढ़ा रहा है। उसका अब कोई काम ही नहीं रहा। वह आउट-आफ-डेट है, कचरा है।

जब मैं मनोविज्ञान पढ़ने विश्वविद्यालय में गया, और मैंने देखा कि मेरे प्रोफेसर मैक्डूगल पढ़ा रहे हैं; उन्होंने मैक्डूगल पढ़ा था, अब तो मैक्डूगल का नाम भी किसी अर्थ का नहीं है। पचास साल पुरानी बात हो गयी। जब मैंने उनसे खड़े होकर कहा कि आप यह क्या पढ़ाते हैं, मैक्डूगल का तो आज कुछ अर्थ ही नहीं है ! तो स्वभावतः वे मुझसे नाराज हो गये। मेरे उनके बीच संबंध बनना मुश्किल हो गया।

यह तुम जानकर हैरान होओगे कि आज अगर विद्यार्थी थोड़ा भी होशियार

हो तो गुरु से जादा जानेगा; थोड़ा भी होशियार हो, कोई बहुत बड़ी प्रतिभा की जरूरत नहीं है, थोड़ी प्रतिभा हो, तो गुरु जादा जान सकता है। क्योंकि गुरु बंधा है, जो उसने पढ़ा था। विज्ञान पढ़ा था उसने तीस साल पहले। इन तीस सालों में विज्ञान की सब अवस्था बदल गयी, सब जमीन बदल गयी। अब न्यूटन का कोई मूल्य नहीं है; आइंस्टीन के बाद न्यूटन का क्या मूल्य है? न्यूटन तो सिर्फ ऐतिहासिक नाम रह गया।

आज तो इतनी तेजी से परिवर्तन रहा हैं, इतनी तेजी से नयी जानकारियां और नया ज्ञान फूट रहा है कि बहुत मुश्किल है कि गुरु, शिक्षक इसके साथ तादात्म्य रख सके। पश्चिम में विचार किया जा रहा है कि हम नये ढंग से शिक्षा दें।

शिक्षा की संभावना भविष्य में यह है कि शिक्षक विदा हो जायेगा; उसका कोई मूल्य नहीं रह जायेगा, या उसका मूल्य बहुत गौण हो जायेगा। उसकी जगह कम्प्यूटर होंगे; क्योंकि आदमी को सीखने में बहुत वक्त लगता है, कम्प्यूटर जल्दी सीख लेते हैं। एक मिनट में सारी बाइबल कंठस्थ करवायी जा सकती है कम्प्यूटर को। तो ज्ञान इतनी तेजी से घट रहा है कि कम्प्यूटर ज्ञान को सीखेगा और कम्प्यूटर सिखायेगा विद्यार्थियों को; तभी हम तालमेल रख सकेंगे, नहीं तो सब तालमेल टूटा जा रहा है।

टेलीविजन का उपयोग होगा। अब भूगोल पढ़ानी पुरानी ढंग से--टांगे हैं नक्शा--पागल हो गये हो? टेलीविजन मौजूद है, तुम नक्शा टांगे हुए हो! तुम समझा रहे हो कि लंदन कैसा है नक्शे से--जब कि टेलीविजन पर लंदन पूरा का पूरा दिखाया जा सकता है! और जो बात देखी जाती है, वह कभी भूलती नहीं। याद करने की जरूरत नहीं है। सारी दुनिया का नक्शा! फिजूल है। टेलीविजन काम कर देगा। और भविष्य में टेलीविजन की भी जरूरत नहीं होगी; दुनिया इतनी करीब आ गयी है कि घंटे भर में तो लंदन पहुंचा जा सकेगा। ले गये विद्यार्थियों को, लंदन दिखा दिया, बात खतम कर दी। नाहक समय खराब करना! और तब वे भूलेंगे नहीं।

जो बात नहीं हो सकती थी पहले, अब हो सकती है। तकनीक विकसित हुए हैं। और तकनीक इतने विकसित हुए हैं कि तकनीक भविष्य-उन्मुखी हैं। आदमी के माध्यम की अब बहुत ज्यादा जरूरत नहीं रही।

तुम पूछते हो, कि शिक्षा महारथी...। पहले तो महारथी इत्यादि शिक्षा में कहां होते हैं! बैलगाड़ियां चला रहे हैं लोग, रथ वगैरह हैं कहां! कोचवान कहो। असल में जो कुछ नहीं हो पाता, वह शिक्षक हो जाता है। पहले तो वह भी

कोशिश करता है कि कान्स्टेबिल हो जाएं, कि चलो इन्सपैक्टर हो जाएं। जब कहीं जगह नहीं मिलती, तब वह सोचता है कि चलो अभी स्कूल में शिक्षक ही हो जाएं, अपने भाग्य में नहीं कान्स्टेबिल होना। क्योंकि मजा तो कान्स्टेबिल के हाथ में है। ऊपरी लाभ तो कान्स्टेबिल के हाथ में है।

शिक्षक तो सबसे दयनीय जीव है। जब कोई आदमी कहता है मैं शिक्षक हूं, तब जरा उसकी शकल देखो! वह ऐसे कह रहा है: क्या करें, मजबूरी है! जन्मों-जन्मों के करम भोग रहे हैं। शिक्षक हैं! आदमी डरता है यह कहने में कि मैं शिक्षक हूं। जब कोई आदमी कहता है, कलैक्टर हूं, तो उसके चेहरे पर रौनक होती है। शिक्षक हूं--सब रौनक विदा हो जाती है!

दीन-हीन है शिक्षक। और उसके पास संपदा क्या है? संपदा--कोरा जानकारी का संग्रह है। कीड़ा है किताबों का; किताबें खाता रहा है। जिंदगी नहीं जानी है; किताबों से उसकी जानकारी है। जीवन नहीं देखा है; किताबों में छपी जीवन की तस्वीरें देखी हैं। उसका ज्ञान उधार है। प्रेम नहीं किया है; प्रेम की कविताएं पढ़ी हैं। कोई स्वांतः सुखाय अनुभव नहीं हुए हैं; दूसरे जो कह गये हैं, उसी को सुन-सुन कर दोहराता रहा है। तोता है।

तोतों को बगावत की बातें ठीक नहीं लगतीं। तोते को तो वही अच्छा लगता है जो वह दोहरा सकता है। तो अगर 'हरे राम, हरे राम, हरे राम' कह सकता है तो वह 'हरे राम, हरे राम, हरे राम' कहता है। अब तुम आज नया मंत्र सिखाओ, तोता नाराज होता है। वह कहता है, इतना समय खराब किया हरे राम सिखने में, अब तुम आ गये नया मंत्र लेकर! मैं तो अपना पुराना ही दोहराऊंगा।

शिक्षक नये को सीखने में उत्सुकता नहीं दिखाता, और जिंदगी रोज नयी है। इसलिए शिक्षक का जिंदगी से कोई संबंध नहीं होता। जिंदगी के असली शिक्षक होते हैं कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ--जो जीते हैं! मगर उनको कौन शिक्षक मानता है! वे ही नये के उद्‌गाता हैं। उनसे ही नया अवतरित होता है। परमात्मा उनका ही सहारा लेता है; तोतों का सहारा नहीं लेता।

तुमने पूछा है: 'आपकी बातें इतनी सीधी-साफ और करुणापूर्ण हैं कि आश्चर्य है, संसार के लोगों को समझ में क्यों नहीं आतीं?

सीधी-साफ बात समझ में कभी नहीं आती। समझ में वही बात आती है, जो तुम्हें बहुत बार समझायी गयी हो। सीधी-साफ होने से संबंध नहीं है समझ का। जो तुम्हें इतनी बार समझायी गयी है कि तुम्हारी खोपड़ी में जड़ जमाकर बैठ गयी है, वही समझ में आती है। वह कितनी ही उलटी हो, वह कितनी ही गलत

हो, वह कितनी ही व्यर्थ हो, असंगत हो, लेकिन अगर बहुत बार दोहरायी गयी तो तुम्हारी समझ में आती है।

समझ का तुम मतलब क्या लेते हो ? समझ का मतलब इतना ही होता है कि जो मैं जानता हूं उससे मेल खाये तो समझ में आती है। उससे मेल न खाये तो तुम नाराज हो जाते हो; तो तुम कहते हो कि फिर मेरी जानकारी का क्या होगा? फिर मेरे अब तक से संग्रह किए ज्ञान का क्या होगा ? उससे अड़चन पैदा होती है।

तुम वही सुनते हो जो तुम्हारा साथ देता है। इसलिए तुम देखते हो, जब कोई बात ऐसी कही जाती है जो तुम्हें जंचती है, तुम्हारा सिर हिल जाता है कि बिलकुल ठीक। क्यों ? तुम्हें पता है सत्य क्या है ? तुम्हें कुछ पता नहीं है, लेकिन जो तुमसे मेल खाता है वह सत्य होना चाहिए। और जो तुमसे मेल नहीं खाता वह कैसे सत्य हो सकता है ! कभी-कभी बड़ी सीधी-सीधी बातें समझ में नहीं आतीं।

अब जैसे उदाहरण के लिये : सदियों से आदमी मानता रहा है कि सुबह सूरज ऊगता है और सांझ डूबता है। अब वैज्ञानिकों ने खोजकर बात रख दी कि सूरज न डूबता है, न ऊगता है। लेकिन फिर भी भाषा नहीं बदलती--सूर्यास्त, सूर्योदय चलता है। चलेगा। दिखता नहीं, कि कभी रुकेगा यह। अब भी तुम इस भाषा सोचते हो : सूरज ऊगा। क्योंकि इतनी सदियों तक यह बात मन में बिठाई गयी कि सूरज ऊगा कि सूरज डूबा, कि आज सुन भी लिया, जान भी लिया, मान भी लिया कि सूरज नहीं ऊगता, डूबता, सदा अपनी जगह है। जमीन घूमती है सूरज के आसपास, सूरज नहीं घूमता जमीन के आसपास--यह सुन लिया, मान लिया मगर सब व्यावहारिक अर्थों में तुम यही मानते हो कि सूरज ऊगा, कि सूरज देखो सिर पर चढ़ आया। अभी भी तुम वही भाषा बोल रहे हो। तुम वही भाषा बोलते रहोगे।

वैज्ञानिक कहते हैं; जमीन गोल है। लेकिन कामचलाऊ अर्थों में तुम अब भी चपटी मानकर ही चलते हो। पढ़ लेते हो, सुन लेते हो, मगर सदियों का संस्कार ! कभी-कभी सीधी-सीधी बातें, सच्ची-सच्ची बातें भी नहीं उतरतीं, क्योंकि एक जाल है संस्कारों का, वह उनके विपरीत पड़ा हुआ है।

अब जैसे तुमसे कल मैंने कहा--जब कबीर ने धनी धरमदास को कहा कि इन मूर्तियों में क्या है, पत्थर है! --तो चोट लगी होगी धरमदास को; भयंकर चोट लगी होगी। इन्हीं पत्थरों की पूजा करता रहा, इन्हीं को भगवत्ता माना। और आज यह एक अजीब आदमी आकर खड़ा हो गया, न तो यह ब्राह्मण है, न इसका पक्का पता है

कि हिंदू है कि मुसलमान है। इसको पता भी क्या ब्रह्मज्ञान का ! कपड़े बुनता रहा है, और तत्त्वज्ञान की बातें कर रहा है। और फिर इतने करोड़ों-करोड़ों लोग जो पत्थरों को पूज रहे हैं, सब नासमझ हैं ?

अब कबीर की बात बिलकुल सीधी-सादी है कि यह पत्थर है। पत्थर तो है ही। यह किसको पता नहीं है ! मगर जब एक बार तुमने पत्थर को प्रतिमा मान लिया और बहुत दिन तक मानते रहे, तो पत्थर नहीं रह जाता, प्रतिमा ही हो गयी। तुम्हारे भाव में एक संस्कार बैठ गया। संस्कार इतना जड़ हो जाता है कि सीधी-सादी बात कही कबीर ने और बड़ी करुणापूर्ण बात कही, क्योंकि जब तक इस पत्थर को भगवान समझोगे, असली भगवान को कैसे खोजोगे ? करुणा है, और सत्य भी है कि यह पत्थर है, तुमने ही बनाया है। तुम्हीं बाजार से खरीद लाये। सब तुम्हें मालूम है कि मकराने से, खदान से निकाला गया संगमरमर है कि फलां-फलां कारीगर ने यह मूर्ति बनायी, इतना पैसा देकर मूर्ति खरीद लाये हैं। फिर फलां-फलां पंडित पुजारी को बुलाकर, यज्ञ, हवन करके इसे स्थापित कर दिया है। है तो पत्थर ही। अभी भी तोड़ोगे तो पत्थर ही पाओगे। इस पत्थर को तोड़कर तुम इसके भीतर हृदय धड़कता हुआ नहीं पाओगे, और न खून की धार बहेगी।

लेकिन आदमी बड़े होशियार हैं, बड़े चालबाज हैं। एक पत्थर होता है जो भाप पी जाता है और जब गरमी पड़ती है, तो वह भाप पानी की तरह पत्थर में से निकलने लगती है। उसकी मूर्तियां बना ली हैं लोगों ने और वे कहते हैं कि भगवान को पसीना आ रहा है।

पंजाब में महावीर की एक मूर्ति है। हजारों लोग इकट्ठे होते हैं--जब पसीना आता है भगवान को--देखने। कैसे-कैसे पागल हो ! लेकिन हमारा मन मानना चाहता है कि भगवान को पसीना आ रहा है। वह पत्थर तुम कहीं से भी उठा लाओ, घर में रख लो लाकर, वह भाप पी जाता है हवा में से। उसमें छिद्र हैं छोटे। फिर जब गरमी पड़ती है, वह भाप पसीना बनकर बहने लगती है। अब तुमने मान रखा है। मान रखा है तो सच ! फिर कभी-कभी सदियों तक एक बात अगर मानी गयी हो और अचानक कोई उससे विपरीत बात कहे, तो कैसे भरोसा करोगे ?

अभी मैं पढ़ रहा था कल रात : शिकागो में, एक छोटे-से बच्चे ने-दस साल की उम्र थी उसकी, स्कूल जा रहा था, रास्ते पर एक बिल्ली देखी, जिसकी दो पूंछ थीं। वह बड़ा हैरान हुआ। उसने अपनी आंखें मलीं। निश्चित ही दो पूंछ थीं। उसने बड़े गौर से देखा, मगर तब तक बिल्ली छलांग लगाकर पास के मकान के

पार चली गयी। वह स्कूल गया, उसने जाकर कहा कि हद हो गयी, आज मैंने एक बिल्ली देखी थी जिसकी दोन पूंछ थीं। सारे लड़के हंसे कि तुम पागल हो गये हो, बिल्ली को कहीं दो पूंछ होती हैं! मगर उसने कहा कि मैं कसम खाकर कहता हूं कि मैंने देखी है, और मैंने बड़े गौर से देखी है। मगर कौन माने? सारे बच्चों ने शिक्षक से कहा कि यह बड़ा झूठ बोल रहा है; यह कहता है दो पूंछवाली बिल्ली! शिक्षक ने भी उसको डांटा और कहा कि सच-सच कहो, दो पूंछ की बिल्ली होती ही नहीं। तुम झूठ बोल रहे हो।

उसे बच्चे ने कहा : लेकिन मैंने देखी है। वह अपने जिद पर अड़ा रहा तो शिक्षक ने उठाकर बेंत उसकी पिटाई कर दी। घुटने टिकवा दिए। और कहा, जब तक क्षमा नहीं मांगेगा...झूठ बोल रहा है, और अकड़ रहा है फिर भी!

वह विद्यार्थी उस दिन घर लौटा, रात घर से भाग गया वह उस बिल्ली की तलाश में, कि वह बिल्ली किसी तरह पकड़ में आ जाए तो उनको जाकर दिखा दूं। अब ... बिल्ली को पकड़ना इतना आसान थोड़े ही है। रात भर खोजता रहा। सुबह-सुबह उसे फिर एक मुंड़ेर पर वहीं बिल्ली दिखाई पड़ी—वही बिल्ली, दो पूंछ; मगर पकड़े कैसे! फिर जाकर उसने स्कूल में कहा कि मैं क्षमा मांगता हूं, आप चाहे मारें और चाहे पीटें, मैंने फिर देखी है बिल्ली। तब तो लोगों ने समझा यह पागल हो गया; पहले लोग समझते थे, झूठ बोला; अब समझा कि बिलकुल पागल हो गया। पिटाई से भी नहीं मानता, तो पागल ही हो गया है।

आठवें दिन ... वह बच्चा घूमता ही रहा गांव में। आठवें दिन ... लौटा नहीं दो-तीन तीन दिन तक। परेशान हो गये घर के लोग, सब जगह खोजा गया। उसने एक झाड़ से टंगकर आत्महत्या कर ली। यह बड़ी हैरानी की बात हुई। सारे बच्चों को भी अपराध-भाव लगा स्कूल में कि हमने भी इसमें थोड़ा हाथ बंटाया। पहले हमने उसको झूठ कहा, फिर हमने उसको पागल कहा। कौन जाने! शिक्षक को भी अपराध-भाव हुआ। स्कूल बंद किया गया उसके शोक में। उसकी अर्थी में सब लोग सम्मिलित हुए। और जब उसे कब्र में उतारा जा रहा था तो सबने वह बिल्ली देखी। वह मरघट पर बैठी थी जिसके दो पूंछें थीं। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी।

मामला ऐसा है कि जो तुम मानते रहे हो, उससे अन्यथा तुम स्वीकार करने राजी नहीं होते। तुमने अगर पत्थर में भगवान देखा है तो तुम उससे अन्यथा मानने को राजी नहीं होते। फिर कबीर कहता है कि मैंने देखा कि पत्थर में पत्थर है, वहां कुछ भी नहीं भगवान इत्यादि। तो पहले तो तुम कहते हो झूठा है। पहले तो तुम कहते हो, उपद्रवी है। फिर अगर यह नहीं मानता,

अपनी जिद्द पर अड़ा रहता है, तुम इसे सताते भी हो, मारते भी हो, पत्थर भी फेंकते हो, अपमानित करते हो। फिर भी अगर जिद्द पर रहता है तो तुम समझ लेते हो पागल है। और फिर भी अगर जिद्द पर टिका ही रहता है, तो जब मर जाता है, तो तुम कहते हो, फकीर है, बड़ा पहुंचा हुआ है, पूजा कर लो। मगर इसकी मानते कभी नहीं। पहले झूठ कहा, फिर पागल कहा, फिर पहुंचा हुआ कहा; मगर हर हालत में तुमने इसको अपने से दूर रखा।

पूजा भी तुम्हारा दूर रखने का एक उपाय है।

पूजा भी तुम्हारा अस्वीकार है। तुम यह कहते हो कि भले महाराज, तुम्हारी पूजा कर देते हैं, हमें ज्यादा न सताओ। आप ठीक ही कहते होंगे; जब आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। थक जाते हो तुम, तो तुम कहते हो हम आप के चरण छूते हैं, मगर चुप रहो, शांति से बैठो। हम आपकी सदा याद करेंगे, लेकिन हमें परेशान न करो, उद्विग्न न करो। यह दो पूंछों की बिल्लियों की बात न करो। हम जैसा देखते रहे हैं, वैसा ही हमें देखने दो। हमें सांत्वना दो। हमें और सताओ मत।

ख्याल रखना, सत्य की खोज और सांत्वना की खोज अलग-अलग खोजें हैं। जो सांत्वना खोजता है, वह सत्य नहीं खोजता। उसे अगर झूठ से सांत्वना मिल जाए तो वह झूठ से ही राजी हो जाता है। जो सत्य खोजता है, वह सांत्वना नहीं खोजता। अगर सारे झूठ टूट जाएं और उनके साथ उसकी सारी सांत्वना नष्ट हो जाए, तो भी वह तैयार होता है।

मैं तुमसे सीधी-सादी बातें ही कह रहा हूं; लेकिन इन बातों में सत्य का रंग है। इत बातों में सत्य का रस है। और तुमने असत्य के साथ बहुत-सी सांत्वनाएं बना रखी हैं। तुम्हारी सांत्वनाएं टूटती हैं।

फ्रेडरिक नीत्से ने कहा है : 'और सब कुछ करो आदमी के साथ, उसके झूठ मत तोड़ना, अन्यथा वह तुम्हें कभी क्षमा न करेगा।' फ्रेडरिक नीत्से ने यह भी कहा है, और महत्त्वपूर्ण है कि 'आदमी झूठ के बिना नहीं जी सकता।' आदमी इतना कमजोर है कि उसे झूठ चाहिए ही चाहिए। उसे कुछ न कुछ चाहिए। वह झूठों में बड़ा रस लेता है।

तुम चले गये ज्योतिषी के पास, जन्म-कुंडली दिखा दी, और उसने कुछ झूठ कहे, और तुम बड़ा रस लेते हो। और वह जानता है किन झूठों में तुम रस लोगे। वह कहता है कि अभी तक तो बड़ी तकलीफ रही। सभी को रही है, इसलिए कोई झंझट की बात नहीं है। किसी से भी कहो, सभी को रही है। 'अभी तक तो बड़ी तकलीफ रही है, जीवन में बड़ा संकट रहा है, संघर्ष रहा है!' किसको नहीं रहा है!' 'हाथ में पैसा आता है, लेकिन टिकता नहीं।' किसका

टिकता ! 'बेईमान जीत जाते हैं, ईमानदार हारता है।' सभी मानते हैं, क्योंकि सभी हारे हुए हैं। ईमानदार होना चाहिए, तभी तो हारे हुए हैं।' लेकिन भविष्य बड़ा उज्ज्वल है; चित्त प्रसन्न होता है। पांच रुपये देने गये थे, दस दे आते हो। भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। शीघ्र ही सब ठीक होनेवाला है। शुभ मुहूर्त आ रहा है।

आदमी झूठ में जीता है। तुम उस डॉक्टर के पास जाना पसंद करते हो जो तुमसे कहता है : कोई फिक्र नहीं, यह बीमारी साधारण है, अभी इलाज से ठीक हो जायेगी। तुम उस डॉक्टर के पास जाना पसंद नहीं करते, जो पहले तुम्हारी बीमारी का ब्योरा प्रस्तुत करता है और छाती दहलवा देता है। तुम उस डॉक्टर से जरा बचते हो।

तुम झूठ से राजी हो। हम झूठ में पगे हैं। हम एक-दूसरे से झूठ बोल रहे हैं। पत्नी पति से झूठ बोल रही है। पति पत्नी से झूठ बोल रहा है। मित्र मित्रों से झूठ बोल रहे हैं। तुम एक-दूसरे की प्रशंसा कर रहे हो, जो कि झूठ है।

फ्रायड ने कहा है : अगर लोग सच-सच कहना शुरू कर दें तो दुनिया में चार दोस्त भी नहीं बचेंगे; सब दुश्मन हो जायेंगे।

तुम जरा सोचो, तुम अगर वही कह दो जो तुम सोचते हो अपने दोस्त के बाबत, तो दोस्ती बचेगी? दोस्ती गयी उसी वक्त। फिर तुम शक्ल न देखोगे एक-दूसरे की। घर में बैठे हो, और कोई आ जाता है, द्वार पर दस्तक देता है, भीतर तो कहते हो, 'यह कमबख्त कहां से आ गया! आज का दिन खराब किया।' लेकिन देखकर बिल्कुल बाग-बाग हो जाते हो, एकदम खिल जाते हो और कहते हो : 'धन्य भाग, कितनी प्रतीक्षा थी! पधारो! पग धरो!' पलक-पांवड़े बिछाते हो। और भीतर सोच रहे हो कि यह दुष्ट कहां से आ गया, और कब टलेगा, पता नहीं। सत्य तुम कहते कहां हो! और तुम यह मत सोचना कि तुम्हीं झूठ बोल रहे हो, वह भी झूठ बोल रहा है। यह जिंदगी झूठ से चलती मालूम पड़ती है। यहां सब नाते-रिश्ते झूठ के हैं।

यहां झूठ करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे मशीन में तेल डालने से मशीन ठीक से चलती है और तेल न डालो तो गड़बड़ खड़ी हो जाती है; आवाज आने लगती है, कर्कश हो जाती है। झूठ तेल है; संबंधों के बीच थोड़ी स्निग्धता बनी रहती है। घर आये और रास्ते से एक फूल खरीद लाये पत्नी के लिये। यह एक झूठ है। क्योंकि पत्नी की तुम्हें दिन भर याद नहीं आयी। सच तो यह है कि दफ्तर में तुम ज्यादा देर तक रुकते हो कि जितनी देर पत्नी से छुटकारा है, बेहतर। मगर जब घर आते हो तो एक फूल खरीद लाये, कि आईस्क्रीम खरीद लाये। यह झूठ है। पत्नी भी निश्चित अनुभव करती है, जब तुम दफ्तर चले जाते हो तब वह भी आराम से बैठती है कि झंझट टली। मगर जब शाम तुम घर आते हो तो

दरवाजे के सामने खड़ी मिलती है, कि दिन भर से प्रतीक्षा कर रही थी। यह सब झूठ पर चल रहा है।

इसलिए अड़चन है।

मैं जो कह रहा हूं, वे सीधे-सादे सत्य हैं। तुम्हारे झूठों को तोड़ते हैं। तुम्हारे झूठों के लिये उनमें कोई स्थान नहीं है। सिर्फ हिम्मतवर उनसे राजी होंगे। सिर्फ साहसी उनके साथ चलेंगे।

....तो शिक्षा जगत के महारथी, संसार के तथाकथित समझदार, उनको मेरी बातें समझ में न आयेंगी। और राजनीतिज्ञ तो इस जगत में सबसे रुग्ण चित्त का व्यक्ति है—सबसे ज्यादा बीमार। महत्त्वाकांक्षा बीमारी है। और राजनीति सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा है। अगर बुद्ध सही हैं तो राजनीतिज्ञ पागल है। अगर राजनीतिज्ञ सही है तो सब बुद्ध पागल हैं।

बुद्ध राज्य को छोड़कर चले गये थे। तुमने बहुत बार यह सुना कि बुद्ध राज्य को छोड़कर चले गये थे। तुमने कभी यह भी सोचा कि राज्य को छोड़ने में राजनीति भी छूट गयी थी? वह तुमने नहीं सोचा। एक बौद्धों का ग्रंथ नहीं कहता और न हिंदुओं का और न जैनों का—कि महावीर राजनीति भी छोड़कर चले गये थे। राज्य ही छोड़कर गये तो राजनीति छूट जायेगी। राजनीति का मतलब ही क्या रहा? राज्य छोड़कर गये थे, यह तो कहते हैं; लेकिन राजनीति! राजनीति छोड़कर गये थे। असल में राज्य इसलिए छोड़ा था कि राजनीति का कचरापन दिखाई पड़ गया था। राज्य में बैठे रहते तो राजनीति चलानी पड़ती।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं : राज्य नहीं था जो छोड़ा उन्होंने। असल में राजनीति छोड़ी थी इसलिए राज्य छटा।

तो जो लोग राजनीति की यात्रा कर रहे हैं और दिल्ली की तरफ चलते रहते हैं, चलते रहते हैं—और चलते रहो, चलते रहो तो एक न एक दिन पहुंच ही जाते हो। बस लम्बे समय तक चलते रहना काफी है। पहुंच ही जाओगे। दिल्ली बहुत दूर है नहीं। चित्त मूढ़ता से भरा हो तो तुम दिल्ली पहुंचकर रहोगे। बीच में थकना मत, हारना मत। जिद्दी और जड़ बुद्धि होनी चाहिए। समझदार आदमी बीच में ही सोचेगा कि कहां मैं जा रहा हूं, क्या रक्खा है! हजार बार सवाल उठेगा कि मैं कर क्या रहा हूं अपने जीवन के साथ! बुद्धिहीनता चाहिए दिल्ली पहुंचने के लिये, कि कभी यह सवाल न उठे, बस सींग नीचे झुकाए और घुस गये! जैसे बैल घुस जाता है भीड़ में, फिर वह देखता ही नहीं कि अब क्या हो रहा है। इस तरह चलते रहे, चलते रहे तो पहुंच ही जाओगे।

लेकिन राजनीति अंधापन है। राजनीति का अर्थ है : मैं कैसे दूसरों का मालिक

हो जाऊं! धर्म का अर्थ है : मैं अपना ही मालिक हो जाऊं तो बहुत। और कोई मालकियत नहीं है।

इसलिए कबीर ने कहा धरमदास को--धनी धरमदास। जब सब धन छोड़ दिया तो धनी।

जब सब राजनीति चली जाती है तो नीति का जन्म होता है। जब तक राजनीति है तब तक अनीति है। राजनैतिक नैतिक नहीं हो सकता। यह शब्द बड़ा झूठा है। राजनीति--इससे ऐसा लगता है कि राज्य की कोई नीति होती है। कोई नीति नहीं होती। राजनीति अनीति है लेकिन राजनीति होशियार है; वह अच्छे शब्द चुनती है। राजनीति सिर्फ बेईमानी है; सिर्फ महत्त्वाकांक्षा का ज्वर है। येन-केन-प्रकारेण पहुंच जाना है। सीधे हो तो सीधे, उलटे हो तो उलटे। कैसे पहुंचे हो, यह कोई नहीं पूछता। अगर पहुंच गये तो कोई नहीं पूछता, कैसे पहुंचे हो। अगर न पहुंचे तो सभी लोग कहते हैं कि अरे, नहीं पहुंचे इसलिए कि बेईमान थे; नहीं पहुंचे इसलिए कि धोखेबाज थे; नहीं पहुंचे इसलिए कि चरित्र नहीं था। पहुंच गये तो चरित्र भी हो जाता है, ईमानदारी भी हो जाती है।

तुमने पुराना वचन सुना है? वह धर्म की उद्घोषणा है। 'सत्यमेव जयते' --कि सत्य सदा जीतता है। राजनीति की उद्घोषणा क्या है? जो जीत जाए, वह सत्य। उलटा। सत्य सदा जीतता है, ऐसा नहीं--जो जीत जाए, वह सत्य। जिसकी लाठी उसकी भैंस। एक बार तुम पद में पहुंच गये तो सब ठीक है। तुमने जो किया वह सब क्षमा। तुमने जो किया सब अच्छा। क्योंकि इतिहास तुम बनाओगे, अखबार तुम छपवाओगे, अब तुम्हारी ताकत से सब चलेगा।

तुम देखते हो न, एक आदमी जब ताकत में पहुंच जाता है, तो लोग कैसे बदल जाते हैं! मोरारजीभाई देसाई के खिलाफ ब्लिट्ज सदा लिखता था, सदा! जब एक दफा मोरारजीभाई ताकत में पहुंच गये तो ब्लिट्ज देखते हो क्या सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है? ब्लिट्ज यह सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है कि मोरारजी महात्मा हैं। एकदम बदल गयी बात। अब महात्मा हो गये! अब अवतारी पुरुष हैं, यह सिद्ध करने की कोशिश चल रही है। परमात्मा की शक्ति उनके पीछे है, अब यह सिद्ध करने की कोशिश चल रही है। अब वे महायोगी हैं, यह सिद्ध करने की कोशिश चल रही है।

जिसके हाथ में लाठी हो जाती है, सभी लोग कहने लगते हैं कि भैंस आपकी है। कहना ही पड़ता है। जब लाठी छूट जाती है तब देखो, भैंस भी नहीं कहती कि 'मैं आपकी हूं। समझा क्या है?'

राजनीति इस जगत का सबसे ज्यादा रुग्ण आयाम है। इसलिए राजनीतिज्ञ

तो मेरी बात नहीं समझ सकता। मेरी बात तो वे ही समझेंगे जिनकी महत्त्वाकांक्षा का ज्वर टूट रहा है; जो जाग रहे हैं। राजनीति तो गहरी से गहरी नींद है, मूर्च्छा है--कोमा। आदमी पड़ा है बिलकुल मूर्च्छित होकर। जिनके भीतर थोड़ा जागरण है, वे मेरी बात समझेंगे।

बात निश्चित ही सीधी-साफ है; जो भी समझना चाहे समझ सकता है। लेकिन राजनीतिज्ञ नहीं समझना चाहता, क्योंकि अभी महत्त्वाकांक्षा का ज्वर है; अभी वह ऐसी दवा नहीं चाहता, जिससे ज्वर कम हो जाए। ध्यान से तो ज्वर चला जायेगा। ध्यान से तो शांति आ जायेगी। फिर कौन फिक्र करता है कहां जाने की! मगन हो जाती है अपने ही भीतर आदमी, फिर कहां जाना है! फिर किसको पाना है! फिर कोई दौड़ नहीं है। फिर कोई मंजिल नहीं है।

और शिक्षाशास्त्री नहीं समझेगा, क्योंकि वह सेवा में अतीत के है। केवल वे ही समझेंगे जिन्हें एक बात दिखाई पड़नी शुरू हो गयी कि अब तक हम जिस ढंग से जिये हैं, वह जीना गलत है। अब तक हम जिस ढंग से जिये हैं, वह जीना नहीं है, मरने से बदतर है। अब तक हम जिस ढंग से जिये हैं, वहां हमने सिवाय कांटों के और कुछ नहीं पाया, फूल नहीं खिले हैं।

जिसको यह पीड़ा बहुत सघन हो जायेगी, वही इन सीधे-सादे सत्यों को समझेगा। और समझते ही क्रांति घट जाती है। ये सत्य ऐसे हैं कि तुमने समझे कि इन्होंने तुम्हें बदला।

जीसस का वचन है : सत्य मुक्तिदायी है। समझ लो--और मुक्ति घट जाती न। एक दफा सत्य का बोध हो जाए, वह बोध ही तुम्हें बदलता है। फिर बदलने के लिये कोई अलग से चेष्टा करने की जरूरत नहीं होती।

तीसरा प्रश्न : भगवान! मैं कितना भाग्यवान हूं कि मुझे आप मिले!

इस पर रुक मत जाना। इस भाग्य को और महाभाग्य बनाओ। मैं मिला, इसे यात्रा का प्राथमिक बिंदु समझो।

मेरे से मिलना सार्थक उसी दिन समझना जिस दिन अपने से मिलना हो जाए। जब तक तुम अपने से न मिल जाओ, मुझसे मिले या न मिले, इसका बहुत दूरगामी परिणाम नहीं होगा। मैं हूं कि तुम्हें तुमसे मिला दूं। मैं हूं कि तुम्हें तुमसे जुड़ा दूं।

यह अनुग्रह का भाव मूल्यवान है। यह अनुग्रह का भाव तुम्हें आगे ले जाने के लिये पंख बनेगा। मगर स्मरण रहे कि आगे जाना है। कई बार हम जल्दी रुक जाते हैं। कई बार हम बीच के पड़ाव को मंजिल समझ लेते हैं। कई बार हम कहते हैं कि इतना तो आनंद है, अब क्या करना!

नहीं, और बहुत आनंद हैं। और बहुत ऊंचाइयां हैं। ऊंचाइयों पर ऊंचाइयां

हैं। अंतहीन ऊंचाइयां हैं। एक शिखर के बाद और बड़ा शिखर है।

मैं तुम्हारा प्रस्थान-बिंदु हूं। तुम्हारी यात्रा का अंतिम पड़ाव नहीं। अंतिम पड़ाव तो परमात्मा है।

तो आनंदित होओ मेरे साथ। अनुग्रह से भरो। लेकिन इससे रुकावट न आये। अनुग्रह शैथिल्य न बने। ऐसा न हो कि ठीक है, अब मिलन तो हो गया गुरु से, अब क्या करना है! नहीं, मिलन हुआ इसलिए अब कुछ करना है। नहीं मिलन हुआ होता तो क्या करते, करने को क्या था! अब एक झलक मिली है रोशनी की, यह रोशनी भीतर जल जाए। यह रोशनी रोएं-रोएं में समा जाए।

जब तक तुम ऐसे ही न हो जाओ जैसा मैं हूं, तब तक रुकना मत। तुम्हारे भीतर इतनी संभावनाएं पड़ी हैं, कि एक बार तुम सजग होकर उन संभावनाओं को पकड़ने लगो, तो तुम्हारी संपदा का कोई अंत नहीं, तुम्हारे साम्राज्य का कोई अंत नहीं।

शुभ है अनुग्रह का भाव। फिर अनुग्रह अनुग्रह के भी बड़े भेद होते हैं। यह स्वामी अगेह भारती का अनुग्रह है। स्वामी योग चिन्मय ने कुछ दिन पहले एक पत्र लिखा कि 'मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूं कि आश्रम में मुझे मुफ्त रहने का इंतजाम है, मुफ्त भोजन की व्यवस्था है, मुफ्त प्रवचन सुन सकता हूं, मुफ्त ध्यान कर सकता हूं। मैं बड़ा अनुगृहीत हूं।' एक यह भी अनुग्रह है! यह दो कौड़ी का अनुग्रह हुआ। मुफ्त रहना, मुफ्त भोजन--यह मुझसे तुम्हारा नाता है? यह मेरे प्रति अनुग्रह हुआ? तो कहीं अगर तुम्हें और अच्छा भोजन मिल जाए और रहने को कहीं और अच्छी जगह मिल जाए, तो फिर क्या करोगे? फिर तो तुम कहोगे, जय राम जी! अब वहां अनुग्रह की और ज्यादा सुविधा है।

यह अनुग्रह हुआ? अनुग्रह को छोटी बातों पर मत टिकाना। क्षुद्र पर मत टिकाना, नहीं तो अनुग्रह भी क्षुद्र हो जाता है।

अनुग्रह को विराट पर टिकाना, तो अनुग्रह तुम्हें विराट बनायेगा।

धन्यवाद भी गलत चीजों के लिये दे सकते हो। धन्यवाद हमेशा ठीक नहीं होता। अगर गलत चीजों के लिये दिया गया तो गलत हो जाता है। अब यह कोई धन्यवाद हुआ? सोचा होगा, अनुग्रह प्रकट करना है। अनुग्रह बड़ी ऊंची चीज है! सोचा होगा कि अनुग्रह का भाव भक्त की दशा है। क्योंकि उन दिनों मैं अनुग्रह के भाव की बात कर रहा था--जब उन्होंने यह पत्र लिखा--कि भक्त में अनुग्रह का भाव होता है। शिष्य में परम अनुग्रह का भाव होता है। सोचा होगा कि अनुग्रह तो प्रकट करना ही चाहिए। तो खोजा होगा, सोचा होगा, विचारा होगा कि कैसे प्रकट करें अनुग्रह। फिर उन्होंने यह अनुग्रह का भाव निकाला।

अनुग्रह दो कौड़ी का हो गया, मिट्टी में गिर गया।

धन्यवाद, किस बात का? बस इसी बात का धन्यवाद होना चाहिए कि मैं तुम्हें मिल गया हूं।

अब इससे ऊर्जा लो, इससे संकेत लो और अपने से मिलने की यात्रा पर निकल जाओ।

मेरे प्रति उऋण होने की यही सुविधा है एकमात्र, कि तुम स्वयं को जान लो। जिस दिन तुम स्वयं को जानोगे, उस दिन मैं भी धन्यभागी होऊंगा।

जिन्होंने मुझसे अपने को जोड़ा है, मेरी अभीप्सा है कि वे सभी, इस जीवन में जानकर ही विदा हों। कोई कारण नहीं है कि रुकें। जिन्होंने मुझे अपने भीतर हृदय में जगह दी है, उन सबका जीवन यह अंतिम हो सकता है। रुकोगे तो तुम अपने कारण रुकोगे; मेरी तरफ से कोई,...कोई रुकावट नहीं है। मैं तुम्हें जल्दी से जल्दी धक्का देना चाहता हूं। तुम छलांग ले लो।

अनुग्रह स्वाभाविक है, क्योंकि मेरे कारण तुम्हें अपनी याद शुरू हुई है। मेरे कारण तुम्हें अपनी सुध आनी शुरू हुई है।

तेरा गम, तेरा तसव्वुर, तेरी बातें, तेरी याद
इतनी दौलत मेरे दामन में कहां थी पहले!

स्वाभाविक है कि अनुग्रह का परम भाव गुरु के प्रति उठे।

रात बीती, तेरी यादें भी दबे पांव चलीं
एक एक कर के उतर आये, सितारे दिल में

ये शब्द, जो मैं तुमसे कह रहा हूं, अगर तुम इन्हें ले जा सको अपने हृदय तक तो एक-एक सितारा बन जायेगा। एक-एक शब्द एक-एक फूल बन जायेगा। एक-एक शब्द एक-एक अनुभूति बन जायेगा।

इस तेरी तमन्ना ने, कुछ ऐसा नवाजा है
मांगी ही नहीं जाती अब कोई दुआ हम से

ऐसा हो जाता है। जब तुम गहरे प्रेम में होते हो तो कुछ मांगने को नहीं रह जाता। जब गहरा प्रेम होता है तो मांग खो जाती है। जब गहरा प्रेम होता है, तो ऐसी तृप्ति होती है कि कुछ और मांगने को सूझता भी नहीं। मांगने की जरूरत भी नहीं है। लेकिन खोजने की जरूरत समाप्त नहीं होती। मुझसे तुम्हारा प्रेम, एक महायात्रा का प्रारंभ है; एक तीर्थयात्रा का प्रारंभ है।

इसका रोना नहीं, क्यों तुमने किया दिल बरबाद
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया

और मैं तुम्हें बरबाद भी करूंगा। मैं तुम्हें मिटाऊंगा भी। क्योंकि तुम्हें

बिना मिटाये तुम्हें जन्म नहीं दिया जा सकता। तुम्हारी मृत्यु पर ही तुम्हारा पुनर्जन्म है। तुम जैसे हो ऐसे मिटोगे, तो ही तुम जैसा होना चाहिए वैसे हो सकोगे। तुम्हें तोड़ा जायेगा। इसलिए बहुत बार तुम नाराज भी हो जाओगे। उस समय यह अनुग्रह काम आयेगा। इस अनुग्रह को संपदा समझना; यह तब तुम्हारे काम आयेगी, जब कठिन दिन आयेंगे और मैं तुम्हें तोडूंगा। और जब मैं तुम्हें काटूंगा, तब अगर अनुग्रह का भाव रहा, तो तुम झुके रहोगे। तब तुम श्रद्धा से भरे रहोगे। तुम कहोगे कि जो हो रहा है, ठीक ही होता होगा--चाहे मुझे पीड़ा होती हो, चाहे मुझे दुख होता हो, चाहे मुझे घाव लगते हों--लेकिन जो हो रहा, है, वह ठीक ही हो रहा होगा।

और मैं तुमसे यह कहता हूं कि एक दिन तुम यह जरूर कहोगे :

इसका रोना नहीं है, क्यों तुमने किया दिल बरबाद
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया

आखिरी प्रश्न: सभी धर्म अपने-अपने धर्मगुरु की प्रशंसा में अतिशयोक्ति क्यों करते हैं?

वह अतिशयोक्ति दूसरों को मालूम होती है। और दूसरों को मालूम हो, यह स्वाभाविक है, लेकिन जिन्होंने प्रेम किया है वे अतिशयोक्ति नहीं करते। उनकी तो अड़चन दूसरी है। उनकी अड़चन यह है कि कोई शब्द योग्य नहीं मालूम होता जिससे वे अपने गुरु की चर्चा कर सकें। सब शब्द छोटे मालूम पड़ते हैं।

जिसने बुद्ध को चाहा उसके लिये सारी भाषा ओछी मालूम पड़ती है--किन शब्दों में बुद्ध का गुणगान करे! हां, जिन्होंने बुद्ध को नहीं चाहा, उनको लगता है, यह तो बड़ी अतिशयोक्ति हो रही है। ये भक्त बुद्ध के, बुद्ध को भगवान कह रहे हैं! यह तो बड़ी अतिशयोक्ति हो रही है। भगवान तो वह, जिसने दुनिया बनायी। बुद्ध ने दुनिया बनायी? ये तो कल नहीं थे, आज हैं, कल फिर नहीं हो जायेंगे। भगवान तो सबका नियंता है। ये बुद्ध सबके नियंता हैं? भगवान तो वह है, जिसके इशारे से पत्ते हिलते हैं, जिसके बिना इशारे के पत्ते नहीं हिलते। इन बुद्ध का इशारा मानकर कोई पत्ता हिलेगा? इनके, बुद्ध के इशारे से दुनिया चल रही है? बुद्ध को तो बीमारी भी लगती है, इनके इशारे से क्या खाक होता होगा! यह तो बूढ़े भी हो गये। इनका तो मरने का दिन भी करीब आ गया।

वह जो दूर खड़ा होकर देख रहा है, वह सोचता है यह अतिशयोक्ति हो गयी। बुद्ध को भगवान नहीं कहा जा सकता। हां कहो, महात्मा--बहुत।

और मजा यह है कि अगर भक्त बुद्ध को महात्मा कहे, तो भी जो दूर खड़ा है, उसको तब भी बात नहीं जंचती; वह कहता है, महात्मा! अगर वह कृष्ण को महात्मा मानता है तो बुद्ध को नहीं मान सकता क्योंकि उसके महात्मा की कसौटियां अलग हैं। अगर वह महावीर को महात्मा मानता है तो बुद्ध को नहीं मान सकता, क्योंकि महावीर नग्न हैं, नग्न होना कसौटी है महात्मा की--दिगंबर। ये बुद्ध तो कपड़े पहने बैठे! यह कौन-सी बात हुई महात्मा की? हां, साधुपुरुष कहो तो ठीक है। लेकिन साधुपुरुष कहो, तो भी जो दूर खड़ा है, उसको नहीं जंचता क्योंकि उसे हजार बातें दिखाई पड़ती हैं, जो उसकी साधु की मान्यता में नहीं आतीं।

अब समझो, ईसाई है कोई, उसको बुद्ध साधु नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि साधु का मतलब है: 'मदर टेरेसा;' जाओ, मरीजों के पैर दबाओ। साधु का मतलब होता है: स्कूल खोलो, गैर-पढ़े-लिखे को पढ़ाओ। साधु का मतलब होता है, गरीब हैं, उनकी सेवा करो। ये बुद्ध तो अपने झाड़ के नीचे बैठे हैं!

तुम सुनते हो, इस देश में भी हम 'सेवा' शब्द का उपयोग करते हैं, लेकिन यहां सेवा का बड़ा ही उलटा मतलब है। यहां लोग कहते हैं... जैनों से पूछो, वे कहते हैं, कहां जा रहे हो? वे कहते हैं, जरा साधु महाराज की सेवा करने जा रहे हैं। यहां साधु महाराज की सेवा की जाती है! इस देश में यह धारणा ही नहीं थी कभी कि साधु महाराज किसी की सेवा करें। वह तो ईसाई धारणा लाए। साधु वह, जो सेवा करे। इधर तो साधु वह था, जो सेवा ले।

अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी। तुम्हारे साधु जंचते नहीं। बुद्ध बैठे हैं झाड़ के नीचे! साधु हैं जीसस, जिन्होंने अपने प्राण दे दिए जगत की सेवा में। बुद्ध ने क्या दिया?

जो दूर खड़ा है, जिसके लगाव कहीं और हैं, उसे हर चीज अतिशयोक्ति मालूम पड़ेगी। और जो प्रेम में पड़ा है, उसे भगवान कहकर भी अतिशयोक्ति मालूम नहीं होगी। उसे तो यह लगता है, भगवान शब्द भी छोटा है। क्योंकि उसे बुद्ध में वह ज्योति दिखाई पड़ी है, जो शाश्वत है। बुद्ध की देह को भगवान नहीं कह रहा है वह, दीये को भगवान नहीं कह रहा है--दीये में जो ज्योति है, उसको भगवान कह रहा है। और वह ज्योति तो समर्पित शिष्य को दिखाई पड़ती है, औरों को दिखाई नहीं पड़ती। वह तो प्रेमी को दिखाई पड़ती है। और तो यही कहेंगे कि अरे, प्रेम में अंधे हो गये, इसलिए दिखाई पड़ रही है। ठीक, और भी ठीक ही कहते हैं।

प्रेम एक तरह का अंधापन लाता है और एक तरह की आंख भी लाता है।

तुम ऐसा समझो कि धर्मगुरुओं संबंध में लोगों ने जो अतिशयोक्ति की है, वह वैसी ही अतिशयोक्ति है जैसी प्रेमी सदा से करते रहे हैं। लेकिन प्रेमियों में तुम

ऐतराज नहीं उठाते। मजनू से पूछो लैला के संबंध में, क्या कहता है। तुम ऐतराज नहीं उठाते। तुम यह नहीं कहते कि यह अतिशयोक्ति हो गयी।

इन शब्दों को सुनो। प्रेमी अपनी प्रेयसी से कह रहा है।

ऐ हमारंग, हमानूर, हमा-सोजो-गुदाज
बज्मे-महताब से आने की जरूरत क्या थी
तू जहां थी उसी जन्नत में निखरता तेरा रूप
इस जहन्नुम को बसाने की जरूरत क्या थी
ये खदो-खाल, ये ख्वाबों से तराशा हुआ जिस्म
और दिल जिस पे खदो-खाल की नर्मी भी निसार
खार ही खार, शरारे ही शरारे हैं यहां
और थम थम के उठा पांव बहारों की बहार
तश्नगी जहर भी पी जाती है अमृत की तरह
जाने किस जाम पे रुक जाये निगाहे-मासूम
डूबते देखा है जिन आंखों में मयखाना भी
प्यास उन आंखों की बुझे या न बुझे क्या मालूम
हैं सभी हुस्न-परस्त, अहले नजर, साहबे-दिल
कोई घर में कोई महफिल में सजायेगा तुझे
तू फकत जिस्म नहीं, शेर भी है, गीत भी है
कौन अश्कों की घनी छांव में गायेगा तुझे
तुझ से इक दर्द का रिश्ता भी है, बस प्यार नहीं
अपने आंचल पर मुझे अश्क बहा लेने दे
तू जहां जाती है जा, रोकनेवाला मैं कौन
रस्ते-रस्ते में मगर शम्अ जला लेने दे

ऐ हमारंग——ऐ साकार रंग! हमा-नूर——ऐ साकार ज्योति! हमा-सोजो गुदाज—साकार कोमलता और तपिश!

ऐ हमारंग, हमा-नूर, हमा सोजो-गुदाज
बज्मे-महताब से आने की जरूरत क्या थी।

चंद्रसभा से तुझे यहां आने की जरूरत नहीं थी। तू चांद पर ही रहती, वहीं के योग्य थी।

बज्मे-महताब से आने की जरूरत क्या थी
तू जहां थी उसी जन्नत में निखरता तेरा रूप
इस जहन्नुम को बसाने की जरूरत क्या थी

जब कोई किसी के प्रेम में पड़ता है, तो उसे लगता है, जिसके प्रेम में मैं पड़ा वह स्वर्गिक है। इस साधारण से जगत में उतरने की जरूरत नहीं थी।

ये ख़दो-खाल——ये गाल, और यह तिल! यह ख्वाबोंसे तराशा हुआ जिस्म! जैसे सपनों से सजाया गया हो, ऐसी तेरी देह है।

और दिल जिस पे ख़दो-खाल की नर्मी भी निसार
खार ही खार, शरारे ही शरारे हैं यहां

यहां इस जमीन पर कांटे ही कांटे हैं, अंगारे ही अंगारे हैं।

खार ही खार, शरारे ही शरारे हैं यहां
और थम-थम के उठा पांव, बहारों की बहार

सम्भलकर चलना, बहारों की बहार—वसन्तों का वसन्त सम्भलकर चलना, यहां बहुत कांटे हैं और बहुत अंगारे हैं।

तश्नगी जहर भी पी जाती है अमृत की तरह

प्यास हो, गहरी प्यास हो, तो जहर भी अमृत की तरह मालूम होता है।

तश्नगी जहर भी पी जाती है अमृत की तरह
जाने किस जाम पर रुक जाये निगाहे मासूम
डूबते देखा है जिन आंखों में मयखाना भी
प्यास उन आंखों की बुझे या न बुझे क्या मालूम!

जब तुम किसी की आंख में प्रेम से देखते हो तो आंखें नहीं दिखतीं, मयखाना दिखता है। शराब ही शराब के चश्मे बहते हुए दिखते हैं। प्रेमी की आंख में झांककर तुम बेहोश होने लगते हो, तुम बेखुद होने लगते हो।

हैं सभी हुस्न परस्त, अहले-नजर, साहबे दिल
कोई घर में कोई महफिल में सजायेगा तुझे

तू फकत जिस्म नहीं... प्रेमी कहता है कि तू सिर्फ शरीर नहीं है।

तू फकत जिस्म नहीं, शेर भी है, गीत भी है

——तू एक नज्म है, एक गीत है, काव्य है।

कौन अश्कों की घनी छांव मे गायेगा तुझे।

——कौन होगा धन्यभागी, जो आंसुओं की छाया में तेरे गीत को गुनगुनायेगा।

तू फकत जिस्म नहीं, शेर भी है, गीत भी है
कौन अश्कों की घनी छांव में गायेगा तुझे
तुझसे इक दर्द का रिश्ता भी है, बस प्यार नहीं
अपने आंचल पर मुझे अश्क बहा लेने दे

—और नहीं मांगता ज्यादा कुछ, तेरे आंचल पर मेरे दो बूंद आंसू के गिर जाए, बस इतना धन्यभाग !

तुझ से इक दर्द का रिश्ता भी है,बस प्यार नहीं
अपने आंचल पर मुझे, अश्क बहा लेने दे
तू जहां जाती है जा, रोकने वाला मैं कौन
रस्ते रस्ते में मगर शम्अ जला लेने दे

—तू जहां जाए, हर रास्ते पर मैं शमा जलाता रहूं । तेरा रास्ता दीयों की ज्योति से भरा हो ।

तुम प्रेमियों पर नाराज नहीं होते । तुम यह न कहोगे, इस प्रेमी ने कुछ गलत बात कही । तुम यह न कहोगे, अतिशयोक्ति की । तुम कहोगे कि प्रेमी तो अतिशयोक्तियां करते ही हैं । प्रेम अतिशयोक्ति है । और अगर तुम प्रेमियों को क्षमा कर देते हो, तो तुम शिष्यों को भी क्षमा करो, क्योंकि शिष्य का प्रेम और भी बड़ा प्रेम है ।

प्रेमियों को क्या प्रेम का पता है ! प्रेमियों के हाथ में तो बस साधारण-सा जगत का प्रेम लगा है । शिष्य के हाथ में पारलौकिक प्रेम लग जाता है । उसे अपने गुरु में सब दिखाई पड़ता है । तुम उसे क्षमा करो । तुम उस पर ऐतराज मत उठाओ । वह धन्यभागी है ।

और मैं तुमसे क्यों कहता हूं उसे क्षमा करो ! क्योंकि उसे क्षमा करोगे, तो शायद किसी दिन तुम्हें भी तुम्हारा गुरु मिल जाए । अगर तुम उसे क्षमा न करोगे तो तुम्हें तुम्हारा गुरु कभी नहीं मिलेगा । उसको क्षमा करने में तुम्हारा द्वार खुलता है । उसको क्षमा करने में तुम्हारी कठोरता पिघलती है ।

जिन्होंने कृष्ण को भगवान कहा, उन्होंने जाना था ऐसा, उनके प्रेम में ऐसा अनुभव हुआ था उन्हें । जैनों ने नहीं कहा, जैनों ने कृष्ण को नरक में डाल दिया । डालना ही पड़ा, क्योंकि उनकी अपनी कसौटी थी—अहिंसा । और कृष्ण ने हिंसा करवा दी और महायुद्ध करवा दिया । अर्जुन तो जन होने को बिलकुल तयार था, जैन मुनि हो गया होता वह । कृष्ण ने सब खराब कर दिया । एक मुनि से जगत वंचित हो गया । और युद्ध करवाया, सो अलग और । लाखों लोग मरे, सो अलग । तो नरक में डाल दिया है ।

महावीर जैनों को भगवान दिखे, लेकिन हिंदुओं ने अपने शास्त्रों में उनका उल्लेख भी नहीं किया—क्यों ? कहीं नाम का भी उल्लेख नहीं किया ! उन्हें जंचे ही नहीं !

कम से कम कृष्ण जैनियों को थोड़े तो जंचे । नरक तो भेजा, उत्सुकता तो

ली ! हिंदुओं ने इतनी उत्सुकता भी न ली महावीर में । होगा कोई पागल, हो गया नग्न । बात ही न उठाओ । भूल ही जाओ । इसे आदमियों के इतिहास में रहने की जरूरत ही नहीं है ।

जिन्होंने बुद्ध को चाहा, उन्होंने बुद्ध को भगवान कहा । तुम नाराज मत होओ। तुम शिकायत न करो । क्योंकि शिकायत तुमने की तो खतरा है । अगर तुम मजनू से नाराज हुए, तो याद रखना, तुम किसी के प्रेम में कभी न पड़ पाओगे । क्योंकि जब तुम प्रेम में पड़ोगे तभी तुम्हें लगेगा 'मैं भी वही गलती कर रहा हूं । नहीं, यह गलती मैं कैसे कर सकता हूं ! यह गलती तो पहले मजनू कर चुका, यह फरहाद कर चुका । मैं तो सदा इसके खिलाफत में रहा हूं । यह मुझसे नहीं होगा ।

तुम अपने को कठोर कर लोगे । तो कहीं ऐसा न हो कि कभी किसी ऐसे व्यक्ति के पास तुम आ जाओ, जहां तुम्हें भी भगवान दिख सकता था, जहां से झरोखा खुल सकता था, जहां से हवा का एक झोंका आता और तुम्हें ताजा कर जाता—कहीं तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद किये न बैठे रह जाओ ! इसलिए कहता हूं कि क्षमा कर दो; इसलिए नहीं कि तुम्हारे क्षमा करने या न करने से भक्तों को कुछ फर्क पड़ता है । भक्तों को क्या फर्क पड़ता है !

जिन्हें बुद्ध में भगवान दिखा, दिखा । सारी दुनिया कहे कि कुछ नहीं है, कुछ फर्क नहीं पड़ता । तुम्हारे कहने न कहने से भक्तों को कोई फर्क नहीं पड़ता । जिनमें पड़ जाए, वे भक्त ही नहीं हैं । लेकिन तुम्हारे कहने से तुम्हारे जीवन में फर्क पड़ेगा । तुम भक्तों पर दया करो, क्योंकि यही उपाय है ताकि तुम अपने पर दया कर सको । अतिशयोक्ति मत कहो । भक्तों को शब्द नहीं मिले हैं अपने गुरुओं का वर्णन करने के लिये । इसलिए तो वे कहते हैं : 'गुरुर्ब्रह्मा' ।

आज इतना ही ।

हम सतनाम के वैपारी ।:

कोई कोई लादे कांसा पीतल, कोई कोई लौंग सुपारी ।
हम तो लाद्यो नाम धनी को, पूरन खेप हमारी ।।
पूंजी न टूटे नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी ।
हाट जगाती रोक न सकिहै, निर्भय गैल हमारी ।।
मोती बूंद घटहिं में उपजे, सुकिरत भरत कोठारी ।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास वैपारी ।।

थोड़े दिन की जिन्दगी, मन चेत गंवार ।।
कागद के तन पूतरा, डोरा साहब हाथ ।
नाना नाच नचावही, नाचे संसार ।।
काचि माटि के घइलिया, भरि लै पनिहार ।
पानी परत गल जावही, ठाड़ी पछिताय ।।
जस धूआं के धरोहरा, जस बालू के रेत ।
हवा लगे सब मिटि गए, जस करतब प्रेत ।।
ओछे जल कै नदिया हो, बहै अगम अपार ।
उहां नाव नहिं बेरा हो, कस उतरब पार ।।
धरमदास गुरु समरथ हो, जाको अदल अपार ।
साहेब कबीर सतगुरु मिलै, आवागमन निवार ।।

प्रवचन : ३
दिनांक : ४।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना ।

यह मोहब्बत में ही देखा है कमाल
जिसने कुछ खोया वही कुछ पा गया

धरमदास धनी थे तो गरीब थे। व्यापारी थे तो भिखमंगे थे। सब जब लुटा दिया, भिखारी हुए तो सम्राट हो गये। निर्धन हुए तो धनी हो गये।

पकड़ गरीब की होती है। जहां पकड़ है वहां गरीबी है। जितनी पकड़ है उतनी गरीबी है। गरीबी का कोई संबंध नहीं है इस बात से कि क्या तुम्हारे पास है, क्या तुम्हारे पास नहीं है। न ही अमीरी का कोई संबंध है इस बात से। गरीबी और अमीरी तुम्हारी पकड़ के मात्राओं का नाम है। गरीब जोर से पकड़ता है, डरा है कि कहीं छिन न जाए। प्राण कंप रहे हैं, कहीं छूट न जाए। कौड़ियों पर सारे जीवन को आधारित किया है। अमीर वही है जिसे जाने का भय चला गया; जो मुट्ठी खोल देता है। मुट्ठी तभी खुलती है जब भीतर का धन मिल जाए। भीतर का धन मिल जाए तो बाहर का धन अपने से व्यर्थ हो जाता है। बड़ा धन मिल जाए तो छोटा धन अपने से व्यर्थ हो जाता है। असली सिक्के मिल जाएं तो नकली दो कौड़ी के हो जाते हैं। जब तक असली की झलक नहीं, तब तक नकली की पकड़ है।

तो ध्यान रखना, मैं तुमसे नहीं कहता हूं कि तुम नकली को छोड़ दो। मैं तुमसे कहता हूं असली को पा लो, नकली अपने से छूट जायेगा। मैं तुमसे नहीं कहता हूं संसार से भाग जाओ, मैं कहता हूं परमात्मा को अपने में बुला लो, संसार तुम से भाग जाएगा। तुम संसार में ही रहोगे और फिर भी संसार तुम्हारे भीतर नहीं होगा। यही धनी का लक्षण है। ऐसी घड़ी में कबीरदास ने अपने इस शिष्य धरमदास को धनी धरमदास कहा था।

धरमदास बड़े व्यापारी थे, लाखों का व्यवसाय था। स्वभावत: जब परम संपदा मिली तो व्यापारी व्यापारी की भाषा में ही बोलेगा। हमारी भाषा तो हमारे अनुभव पर टिकी होती है। जीसस बोलते हैं उसी तरह, जिस तरह एक बढ़ई का

बेटा बोले। और कबीर बोलते हैं उस तरह जैसे, एक जुलाहा बोले। मीरा बोलती है उस तरह, जैसे, एक स्त्री का हृदय बोले। बुद्ध बोलते हैं उस तरह, जैसे एक सम्राट बोले।

अनुभव तो सभी को एक हुआ है। जो जाना वह तो एक है। लेकिन जो कहा, वह बड़ा भिन्न-भिन्न है। क्योंकि कहने की भाषा अलग-अलग अनुभव से आयी है। बुद्ध लाख उपाय करें तो भी कबीर जैसा नहीं बोल सकते। महल छोड़ दिया, राज्य छोड़ दिया, परिवार छोड़ दिया, लेकिन वह भाषा जो महलों में जन्मी थी वह कैसे छूटेगी? वे शब्द जो महलों में सीखे गये थे, वह परिष्कार, वह संस्कार, वह कैसे छूटेगा? उसका तो उपयोग करना ही होगा।

ज्ञान की परम घटना एक है। लेकिन दुनिया में इतनी अभिव्यक्तियां हैं, उन अभिव्यक्तियों के कारण बड़ी अड़चन हो गयी। लोग सोचते हैं जैसे सभी ने अलग-अलग सत्य जाने होंगे। अलग-अलग सत्य हैं नहीं जानने को। जानने की उस घड़ी में न तो सत्य अलग होते हैं, न जाननेवाला अलग होता है। जानने की उस घड़ी में तो जाननेवाला मिट ही जाता है। लेकिन जब लौटता है उस शिखर से, उस गौरीशंकर से जाननेवाला वापिस दुनिया में--तुमसे कहने, सोयों को जगाने, भटकों को बुलाने, राह देने, खबर देने कि मैंने पा लिया है, यह रही राह, यह रहा मार्ग, इशारा करने, तब स्वभावतः अपने पुराने मन, अपने पुराने संस्कार, अपनी पुरानी भाषा का वह उपयोग करता है।

तो जैसा धरमदास बोल सकते हैं वैसा कोई भी नहीं बोल सकता। बुद्ध नहीं कह सकते, 'हम सतनाम के वैपारी'। व्यापार कभी किया नहीं। कैसे कहेंगे हम सतनाम के वैपारी? यह भाषा धरमदास की ही हो सकती है।

और यह सुंदर है, शुभ है कि सारे संतों की भाषाएं अलग हैं। इतना वैविध्य है! जितना वैविध्य उतना रस। बगिया में सभी फूल एक जैसे हों तो बगिया बड़ी उदास लगेगी। कितने ही सुंदर फूल हों, बगिया सिर्फ गुलाब ही गुलाब की बगिया हो, कितनी देर टिकोगे? लेकिन बगिया में सब तरह के फूल खिले हैं। गुलाब भी है और कमल भी है, और जूही भी है और चमेली भी है। सभी एक भूमि से रस पाते हैं। सभी एक ही सौंदर्य को प्रगट करते हैं। लेकिन सबके प्रगट करने का ढंग अलग-अलग है। वह जो चमेली में सफेद है, वही गुलाब में लाल है--वही एक; इसे याद रखना। तो धरमदास की भाषा समझना सुगम हो जायेगी।

लेकिन यह जो उपलब्धि धरमदास की हुई, यह ऐसे ही नहीं हो गयी है। ये जो प्यारे वचन हैं, ये जो हृदयग्राही वचन हैं, ये ऐसे ही रास्तों पर पड़े नहीं

मिल जाते। इन्हें प्राणों की पीड़ा में जन्माना होता है। इन्हें रो-रोकर निखारना होता है।

हमने रो-रो कर रात काटी
आंसुओं पर यह रंग तब आया

आंसुओं पर भी रंग आ जाता है। आंसू भी अलग-अलग मूल्य के हो जाते हैं। आदमी का मूल्य उसकी हर बात में हो जाता है। यही शब्द कोई दूसरा उपयोग करेगा तो साधारण होंगे। धरमदास के होंठों पर बड़े असाधारण हो गये हैं। सुनते हो!

हम सतनाम के वैपारी।

कह रहे हैं, हमारा धंधा सतनाम का है। हम सतनाम ही बेचते हैं। हमारे पास और कुछ बेचने को नहीं।

मैंने सुना है, एक पंजाबी कहानी है। एक फकीर, ऐसा ही हो गया होगा सतनाम का व्यापारी! गांव-गांव चिल्लाता फिरता था: नाम ले लो। जिसको भी लेना हो, नाम ले लो। चूको मत, दो-चार दिन ही इस गांव में और ठहरूंगा। ऐसे चिल्लाते हुए उसे एक धनी ने उसे सुना। 'नाम' नाम का पंजाबी में एक गहना भी होता है। उस धनी को अपनी बेटी का विवाह करना था, और वह सोच ही रहा था गहने बनवाने की; और यह आदमी नाम बेचने आ गया। तो उसने सोचा कि इसके पास गहना होगा, बेचना चाहता है। तुम देखते हो सब शब्द कैसे अर्थ बदल लेते हैं! फकीर चिल्लाता है, किसी को नाम लेना है तो ले लो, दो-चार दिन हम टिकेंगे। घड़ी-दो-घड़ी की जिंदगी है। थोड़ी देर की जिंदगी, मन चेत गंवार! किसी को लेना हो तो नाम ले लो। इस बस्ती में ज्यादा देर न रुकेंगे।

धनी ने सोचा, चलो अच्छा हुआ, कोई नाम बेचता है--नाम नाम का गहना। उसने कहा, इसका पता ले लूं। नौकर को दौड़ाया, फकीर का पता ले लिया, सांझ को दुकान बंद करके फकीर के घर पहुंचा। फकीर तो था नहीं। उसकी बेटी थी। होगी दस-बारह साल की लड़की। उसने कहा, मैं नाम लेने आया हूं। तेरे पिता को चिल्लाते देखा था, वह कहां हैं? उसने कहा, पिता तो बाहर गये हैं। लेकिन नाम मैं ही दे दूंगी। लड़की ने देखा था पिता को नाम देते। कहा, मैं ही दे दूंगी।

'दाम क्या होंगे?'

लड़की ने कहा कि जरा ठहरें, पता चल जायेगा। वह भीतर गयी, छुरा निकालकर धार रखने लगी। इस आदमी ने खिड़की से झांककर देखा कि बड़ी देर हो गयी है, यह करती क्या है! वह छुरे पर धार रख रही है। वह तो थोड़ा हरान हुआ कि आदमी किस तरह के हैं, ये लोग किस तरह के हैं! उसने पूछा कि भई,

तू छुरे पर धार रख रही है, मैं नाम के लिये बैठा हूं। उसने कहा कि छुरे के बिना धार रखे नाम मिलेगा कैसे ? मेरे पिता जो भी आता है उसे यही कहते हैं, जब तक गरदन न उतरेगी, नाम न मिलेगा।

अब लड़की का अपना समझना ! उसने सुना था बाप को कहते कि गरदन दोगे तो नाम मिलेगा। उसे नाम का पता नहीं था कि क्या नाम है। मगर इतना उसे पता था कि जो गरदन देता है उसको मिलता है। वह धनी तो चिल्लाया, पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे कर लिये। कहा, यह फकीर नहीं है, ये तो हत्यारे हैं। इनको पकड़ा जाना चाहिए। तब तक बाप भी आ गया, लोगों ने बाप को पकड़ लिया। वह हंसा और उसने कहा कि पागल हुए हो ? उसने अपनी लड़की को कहा, बेटी, इतने सस्ते में नहीं बेचा जाता। यह ऊपर की गरदन के उतरने से कुछ नहीं होता, तू छुरे पर धार क्यों रख रही है ? यह छुरा काम नहीं आयेगा, यह गरदन भी काम नहीं आयेगी। भीतर की गरदन काटनी पड़ती है बेटी, तुझे पता नहीं। यह बड़ा महंगा सौदा है।

हमने रो-रो कर रात काटी
आंसुओं पर यह रंग तब आया

चौंकोगे तुम। धरमदास को यह कहते सुनकर कि हम सतनाम के व्यापारी हैं। लेकिन ठीक ही कह रहे हैं वह। लेकिन यह व्यापार भी अनूठा व्यापार है। इसमें दिया तो बहुत जाता है, लिया कुछ भी नहीं जाता। इसमें बांटना-ही-बांटना है। व्यापार में जितना देते हो उससे ज्यादा लेते हो; तो ही तो लाभ होता है। लाभ का अर्थ क्या है ? जितना दिया उससे ज्यादा लिया। तो जो मार्जिन में बचा, वही लाभ है। सतनाम को देनेवाला तो सिर्फ देता है, तुम उसे कुछ देना भी चाहो तो क्या दोगे ? तुम्हारे पास देने को है भी क्या ? कोई मूल्य चुकाया नहीं जा सकता। लेकिन फिर भी तुम्हें कुछ देना पड़ता है।

वह 'कुछ'--समझना। वह कुछ ऐसा है जो तुम्हारे पास नहीं है, लेकिन तुम्हें भ्रान्ति है कि तुम्हारे पास है। तुम्हें वही देना पड़ता है जो तुम्हारे पास नहीं है लेकिन तुम मानते हो कि है। अहंकार देना पड़ता है। और अहंकार तुम्हारे पास नहीं है। अज्ञान देना पड़ता है। और अज्ञान क्या है, सिर्फ अंधेरा है। अंधेरे की कोई सत्ता थोड़े ही होती है! अंधेरा तो सिर्फ प्रकाश के अभाव का नाम है। अंधेरा तो सिर्फ शब्द है। उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए तो तुम अंधेरे को धक्के मारकर निकाल नहीं सकते। और न पड़ोसी से अंधेरा मांगकर अपने घर ला सकते हो। हां, पड़ोसी से रोशनी मांगकर ला सकते हो। अंधेरा मांगकर नहीं ला सकते। और अंधेरे को तुम धक्के मारकर नहीं निकाल सकते। हां, दीये को

बुझा दो तो अंधेरा आ जाता है। अंधेरा आता है यह कहना भाषा की बात है। न तो आता है, न जाता है; सिर्फ दीया आता है और दीया जाता है। अंधेरे की कोई सत्ता नहीं है। अंधेरे का कोई होना नहीं है। अंधेरा अभाव है।

ऐसे ही अज्ञान है। तुम जागते हो, अज्ञान खो जाता है। तुम सो जाते हो, अज्ञान हो जाता है। बस तुम्हारी मौजूदगी में ज्ञान, और तुम्हारी गैर-मौजूदगी में अज्ञान है। गुरु तुमसे तुम्हारी गैर-मौजूदगी मांगता है। वह कहता है, तुम्हारी अनुपस्थिति मुझे दे दो। तुम्हारी बेहोशी मुझे दे दो। तुम्हारी नींद मुझे दे दो। तुम्हारे सपने मुझे दे दो। अब सपने कुछ हैं थोड़े ही ! मगर अगर, तुम गुरु को जो नहीं है वह दे सके तो दूसरा चमत्कार घटता है -- जो तुम्हारे पास सदा से है वही तुम्हें मिल जाता है। ये दो चमत्कार हैं आध्यात्मिक जीवन के। जो नहीं है वह छोड़ना है, और जो है वह पाना है।

यह बात बेबूझ लगती है। क्योंकि जो है उसे क्या पाना ? और जो नहीं है उसे क्या छोड़ना ? मगर ऐसा ही है। जो नहीं है उसको तुमने पकड़ रखा है और उसकी पकड़ के कारण जो है, वह छूट गया है। तुम्हारी आंखें नहीं से जुड़ गयी हैं और है से उखड़ गयी हैं। इसी को मैं नास्तिकता कहता हूं--जिसकी आंखें नहीं से जुड़ गयीं। जो आदमी कहता है ईश्वर नहीं है, यह तो एक नहीं का ही रूप है। जिसकी आंखें नहीं के साथ जुड़ गयी हैं, जो जगत में और जीवन में है को नहीं देख पाता वही नास्तिक है। नास्तिक यानी नहीं की जकड़ में आ गया।

आस्तिक कौन है ? ईश्वर है, ऐसा माननेवाला ही सिर्फ आस्तिक नहीं है। वह तो है का एक रूप हुआ। 'है' बहुत बड़ा है। जिसने नहीं से अपनी जकड़ खोल ली, नहीं से अपने बंधन तोड़ लिये, जो है के सागर में उतर गया। जिसके भीतर है की धुन उठने लगी, सर्व स्वीकार का भाव पैदा हुआ, तथाता का भाव पैदा हुआ। दुख आये तो दुख के प्रति भी हां-भाव। दुख के प्रति भी 'नहीं' नहीं। मृत्यु आये तो मृत्यु का भी स्वागत। मृत्यु आये तो उसके साथ भी ऐसे ही चले जाने की तयारी, जसे कोई अपने प्रेमी के साथ चला जाए। जैसे कोई अपने मित्र के हाथ में हाथ डालकर चला जाए। जो आए उसी को स्वीकार करने का भाव आस्तिकता। और तभी कोई ईश्वर को जान पाता है।

और जो भी है उसमें नहीं को खोज लेना जो भी है उसमें नकार को देख लेना... ऐसे लोग हैं जिनको तुम गुलाब की झाड़ी के पास ले जाओ तो कांटे ही गिनते हैं; वे नास्तिक। और ऐसा नहीं कि कांटे कांटे नहीं हैं। कांटे तो हैं ही। मगर वहां गुलाब का फूल भी खिला था। जो कांटे गिनता है वह गुलाब के फूल देखने से वंचित रह जाता है। और जो गुलाब के फूल को देख लेता है, उसको कहां

कांटे ! कांटे गड़ जाएं तो भी पता नहीं चलता । कांटे हैं लेकिन जिसकी आंखों में फूल भर गया, उसके लिये कांटे भी फूल हो जाते हैं । और जिसकी आंखों में कांटे गड़ गये उसके लिये फूल भी कांटे हो जाते हैं । तुम्हारी आंख की बात है । दृष्टि सृष्टि है ।

पुरनूर है दिन, रात भी तारीक नहीं है
कुछ हुस्न-ए-नजर हो तो हर एक चीज हसीन है
दिन तो उजाले से भरा ही है
पुरनूर है दिन, रात भी तारीक नहीं है

लेकिन रात भी अंधेरी नहीं है। जिसने दिन की रोशनी देख ली, उसको फिर रात भी अंधेरी नहीं रह जाती । और जिसने सिर्फ रातों के अंधेरेपन को गिना है उसके लिये दिन भी उजाला नहीं रह जाता ।

पुरनूर है दिन, रात भी तारीक नहीं है
कुछ हुस्न-ए-नजर हो तो हर एक चीज हसीन है

बस, सौंदर्य को देखने की दृष्टि हो । तो सारा जगत सौंदर्य से लबालब है । पत्ते-पत्ते पर, फूल-फूल पर सौंदर्य नाच रहा है । पत्थर-पत्थर में परमात्मा छिपा है। सब तरफ उसी की धुन है, उसी का गीत है, उसी का नृत्य है । मगर कुछ हुस्ने-नजर हो तो ! आंख-आंख की बात है ।

आस्तिकता और नास्तिकता सिद्धांत की बात नहीं है, आंख की बात है। ऐसा भी हो सकता है कि कोई कहने को तो नास्तिक हो लेकिन उसके पास आंख आस्तिक की हो, तो वह आस्तिक है । और ऐसा भी होता है और रोज तुम्हें ऐसे आस्तिक मिल जायेंगे जो आस्तिक नहीं हैं, जिनके पास आंख नास्तिक की है । यद्यपि ये सभी मंदिर जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, मगर आंख शिकायत की है। आंख में शिकवा है। आंख में स्वीकार नहीं है। प्रार्थना भी उनकी शिकायत से भरी होती है। वे परमात्मा को थोड़ी सलाह देने जाते हैं कि तू ऐसा कर, वैसा कर । यह ठीक नहीं हो रहा है, वह ठीक नहीं हो रहा है । वे थोड़ी अपनी बुद्धिमत्ता परमात्मा को देने मंदिर भी चले जाते हैं । इतना कष्ट भी उठाते हैं मगर स्वीकार का भाव नहीं । क्योंकि जिसके पास स्वीकार है उसकी प्रार्थना में मांग नहीं रह जायेगी । मांगरहित हुई प्रार्थना कि परमात्मा बरस पड़ता है । जब तक मांग है तब तक परमात्मा से दूरी है। क्योंकि जब तक तुमने कुछ और मांगा है, तब तक तुमने परमात्मा को मांगा ही नहीं ।

अजब आरजू है, अनोखी तलब है, तुझी से तुझे मांगना चाहता हूं ।

उसी दिन प्रार्थना फलती है जिस दिन सिवाय परमात्मा के तुम और कुछ नहीं

मांगना चाहते हो। परमात्मा कहे कि दुनिया का साम्राज्य ले लो, तुम कहो कि क्या करूंगा ? तुम काफी हो । परमात्मा कहे कि मोक्ष ले लो, तुम कहोगे क्या करूंगा ? तुम्हारे चरण की धूल हो लूं, बस इतना बहुत है, मेरा मोक्ष हो गया। और कैसी मुक्ति ? तुम्हारे साथ बंध जाना ही मोक्ष है। तुम्हारे बिना मोक्ष में भी रहना बंधन में रहना होगा ।

न गरज किसीसे, न वास्ता
मुझे काम अपने ही काम से
तेरे जिक्र से, तेरे फिक्र से
तेरी याद से, तेरे नाम से

प्रार्थना में मांग नहीं है कुछ । जिक्र खब है, फिक्र खूब है, याद भी खूब है। आंसुओं की झड़ी भी लगती है । गीत भी उमगते हैं ।

न गरज किसीसे न वास्ता
मुझे काम अपने ही काम से
तेरे जिक्र से, तेरे फिक्र से
तेरी याद से, तेरे नाम से

और फिर तो हालतें ऐसी हो जाती हैं, याद ऐसी घनी हो जाती है, बेखुदी ऐसी हो जाती है . . .

ये कैसी बेखुदी है ! लिख गया हूं मैं
अपने नाम के बदले तेरा नाम

फिर तो यह भूल ही जाता है कि कौन कौन है । कौन भक्त है और कौन भगवान है । जब ऐसी घड़ी घट जाती है तो सतनाम का जन्म होता है—इस बेखुदी में ।

फिर आज के सूत्र समझें :

हम सतनाम के बैपारी

सतनाम का अर्थ होता है, जिसका कोई नाम नहीं । या जिसके सब नाम हैं और फिर भी वह अनाम है । लाओत्सु ने कहा है, मुझे उसका नाम पता नहीं इसलिए ताओ कहकर पुकारूंगा। यह कामचलाऊ है । कोई भगवान कहता है, कोई ईश्वर कहता है, कोई ताओ कहता है, कोई धर्म कहता है, कोई ऋत कहता है, कोई अल्लाह कहता है, कोई गॉड कहता है, मगर ये सब नाम उसके हैं जिसका कोई नाम नहीं।

सूफियों में भगवान के सौ नाम हैं। निन्यानबे गिनाये गये हैं । एक बिना गिना छोड़ दिया गया है । सूफी फकीरों से कोई पूछे, क्यों ? तुम कहते हो सौ नाम

हैं लेकिन लिस्ट में तो केवल निन्यानबे ? तो वे कहते हैं, निन्यानबे इशारे हैं उसकी तरफ, सौवें की तरफ। उसको कहा नहीं जा सकता। असली को कहा नहीं जा सकता। शब्दातीत है, गुणातीत है। आकार के पार है, निराकार है। शब्द बड़े छोटे हैं। समायें भी तो इसमें समा नहीं सकते। शब्द तो सीमित है। असीम को कैसे कहें ? तो निन्यानबे नाम हैं उसकी तरफ इशारा करने को, जिसका कोई नाम नहीं है। जिसका कोई नाम नहीं उसके लिये कुछ तो नाम देकर काम चलाना पड़ेगा। बात करनी है न ! चर्चा करनी है। जागे हुए को, सोये हुओं से चर्चा करनी है।

ख्याल रखना, दो जागे हुए मिलें तो कोई चर्चा नहीं होती; हो ही नहीं सकती। चर्चा करने को कुछ नहीं बचता। दोनों एक-दूसरे की आंखों में झांक लेंगे, दर्पण में दर्पण का प्रतिबिंब बनेगा, बात खतम हो जायेगी। यहां भी शून्य होगा, वहां भी शून्य होगा। यहां भी सौवां बैठा है, अब निन्यानबे की बात उठाने की जरूरत न आयेगी। जो उठाए वह पागल है।

कहते हैं कबीर और फरीद का मिलना हुआ था। दोनों दो दिन शांत बैठे रहे एक दूसरे को देखते। कभी-कभी मुस्कुराते और कभी-कभी रोते भी। दोनों के भक्त इकट्ठे थे और परेशान थे। सुनने को आतुर थे कि कुछ तो ये दो बोलें। एक-दूसरें से कुछ तो कहें। मगर एक शब्द न बोला गया। जब विदा हो गये तो कबीर के शिष्यों ने भी पूछा और फरीद के शिष्यों ने भी पूछा, कि हो क्या गया आप लोगों को ? ऐसे तो आप इतना बोलते हो, फिर एकदम चुप क्यों हो गये, गूंगे क्यों हो गये थे ? फरीद ने कहा, जो बोलता वह नासमझ सिद्ध होता। दूसरी तरफ भी उतना ही जाननेवाला था, जितना जाननेवाला इस तरफ। हमने एक-दूसरे की आंखों में झांका और पहचान लिया। हम एक-दूसरे का रंग पहचान गये, फिर कहने को कुछ बचा नहीं। कहने को क्या था ? जो पहले बोलता वही नासमझ सिद्ध होता।

जब मैंने यह कहानी पढ़ी तो मुझे एक चीनी घटना याद आयी। सबसे पहला पश्चिमी आदमी चीन पहुंचा। जब वह चीन के बंदरगाह पर उतरा तो उसने एक बड़ा अनूठा दृश्य देखा। एक भीड़ लगी थी और दो आदमी लड़ने की तयारी कर रहे थे। तयारी, लड़ नहीं रहे। उछलते, कूदते, एक दूसरे की छाती के बिलकुल पास भी आ जाते, लेकिन छूते भी नहीं। बड़ा चिल्लाते, बड़ा चीखते। एक तो चीनी भाषा, और फिर चीखना, और चिल्लाना ! बड़ी कर्कश आवाज मच रही। बड़ी चीं-चूं—चीनी भाषा ! वह आदमी भी भीड़ में खड़ा होकर देखने लगा, वह भी उत्सुक है, उसकी भी छाती धड़क रही है, अब कुछ होता ही हैं। मगर होता कुछ नहीं है। और दोनों आग-बबूला हो रहे हैं और आंखें सुर्ख हो रही हैं। मगर यह

मामला क्या है ! इतनी देर में तो दुनिया में कोई हत्या हो जाए। हत्या की पूरी तयारी है, मगर खरोंच भी नहीं पहुंची।

उसने अपने पड़ोसी खड़े आदमी से पूछा कि यह मामला क्या है ? किस तरह की बात हो रही है ? यह क्या तमाशा है ? उस आदमी ने कहा, ये दोनों ताओ-वादी हैं। ये दोनों एक-दूसरे को भड़का रहे हैं। जो भड़क जायेगा, जो पहला हमला कर देगा वह हार गया। भीड़ विदा हो जायेगी। जो पहले हमला कर देगा वह हार गया। ये दोनों ताओ-वादी फकीर हैं। ये एक-दूसरे को उकसा रहे है कि देखें तुम कितने गहरे हो। यह गहराई की प्रतिस्पर्धा चल रही है। ये एक-दूसरे को भड़का रहे हैं। जो पहले भड़क जायेगा और हमला कर देगा, वहीं बात खतम हो जायेगी। हार गया वह। जो पहले क्रोध में आ जायेगा और हमला कर देगा, वह हार गया।

ख्याल रखना, कमजोर पहले क्रोध में आ जाता है। कमजोर ही पहले हमला करता है। कमजोर को ही पहले हमला करना पडता है। कमजोर वही जो सबसे पहले नियंत्रण खो देता है। फरीद ने ठीक ही कहा, हम दोनों में से पहला जो बोलता वही हार जाता। इसलिए बोलना हो ही नहीं सका, सन्नाटा रहा। एक-दूसरे को देख-देखकर हम आनंदित भी हुए, पुलकित भी हुए। एक दूसरे को देख-देखकर आनंद के अश्रु भी बहे।

यही कबीर ने भी कहा अपने शिष्यों को कि बोलते कैसे ? बोलने को था क्या ? दोनों हम गूंगे हैं। दोनों को स्वाद मिल गया है। दोनों हम जानते है कि स्वाद को कहने का कोई उपाय नहीं। फिर कहने की कोई जरूरत नहीं। दूसरे को भी मिल गया है। हमने भी चखा, उसने भी चखा, अब कहने को क्या है ? अब स्वाद की चर्चा क्या उठानी ! दो ज्ञानी मिले तो चर्चा न होगी।

दो अज्ञानी मिलें तो खूब चर्चा होती है। हालांकि कुछ भी नहीं होता। चर्चा बहुत होती है, सिर मारामारी काफी होती है। मगर परिणाम कुछ नहीं होता, संवाद होता ही नहीं। दो ज्ञानी मिलते है तो संवाद होता है, शब्द-शून्य। दो अज्ञानी मिलते हैं तो शब्दों की काफी फेंक-फाक होती हैं। लेकिन संवादशून्य। तुमने देखा नहीं कि घंटों कि बात करके भी कुछ हाथ नहीं लगता ! इधर से कचरा फेंका गया, उधर से कचरा फेका गया मगर हाथ कुछ नहीं लगता। क्या तुम्हें यह अनुभव नहीं हुआ है, कि बात तो करते हो तुम लोगों से लेकिन न वह तुम्हें समझता है, न तुम उसे समझते हो।

दूसरों की तो बात छोड़ दो, जो तुम्हारे निकट हैं, तुम्हारी पत्नी तुम्हारी बात कहां समझती ? तुम कुछ कहते हो, वह कुछ समझती। वह कुछ कहती है,

तुम कुछ समझते हो। धीरे-धीरे पति-पत्नी तय ही कर लेते हैं कि बेहतर है न कुछ कहना। क्योंकि कही कि झंझट शुरू होती है। कुछ का कुछ समझ लिया जाता है। फिर उसको समझाओ, उसमें से कुछ का कुछ समझ लिया जाता है। फिर उसका कोई अंत नहीं। इसलिए पति-पत्नी को तुम अक्सर चुपचाप बैठे देखोगे। इसलिए नहीं कि वे ज्ञानी हो गये हैं वह इसलिए नहीं बोल रहे हैं कि कौन बोले, कौन फंसे! कुछ बोले तो झंझट की शुरुआत हो जायेगी। फिर पत्नी भी कुछ बोलेगी। और समझ तो संभव ही नहीं।

दो अज्ञानियों के बीच संवाद होता ही नहीं। शब्द ही शब्द होते हैं। थोथे व्यर्थ शब्द, निर्जीव शब्द, निष्प्राण शब्द। दो ज्ञानियों के बीच शब्द नहीं होते, संवाद होता है शून्य में, शांति में, मौन में। फिर सार्थक बात कहां हो सकती है? दो ज्ञानियों के बीच हो नहीं सकती, दो अज्ञानियों के बीच कभी हुई नहीं, हो नहीं सकती। एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच सार्थक बात होती है। अगर अज्ञानी सुनने को राजी हो और ज्ञानी कहने को राजी हो तो अज्ञानी और ज्ञानी के बीच सार्थक वार्ता हो सकती है। यही शिष्य और गुरु का संबंध है। इस वार्ता के लिये शब्द खोजने पड़ते हैं। ईश्वर को नाम देना पड़ता है। उस परम तत्व को, जो अनाम है, हम किसी शब्द को देकर वार्ता के योग्य बनाते हैं।

हम सतनाम के वैपारी।

धरमदास कहते हैं, अब एक ही काम हमारा है। जो हमने जाना है उसी को हम दूसरों को जना दें। अब हम एक ही व्यवसाय करते हैं, अब हम सतनाम बेचते हैं। खरीद लो जिसको खरीदना हो। और मजा यह है कि खरीदनेवाले का कुछ खर्च नहीं होता। सिर्फ बीमारियां जाती हैं और स्वास्थ्य आता है। और देनेवाले का भी कुछ जाता नहीं। देनेवाला जितना देता है उससे हजार गुना पाता है। लेनेवाले से नहीं पाता, परमात्मा से पाता है। क्योंकि जितना ही यहां से सतनाम बांटा जायेगा, उतना ही सतनाम भरता जायेगा। जैसे तुम कुएं से पानी खींच लेते हो और झरनों से कुए में नया पानी आ जाता है। ऐसा ही जो समाधिस्थ हो गया, उसके झरने परमात्मा से जुड़ गये। वह जितना अपने को लुटाता है उतना झरनों से नया जल आता चला जाता है। कभी चुकता नहीं।

कोई कोई लादे कांसा पीतल, कोई कोई लौंग सुपारी

ये और व्यापारियों की बात कर रहे हैं।

कोई कोई लादे कासा पीतल, कोई कोई कोई लौंग सुपारी।

हम तो लाद्यो नाम धनी को पूरन खेप हमारी

हमने तो आखरी चीज बेचने का काम शुरू किया है। अब हम छोटी-छोटी

चीजें नहीं बेचते। ये किनकी बात कर रहे हैं वे——कोई लादै कासा पीतल? परमात्मा के नाम से कुछ लोग परमात्मा को नहीं बेच रहे है, कुछ और बेच रहें हैं। कोई परमात्मा के नाम पर स्वास्थ्य बेच रहा है। कोई परमात्मा के नाम पर यश बेच रहा है। कोई परमात्मा के नाम पर समृद्धि बेच रहा है, सफलता बेच रहा है वह सब कांसा पीतल कोई परमात्मा के नाम पर सिर्फ शास्त्र बेच रहा है, सिद्धांत बेच रहा है, सत्य बेच रहा है, वह सब लौंग-सुपारी।

हम तो लाद्यो नाम धनी को।

हमने तो उस मालिक को——'या मालिक।' हमने तो उस मालिक को ही भर बेचने की तयारी की है। उसी धनी को पाकर तो धरमदास धनी हो गये। उस मालिक से जो जुड़ गया वह मालिक हो गया। उस मालिक से जो अलग है वह गुलाम है। वह गुलाम ही रहेगा। उसके पास कितना ही धन हो, कितना ही यश, कितना ही पद, वह गुलाम है और गुलाम ही रहेगा। सिकंदर गुलाम ही मरता है। क्योंकि उस मालिक से जुड़े बिना कोई मालकियत नहीं है दुनिया में। इसलिए इस देश में हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी यानी धनी, मालिक। या मालिक! वह जुड़ गया मालिक से। कम से कम आशा यही है कि जुड़ने की चेष्टा करेगा। इशारा यही है। अब अपनी मालकियत की चेष्टा नहीं करेगा, अब परमात्मा मेरा मालिक हो जाए इसकी चेष्टा करेगा। जिस दिन परमात्मा तुम्हारा मालिक है, उस दिन तुम भी मालिक हो जाते हो क्योंकि तब तुम उसीकी किरण हो। तब तुम उसी की लहर हो। जब तक तुम अलग-अलग अपनी मालकियत तय करने की कोशिश कर रहे हो तब तक तुम गुलाम ही रहोगे। तब तक तुम भिखमंगे रहोगे, तब तक तुम क्षुद्र रहोगे। परमात्मा से अलग रहकर जो अपनी चेष्टा कर रहा है वही संसारी है। और परमात्मा के साथ जुड़कर जो चलने लगा, बहने लगा उसी की रौ में, उसी के धारे में, वही संन्यासी है।

संन्यासी और संसारी में इतना ही फर्क है। क्या फर्क है? संसारी अपनी निजी आकांक्षाएं लिए है। ऐसा करके दिखा दूं, वैसा करके दिखा दूं, यह हो जाए, वह हो जाए। संन्यासी वह है, जिसने अपनी निजी आकांक्षा छोड़ दी। जो कहता है, वही है; मैं अलग हूं ही नहीं। इसलिए जो होगा, ठीक होगा। जो नहीं होगा वह भी ठीक होगा। उसकी मर्जी, मेरी मर्जी। उसकी योजना मेरी योजना। उससे अन्यथा मेरा कोई स्वर नहीं। मैं उसका गीत हूं, मैं उसके हाथ की बांसुरी हूं। वह जो गायेगा वही ठीक। बांसुरी का अपना कोई स्वर नहीं होता। बांसुरी का अपना कोई आग्रह नहीं होता कि यही गीत गाया जाए। जिस बांसुरी का अपना आग्रह है कि यही गीत गाया जाना चाहिए वह संसारी। और जिस बांसुरी

ने यह सत्य समझा मैं तो पोला बांस मात्र हूं, स्वर तो उसके हैं, होंठ उसके हैं, धुन उसकी है, गीत उसके हैं। मैं सिर्फ मार्ग बनूं। मैं अड़चन न डालूं, मैं बाधा न डालूं। ऐसी समर्पित चेतना का नाम संन्यास है। लेकिन मजे की बात यह है, जो लड़ता है वह हारता है और जो हार गया, वह जीत जाता है।

कोई कोई लादे कांसा पीतल, कोई कोई लौंग सुपारी
हम तो लादो नाम धनी को पूरन खेप हमारी

वह कहते हैं कि हम तो पूर्ण को ही बेचने चले। वह पूर्ण जिसको ईशावास्य कहता है, पूर्ण भी निकाल लो उससे, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। उसमें पूर्ण भी जोड़ दो तो भी पूर्ण पूर्ण ही रह जाता है, हटा लो तो भी पूर्ण पूर्ण ही रहता है। उस शाश्वत, अविनश्वर को ही हम बेचने चले हैं। इस जगत में तो सभी अपूर्ण हैं। इस जगत में तो सभी की सीमा है। लेकिन कभी-कभी कोई झरोखा खुल जाता है। और इस जगत में किरण उतरती है उस जगत की है।

तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत
हम जहां में तेरी तस्वीर लिये फिरते हैं

फिर जिसको दिखाई पड़ जाती है उसकी सूरत, एक झलक भी मिल जाती है उसकी सूरतकी, फिर वह सारे जगत में उसकी तस्वीर लिये फिरता है। फिर वह सबके द्वार-दरवाजे पर चोट करता है कि तुम्हारा भी झरोखा खुल सकता है। खोल लो। यह तस्वीर है। यह मुझे दिखा है, यह तुम्हें भी दिख सकता है। यह मैंने जाना और जान कर मैं पूरा हो गया हूं। जानकर सब समाप्त हो गया। जानते ही परितृप्ती हो गयी। तुम भी परितृप्त हो जाओगे।

हम तो लाद्यो नाम धनी को, पूरन खेप हमारी
पूंजी न टूटे, नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी

धरमदास कहते हैं, बड़ा मजेका धंदा हम कर रहे है––पूंजी न टूटे। कभी इसमें दिवाला निकलता ही नहीं। क्योंकि लुटाने से धन बढ़ता है। बाकी तो सब धन ऐसे हैं कि बचाओ-बचाओ तो भी कहां बचते हैं! बचाते-बचाते भी लुट ही जाते हैं। आखिर में हर आदमी खाली हाथ जाता है। जिंदगी भर सम्हाला, जिंदगी गंवाई सम्हालने को और फिर सब यहीं पड़ा रह जाता है।

सब ठाठ पड़ा रह जायेगा, जब लाद चलेगा बंजारा

पूंजी न टूटे नफा चौगुना—धरमदास कहते हैं, हमने बड़े मजे का धंधा किया है। ऐसा धंधा, जिसमें पूंजी कभी टूटती ही नहीं। मूल तो टूटता ही नहीं, बढ़ता ही जाता है। और नफा चौगुना। और ऐसा-वैसा नफा नहीं कि दो-चार परसेंट! चौगुना! चारों दिशाओं से आता है। तुम एक हाथ से फेंको, उसके चारों हाथ

से आता है। इसलिए परमात्मा के हम चार हाथ बनाते हैं। चतुर्भुज! इसका मतलब; चारों दिशाओं से देता है, जब वह देता है। बस हम लेने को राजी हों। तो ऐसा नहीं कि एकाध हाथ से देता है, चारों हाथ से देता है। चार हाथ यानी चार दिशाएं। सब ओर से आता है। फिर आने में कंजूसी नहीं करता। तुम्हीं जाने में कंजूसी कर रहे हो इसलिए अड़चन हो रही है। तुम हटो, तुम जगह दो, तुम स्थान बना दो।

उन स्थान बनाने की प्रक्रियाओं का नाम ध्यान, भक्ति, भजन, कीर्तन! वह प्रक्रिया है तुम्हारे भीतर स्थान बनाने की। ताकि अगर वह चारों दिशाओं से आना चाहे तो तुम्हारे भीतर अवकाश भी तो चाहिए न! आकाश तो चाहिए उसको समाने को! तुम ही कंजूस हो अपने को छोड़ने में। एक बार तुम अपने को छोड़ दो तो उसकी तरफ से कंजूसी नहीं है।

पूंजी न टूटे नफा चौगुना, बनिजं किया हम भारी

धरमदास, कहते हैं पहले हम व्यर्थ के धंधे में लगे थे। पूंजी भी टूट जाती थी कभी, और लाभ भी होता था तो बस ऐसे ही दो-चार परसेंट। और चोरी-चपाटी बहुत। झूठ बेईमानी बहुत। और फिर भी हर चीज क्षुद्र की क्षुद्र ही रहती थी। कितना ही धन पा लो, कहां कोई धनी हो पाता है! दौड़ तो जारी रहती है–– और मिल जाए, और मिल जाए, और मिल जाए। इस 'और' का अंत कहां है? ऐसी कोई घड़ी नहीं आती जहां यह और समाप्त हो जाए।

पूंजी न टूटे, नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी

धरमदास कहते हैं, अब हम असली वणिक हुए। अब हमने असली धंदा किया। यह कबीर के साथ जो साझेदारी हो गयी, अब हमने असली धंधा किया। अब तक हम यूं ही व्यर्थ की बातों में पड़े रहे। अब हमने ऐसा धंधा किया जिसमें हार तो होती ही नहीं, जीत ही जीत होती है। एक हार के लिये तम राजी हो जाओ, फिर जीत ही जीत है। अहंकार की हार के लिए तुम राजी हो जाओ, फिर जीत ही जीत है। और अहंकार की जीत में उत्सुक रहो, हार ही हार है। यह गणित है।

दिल नजर बन जायेगा गम खुशी हो जायेगी
आपके आते ही दुनिया दूसरी हो जायेगी

पर तुम जाओ तो आपका आना हो।

लाखों में इंतकाब के काबिल बना दिया
जिस दिल को तुमने देख लिया, दिल बना दिया

एक उसकी नजर पड़ जाए, तो तुम्हारे भीतर सोना ही सोना हो जाता है।

सब मिट्टी सोना हो जाती है। इसलिए हमने परमात्मा को पारस पत्थर कहा ह। और कहीं मत खोजना, पारस पत्थर और कहीं नहीं होता। बच्चों की कहानियों में मत उलझे रहना कि कहीं पारस पत्थर होता है जो मिल जाए अगर सोने को बनाने में काम आ जायेगा। लोहे को छुओगे सोना हो जाए। पारस पत्थर तो परमात्मा का नाम है। ये तो कहानियां बच्चों को समझाने के लिए लिखी गयी हैं। जिसको परमात्मा का पत्थर मिल गया उसके भीतर सब मिट्टी सोना हो जाती है। तब स्वभावत: फिर आदमी और कुछ नहीं चाहता। चाहे ही क्यों? चाहा था, उससे हजार गुना मिल गया। जितना सोचा नहीं था उतना मिल गया। जितने सपने नहीं देखे थे वे भी पूरे हो गये। जो सपने देखे थे वे तो पूरे हुए ही, जो नहीं देखे थे वे भी पूरे हो गये।

मुझे तमाम आलम की आरजू क्यों हो
बहुत है मेरे लिये एक आरजू तेरी

जब यह दिख जाता है तो बस फिर एक परमात्मा पर्याप्त है। लेकिन बस एक बात का ख्याल रखना, वहीं से यात्रा अटकती या शुरू होती है। मैं को तो गंवाना पड़ेगा, तभी यह बड़ा व्यापार कर पाओगे, जहां--

पूंजी न टूटे नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी

अनीश आशा नहीं आबाद करना घर मोहब्बत का
यह काम उनका है जो जिंदगी बरबाद करते हैं

एक तरफ तो तुम्हें बरबाद होना ही पड़ेगा। इस तरफ से तो तुम्हें मिटना ही होगा। जितनी देर करोगे उतनी ही तृप्ति में देरी हो जायेगी, जल्दी करो! थोड़े दिन की जिंदगी, मन चेत गंवार।

और उसके आये बिना कोई मोक्ष नहीं। उसके आये बिना कोई वसंत नहीं। और वह आता तुम्हारे जाने पर। यह एक बात ही सारे सतपुरुषों ने निरंतर दोहरायी है।

फसले गुल आने तो दो, फसले खिजां जाने तो दो
खुद-ब-खुद खुल जाएंगी कड़िया मेरी जंजीर की।

एक ही वसंत है, और वह है, तुम्हारा हट जाना और उसका आगमन। और ध्यान रखना, ये दोनों बातें एक साथ घट जाती हैं। तुम्हारा हटना और उसका आगमन--इन दोनों के बीच समय का अंतराल नहीं होता। इधर दीया जला, उधर अंधेरा हटा। इधर तुम गये, उधर वह आया। युगपत!

पूंजी न टूटे नफा चौगुना बनिज किये हम भारी

हाट जगाती रोक न सकी है निर्भय गैल हमारो

और अब कोई कर उगाहनेवाला भी नहीं आता। अब कोई चुंगीनाके पर भी नहीं रोकता। और इसी जमीन के चुंगीनाके नहीं, उस परलोक में भी कोई और चुंगीनाके हों तो वहां भी अब कोई रोकनेवाला नहीं। अब तुम मालिक हुए। अब तुम मालिक के हुए।

हाट जगाती रोक न सकी है निर्भय गैल हमारी

अब हमारे रास्ते सब अभय हो गये, अब कोई डर नहीं है। बाहर के धन को पकड़ो, डर बढ़ता जाता है।

अब यह थोड़ा समझना। यह आदमी की विड़ंबना थोड़ी समझना। आदमी धन इसलिए कमाता है कि डर कम हो जाए। जिंदगी में भय कम हो जाए। पास होगा कुछ तो भय नहीं रहेगा। बीमारी होगी तो उपचार हो सकेगा। बुढ़ापा आयेगा, पास पैसा होगा तो कोई फिकर करेगा, सेवा करेगा। पास पैसा होगा तो समाज भी चिंता लेता है। रिश्तेदार भी आसपास इकट्ठे होते हैं। गरीब का कोई रिश्तेदार होता है? सब रिश्तेदार अमीर के होते हैं। तुम अमीर हो जाओ, तुम अचानक पाओगे लोग आने शुरू हो गये जिनकी शक्लें तुमने कभी नहीं, देखी थी। कोई कहता है हम तुम्हारे चचेरे भाई हैं, कोई कहता है हम तुम्हारे ममरे भाई हैं। रिश्तेदार एकदम से पनप जाते हैं। जैसे वर्षा में एकदम घास हरी हो जाती है। तुम गरीब हो जाओ, सब खो जाएं। जो अपने थे वे भी रास्ता काट जाते हैं। रास्ते पर मिल जाते हैं तो दूसरी गली से निकल जाते हैं। जैरामजी कहने में संकोच करते हैं।

तो धन होगा तो मित्र होंगे, प्रियजन होंगे, धन होगा तो जिनको तुम अपने कहते हो वे भी अपने होंगे, नहीं तो वे भी अपने नहीं हो जाते। गरीब बाप का बेटा भी अपना नहीं होता। बाप के पास धन हो तो बेटा भी अपना होता है। धन की वजह से अपना होता है, इस जगत के सारे नाते-रिश्ते बड़े अजीब हैं। धन हो तो पत्नी अपनी होती है। धन न हो तो पत्नी भी परायी हो जाती है।

तो आदमी धन इकट्ठा करता है क्योंकि धन में सुरक्षा मालूम होती है। बैंक में बैलेन्स होगा, इन्शुरन्स होगा, सुरक्षा होगी। लेकिन परिणाम उलटा घटता है। जितना धन होता है उतना भय बढ़ता है। जितना धन होता है उतना यह डर लगता है कहीं छिन न जाए। जिनके पास है उन्हीं को तो छिनने का भी डर होता है। इसलिए तो धनी रात में सो नहीं पाता। सोने के लिये धन बाधा बन जाता है। सोएं कैसे? कहीं चोर न घुस जाए। सोएं कैसे, दिनभर की चिंताएं पीछा नहीं छोड़तीं। सोएं कैसे, मन में तो हजार-हजार विचार दौड़ते रहते हैं। यह धंधा

किया, वह धंधा किया। यह उलझाव, वह उलझाव। सट्टा और न मालूम क्या-क्या! सोएं कसे? अमीर आदमी की नींद खो जाती है।

जितना कोई देश अमीर होता जाता है उतनी नींद कम हो जाती है। अमरीका म सर्वाधिक कम नींद है। किसी देश की अमीरी नापनी हो तो उस देश की नींद की मात्रा समझ लेनी चाहिए। उसकी नींद की मात्रा से तय हो जाता है कि देश कितना अमीर है। किसी आदमी की अमीरी नापनी हो तो यही पता लगा लेना चाहिए कि रात सोता है कि नहीं। अगर सोता है तो अभी गरीब है। अभी कुछ खास नहीं हुआ। अभी सोने लायक चल रही हैं हालत। अभी इतना नहीं है कि घबड़ा जाए। तुमने सुना न, कहानियां कहती हैं कि अमीर आदमी मर जाता है तो फिर सांप होकर अपने गड़े हुए धन पर बैठ जाता है। मरकर बैठता हो ना बैठता हो, जिंदगी में बैठा रहता है। सांप बनकर रात भर, दिन भर। सबसे भयभीत हो जाता है। अमीर आदमी अपने बेटे को अपने पास नहीं बुलाता ज्यादा। अपनी पत्नी से भी फासला रखता है। अपनी खाते-बही सबसे छिपाता ह। कितना उसके पास है किसी को कभी पता नहीं चलने देता। यह तो भय कम न हुआ, और बढ़ गया।

धरमदास कहते हैं, हाट जगाती रोक न सकिहैं निर्भय गैल हमारी।

वह बाहर का उपद्रव हमने जिस दिन से छोड़ा उस दिन से अभय हो गये। अभी एक ऐसा धन है जिसे कोई चुरा नहीं सकता। यह एक ऐसा धन है जिसे मृत्यु भी नहीं छीन सकती, और तो कोई क्या छीनेगा! यह अमृत है। अब सारा भय गया।

मोती बूंद घटही में उपजे

और यह ऐसा धन है, एक ऐसा मोती है जो तुम्हारे घट में ही उपजता है यह बाहर पैदा नहीं होता। जो बाहर से आया है वह बाहर से छीना जा सकता है, ध्यान रखना। जो भीतर उमगा है वही बाहर से नहीं छीना जा सकता। जो भीतर का है वही तुम्हारा है। जो बाहर का है वह तो तुमने किसी से छीन लिया है, तुमसे भी कोई छीन लेगा। वहां तो छीना-झपटी चल रही है। थोड़ी-बहुत देर के लिये तुम्हारे हाथ में है, बस थोड़ी-बहुत देर के लिये। तुम सोचो न! तुमने भी किसी से छीना है तुमसे भी छिन जायेगा। यहां दो-चार दिन की सारी शान-शौकत है।

मोती बूंद घटही में उपजे

जैसे मोती भी तो सीप के घट में पैदा होता है, ऐसे ही परम धन भी तुम्हारे हृदय के अंतरम में प्रगट होता है।

मोती बूंद घटही में उपजे, सुक्रत भरत कोठारी

और फिर तुम भरते जाओ इस मोती के धन को, जितना भरना हो। इस पुण्य के तुम जितने ढेर लगाना चाहो, लगाओ। इस परमार्थ के, इस परम धन के तुम जितनी ज्यादा उपलब्धि करनी हो, करो। कोई छीननेवाला नहीं। सच तो यह है, तुम उसे बांटोगे, बचाओगे नहीं। क्योंकि यह बांटने से बढ़ता है, बचाने से सड़ता है। ज्ञानी को ज्ञान बांटना ही होता है। विचार तो उसे भी आता है क्योंकि पुरानी आदतें! सदा चीजों को रोककर रखा है। जब पहली दफा भी घटता है तो विचार आता है, क्या करूं? किसी से कहूं कि न कहूं?

इश्कका राज जमाने से कहूं या न कहूं?
इस अंधेरे में कोई शमा जलाऊं कि नहीं?

सोचना कि क्या करना, मैं क्यों झंझट में पड़ूं? हम झंझट के बाहर हो गये, अब क्या झंझट लेनी! अब क्यों सिर मारूं? सभी ज्ञानियों को यह प्रश्न उठता ही है। क्योंकि बामुश्किल तो झंझट के बाहर हुए। किसी तरह तो बाजार से छुटकारा मिला। लोगों से मुक्ति हुई अब फिर चलो बाजार की तरफ?

महावीर बारा वर्ष जंगल में रहे, तब परम ज्ञान घटा। फिर चले बजार की तरफ। फिर आ गये बस्ती में। बुद्ध छः बरस तक वृक्षों के नीचे बैठे-बैठे, बैठे-बैठे ज्ञान को पाये। फिर चले, उठे। फिर बयालीस वर्ष तक बांटते रहे गांव-गांव। बुद्ध को विचार आया था, सात दिन तक चुप बैठे रह गये थे। सोचा था, क्या सार है? अब पा लिया, अब कहां जाना? लेकिन कोई भी रुक नहीं सकता पाकर। क्योंकि जैसे ही तुम पाते हो, जल्दी ही यह बात समझ में आ जाती है कि यह धन ऐसा, है कि इसे, बांटोगे तो बढ़ेगा, रोकोगे तो सड़ेगा। जिस कुएं से कोई पानी न भरे, वह कुआं उदास हो जाता है। जिस कुएं से पानी न भरा जाए, उस कुएं का पानी आज नहीं कल जहर हो जायेगा, पीने योग्य न रह जायेगा। और जिस कुएं से कोई पानी न भरे उसमे झरने पानी नहीं लाते। झरने क्यों लाएंगे? पुराना ही नहीं चुका है तो नये को लाने की कोई जरूरत नहीं है। कुआं जितना उलीचा जाता है उतना जवान रहता है। जितनी ज्यादा पनघट पर पनिहारिन इकट्ठी होती हैं, जितना कुआं भरा जाता है, खींचा जाता है, उतना कुआं गीत गाता है। उतना कुआं मग्न होता है, क्योंकि चला आता है, नया स्रोत खुलते हैं, नया जल भरता है।

नये के बहाव में जिंदगी है। नया रोज-रोज उतरता रहे, नये का प्रवाह बना रहे, यही तो जीवंतता है। जवानी की खूबी क्या है? क्योंकि जवानी में नये का प्रवाह होता है। बुढ़ापे का दुख क्या है? क्योंकि नये का आना बंद हो गया, जलस्रोत सूख गये। अब कोई पानी भरने नहीं आता। ज्ञानी मरते दम तक जवान रह सकता है, अगर बांटता है। और यह बात जल्दी ही समझ में आ जाती है। ज्ञानी की

समझ में न आयेगी तो किसकी समझ में आयेगी ? हालांकि शुरू में उसके सामने सवाल उठता है कि अब तो ठीक है, अपना पा लिया, अब क्यों पंचायत में पड़ना ! अब आंख बंद करो और मजा करो। चैन की बांसुरी बजाओ। लेकिन ज्यादा देर कोई आंख बंद करके नहीं बैठ सकता। जब तक सत्य को नहीं पाया है तब तक आंख बंद रखनी पड़ती है। जब सत्य को पा लिया तो आंख खोलकर खोजना पड़ता है उन लोगों को, जो सत्य के लिये प्यासे हैं। जो झोली लिये भटक रहे हैं, जो रोशनी के लिये दीवाने हैं।

मोती बूंद घटई में उपजे सुकृत भरत कोठारी
नाम पदारथ लाद चला है धरमदास वैपारी

और धरमदास कहते हैं, लाद लिया हैं नाम पदारथ। निकल पड़े हैं बेचने। यह काफिला बचने निकला है। गांव-गाव जायेंगे। हृहय-हृदय को ठकटकाएंगे। द्वार-द्वार पर आवाज लगायेंगे : खरीद ले कोई नाम !

थोरे दिन की जिदगी मन चेत गंवार।

पुकारेंगे लोगों को, चिल्लाएंगे। जीसस ने कहा है चढ़ जाओ घर की मुंड़ेरों पर और चिल्लाओ, कि हमें मिल गया। जिसे चाहिये वह आये और ले ले।

थोरे दिन की जिंदगी मन चेत गंवार

कहो लोगों से जाकर। वही धरमदास कहने लगे लोगों से जाकर, कि बहुत थोड़े दिन की जिंदगी है। चेत जाओ, जाग जाओ। न जागे तो भी यह जिंदगी चली जायेगी। जाग गये तो ऐसी जिंदगी मिल जायेगी, जो कभी नहीं जाती। अगर बिना जागे चले गये तो अवसर खोया। फिर बहुत पछताओगे। यह जिंदगी, इस जिंदगी के सारे सपने क्षणभंगुर हैं।

मेरे ख्वाबों के झरोखों को सजानेवाली
तेरे ख्वाबों में कहीं मेरा गुजर है कि नहीं
पूछकर अपनी निगाहों से बता दे मुझको
मेरी रातों के मुकद्दर में सहर है कि नहीं
चार दिन की यह रफाकत जो रफाकत भी नहीं
उम्र भर के लिए आजार हुई जाती है
जिंदगी यूं तो हमेशा से परेशान-सी थी
अब तो हर सांस गिराबार हुई जाती है
मेरी उजली हुई नींदों की शबिस्तानों में
तू किसी ख्वाब के पैकर की तरह आयी है
कभी अपनी-सी कभी गैर नजर आती है

कभी इखलास की मूरत, कभी हरजाई है
प्यार पर बस तो नहीं है मेरा लेकिन फिर भी
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करू
तूने खुद अपने तबस्सुम से जगाया है जिन्हें
उन तमन्नाओं इजहार करूं या न करूं
तू किसी और के दामन की कली है लेकिन
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं
तू कहीं भी हो तेरे फूल से आरिज की कसम
तेरी पलकें मेरी आंखों में झुकी रहती हैं
तेरे हाथों की हरारत तेरे सांसों की महक
तैरती रहती है एहसास की पहनाई में
ढूंढ़ती रहती हैं तफील की बाहें मुझको
सर्द रातों की सुलगती हुई तनहाई में
तेरा अल्ताफो-करम एक हकीकत है मगर
यह हकीकत भी हकीकत में फंसाना ही न हो
तेरी मासूम निगाहों का ये मोहताब पयाम
दिल के खूं करने का एक और बहाना ही न हो
कौन जाने मेरे इमरोज का फरदा क्या है
करवटें बढ़के पशेमान भी हो जाती हैं
दिल की दामन से लिपटती हुई रंगीन नजरें
देखते देखते अनजान भी हो जाती है

जिंदगी, जिंदगी के प्रेम, जिंदगी के लगाव, जिंदगी के संबंध, सब सपने हैं। सपने का अर्थ समझ लेना। जो टूट जाता है वह सपना है। जो नहीं टूटता वह सत्य है। जो सदा है वह सत्य है। जो कभी-कभी है वह सपना है। सपने का अर्थ यह नहीं होता कि जो नहीं है। सपने का अर्थ इतना ही होता है, कि जो पानी के बबूले की तरह है।

तेरा अल्ताफो-करम एक हकीकत है मगर
ये हकीकत भी हकीकत में फंसाना ही ना हो
तेरी मानूस निगाहों का ये मोहताब पयाम
दिल के खूं करने का एक और बहाना ही न हो

यहां जिंदगी में जितने हम उपाय खोज लेते हैं, ये सिर्फ समय को गंवाने के उपाय हैं। यहां का प्रेम भी सपना है। यहां का धन भी सपना है। यहां का पद भी

सपना है। इन सपनों से जो जागता है, वह सतनाम को उपलब्ध होता है।

थोरे दिन की जिंदगी मन चेत गंवार

आज हम हैं, कल हम नहीं होंगे। इसलिए जो भी आज हम कर रहे, हैं इस बात को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए कि कल हम नहीं होंगे। अगर हमें कल आनेवाली मौत का स्मरण रहे, तो हमारे जिंदगी में क्रांति हो जायेगी। फिर शायद तुम इतना धन इकट्ठा करने के पीछे पागल न होओ। जिंदगी इतनी छोटी है, इतना धन का करोगे क्या? फिर शायद तुम किसी ऐसे धन के तलाश में लग जाओ, जो मौत के पार भी तुम्हारे साथ जायेगा।

लेकिन मौत को हम टालते हैं। मौत की हम बात भी नहीं करते। मौत को हम बीच में भी नहीं लाते। मौत को हमने गांव के बाहर कर रखा है--अंत्यज! मरघट भी बाहर बना दिये, कब्रस्तान भी बाहर बना दिये। कोई लाश निकलती है तो मां अपने बेटे को भीतर बुला लेती है कि भीतर आ जा। दरवाजा बंद करवा देती है। मौत को हम झुठलाना चाहते हैं। हम मन में यह बात मानकर जीना चाहते हैं और लोग मरते हैं, मैं थोड़े ही मरूंगा! मैं तो अपवाद हूं। कहीं भीतर हमारे यह भाव होता है। और फिर अगर मरूंगा भी, समझो कि मरना ही पड़ा तो आज थोड़े ही मर रहा हूं! अभी बहुत दिन पड़े हैं। हम उन दिनों की गिनती भी नहीं करते। कितने होंगे बहुत दिन? सात वर्ष कि सत्तर वर्ष, क्या फर्क पड़ता है? आज नहीं कल मौत आकर दस्तक दे देगी। और मौत के द्वार पर दस्तक देते ही तुम्हारी सारी योजनाओं पर पानी फिर जायेगा। तुमने जो मनसुबे बांधे थे, सब गिर जायेंगे। तुमने जो आशाएं सजायी थीं, सब राख हो जायेगी। जो आशाएं मौत के एक धक्के से गिर जाती है उन आशाओं में बहुत सत्व नहीं है। उनसे जो जाग जाता है, वही गंवार नहीं हैं। अन्यथा सब गंवार हैं।

थोरे दिन की जिंदगी मन चेत गंवार।

कागज के तन पूतरा डोरा साहब हाथ

तुम है ऐसे हो जैसी रागज की पुतली। ड़ोरा साहब हाथ! पुतलियो का नाच देखा? जरूर देखना चाहिए क्योंकि वह तुम्हारा ही नाच है। पुतलियां खूब नाचतीं घूमतीं, प्रेम करती हैं, विवाह होता है, युद्ध भी हो जाता है। तलवारें निकल आती हैं और डोरा पीछे छिपा है किसी हाथ में। पुतलियों को भी थोड़ा होश होती तो वे भी यही सोचतीं की हम ही यह सब कर रहे हैं। यह लड़ाई, यह झगड़ा, यह प्रेम, यह दोस्ती, यह दुश्मनी हम कर रहे हैं। उनको भी तो ड़ोरा दिखाई नहीं पड़ता। तुमको नहीं दिखाई पड़ता तो उनको कैसे दिखाई पड़ेगा? डोरा उसके हाथ में है। वही लाता है तो हम आते हैं। वही ले जाता है तो हम

चले जाते हैं। उसके किये ही हम हैं। उसके ना किये हम नहीं हो जायेंगे। फिर डोरा हम नहीं देखते। गोरा अदृश्य है।

और यह शरीर कागज से ज्यादा नहीं है। जैसे ही प्राण पंखेरू उड़े--प्राण पंखेरू उड़े, अर्थात डोरा टूटा। वैसे ही जिन्होंने तुम्हें प्रेम किया था सदा, जिन्होंने तुम्हारे शरीर की बड़ी प्रशंसाएं की थीं, वड़ा सुंदर कहा था, ने ही जल्दी से अर्थी बांधने लगेंगे। जल्दी से ले चले मरघट। चिता तयार होने लगी।

जरा सोचो तो, कभी तुमने बैठकर इसपर विचार किया, ध्यान किया? करना। कि तुम्हारा बेटा, तुम्हारा पिता, तुम्हारा भाई, तुम्हारा मित्र यही कंधे-पर रखकर तुम्हारी लाश को ले जाने लगेंगे। इतनी जल्दी मच जाती है जैसे ही कोई मरता है कि जल्दी करो क्योंकि मरे हुए आदमी को देखकर जिंदा आदमियों को बेचैनी होने लगती है। उनको ख्याल आने लगता है हमको भी मरना है। वे जल्दी से, अच्छे वस्त्र पहनाकर और कपड़े-लत्ते ढांककर, फूल डालकर मौत को छिपाकर चले। और जिसने जिंदगी में राम का नाम नहीं लिया उसके लाश के सामने कहते हैं, राम-नाम सत्य है।

किसी व्यापारी से राम-नाम ले लो, इसके पहले कि ये नासमझ जिनको खुद भी राम-नाम नहीं मिला है, राम-नाम सत्य करें। ये तुम्हारे पड़ोसी राम-नाम सत्य करेंगे। जैसे तुम दूसरों का कर आये ऐसे ये तुम्हारा कर आयेंगे। यही तो लोकरीति है। तुम खुद ही राम का सत्य नाम कर लो। वही तो कह रहे हैं: हम सतनाम के वैपारी। तुम किसी धनी से ले लो रामनाम। तुम ही गुंजा लो अपने भीतर जीते-जी। तुम ही मौत को अपने सींप में बना लो। यह देह तो

कागद के तन पूतरा डोरा साहब हाथ
नाना नाच नचावही नाचे संसार
कांचि माटी के घइलिया भरि लै पनिहार

कहते हैं धरमदास कि इतने नाच जो तुम नाच रहो हो, यह मत सोचना कि तुम्हीं इसके मालिक हो। वही भ्रांति है आदमी की, वही उसका अहंकार है। जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ता है, मालिक नचाता है, हम नाच रहे है, उस दिन अहंकार गया। अर्जुन यही तो कह रहा था कि मैं चला युद्ध छोड़कर। यह नाच मैंन हीं नाचना चाहता हूं। यह मेरा नाच नहीं है। मैं अपनों को कैसे मारूं? इस तरफ भी मेरे भाईबंद हैं, उस तरफ भी मेरे भाईबंद हैं। मेरे गुरु उस तरफ खड़े हैं। मेरे पूज्य उस तरफ खड़े हैं, इस तरफ खड़े हैं। यह मुझसे नहीं होगा। यह नाच मैं नहीं नाचना चाहता हूं। कृष्ण की पूरी गीता का सार कितना है? इतना ही--कागद के तन पूतरा डोरा साहब हाथ। बस उसमें सारी गीता आ गयी। डोरा साहब हाथ--

इसमें पूरी भगवद्गीता आ गयी। कृष्ण इतना ही समझा रहे हैं कि पागल, तेरा नाच है ही नहीं यहां कुछ। करनेवाला वह है। तू उपकरण मात्र, निमित्त मात्र। डोरा साहब हाथ ! जरा गोरे को देख। उसकी मर्जी है तो युद्ध हो रहा है। तो तलवारें खींच, युद्ध होने दे। उसकी मर्जी होगी, संन्यास होगा। लेकिन उसकी मर्जी से होगा, तेरे किये कुछ नहीं होगा। तू अपने को बीच में मत ला। गीता को समझोगे तो दो बातें समझ में आयेंगी। अर्जुन अहंकार की घोषणा कर रहा है यद्यपि अहिंसा के नाम से। अहिंसा के नाम से भी आदमी अहंकार की घोषणा कर सकता है। बात तो बड़ी प्यारी लगती है, त्यागी, तपस्वी बन रहा है, संन्यासी बन रहा है। छोड़ दूं। युद्ध में क्या, रखा है ! मारने में क्या सार है ! मारने में तो पाप ही पाप है। बात जंचती है।

तुम अगर सोचोगे तो अर्जुन की बात जंचेगी। तुम्हारी जिंदगी में भी अर्जुन की बात ही मानकर तुम चल रहे हो, कृष्ण की बात मानकर तुम चल नहीं रहे हो। मैंने सैकड़ो गीता के पढ़नेवाले देखे हैं। वे पढ़ते गीता हैं, मानते अर्जुन को हैं, कृष्ण को नहीं। मगर इस तरह पढ़ते हैं तोतों की तरह कि उन्हें याद ही नहीं आता कि वे क्या पढ़ रहे हैं, क्या कर रहे हैं ! कृष्ण कुछ और कह रहे हैं। कृष्ण यह कह रहे हैं, यह तेरी अहिंसा, यह तेरा ज्ञान, यह तेरा धर्म, यह तेरा पुण्य सिर्फ तेरी अहंकार की छिपी हुई घोषणा है। तू यह कह रहा है कि मैं नियंता हूं। और मैं तुझसे चाहता हूं कि तू ठीक से देख ले, ड़ोरा साहब हाथ। वह जैसा नाच नचाये वैसा नाच। 'नाना नाच नचावहि नाचे संसार।' आज उसकी मर्जी युद्ध की है। पुतलियों को आज लड़ाना चाहता है। तेरे किये कुछ न होगा। तू इस भ्रांति को छोड़ दे।

यही भ्रांति मनुष्य का अहंकार है। अर्जुन अहिंसा की बात कर रहे हैं, कृष्ण निरअहंकारिता की। बस इतना ही। और वास्तविक धार्मिक में और झूठे धार्मिक में यही फर्क है। झूठा धार्मिक अर्जुन जैसा होता है। बातें तो बड़ी ऊंची करता है। लेकिन सारी ऊंची बातों के पीछे अहंकार छिपा होता है। कृष्ण की बात उतनी ऊंची जंचती भी नहीं। युद्ध करवाने की बात कैसे ऊंची हो सकती है ? हिंसा करवाने की बात कैसे ऊंची हो सकती है ? इतनी ऊंची जंचती भी नहीं। मगर बड़ी ऊंची है। क्योंकि उसके भीतर जो सारसूत्र है वह यह है, कि तू अहंकार को हटा ले। तू कह दे, जो तेरी मर्जी। फिर जो उसकी मर्जी !

और तुम यह मत सोचना कि कृष्ण यह कह रहे हैं कि तू युद्ध कर ही। कृष्ण सिर्फ इतना ही कह रहे हैं, तू उसकी मर्जी पर छोड़ दे। युद्ध किया अर्जुन ने क्योंकि जैसे ही उसकी मर्जी पर छोड़ा, उसके हाथ जो कुछ करवाएं वही हुआ। यह जरूरी नहीं था। यह भी हो सकता था कि अर्जुन संन्यस्त हो जाता, लेकिन तब संन्यास

असली होता।

अपने से लिया गया संन्यास असली नहीं होता। परमात्मा के हाथ में अपने को छोड़ देने से असली संन्यास फलित होता है।

कांचि माटी के घइलया . . .

यह जिंदगी तो कच्ची मिट्टी का घड़ा है।

. . . भरि ले पनिहार

कहते हैं धरमदास, इसके पहले कि यह फूट जाए--यह कभी भी फूट-- जायेगी। कच्ची माटी की चीज है। इसके पहले भर ले। इस अवसर को उस पूरण से भर ले। इस मिट्टी में उस पारस को बुला लो। इसके पहले कि यह मिट्टी पिघल जाए, मौत आ जाए और मिट्टी में मिट्टी गिर जाए . . .

काचि माटी के घइलिया, भरि ले पनिहार
मन चेत गंवार !
पानी परत गल जावही . . .

यह मौत आयेगी और सब गल जायेगा। इस घड़े की बहुत देखरेख मत करते रहो। इस घड़े का उपयोग कर लो।

लेकिन लोग देखरेख में लगे हैं। घंटों आईनों के सामने खड़े हैं, सजावट कर रहे हैं। यह पहनें कि वह पहनें, ऐसे बाल कटाएं कि वैसे बाल कटाएं।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन बाल बनवाने गया। होशियार आदमी है। पहले पूछा कि भाई, कितने तरह के बाल यहां बनाये जाते हैं ? तो सब तरह के बताये उसने कि अगर संन्यासी से ढंग के बनवाने हों तो बिलकुल सफाचट ! चार आने में बना देता हूं। अगर दिलीपकुमार बनवाने हैं। तो एक रुपया लगता है। ऐसे उसने सब बताया। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अच्छा ठीक, पहले तो संन्यासी . . . ! पहले सस्ते से शुरू करो। उसने सिर घोट दिया। तब उसने कहा, अच्छा ठीक अब दिलीपकुमार कट ! कहा, तुम पागल हो गये हो ?

मुल्ला ने कहा, तू घबड़ा मत। पैसे की फिकर मत कर। अभी तो हम सब तरह के कट बनवायेंगे। यह तो अभी शुरुआत सिर्फ है। चवन्नी से तो शुरुआत की है।

आदमी जिंदगी भर सब तरह के कट, सब तरह की जिंदगियां जी लेना चाहता है। अभिनेता की भी, नेता की भी, धनी की भी, यशस्वी की भी, नामवाले की भी, पुण्यात्मा की भी-- सब तरह की जिंदगी जी लेना चाहता है। और सारे के पीछे यह ख्याल है कि जैसे मैं सदा रहूंगा।

और यह शरीर मिट्टी का घड़ा है। और जब तुम इसको सजाने में समय

गंवा रहे हो, यह घड़ा खाली का खाली है। तुम इसके ऊपर ही बेलबूटे निकाल रहे हो। तुम इस पर चांदी-सोना चढ़ा रहे हो, हीरे-जवाहरात लगा रहे हो। और घड़ा खाली है और मौत करीब आ रही है। और मौत की पहली फुहार, कि यह घड़ा मिट्टी में गिर जायेगा। सब तुम्हारा चांदी-सोना, तुम्हारी सब नक्काशियां, तुम्हारे बेलबूटे, सब मिट्टी में पड़े रह जायेंगे।

भरि ले पनिहार! इसके पहले कि यह घटना घटे, भर लों।

आईना तोड़ दिया?
तोड़ दिया, तोड़ दिया!
शक्ल एक बार जरा देख तो लो
देखो अब कैसी नजर आती हो
फिर वही आंखों में रंग आता है
या झिझक जाती हो, डर जाती हो!
इसी आईने में देखा था वह हुस्न
जिसका दुश्वार यकीं होता था
और पूछा था बड़े नाज़ के साथ
कोई इतना भी हंसी होता है?
इसमें आईने की खूबी तो नहीं
हुस्न जब था तो नजर आया था
पा चुकी थी तुम्हें दुनिया लेकिन
तुमने अपने को कहां पाया था?
और जब अपने को पाया तुमने
हादसा यह भी नहीं है लेकिन
देखना अपने को क्यों छोड़ दिया?
शक्ल एक बार जरा देख तो लो
देखो अब कैसी नज़र आती हो

आज सुंदर हो, आईने से बड़ी दोस्ती हैं। आज युवा हो, आईने से बड़ा प्रेम है। कल बूढ़े हो जाओगे तब आईने पर बड़ा क्रोध आयेगा। आईने का कोई कसूर नहीं है। जिंदगी का यह ढंग है।

जिंदगी एक बहाव है, बहती हुई चीज है। यहां कुछ भी थिर नहीं है। यहां थिर की आकांक्षा भ्रांति है। इसके पहले कि मिट्टी का घड़ा मिट्टी में गिर जाएं...

कांचि माटी के घइलिया, भरि ले पनिहार
पानी परत गल जावही, ठाड़ी पछताय

और फिर बहुत पछतावा होगा। कुछ कर न लिया, जब दिन थे। कुछ कर न लिया, जब घड़ी थी। कुछ कर न लिया, जब ऊर्जा थी। कुछ कर न लिया, जब शक्ति थी। कुछ उड़ान न भर ली जब पंख थे। कुछ पुकार न लिया, जब वाणी थी। जब हृदय ऊर्जा से आपूर था तब परमात्मा को न पुकारा; तब मंदिर की खोज नहीं की। तब बाजारों में ठीकरे इकट्ठे करते रहे।

जस धूआं के धरोहरा, जस बालू के रेत
जैसे कि कभी आकाश में चिमनी से
उठते धुएं में ऐसा लगता है जैसे मीनार बन गई--ऊंची मीनार, कुतुबमीनार।

जस धूआं के धरोहरा, जस बालू के रेत

या रेत के कोई घर बनाते हैं बच्चे।

हवा लगे सब मिटि गए, जस करतब प्रेत

जैसे कि कोई जादूगर खेल दिखाता हो या कोई प्रेत तुम्हारे मन के भय ने ही खड़ा कर लिया हो और करतब दिखाता हो।

कभी देखा न? रात के अंधेरे में अपना ही टंगा हुआ लंगोट रस्सी पर--ऐसा लगता है कि आ गये! दोनों हाथ लिये खड़े हैं। खुद ही टांगा है लंगोट, मगर छाती धक से हो जाती है। ऐसी ही यह जिंदगी है।

जस धूआं के धरोहरा, जस बालू के रेत
हवा लगे सब मिटि गये, जस करतब प्रेत
ओछे जल की नदिया हो, बहे अगम अपार

इस छोटी सी ओछी नदी में क्यों समय खराब कर रहे हो? इसके पास ही, बिलकुल पास हीं बहे अगम अपार।

वहां नाव नहि बेरा हो...

वहां नाव भी नहीं लगती उस अपार में। वहां कोई बेड़ा भी नहीं है।

...कस उतरब पार

और तुम इस छोटी सी नदी में ही जिंदगी खराब कर रहे हो। उस अगम में जाना ही होगा। आज नहीं कल यह नदी भी उस अगम में गिर जायेगी। वहां धन काम नहीं आयेगा।

वहां नाव ही बेरा हो, कस उतरब पार

यहां की सीखी कोई कला हाथ नहीं आयेगी। कुछ उस जगत में उतरने की कला सीख लो। कुछ ध्यान सीख लो, कुछ प्रेम सीख लो, कुछ भक्ति सीख लो। धरमदास गुरु समरथ हो--किसी समर्थ गुरु को खोज लो।

...जाको अदल अपार

जिसका शासन अपार पर भी चलता है। किसी ऐसे को पकड़ लो जिसकी

गति असीम में भी हो गई है। उसी का संग-साथ मिल जाए तो शायद तुम भी अपार को पार कर जाओ।

साहब कबीर सतगुरु मिले, आवागमन निवार

धरमदास कहते हैं, मैं तो धन्य हो गया। मुझे तो गुरु मिल गये। तुम भी खोज लो।

साहब कबीर सतगुरु मिले, आवागमन निवार

आज इतना ही।

प्रश्न-सार

- आप कभी कहते हैं कि परमात्मा के समक्ष भिखारी की तरह जाओ और कभी कहते हैं, सम्राट की तरह जाओ। इस विरोधाभास को समझाने की कृपा करें।
- ध्यान की अंतर्यात्रा और भक्ति की अंतर्यात्रा में आधारभूत भिन्नता क्या है ?
- हम तो साधारण जन हैं और नाटक-सिनेमा, आदि सामान्य सुखों के भी पार नहीं उठ पाते, तो हम श्रद्धा कैसे कर सकेंगे ?
- दूसरे गुरु के पास जाने पर आपने हमारी जो आलोचना की, उसमें आपका प्रेम तो प्रकट हुआ लेकिन हमारी स्वतंत्रता खंडित हुई।
- मैं प्रेम के संबंध में बहुत सोचता हूं। आपकी बातें कभी ठीक लगती हैं, कभी ठीक नहीं भी लगतीं।

प्रवचन : ४
दिनांक : ३।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना।
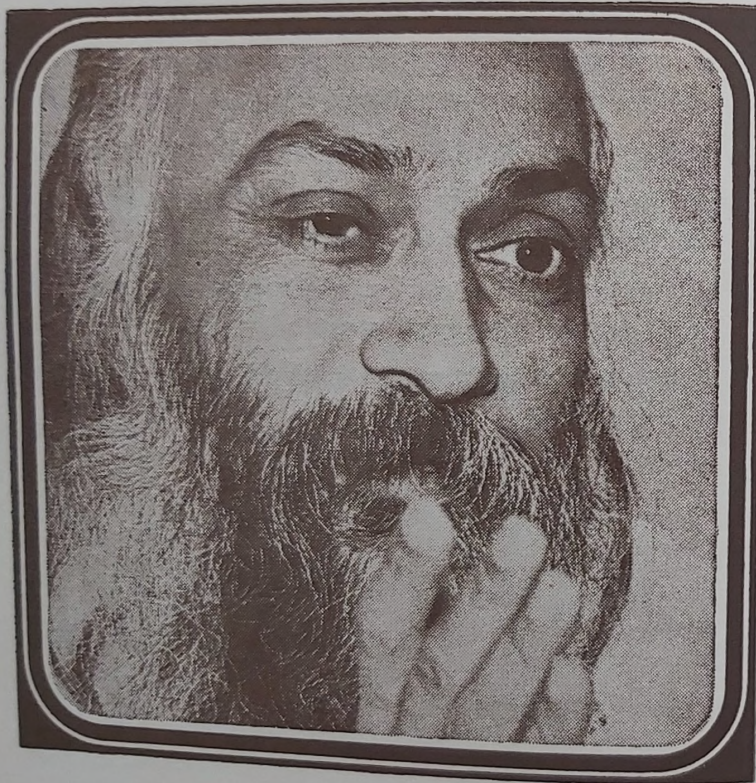
दर पे जमी यह नजर

पहला प्रश्न : आपने अनेक बार समझाया है कि परमात्मा के द्वार पर दीन-हीन, भिखारी की तरह नहीं, वरन सम्राट की तरह जाना चाहिए तो ही प्रवेश मिलता है। परमात्मा से मिलना हो तो कुछ-कुछ उस जैसा होना जरूरी है। क्योंकि समान ही समान से मिलता है। फिर आपने यह भी कहा है कि जब तक कोई सर्वहारा होकर, भिखारी की तरह सद्‌गुरु के पास नहीं जाता, तब तक मिलन संभव नहीं है। इन दो विरोधी दिखनेवाली स्थितियों का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

परमात्मा के समक्ष जो भिखारी की तरह जाता है, वही सम्राट की तरह गया। जो सर्वहारा होकर गया, वही विजेता होकर गया। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है।

परमात्मा के पास सम्राट की तरह जायेगा ही कौन? जिसकी कोई मांग नहीं है। मांग ही इस जगत में भिखारी बनाती है। मांग के कारण ही हम भिखमंगे हैं। परमात्मा के पास वही जाता है जिसकी संसार की सारी मांगें समाप्त हो गयी हैं। जिसको यहां मांगने को कुछ नहीं बचा। जिसने मांगकर भी देख लिया और दुख पाया। पाकर भी देख लिया और दुख पाया। नहीं मिला तो पीड़ा हुई, मिला तो पीड़ा हुई। जिसने जीवन के सब रंग-ढंग देख लिये, जो जीवन से भलीभांति परिचित हो गया, जिसकी मांग खो गयी। मांग भिखारी बनाती है। मांग खो गयी तो वह सम्राट हो गया।

लेकिन जिसकी मांग खो गयी, जिसके पास कुछ मांगने को न बचा, स्वभावतः वह परमात्मा से भी कुछ नहीं मांगेगा। मांग ही संसार की होती है। तुम जो भी मांगते हो वही संसार का है। तुम जरा अपनी मांगों का निरीक्षण करना। जिन मांगों को तुम धार्मिक कहते हो, वे भी धार्मिक नहीं हैं। मांग धार्मिक होती ही नहीं। मांग ही संसार है। इसलिए मांग पारलौकिक नहीं होती। तुम जब मोक्ष भी मांगते हो, तब भी तुम सुख ही मांग रहे हो; नाम बदल लिया। जब तुम स्वर्ग मांगते हो, तब भी तुम सफलता ही मांग रहे हो, नाम बदल दिया। तब तुम इंद्रियों की तृप्ति

ही मांग रहे हो।

तुम्हारा स्वर्ग भी तो कल्पवृक्षों से भरा है। वहां सुंदर अप्सरायें हैं, और शराब के चश्मे हैं। तुम्हारा स्वर्ग भी तो तुम्हारी ही मांगों का प्रतिफलन है, तुम्हारे ही मन का बिंब है। तुम अगर रोशनी मांगते हो, तुम अगर अमरत्व मांगते हो, तो भी तुम मांग ही रहे हो। और मांग कैसे अमृत तक ले जायेगी ? इसलिए सारी मांगें छूट जाएं तो तुम भिखमंगे नहीं रहे, सम्राट हुए। इस अर्थ में मैंने कहा है कि परमात्मा के सामने सम्राट की तरह जाना, कुछ मांगते हुए मत जाना।

और मैंने यह भी कहा है कि परमात्मा के सामने भिखारी की तरह जाना; अर्थात शून्य होकर जाना। भिक्षा के पात्र! मांग कुछ भी नहीं। सिर्फ एक शून्य ! झोली फैली हो। झोली किस चीज से भरी जाए इसकी कोई आकांक्षा नहीं। झोली भरी जाए इसकी भी आकांक्षा नहीं, लेकिन झोली फैली हो। तुम्हारा हृदय खाली हो। तुम्हारे हृदय में मैं की अकड़ न हो। इस अर्थ में मैंने कहा है, भिखारी होकर जाना। मैं की अकड़ न हो, मैं न हो, मैं-भाव न हो। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है, ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं। जिसकी मांग गयी उसका मैं-भाव भी गया।

इस संसार में हम मांगते इसीलिए हैं ताकि मैं को सिद्ध कर दें। मेरे पास धन होगा तो मैं बड़ा होगा। मेरे पास पद होगा तो मेरा मैं बड़ा होगा। ये सारी चेष्टाएं मैं को बड़ा करने की चेष्टाएं हैं। जिसने मांग छोड़ी, जिसने मेरा छोड़ा, उसका मैं भी गया। मैं 'मेरे' के भोजन पर जीता है। 'मेरे' का जितना विस्तार हो उतना ही मजबूत मैं हो जाता है। छोटे मकान वाले का छोटा मैं होता है, बड़े मकान वाले का बड़ा मैं होता है। छोटी संपत्ति में छोटा मैं, बड़ी संपत्ति में बड़ा मैं। तुम्हारे पास जितना होगा परिग्रह, उतनी ही मैं की अकड़ होगी। इसलिए तो जब परिग्रह छूटता है या छोड़ना पड़ता है तो ऐसे लगता है जैसे मेरी मृत्यु हुई, जैसे मैं मरा।

दिवाला निकल जाता है किसी का, वह आत्महत्या कर लेता है; जी नहीं सकता अब। क्यों ? धन ही उसका मैं था। अब धन ही न रहा तो अब दीन-हीन होकर सड़कों पर से गुजरना शोभा नहीं देता। इससे बेहतर मर ही जाओ। जैसे ही मांग गयी, परिग्रह गया, वासना गयी, वैसे ही भीतर से मैं भी चला जाता है।

तो एक बड़ी अपूर्व घटना घटती है। एक तरफ से व्यक्ति भिखारी हो जाता है क्योंकि मैं नहीं बचा। शून्य हो गया भिक्षापात्र। और एक तरफ से सम्राट हो जाता है क्योंकि मांग नहीं बची। इसलिए तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को सम्राट भी कहा और भिक्षु भी कहा। दो ही नाम उपयोग किये गये हैं संन्यासी के लिये—एक भिक्षु और एक स्वामी। यह इन दोनों बातों की वजह से। जिन्होंने इस परम दशा के सम्राट होने पर जोर दिया उन्होंने अपने संन्यासियों को स्वामी कहा। जिन्होंने इस परम दशा की शून्यता पर जोर दिया, निरहंकारिता पर जोर दिया, उन्होंने भिक्षु कहा। मगर ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो स्वामी है वह भिक्षु है। जो भिक्षु है वही स्वामी है। उसके दरवाजे पर हार जाना जीत जाना है। जीत और हार वहां भिन्न नहीं है। वहां वही जीतता है जो हारता है।

इसलिए इन दोनों बातों में कहीं कोई विरोध नहीं है। दोनों बातें एक साथ साधना। समझो फर्क। अगर दो में से एक साधी तो चूक जाओगे। अगर तुमने कहा कि ठीक है, सम्राट होकर जायेंगे और अकड़कर गये, अहंकार से भरे गये तो उसके प्रसाद को न पा सकोगे। तुम्हारे भीतर जगह ही न होगी प्रसाद को लेने की। तुम्हारे द्वार ही बंद होंगे। परमात्मा द्वार से प्रवेश भी करना चाहेगा तो न कर पायेगा। स्थान न होगा, अवकाश न होगा, तुम्हारे भीतर आकाश न होगा। अहंकार हो तो कहां आकाश ! जगह कहां ? प्रवेश का उपाय कहां ? परमात्मा चाहेगा तो भी तुम्हारे भीतर आ न सकेगा। सम्राट से तुम यह मतलब मत लेना कि बड़े अकड़कर जाना, बैंड-बाजे के साथ जाना, हाथी-घोड़ों पर सवार होकर जाना, दुदुंभी बजाते हुए जाना, नगाड़े पीटते हुए जाना। सम्राट होने का यह मतलब नहीं है।

सम्राट होने का इतना ही अर्थ है, वहां वासनाएं लेकर मत जाना। निर्वासना से भरे हुए जाना। और साथ ही भिखारी भी रहना। मैं समझता हूं कि तुम्हें विरोधाभास क्यों दिखता है। क्योंकि सम्राट और भिखारी का शब्दकोश में विपरीत अर्थ है। शब्दकोश में होगा। परमात्मा के सामने सब शब्दकोश व्यर्थ हो जाते हैं। वहां तर्क की सामान्य व्यवस्थाएं नहीं चलतीं। और शब्दों की सामान्य परिभाषाएं काम में नहीं आतीं। वहां नये अर्थ, नयी अभिव्यंजनाओं को पकड़ना होता है। वहां शब्दों के पार उठना होता है।

तो तुम भिखारी की तरह जाना—खाली, रिक्तपात्र, भिक्षापात्र। कि वह भरना चाहे तो तुम्हारे भीतर जरा भी अड़चन न हो। पूरा का पूरा भरना चाहे तो तुम पूरे के पूरे भरने को राजी हो। ऐसे जाना जैसे खाई-खड्ड होता है। ऐसे नहीं जैसे पहाड़ होता है। वर्षा तो होती है, पहाड़ पर भी होती है, खाई-खड्ड में भी होती है। पहाड़ वंचित रह जाता है। वर्षा तो होती है लेकिन पहाड़ भरता नहीं। खाई-खड्ड भरते हैं। क्योंकि खाली थे इसलिए भरते हैं। जो खाली है वह भरेगा।

तो जो खाली जायेगा वही परमात्मा से जुड़ेगा। भिखारी की तरह जाना

और सम्राट की तरह भी। इन दोनों बातों की अर्थवत्ता को खूब ख्याल में ले लेना। और ये दोनों बातें एक साथ सध जाएं तो तुम्हारे जीवन का परम धन्यता का क्षण आ गया। न तो अहंकार हो और न वासना हो।

दूसरा प्रश्न : ध्यान में थोड़ी झलकें मिली हैं। तब से एक ही विचार रह-रहकर उठता है कि प्रभु मिलन न हो तो मैं अब जीना ही नहीं चाहता हूं। मेरा प्रभु से मिलन करवा दें या जीवन से छुटकारा।

ध्यान में झलक मिलती है तो जीवन में क्रांतिकारी अंतर पड़ने शुरू होते हैं। क्योंकि जीवन के आधार बदल जाते हैं। अब तक तो पता ही न था कि ये झरोखे भी हैं। ऐसी हवाएं भी बहती हैं। ऐसी रोशनी भी उतरती है, ऐसे दीये भी जलते हैं। अब तक तो पता नहीं था, ऐसा संगीत भी है। जब तक पता नहीं था तब तक एक बात थी; जिंदगी का एक ढंग, एक दौर था, एक शैली थी। जब किसी नये अनुभव का पता चलता है तो जिंदगी की शैली को फिर से व्यवस्थित करना होता है। सब अस्तव्यस्त हो जाता है। जीवन के भवन को फिर से रखना पड़ता है, फिर से निर्माण करना होता है। इस नये को जगह देनी होती है।

तो ध्यान की झलकें जीवन में निश्चित ही अस्तव्यस्तता लाती हैं। कल तक जो सार्थक मालूम होता था, अब सार्थक नहीं मालूम होता। और कल तक जिसके संबंध में सपना भी नहीं देखा था, वही आज प्राणों को पकड़ लेता है। उसी की पुकार, उसी की प्यास उठने लगती है।

तुझसे मिले न थे तो कोई आरजू न थी
देखा तुझे तो तेरे तलबगार हो गये

जिसका हमें अनुभव नहीं हुआ है उसकी आरजू भी नहीं होती। जिसने कभी मिठाई नहीं चखी उसे मिठाई की आकांक्षा भी नहीं होती। और जो कभी महलों में नहीं सोया है और महल नहीं देखे हैं उसे महलों का सवाल भी नहीं उठता। जो अनुभव में आ जाता है उसकी आकांक्षा जगती है।

और ध्यान अपूर्व अनुभव है। उसकी एक किरण भी ऐसी संपदा है कि इस सारी जगत की संपदाएं फीकी पड़ जाती हैं। लेकिन सम्हलकर, बहुत होश सम्हालकर चलना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी वासना ध्यान पर इतने जोर से पकड़ जाए कि ध्यान को नष्ट कर दे। इस नियम को ख्याल में लेना—ध्यान फलता तभी है जब वासना नहीं होती। ध्यान की वासना भी ध्यान में बाधा बन जाती है।

इसलिए यह यहां रोज का अनुभव है। यहां जो लोग आते हैं, नये-नये आते हैं, ध्यान में उतरते हैं, तो पहली बार अनुभव बड़ी आसानी से हो जाता है। बस फिर अड़चन शुरू होती है। पहली झलक तो मिल जाती है। क्योंकि पहली झलक के

पहले तो कोई वासना नहीं होती। प्रयोगात्मक होता है कि देखें क्या होगा। करके देखें, क्या होगा। उतरें ध्यान में, नाचें, गायें, कीर्तन करें, नामस्मरण करें, कि शांत बैठें, कि मौन में उतरें। देखें क्या होता है। कुछ अनुभव तो नहीं है इसलिए वासना नहीं होती। तो पहला अनुभव सुगमता से हो जाता है। और दूसरे अनुभव में बड़ी झंझट होती है। क्योंकि पहले अनुभव के बाद वासना जग जाती है। फिर वासना कहती है, अब बार-बार हो। अब ऐसा ही फिर हो, अब ऐसा रोज-रोज हो। जब ध्यान को बैठूं तभी हो। और इतना ही न हो, और आगे, और आगे हो। बस, वासना का जाल फैला।

वही वासना जो बाजार में भटकाती थी, वही ध्यान में भी भटका देगी। वही वासना जो धन के पीछे भटकाती थी, वही ध्यान के पीछे दौड़ा देगी। वासना का रूप क्या है, रंग क्या है? वासना का रूप और रंग है—और! जो हुआ है यह और हो, फिर-फिर हो, ज्यादा हो। सौ रुपये हैं तो हजार हो जाएं। हजार हैं तो लाख हो जाएं। इतनी प्रतिष्ठा है तो उतनी हो जाए। इतनी ध्यान की झलक मिली तो अब और होनी चाहिये। अब इतने से चित्त राजी नहीं होता। अब तो परमात्मा मिलना चाहिए। नहीं मिलेगा तो हम जीवन ही गंवा देने को राजी हैं। तब तुम विक्षिप्त हुए, तब ध्यान के करीब आते-आते चूक गये।

और अक्सर ऐसा हो जाता है कि पहले अनुभव के बाद अनुभव इतना कठिन हो जाता है ..। यह रोज का अवलोकन है। और जिसको अनुभव एक दफे हुआ है उसकी बेचैनी भी मैं समझता हूं। क्योंकि वह कहता है, अब क्यों नहीं होता है? और मैं उसे लाख समझाता हूं कि अब इसीलिए नहीं होता है कि अब तू मांग कर रहा है, और पहली दफे जब हुआ था तो कोई मांग न थी। अब मांग का नया तत्व तूने जोड़ दिया जो कि बाधा बन रहा है। कभी चार महीने, कभी छः महीने, कभी साल लग जाता है, जब दुबारा अनुभव आता है। दुबारा अनुभव तभी आता है, जब पहला अनुभव भूल चुका होता है। दुबारा अनुभव तभी आता है, जब पहले अनुभव की सतत आकांक्षा कर-करके आदमी थक जाता है और सोचता है, जाने भी दो! सोचने लगता है शायद कल्पना ही रही होगी। क्योंकि अब क्यों नहीं होता है? शायद किसी सम्मोहन में आ गया था। शायद परिस्थिति, वातावरण ऐसा था। और लोग नाचते थे, मग्न होते थे, मैं भी उनकी रौ में बह गया। मैं भी उस धारा में बह गया था। अब नहीं होता है। वह सच बात नहीं थी, जो हुई थी। तब उसकी आकांक्षा फिर गिर गयी। और अगर आकांक्षा गिर जाने के बाद प्रयास जारी रहा तो फिर से होगा।

दुबारा हो जाने के बाद तीसरी बार आसान होता है। क्योंकि तब तुम्हें यह

भी समझ में आ जाता है कि मेरी आकांक्षा बाधा बनती है । इसलिए आकांक्षा न करूं । ध्यान तो करूं, आकांक्षा न करूं । ध्यान तो करूं, मांग न करूं । ध्यान में तो जाऊं और प्रतीक्षा करूं, आकांक्षा नहीं । राह देखूं, मांग नहीं । दावेदार न बनूं । यह न कहूं कि आज होना ही चाहिए ।

अब तुम्हारी अड़चन वही हो रही है । तुम कहते हो, ध्यान में झलक मिली, तब से एक ही विचार रह-रहकर मन में उठता है कि प्रभु-मिलन न हो तो अब मैं जीना भी नहीं चाहता । अब तुमने प्रभु-मिलन को अपने अहंकार की यात्रा बना लिया । अब प्रभु-मिलन जो है, वह वैसे ही तुम्हारे अहंकार को पुष्ट करने वाली बात बन रही है, जैसे कोई कहता है जब तक मैं प्रधानमंत्री न हो जाऊं, मैं जीऊं ही न; कि मैं राष्ट्रपति न हो जाऊं तो मेरे जीने में कोई सार नहीं है । मैं तो सारी दुनिया को जीतूंगा तो ही जीऊंगा । मैं तो इस स्त्री को पा लूंगा, तो जीऊंगा । मैं तो यह मकान खरीद लूंगा तो जीऊंगा । नहीं तो जीने में क्या रखा है ? तुमने जीने पर शर्त लगा दी ।

जीने पर जिसने शर्त लगायी वही अधार्मिक है । और जो जीवन पर बिना शर्त जीता है, वही धार्मिक है । जो कहता है, जीवन उसकी भेंट है, मेरे हाथ में क्या है ? जीना न जीना ...कल सुना नहीं, धनी धरमदास ने क्या कहा ? डोरा उसके हाथ! हम तो कागज की पुतलियां हैं । डोरा उसके हाथ है । तुम ऐसा कहो ही क्यों, कि मैं जीऊंगा नहीं ? यह तो फिर मैं की ही घोषणा हुई । यह तो तुम शिकायत करने लगे । यह तो अहंकार ने फिर नयी उद्घोषणा की ।

और ध्यान रखना, अहंकार बहुत चालाक है, बहुत सूक्ष्म है । नये-नये रास्ते खोज लेता है अपनी घोषणा के । एक रास्ता तुम बंद करते हो, वह दूसरा रास्ता खोज लेता है । अब उसने एक नया लक्ष्य बनाया, कि परमात्मा को पाकर रहूंगा मैं । 'मैं' जैसा विशिष्ट आदमी, जिसको ध्यान की झलकें भी मिली हैं, परमात्मा को नहीं पायेगा तो कौन पायेगा ? और मजा यह है कि यह बात अच्छी भी लगेगी । और तुम इसे किसी से कहोगे तो वह भी कहेगा कि बड़ी धार्मिक बात पैदा हुई है । लेकिन मैं तुम्हें सावधान करूं, मैं का कोई दावा धार्मिक नहीं होता । फिर वह ध्यान का ही दावा क्यों न हो, समाधि का ही दावा क्यों न हो ! इसलिए तो उपनिषद कहते हैं कि जो कहे, मैंने जान लिया है, उससे सावधान रहना; उसने अभी जाना न होगा । जो कहे, मैं नहीं जानता हूं, उसके पास बैठना । शायद उसे पता हो । क्यों ? क्योंकि जहां दावा है वहां अहंकार पीछे खड़ा मजा ले रहा है । मैं तुमसे कहूंगा :

लोग जिस हाल में मरने की दुआ करते हैं
मैंने उस हाल में जीने की कसम खायी है

तुम कहो कि परमात्मा जैसे रखेगा, जिस हाल में रखेगा, वैसे ही रहूंगा । मैं कौन हूं जो निर्णय करे ? मैं कौन हूं जो कहे, ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए । जब मेरी पात्रता होगी, वह उतरेगा । और जब तक मेरी पात्रता नहीं है तब तक मेरे चीखने-चिल्लाने से कुछ भी न होगा । इतनी बात सदा ख्याल रखो, इसी का नाम श्रद्धा है--कि जब मैं पात्र होऊंगा, तो क्षण भर भी चूक नहीं होगी ।

श्रद्धा का और क्या अर्थ है ? श्रद्धा का इतना ही अर्थ है कि जीवन सदा ही न्यायसंगत है । जो जिस चीज को पाने के योग्य होता है वह उसे मिलती ही है । नहीं मिलती तो उसका एक ही अर्थ होता है कि अभी मेरी पात्रता नहीं । पात्रता होते ही मिलती है, तत्क्षण मिलती है । श्रद्धा का यही अर्थ है कि मुझे जीवन पर भरोसा है । कि जब मौसम आ जायेगा तो बीज टूटेगा, अंकुरित होगा । जब वसंत आयेगा तो फूल खिलेंगे, हवाएं सुवासित होंगी । जब रात बीत जायेगी तो सूरज निकलेगा । जो जब होना है तब होगा । और तभी होना चाहिये । हर चीज पकने में समय लेती है । और कोई चीज कच्ची घट जाए तो तो महंगी पड़ती है ।

जैसे कोई पांच वर्ष का बच्चा यौन-दृष्टि से जवान हो जाए तो अड़चन में पड़ जायेगा । जैसे कोई नब्बे साल का बूढ़ा कामवासना की दृष्टि से जवान रह जाए तो अड़चन में पड़ जायेगा । सब चीजें अपने समय पर । सब चीजें अपने मौसम में, अपनी ऋतु में ।

ऋत का यह भरोसा ही धर्म का भरोसा है । जगत एक अपूर्व नियम से चल रहा है । वहां अन्याय नहीं है । तुमने कहावत सुनी न ! कहते हैं देर हो, अंधेर नहीं है । देर भी नहीं है । हमें देर लगती है क्योंकि हमें बड़ी जल्दी पड़ी है । देर भी नहीं है । छोटे-छोटे बच्चे आम की गुही को जमीन में गड़ा आते हैं । सांझ गड़ा देते हैं, सुबह उखाड़कर देखते हैं कि अभी तक आम नहीं हुआ ? अब तक वृक्ष पैदा नहीं हुआ ? अब तक फल नहीं लगे ? कहीं पत्ते भी नहीं दिखाई पड़ते, हो क्या रहा है ? जमीन में गड़ी गुही को फिर निकालकर देख लेते हैं, अभी तक कुछ नहीं हुआ; फिर गड़ा देते हैं । ऐसा अगर रोज-रोज उखाड़कर देखा तो वृक्ष कभी पैदा नहीं होगा । वृक्ष को पैदा होने का मौका ही नहीं मिलेगा ।

जरूरत है, भरोसा करो । बीज को जमीन में डाल दिया है, अब प्रतीक्षा करो । ठीक समय पर, ठीक मुहूर्त में अचानक एक दिन जमीन को तोड़कर अंकुर आ जायेगा । तुम पानी दो, प्रतीक्षा करो । ऐसे आग्रह मत करो कि मैं अब जीना भी नहीं चाहता हूं ।

कहते हो, मेरा प्रभु से मिलन करवा दें या जीवन से छुटकारा ।

मैं से छुटकारा करवाता हूं। जीवन से तो छुटकारा कभी होता ही नहीं। यहां रहोगे, कहीं और रहोगे, रहोगे जरूर। मृत्यु तो एक झूठी बात है, एक भ्रम है। मृत्यु न कभी घटी है और न कभी घटती है। मृत्यु घट ही नहीं सकती। यह सारा अस्तित्व अमृत से भरा है। अमृतरस-घट है यह अस्तित्व। रसो वै सः। वही बह रहा है। इसमें मृत्यु कहां? जिसको तुम मृत्यु कहते हो वह बहुत से बहुत रूप का परिवर्तन है, देह का बदल लेना है। जैसे कोई आदमी घर बदल लेता है। एक पड़ोस से घर बदल लिया, दूसरे पड़ोस में चले गये। इस पड़ोस के लोग सोचते हैं, शायद सज्जन मर गये। वे कहीं मरते-धरते नहीं, वे किसी दूसरी जगह रहने लगे। यात्रा चलती जाती है, देहें बदलती हैं, वस्त्र बदलते हैं।

इसलिए कृष्ण ने कहा है जैसे जीर्ण वस्त्र बदल जाते हैं, बस ऐसे ही अर्जुन, मृत्यु नहीं है, जीर्ण वस्त्रों का गिर जाना है। और फिर नये वस्त्रों की शुरुआत है। इधर मरे नहीं कि उधर जन्मे नहीं। तुम जब तक मरघट ले जाते हो किसी को, तब तक तो वह पैदा भी हो चुका। तुम्हें जितनी देर मरघट पहुंचने में लगती है... और हो सकता है वहां क्यू लगी हो, बड़ी बस्तियों में क्यू लगी होती है। तुम्हें जब तक मुर्दे को जलाने का मौका आये, तब तक जिन सज्जन को तुम विदा करने गये हो, पुनः जीवित हो उठे। उन्होंने कोई गर्भ धारण कर लिया। उन्होंने फिर सांसें लेनी शुरू कर दीं। उन्होंने नये घर में वास कर लिया है। वे किसी और पड़ोस में बस गये, किसी और रंग में, किसी और ढंग में।

जीवन का कोई अंत नहीं है। यही थोड़े ही जीवन है, जो तुम आज जी रहे हो! कल जो तुम जीते थे वह भी जीवन था। जन्म के पहले तुम जीते थे वह भी जीवन था। मृत्यु के बाद तुम जीओगे वह भी जीवन होगा। और ध्यान रखना, जो मुक्त हो गये हैं, जिनको हम जीवनमुक्त कहते हैं, वे भी वस्तुतः जीवन से मुक्त नहीं हो गये हैं, इस तथाकथित जीवन से मुक्त हो गये हैं। बुद्ध अब भी हैं, महावीर अब भी हैं। अब रूप में नहीं हैं, अब रंग में नहीं हैं, अब आकार में नहीं हैं, अब निराकार में हैं। अब विश्वसत्ता के साथ एक हो गये हैं। अब उन्होंने अपना भेद छोड़ दिया है। मिट्टी का घड़ा गल गया है और जल जल से मिल गया है।

जीवन से छुटकारा नहीं है।

तुम जीवन हो; छुटकारा कैसे होगा? सिर्फ एक छुटकारा हो सकता है—ख्याल रखना, इसे बहुत ख्याल में ले लेना, सिर्फ उसी से छुटकारा हो सकता है जो तुम वस्तुतः नहीं हो। झूठ से छुटकारा हो सकता है; सत्य से कोई छुटकारा नहीं हो सकता। इसीलिए तो उसे सत्य कहते हैं जिससे छुटकारा न हो सके, जो शाश्वत हो। उसे झूठ कहते हैं, जो क्षणभंगुर हो। अभी है, अभी नहीं हो जाए। जिससे छुटकारा

हो सकता हो, वही झूठ है।

इस जगत में दो झूठ हैं, और दोनों जुड़े हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उन्हें तुम समझ लो। इस जगत के दो झूठ हैं बड़े। एक झूठ है अहंकार—कि मैं हूं; और दूसरा झूठ है मृत्यु। और दोनों संयुक्त हैं। इस मैं के कारण ही मृत्यु का भाव पैदा होता है। यह मैं झूठ है इसलिए एक दिन इसे मरना पड़ता है। इसलिए मैं घबड़ाया रहता है कि मर न जाऊं। मैं सदा कंपा रहता है कि मृत्यु आती है। आती ही होगी। मैं को कभी भरोसा नहीं आता कि मैं जीवित हूं। मैं इतना बड़ा झूठ है! मैं का अर्थ होता है, मैं इस विराट अस्तित्व से अलग-थलग हूं। एक क्षण को भी अलग-थलग नहीं हो। सांस ले रहे हो और देखते नहीं कि अस्तित्व तुम्हारे भीतर जाता है, बाहर जाता है। एक क्षण को अलग नहीं हो। और एक क्षण को अलग होकर देखो और तुम पाओगे कितनी चिंता पैदा हो जाती है।

एक युवक मेरे पास आया, उसने पूछा कि मुझे बड़ी चिंता रहती है। मैं क्या करूं? मैंने उससे कहा कि पहले तू यह सोच, कि तू क्या करता है जिसके कारण चिंता रहती है। कुछ कर रहा होगा। क्योंकि वृक्षों को कोई चिंता नहीं है, पौधों को कोई चिंता नहीं है, पक्षियों को कोई चिंता नहीं है, तुझे चिंता है? तू एक छोटा-सा काम कर। मैंने उससे कहा कि तू सांस को, भीतर है उसको भीतर ही रोक ले। उसने कहा, फिर क्या होगा? मैंने कहा, फिर तू आंख बंद करके भीतर देख कि भीतर क्या होता है।

मिनट भी बीतना मुश्किल हो गया। उसने एकदम आंख खोल दी—उसने कहा कि बहुत घबड़ाहट होती है। सांस को रोकोगे तो घबड़ाहट तो होगी ही। तो मैंने कहा अब तू सांस को बाहर रोक ले। भीतर देख लिया, घबड़ाहट होती है, अब बाहर रोक दे। उसने कहा, उससे क्या होगा? तू भीतर आंख बंद करके देख। उसने सांस को बाहर रोक दिया, मिनट भी मुश्किल हो गया, पसीना-पसीना हो गया। आंख खोल दी और कहा कि आप मुझे मार डालेंगे। बड़ी घबड़ाहट पैदा होती है।

तो मैंने कहा तूने देखा, चिंता पैदा करने का उपाय क्या है? अस्तित्व से अपने को तोड़ लो और चिंता पैदा हो जाती है। तूने सांस भीतर रख ली, टूट गया; बाहर रख दी, टूट गया। दोनों के बीच का सेतु टूट गया। चिंता पैदा हो गयी। अब तू अपनी चिंताओं को गौर से देख। जहां-जहां तूने अस्तित्व से अपने को तोड़ लिया होगा, वहीं-वहीं चिंता पैदा होती है। इसलिए तो हम धार्मिक व्यक्ति को निश्चिंत पाते हैं। अगर न पाओ निश्चिंत तो वह धार्मिक नहीं है। कहा न मलूकदास ने—!

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम
दास मलूका कह गये सबके दाता राम

अब मलूक को चिंता नहीं हो सकती। क्या चिंता? सबके दाता राम! डोरा उसके हाथ, अब क्या चिंता है? सब भांति अपने को जोड़ दिया। जिलाये तो जियेंगे, मारे तो मरेंगे। चलाये तो चलेंगे, बिठाये तो बैठेंगे। उठाये तो उठेंगे। अपने को बीच से हटा ही लिया।

अब तुम इसे एक और तरह से भी देखो। हर बच्चे के जीवन में एक वक्त आता है। कोई तीन-चार साल, पांच साल की उम्र में, जब बच्चा अचानक आज्ञा का खंडन करना शुरू करता है। और हर बात में 'नहीं' कहने लगता है। तुमने ख्याल किया? हर बच्चे की जिंदगी में वह घड़ी आती है। जब वह हां कहना कम कर देता है और ना कहना ज्यादा कर देता है। ना कहने में रस लेने लगता है। तुम कहो यह काम मत करना तो वह जरूर करेगा। तुम कहो कि उधर मत जाना तो वह जरूर जायेगा। यही तो ईसाइयों की मूल कथा है आदमी के पतन की। कि ईश्वर ने कहा था, ज्ञान के वृक्ष के फल को मत खाना अदम, और अदम ने खाया। यह घटना हरेक के जीवन में घटती है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह बच्चे के अहंकार की शुरुआत है। जिस दिन बच्चा कहता है 'नहीं,' उस दिन बच्चे का अहंकार जन्मा। यह थोड़ा सोचने जैसा मामला है।

अहंकार नहीं के साथ जन्मता है। अहंकार का स्वर नकार का है। इसलिए जितना अहंकारी आदमी हो, उतना नास्तिक होता है। वह आखिरी नकार है-- कि ईश्वर नहीं है; उससे बड़ा कोई नकार नहीं है। इसलिए जो सदी बहुत अहंकारी होती है वह उतनी ही नास्तिक हो जाती है।

अगर अहंकार नहीं के साथ पैदा होता है तो फिर अहंकार के विसर्जन का उपाय क्या है? हां का जन्म--वही आस्तिकता है। आस्तिक का अर्थ यह है, वह कहता है, हां। जैसी मर्जी! प्रभु जैसा रखें, रहेंगे। हर हाल में हां कहेंगे। 'नहीं' निकलेगा ही नहीं। यह जो हां का जन्म है, यही आस्तिकता है। इसका परम रूप है कि ईश्वर है। ईश्वर ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। मैं नहीं हूं, ईश्वर ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। मैं नहीं हूं, ईश्वर है, यह आस्तिकता; मैं हूं, ईश्वर नहीं है, यह नास्तिकता।

नास्तिक अति चिंतित हो जाता है। इसलिए जो देश नास्तिक होता है उतने ही मानसिक रोगों से ग्रस्त होता है। जो देश जितना आस्तिक होता है, उतने ही मानसिक रोगों से मुक्त होता है। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि जिनको बहुत

मानसिक रोग होने चाहिए--भूखे हैं, गरीब हैं, बीमार हैं, दीन हैं, वे मानसिक रूप से बीमार नहीं दिखाई पड़ते। मानसिक रूप से स्वस्थ मालूम होते हैं। और जिनके पास धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, सब साधन हैं, सुविधाएं हैं, वे एकदम मानसिक रूप से रुग्ण मालूम पड़ते हैं, मामला क्या है? असल में धन, पद, प्रतिष्ठा पानेवाला आदमी अहंकारी होता है। अहंकारी होता है तभी धन, पद, प्रतिष्ठा की दौड़ में दौड़ता है। फिर अहंकार की छायाएं हैं मानसिक रोग।

अगर पश्चिम मानसिक रोगों से बहुत ग्रस्त है तो अकारण नहीं। पश्चिम ने 'ना' कह दिया है परमात्मा को। नीत्शे का वचन है: 'गॉड इज डेड एंड मैन इज फ्री।' आदमी ने घोषणा कर दी कि ईश्वर मर चुका है, और मनुष्य स्वतंत्र है। अब मनुष्य की स्वतंत्रता उसे पागल बनाये दे रही है, विक्षिप्त किये दे रही है। इस देश के मनीषियों की क्या घोषणा है? उनकी घोषणा ठीक उलटी है: मैं मर गया, तू है। नीत्शे कहता है, मैं हूं. तू मर गया।

मैं को इस विराट के समक्ष खड़ा करना चिंता लेना है। जीवन तो तुम्हारा उसके साथ है, उसमें है। उसकी सांस तुममें आती-जाती है। वही तुममें प्राणों को डालता है। वही फूंकता है। तुम उसकी ही भाव-भंगिमा हो। उसका ही एक ढंग हो।

इसलिए यह तो पूछो ही मत कि जीवन से छुटकारा हो जाए; मैं से छुटकारा हो जाए यह पूछो। तुम उलटी बात पूछ रहे हो। तुम मैं को तो बचाना चाहते हो और जीवन से छुटकारा चाहते हो। जीवन को बचाओ, जीवन बचेगा। जीवन ही बचता है। मैं को जाने दो, पिघलो! याद करो उसकी। पुकारो उसे। प्रार्थना करो उसकी।

यह बता दे कि तुझे दिल से भुलाऊं कैसे
तेरी यादों के चिरागों को बुझाऊं कैसे
आना तेरा मुहाल है, यह तो मुझे खयाल है
दर पे जमी हुई है यह अपनी नजर को क्या करूं
आना तेरा मुहाल है, यह तो मुझे खयाल है
दर पे जमी हुई है यह अपनी नजर को क्या करूं

परमात्मा की प्रार्थना में डूबो। प्रतीक्षा करो, द्वार पर नजर को अटकाओ। जानते हुए, कि आना तेरा मुहाल है, यह तो मुझे खयाल है। आना तेरा मुश्किल है। मेरी पात्रता कहां?

दर पे जमी हुई है यह, अपनी नजर को क्या करूं?

लेकिन फिर भी नजर तो लगाये हूं। नजर लगाए रखूंगा। कभी तो पात्रता होगी, कभी तो कृपा होगी, कभी करुणा होगी, कभी मेरे भाग्य भी खुलेंगे। और

आस्था रखो। अब तक नहीं आया है तो भी आस्था रखो, आयेगा।

मैं उसके वादे का अब अभी यकीन करता हूं
हजार बार जिसे आजमा लिया है मैंने

और तुमने बहुत बार पुकारा है और नहीं आना हुआ। लेकिन यही आस्था धीरे-धीरे तुम्हारी रग-रग में समा जायेगी। जब तुम्हारे भीतर जरा भी अनास्था का कोई भी कण न बचेगा उसी क्षण क्रांति घटती है; उसी क्षण वह उतर आता है। अभी याद करो, फिर जल्दी ही याद इतनी सघन हो जायेगी कि भुलाए भी न भूलेगी।

भूलने की जो मैंने कोशिश की
सांस बन-बनके उनका नाम आया

फिर तो भूल भी न सकोगे। अभी याद करना कठिन, फिर भूलना कठिन हो जायेगा। ये दो कदम हैं प्रार्थना के: पहले याद करना कठिन, फिर भूलना कठिन। फिर उठो, बैठो, चलो फिरो, मगर याद बनी ही रहती है। 'जस पनिहार धरे सिर गागर।'

देखा न! पनिहारिन सिर पर गागर रखकर चलती है, हाथ का सहारा भी नहीं देती। सहेलियों से बात भी करती है, राह में कोई मिल जाता है, हंसी-ठिठोली भी कर लेती है, गपशप भी कर लेती है। और सिर पर गागर सम्हली है। और भीतर बोध है गागर का। यह सब चलता है--बातचीत चलती है, गाना-गीत चलता है, सखियों से गुफ्तगू चलती है, हंसी-ठिठोली चलती है, यह सब चलता है। 'जस पनिहार धरे सिर गागर'। लेकिन भीतर मन, सुरति गागर में लगी रहती है। गागर को सम्हाले रखती है। गागर गिर नहीं जाती।

ऐसे ही धीरे-धीरे तुम्हारी प्रार्थना चौबीस घंटे सम्हली रहेगी। बाजार में बैठोगे, दुकान पर बैठोगे, काम करोगे, धंधा करोगे, घर सम्हालोगे--जस पनिहार धरे सिर गागर।

मगर इस तरह की वासना को जन्म ना दो। हालांकि तुम्हारी बात मैं समझता हूं। तुम्हारी पीड़ा समझता हूं, तुम्हारी प्यास समझता हूं। जानता हूं कि जब झलकें मिलनी शुरू होती हैं तो मन में भाव उठता है कि अब पूरा हो जाए। अब पूरा ही हो जाए। अधूरा-अधूरा क्या! यह बूंद-बूंद आती है तो और तरसाती है। इससे तो प्यासे ही भले थे, जब स्वाद नहीं लगा था। अब यह रस की जो बूंद-बूंद आनी शुरू हुई है, इससे और कठिनाई खड़ी होती है। अब लगता है कि रस है। आशा बंधती है। और पूरे सागर को पाने की आकांक्षा जन्मती है। लेकिन उस आकांक्षा को अगर तुमने वासना बना लिया तो वही वासना ध्यान का खंडन हो जायेगी।

वे जो झलकें आनी शुरू हुई थीं वे भी खो जायेंगी। जल्दी ही तुम भूल जाओगे कि वे झलकें आयी थीं। सावधानी बरतो।

ध्यान को किसी भी स्थिति में वासना मत बनाना। ध्यान चाहा नहीं जा सकता। जब कोई चाह नहीं होती तब घटता है। परमात्मा मांगा नहीं जा सकता। जब कोई मांग नहीं होती तब उतरता है।

तीसरा प्रश्न: आपने कहा है कि ध्यान अंतर्यात्रा है। क्या भक्ति भी अंतर्यात्रा है? ध्यान की अंतर्यात्रा और भक्ति की अंतर्यात्रा में क्या आधारभूत भिन्नता है, समझाने की अनुकंपा करें।

ध्यान भी अंतर्यात्रा है, प्रार्थना भी। लेकिन दोनों के यात्रा-पथ भिन्न हैं।

प्रार्थना, प्रेम या भक्ति, पर से होकर आती है। ध्यान सीधा-सीधा स्वयं में जाता है। जो व्यक्ति अपनी आंख बंद कर लेता है और अपने भीतर डुबकी मार लेता है, जिसको परमातमा को भी बीच में लेने की जरूरत नहीं पड़ती, जो प्रेमपात्र को बीच में नहीं लेता डुबकी लगाने के लिये, वह ध्यान कर रहा है। जो प्रेमपात्र को बीच में लेता है--परमात्मा को, उस परम प्रेमी को, उस परम प्यारे को, और उसके द्वारा डुबकी लगाता है, वह भक्ति कर रहा है। डुबकी तो भीतर ही लगती है, लेकिन एक में सहारा है और एक में सहारा नहीं है। एक में आलंबन है, एक में आलंबन नहीं है। भक्ति आलंबन-सहित ध्यान है और ध्यान निरालंब भक्ति है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं क्योंकि दुनिया में स्त्रियां हैं और पुरुष हैं। स्त्री से मेरा अर्थ है: जिसका हृदय प्रधान है। हृदय सीधी डुबकी नहीं मार सकता। उसे आलंबन की जरूरत है। हृदय को ऐसे ही आलंबन चाहिए जैसे तुम्हें अपना चेहरा देखना हो तो दर्पण चाहिए। हृदय प्रेम के संबंध को दर्पण बनाता है और अपने को देखता है। हृदय सीधा नहीं जा सकता। वह मार्ग वर्तुलाकार है। वह दूसरे से होकर जाता है। इसलिए रसपूर्ण भी है।

अकेला व्यक्ति नीरस होता है इसलिए ध्यानी को तुम नीरस पाओगे। ध्यानी को तुम सूखा-सूखा पाओगे। ध्यानी में तुम्हें फूल खिलते नहीं मालूम पड़ेंगे। और न ध्यानी में नाच उठता दिखाई पड़ेगा। इसलिए बुद्ध नहीं नाचते, मीरा नाचती है। इसलिए महावीर नहीं नाचते, चैतन्य नाचते हैं। क्योंकि महावीर ध्यानी हैं, बुद्ध ध्यानी हैं। उन्होंने दूसरे का आलंबन नहीं लिया। बिना दूसरे के आलंबन के रसधार नहीं बहती। ज्ञान की घटना घट जाती है-- रूखी-रूखी, सूखी-सूखी, मरुस्थल जैसी।

मरुस्थल का भी अपना सौंदर्य है। जिसको पसंद है उसको पसंद है। तुम कभी मरुस्थल गये? विशाल मरुस्थल, दूर दूर-तक एक रेत ही रेत! सन्नाटा ही सन्नाटा!

मरुस्थल में रात का सन्नाटा, अपूर्व सुंदर है। मरुस्थल में आकाश के तारे अपूर्व सुंदर हैं। पर मरुस्थल में न तो फूल लगते हैं, न वृक्ष हरे लगते, न जलधार बहती है।

तुम जानकर यह चकित होओगे कि बहुत-से ईसाई फकीरों ने मरुस्थल चुना था ध्यान के लिये। ध्यान के लिये मरुस्थल ही ठीक है। है। ध्यान और मरुस्थल का मेल है। सूखे पहाड़ ध्यानियों के लिये योग्य मालूम पड़े। तुमने ख्याल किया, भारत में जैनों के जितने तीर्थ हैं, वे सब पहाड़ों पर हैं। हिंदुओं के जितने तीर्थ हैं, सब नदियों के किनारे हैं। वह भक्ति और ध्यान का भेद है।

ध्यान पत्थर जैसा है। यह आकस्मिक नहीं है कि जैनों और बौद्धों ने ही सबसे पहले पत्थर की मूर्तियां बनाईं। यह आकस्मिक नहीं है। पत्थर में कुछ गुण है, जो ध्यान से मेल खाता है। बुद्ध वस्तुतः जैसे बैठे थे उसमें और बुद्ध की संगमरमर की मूर्ति में ज्यादा फर्क नहीं है। लेकिन मीरा की मूर्ति कैसे बनाओगे? नाच की मूर्ति बनाना मुश्किल है। मीरा की मूर्ति बनानी हो तो किसी फव्वारे में बनानी पड़े, पत्थर में नहीं बन सकती। जलधार में बन सकती है शायद। मीरा की मूर्ति में नृत्य तो होना ही चाहिए। अब पत्थर कैसे नाचेगा? नाचता हुआ भी खड़ा कर दो पत्थर को, तो भी पत्थर नाचता नहीं, पत्थर जड़ है।

बुद्ध के साथ तालमेल है पत्थर का! बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि उर्दू में जो शब्द है बुत, वह बुद्ध का ही रूप है। इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध का मतलब ही मूर्ति बन गया। सारी दुनिया में बुद्ध की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। कारीगरों को आसानी पड़ी। बुद्ध की मूर्ति बनाना सबसे सुगम बात थी। क्योंकि बुद्ध का अंतस्तल और मूर्ति में तालमेल था।

मीरा की मूर्ति बनाना मुश्किल। शायद अब बना सकते हैं हम। किसी फव्वारे में, या बिजली की कौंध में मूर्ति बन सकती है मीरा की, लेकिन पत्थर में नहीं। पत्थर का तो तालमेल नहीं होगा। पत्थर नाचेगा कैसे? हां, कोई वीणा बजती हो तो स्वर-ताल में शायद मीरा की मौजूदगी अनुभव हो जाए। कोई घूंघर बांधकर नाचता हो तो शायद घूंघर की आवाज में मीरा की मौजूदगी अनुभव हो जाए।

यह प्रेम का मार्ग है। इसमें दूसरा जरूरी है। दो के मिलन से वैविध्य पैदा होता है, रसधार बहती है। पुरुष अकेला बच्चे को जन्म नहीं दे सकता है। स्त्री अकेली बच्चे को जन्म नहीं दे सकती। बच्चे को जन्म देने के लिये इन दोनों विपरीत का मिलना जरूरी है। हां, पुरुष चाहे तो चित्र बना सकता है, पेंटिंग कर सकता है अकेला, स्त्री चाहे तो मूर्ति बना सकती है अकेली, लेकिन बच्चे को जन्म नहीं दे सकती।

भक्ति के लिये दो का होना जरूरी है। भक्ति दो के बीच घटी एकता है। और ज्ञान एक का अनुभव है। दोनों में अंततः एक बचता है इसलिए दोनों अंततः एक ही जगह ले जाते हैं। मगर ज्ञान शुरू से ही एक को मानकर चलता है। ज्ञान अद्वैतवादी है। भक्ति मौलिक रूप से द्वैत को स्वीकार करती है। भक्ति का हृदय बड़ा है। भक्ति कहती है दो को चलो, मानेंगे; फिर मिला लेंगे। भक्ति को भरोसा है मिलन का। दो के बीच सेतु बन सकता है, इस आस्था का नाम भक्ति है।

इसलिए जैनों में भगवान की कोई जगह नहीं है, परमात्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। बुद्ध को भी परमात्मा में कुछ लेना-देना नहीं है। पतंजलि ने भी परमात्मा को स्वीकार किया है तो न के बराबर। इतना ही कहा है कि यह भी एक उपाय है। परमात्मा कोई अस्तित्व नहीं है, ध्यान और समाधि को पाने का एक उपाय है। बहुत उपायों से समाधि पायी जा सकती है, परमात्मा को मानना भी उन उपायों में से एक उपाय है; एक आलंबन, डिवाईस। उसका कोई सत्य नहीं है परमात्मा का।

ऐसे ही एक उपाय है जैसे बच्चे को हम सिखाते हैं, 'ग' गणेश का। इसमें कोई सत्य नहीं है; 'ग' गधे का भी है। यह तो सिर्फ उपाय है। बच्चे की किताब होती है तो आ आम का; और आम, बड़ा आम--किताब में रखना पड़ता है। क्योंकि बच्चा अभी आम शब्द को नहीं समझ सकता लेकिन आम चित्र को समझ सकता है। फिर जब समझ जायेगा तो चित्र किताबों से हट जायेंगे। जैसे-जैसे बच्चे की उम्र बड़ी होगी वैसे-वैसे किताबों में चित्र छोटे होते जायेंगे। फिर रंगीन नहीं रह जायेंगे। फिर छोटे होते-होते समाप्त हो जायेंगे। विश्वविद्यालय पहुंचते-पहुंचते किताब में चित्र नहीं रह जायेंगे। लेकिन पहले दिन चित्र ही चित्र थे। शब्द तो बहुत थोड़े थे। उपाय था।

पतंजलि कहते हैं, ईश्वर भी एक अवधारणा है, एक उपाय है। इसके माध्यम से भी समाधि पायी जा सकती है। लेकिन इसकी कोई अनिवार्यता नहीं है। इसके बिना भी पायी जा सकती है। समस्त ज्ञानी निरीश्वरवादी हुए हैं। सांख्य निरीश्वरवादी हैं, जैन निरीश्वरवादी हैं, बौद्ध निरीश्वरवादी हैं। क्यों? क्या ईश्वर नहीं है? नहीं, उनका ईश्वर को जानने का ढंग और है। उनके लिये परमात्मा आत्मा की तरह जाना जाता है। वह दूसरे की तरह नहीं, बाहर नहीं, वहां नहीं, यहां। बाहर तो वे कहते हैं, नेति-नेति। यह भी नहीं, यह भी नहीं। बाहर तो वे इन्कार करते चले जाते हैं। जब सब इन्कार हो जाता है और सिर्फ भीतर की शुद्ध चेतन अवस्था रह जाती है, उसको वे कहते हैं, यही भगवत्ता है।

इसलिए मजे की बात है, जैन भगवान को नहीं मानते लेकिन महावीर को भगवान कहते हैं। बुद्ध भगवान को नहीं मानते लेकिन बुद्ध को भगवान कहते हैं।

आस्तिकों को बड़ी चिंता होती है कि मामला क्या है ? जब भगवान है ही नहीं तो फिर बुद्ध भगवान कैसे ? बुद्ध फिर भी भगवान हैं। यह भगवान को पाने का ध्यानी का ढंग है। अपने भीतर पाया जाता है। उसकी घोषणा है, अहं ब्रह्मास्मि। मैं ही ब्रह्म हूं। भक्त कहता है, तू ही है, मैं नहीं हूं। ज्ञानी कहता है, मैं ही हूं, तू नहीं है। ये दो रास्ते हैं। मगर दोनों का अंतिम अर्थ तो अंतर्यात्रा ही है।

भक्त भगवान के सहारे अपने तक पहुंचता है। आता अपने तक ही है। ज्ञानी भी अपने तक आता है। लेकिन बीच में कोई सहारा नहीं लेता। बेसहारा आता है। तुम्हारी मर्जी। जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

अगर तुम्हारे भीतर पुरुष-चित्त हो तो सहारे की जरूरत नहीं। लेकिन स्त्री-चित्त बिना सहारे के नहीं चल सकता। कुछ भूल भी नहीं, कुछ गलती भी नहीं है। वृक्ष बिना सहारे खड़ा हो जाता है, बेला को सहारे की जरूरत होती है। वह वृक्ष का सहारा लेती है। और ध्यान रखना, सभी पुरुषों के पास पुरुष-चित्त नहीं होता। और सभी स्त्रियों के पास स्त्री-चित्त नहीं होता। इसलिए विभाजन सिर्फ जैविक नहीं है, बायालॉजिकल नहीं है। कि हमने देख लिया कि यह स्त्री है तो यह भक्ति के मार्ग से जायेगी और यह पुरुष है तो ज्ञान के मार्ग से जायेगा। इतना सुगम नहीं है मामला। क्योंकि चैतन्य भक्ति के मार्ग से गये और कश्मीर में हुई एक परम ध्यानी लल्ला, वह ध्यान के मार्ग से गयी। लल्ला अकेली स्त्री है दुनिया में जो नग्न होकर रही। महावीर जैसे नग्न रहनेवाले तो बहुत पुरुष हुए। लेकिन लल्ला अकेली स्त्री है फकीरों में, जो नग्न होकर रही।

साधारणतः स्त्री अपने को छिपाती है। वह स्त्री का गुण है। वह उसका माधुर्य है, लज्जा है, मर्यादा है। वह अपने को अवगुंठन में छिपाती है। घूंघट आकस्मिक नहीं है, स्त्री का स्वभाव है।

स्त्री से घूंघट छीन लो तो कुछ उसका स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाता है। इसलिए पश्चिम की स्त्रियां उतनी स्त्रैण नहीं मालूम होतीं जितनी पूरब की स्त्रियां स्त्रैण मालूम होती हैं। पूरब की स्त्री में जो एक प्रसाद है, एक लावण्य है, वह पश्चिम की स्त्री में नहीं होता। पश्चिम की स्त्री पुरुष के बहुत करीब आ गयी। उसने पुरुष के रंग-ढंग सीख लिये। वह पुरुष के ढंग से उठती है, बैठती है, चलती है। उसकी देह भी धीरे-धीरे, धीरे-धीरे पुरुष जैसी होती जा रही है। उसके कपड़े भी पुरुष जैसे होते जा रहे हैं। उसका व्यवहार, उसकी भाषा भी पुरुष जैसी हो रही है, होती जा रही है। भेद टूट रहा है।

और भेद टूटने का परिणाम बुरा हो रहा है। जितनी ही स्त्री पुरुष जैसी होती जा रही है उतना ही पुरुष का रस उसमें कम होता जा रहा है। क्योंकि रस विपरीत

में होता है। स्त्री का स्वाभाविक भाव है, छिपा ले अपने को। वह इस दुनिया में चल रहे खेल का अंग है। वह छिपा ले तो पुरुष खोजे। पुरुष खोजी है। वह छिपे, तो पुरुष खोजे। यह छिया-छी है।

स्त्री बिना प्रेमपात्र के सोच ही नहीं सकती कि कोई जीवन में क्रांति घट सकती है। उसका सारा भाव प्रेमी से जुड़ा होता है। अगर परमात्मा भी उसके जीवन में आयेगा तो प्रेमी की तरह आयेगा। वह परमात्मा के आसपास नाचेगी, वह परमात्मा की सेवा करेगी, उसके चरण धोएगी, उसके लिये भोजन बनाएगी, उसके लिये भोग लगाएगी। वह परमात्मा के लिये खटोला बनाएगी। उसे सुलाएगी, जगाएगी, उठाएगी। और इसी में डूबेगी। और इसी में डूबते-डूबते अपने भीतर उतर जायेगी। लेकिन इसी बहाने उतरेगी। इस सीढ़ी से उसे गुजरना ही होगा।

ध्यान भी अंतर्यात्रा है, सीधी-सीधी। भक्ति भी अंतर्यात्रा है, सीधी-सीधी नहीं, परोक्ष। भक्ति का अपना सौंदर्य है, ध्यान का अपना सौंदर्य है। जो जिसको रुचे।

चौथा प्रश्न : आपने कहा कि किसी और बुद्धपुरुष के पास जाना गुरु में श्रद्धा का अभाव है। यह बात समझ में तो आती है, परंतु भगवान, हम तो साधारण जन ही हैं, अभी तो साधारण से स्त्री-पुरुष से, नाटक-फिल्म और संगीत से मिलने वाले सुख के पार भी नहीं हो पाए हैं। उसके लिये भी कामचोरी करते हैं।

मैंने यह कहा नहीं, कि बुद्धपुरुष के पास जाना, किसी और बुद्धपुरुष के पास जाना अपने गुरु में श्रद्धा का अभाव है। यह मैंने कहा नहीं। मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि अभी तुम्हें गुरु मिला नहीं। अगर गुरु मिल गया तो फिर कहीं आना-जाना नहीं। फिर अभी गुरु की तलाश चल रही है। श्रद्धा का अभाव तो मैंने कहा ही नहीं। गुरु में श्रद्धा का अभाव तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि गुरु बनता ही श्रद्धा के भाव से है। नहीं तो वह संबंध ही नहीं है।

इसको समझने की कोशिश करना। किसी व्यक्ति और तुम्हारे बीच गुरु-शिष्य का संबंध बनता कैसे है ? वह तो श्रद्धा होती है तो ही बनता है। श्रद्धा न हो तो न वह गुरु है तुम्हारा, न तुम शिष्य हो उसके। इसलिए गुरु-शिष्य में श्रद्धा के अभाव का तो कोई अर्थ ही नहीं होता। संबंध ही न रहा। बात ही खतम हो गयी।

यही मैंने तुमसे कहा कि अगर तुम्हें तुम्हारा गुरु मिल गया तो फिर सब आवागमन छूट जायेगा। फिर कहां जाना है ? जाने में कहीं भीतर खोज चल रही है। कृष्णमूर्ति का कोई भक्त मेरे पास आ जाता है तो मैं उससे पूछता ही हूं निश्चित कि क्यों ? क्या जरूरत यहां आने की ? कृष्णमूर्ति मिले, सब नहीं मिला ?

पिछले वर्ष कृष्णमूर्ति बोल रहे थे बंबई में। तो मेरे कुछ संन्यासी वहां होंगे।

उन्होंने कहा भी इन गैरिक वस्त्रधारियों को देखकर, कि तुम्हें तो तुम्हारा गुरु मिल गया है, फिर यहां क्या कर रहे हो ?

उसका सिर्फ एक ही अर्थ होता है कि तुमने कामचलाऊ नाता बना लिया होगा। तुम धोखे में हो। तुम सोचते हो कि तुम गुरु को पा लिये, लेकिन तुम्हें मिला नहीं। तुम अभी तलाश रहे हो। तुम चोरी-छिपे अभी भी देख रहे हो कि शायद इससे बेहतर कोई व्यक्ति मिल जाए। शायद कहीं कोई और भी जल्दी से परमात्मा से मिला देनेवाला हो।

अभी श्रद्धा जन्मी ही नहीं है, अभाव का तो सवाल ही कहां है ! अभी पैदा ही नहीं हुई है। और श्रद्धा, ध्यान रखना, कम ज्यादा नहीं होती। होती है या नहीं होती। श्रद्धा के खंड नहीं होते कि बीस परसेंट श्रद्धा है, कि तीस परसेंट है, कि पचास परसेंट है कि साठ परसेंट है। श्रद्धा होती है तो सौ प्रतिशत या शून्य प्रतिशत। इसमें खंड नहीं होते। तुम यह नहीं कह सकते किसी से कि मुझे आप में थोड़ी-थोड़ी श्रद्धा है। थोड़ी-थोड़ी श्रद्धा का कोई अर्थ ही नहीं होता। या तो आदमी जिंदा होता है या मरा होता है; थोड़ा-थोड़ा जिंदा नहीं होता––कि यह आदमी थोड़ा जिंदा है। वह जो थोड़ा-थोड़ा जिंदा है वह भी पूरा जिंदा है। ऐसी जिंदगी बंटती नहीं।

जिसे गुरु मिल गया उसकी ये सब बेचैनियां मिट जाती हैं। अगर ये बेचैनियां जारी हों तो इतना ही समझना चाहिए कि गुरु नहीं मिला।

और मैंने तुमसे यह नहीं कहा है कि तुम जाओ ही मत। मैंने तुमसे सिर्फ इतना ही कहा है कि सजग हो जाओ कि तुम्हें गुरु नहीं मिला है। फिर खोजो। मगर खोज फिर सचेतन होनी चाहिए। फिर बेईमानी की नहीं होनी चाहिए, धोखेधड़ी की नहीं होनी चाहिए। ऐसा भी मानते रहो कि मुझे मेरा गुरु मिल गया, फिर भी थोड़ा यहां-वहां देख आते हैं, चले जाते हैं। सिर्फ मैंने तुम्हें स्थिति को स्पष्ट किया है।

मैंने तुमसे कुछ कहा नहीं, ध्यान रखना, कोई मैंने आदेश नहीं दिया है। मैंने तुमसे कहा नहीं है कि तुम किसी और बुद्धपुरुष के पास मत जाओ। तुम्हें बुद्धों के पास जाना है, वहां जाओ। मुझे क्या लेना-देना है ? मगर जानते हुए जाओ। कहीं इस धोखे में मत रहना कि तुम्हें गुरु भी मिल गया है और यहां थोड़े-बहुत मनोरंजन के लिये यहां-वहां चले जाते हैं। इस धोखे में मत रहना। तुम्हें गुरु नहीं मिला है। इतना साफ हो तो फिर ठीक से खोजो।

जिंदगी की सारी उलझन यही है कि हम कुछ का कुछ माने बैठे रहते हैं। तो जो करना चाहिए वह नहीं कर पाते। अगर गुरु नहीं मिला है तो खोजना ही चाहिए। फिर जाना ही चाहिए। फिर एक के पास क्या, जहां कहीं खबर मिले

वहां जाना चाहिए। जब तक गुरु न मिल जाए तब तक तो खोज जारी रखनी ही पड़ेगी। लेकिन जब गुरु मिल जाए तो आ गया विश्राम का स्थल। फिर वहां पूरे सर्मापित हो जाना चाहिए। जहां तुम्हें मिल जाए ! तुम भूलकर भी यह मत सोचना कि मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम यहां सर्मापित हो जाओ। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि कहीं भी सर्मापित हो जाओ, लेकिन जहां सर्मापित हो जाओ फिर वहां सर्मापित हो ही जाना। फिर बचाना मत; फिर अपने को थोड़ा-बहुत बचाकर मत रखना कि शायद फिर कभी कोई और बेहतर गुरु मिल जाए।

गुरु बेहतर और गैर-बेहतर होते ही नहीं। यह तो प्रेम का आत्यंतिक संबंध है। यह तो अतुलनीय है। एक गुरु मिल गया कि तुम्हें सब गुरु उसी में मिल गये। उसी में तुम्हारा बुद्ध है, उसी में तुम्हारा महावीर है, उसी में तुम्हारे क्राईस्ट, उसी में तुम्हारे कृष्ण, उसी में तुम्हारा सब कुछ पूरा हो गया। और जब तक ऐसा व्यक्ति न मिल जाए जिसमें तुम्हारी सब आकांक्षाएं प्रकाश को देखने की पूरी हो गयीं तब तक समझना, अभी गुरु नहीं मिला। जल्दी क्या है ? खोजो।

और इन्दिरा ने कहा है कि हम तो साधारण जन हैं। मजे से साधारण जन रहो। इससे ऊपर उठना है कभी या नहीं ? अगर साधारण जन ही रहना है तो मुझे कोई अड़चन नहीं तुम्हारे साधारण जन रहने से। मुझे क्या अड़चन हो सकती है ? तुम साधारण जन मजे से रहो। लेकिन आदमी गुरु की तलाश में निकलता इसीलिए है कि यह जो साधारण जीवन है, यह जो दो कौड़ी का जीवन है इससे पार उठ जाए। इससे पार होने के लिये तुम मेरे पास हो। और जब मैं तुमको पार होने को कहूं तो तुम यह दलील नहीं दे सकते कि हम साधारण जन हैं, हम कैसे उठें पार ? हम तो साधारण जन हैं; साधारण ही रहेंगे। तो फिर मेरे पास क्या कर रहे हो ? फिर यहां प्रयोजन क्या है ? फिर इतनी बड़ी दुनिया है, वहां सब साधारण जन रह रहे हैं, तुम भी वहीं रहो।

यहां कोई अनूठा प्रयोग हो रहा है जिसमें तुम्हें पार ले जाने की चेष्टा चल रही है। जिसमें तुम्हें नाव दी जा रही है कि उस किनारे चले जाओ। नाव को भी पकड़े हो, नाव में सवार भी हो, और जब नाव चलती है तो चिल्लाते हो; कहते हो कि हम तो साधारण जन हैं, हम तो इसी किनारे रहेंगे। फिर नाव में किसलिए चढ़े हो ? जिंदगी को साफ-सुथरा करो। जिंदगी के गणित को व्यर्थ उलझाओ मत। वैसे ही बहुत उलझन है। मैं तुमसे कह नहीं रहा कि तुम सिनेमा मत जाओ, नाटक मत देखो, फिल्म में मत जाओ, मैं कुछ नहीं कह रहा। मैं तो तुमसे इतना ही कह रहा हूं कि जो भी तुम करो, सोच-विचार कर करो कि क्या कर रहे हो। वेश्यालय जाओ, शराबघर जाओ, बस समझ कर जाओ कि यह मैं कर रहा हूं। और यही मैंने

अपने जीवन को माना है और इससे ऊपर मुझे जाना नहीं है। यहीं मुझे रह जाना है। तुम मालिक हो अपने।

मेरे पास अगर तुम हो तो इसीलिए हो कि तुम इसके ऊपर जाना चाहते हो। गिरोगे बहुत बार, मगर फिर भी ऊपर जाने की चेष्टा, उठने की चेष्टा--फिर-फिर उठोगे, गिर-गिर कर उठोगे। गिरने को तुम स्वीकार न कर लोगे। गिरने को तुम अंगीकार न कर लोगे। तुम कहोगे, चेष्टा जारी रहेगी। कितना ही फिसलूं और कितना ही गिरूं, लेकिन उठने की चेष्टा जारी रहेगी। इस उठने की चेष्टा का नाम ही संन्यास है। उत्तिष्ठत, जाग्रत, वरान्निबोधत। उठो, जागो।

अब सामान्यता का यहां आकर तुम आग्रह करो तो यहां होने की कोई जरूरत नहीं है। और ध्यान रखना, मैं कठोर नहीं हूं। मैं सिर्फ तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम्हारी जिंदगी है, उसको व्यर्थ मत उलझाओ। सिनेमा देखना हो तो देखो, मंदिर में मत बैठो। अक्सर लोग यह कर रहे हैं बैठे मंदिर में हैं, देखना सिनेमा चाहते हैं। कुछ लोग मंदिर में न बैठकर सिनेमा में बैठे हैं, होना चाहते हैं मंदिर में।

दो युवक एक सांझ घूमने निकले। राम की कथा चलती थी। एक ने कहा कि भाई, राम की कथा सुनें। कहते हैं, कथा के श्रवण से तो आदमी के सब दुख हट जाते हैं। भवसागर से आदमी पार हो जाता है। दूसरे ने कहा तुम्हारी मर्जी, तुम्हें सुनना हो, सुनो। मैं तो गांव में एक वेश्या आयी है, उसका नृत्य देखने जा रहा हूं। एक वेश्या का नृत्य देखने चला गया, एक राम की कथा सुनने बैठ गया। जिसने वेश्या का नृत्य देखा उसने बार-बार सोचा वेश्या का नृत्य देखकर कि यह भी मैं कहां आ गया! पता नहीं वहां कैसी आनंद की वर्षा हो रही होगी रामकथा में! प्रभु का स्मरण होता होगा। एक मैं अभागा कि इस बदशकल-सी औरत के ऊधम को देख रहा हूं। मैं वहीं रुक गया होता तो अच्छा था। और उस युवक ने, जो वहां रुक गया था, उसने सोचा मैं भी क्या यह वही पुरानी पिटी-पिटाई कथा--कि राम और उनकी सीता चोरी चली गयी और रावण, और सब यही मूढ़ता, यह हनुमान! मैं कहां पड़ गया, बैठ गया! मेरा मित्र न मालम कितने मजे कर रहा होगा! कैसा आनंद न ले रहा होगा! पता नहीं कैसी सुंदर हो स्त्री। पता नहीं कैसा नाच हो रहा हो। मैं भी बुद्धू!

पहला युवक जो वेश्यालय में बैठा रहा, वहां से लौटा तो बड़ा शांत होकर लौटा। क्योंकि राम का स्मरण चलता रहा पूरे समय। और दूसरा युवक, जो रामकथा सुनता था, बड़ा अशांत होकर लौटा। क्योंकि पूरे वक्त वेश्या का स्मरण चलता रहा।

ऐसी उलझनें हैं। मैं चाहता हूं तुम सुलझ जाओ। तुम्हारी जिंदगी में एक साफ-साफ दिशा हो। साधारण होना है, साधारण रहो। मेरे पूरे आशीर्वाद। साधारण

होने के ऊपर उठना है तो फिर ऊपर उठने के संकल्प में समर्पित हो जाओ। तो फिर कुछ करो ऊपर उठने के लिये। ऊपर उठने की बातें करो और जब मैं ऊपर उठने की बातें कहूं तो नीचे खिसको; कहो कि हम साधारण जन हैं, हम कहां ऊपर उठेंगे? तो फिर ऊपर उठने की बात ही मत करो। जीवन में अकारण तनाव पैदा नहीं करने चाहिए। तनावरहित जीवन सुंदर होता है, स्वाभाविक होता है।

मेरे पास यहां हो तो उसका अर्थ ही यही होता है कि तुमने कुछ असाधारण की खोज की है, आकांक्षा की है कम से कम, जिज्ञासा की है। साधारण तुम हो, लेकिन साधारण नहीं रहना चाहते हो इस बात का सूत्रपात हुआ है। अब लौट-लौट कर पीछे मत गिरो, और साधारण होने की दुहाई मत दो।

अब इन्दिरा ने कहा कि आपने कहा है कि और किसी बुद्धपुरुष के पास जाना गुरु में श्रद्धा का अभाव है। यह बात समझ में तो आती है--जरा भी समझ में नहीं आती। समझ में आ गयी होती तो प्रश्न नहीं उठता। यह समझ झूठी है। यह सिर्फ चालबाजी की समझ है। यह सिर्फ दिखानेवाली समझ है। ये दिखाने के दांत हैं, ये असली दांत नहीं हैं। अगर समझ में बात आ गयी तो आ गयी समझ में, फिर क्या पूछने को है?

नहीं, समझ में नहीं आती लेकिन यह भी मानने की हिम्मत नहीं है कि मैं नासमझ हूं। इसलिए यह भी चलता है साथ-साथ कि समझ में भी आती है और, किन्तु, परन्तु। किन्तु-परन्तु शुभ लक्षण नहीं हैं। समझ में आ गयी बात, समझ में आ गयी। फिर कोई किन्तु-परन्तु नहीं होते। और किन्तु-परन्तु हों तो समझ में बात आती नहीं। हमेशा साफ रहो। न समझ में आती हो तो जबरदस्ती दिखाओ मत कि समझ में आ गयी। साफ-साफ कहो। मेरे पास इसीलिए तो हो कि समझ में आ सके। धोखा किसको देना है? किन्तु-परन्तु जोड़ो ही मत। साफ कह दो कि यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। तो मैं तुम्हें फिर से समझाऊं; तो तुम्हें हजार बार समझाऊं। लेकिन तुम यह भी नहीं कहते कि समझ में नहीं आयी। तुम कहते हो यह बात तो समझ में आ गयी है, किन्तु ...!

अब यह किन्तु बड़ा बेहूदा है। समझ में आ गयी तो बात समाप्त हो जाना चाहिए। लेकिन हर किन्तु बताता है कि समझ का अहंकार भी नहीं छोड़ा जाता और बात समझ में आयी भी नहीं। तो तुम दलीलें खोजते हो कि ऐसा हमने इसलिए किया कि हम तो साधारण जन हैं। ऐसा हमने इसलिए किया कि हमारे भीतर सत्य की जिज्ञासा है। ऐसा हमने इसलिए किया कि आप और वे कहते तो एक ही बात हैं। ऐसा हमने इसलिए किया कि सभी का अंतिम लक्ष्य तो एक ही है।

ये सारी की सारी बातें जो तुम लाते हो, अगर ये समझ में आ गयी हों तो

तुम परम ज्ञानी हो गये। फिर तुम्हें शिष्य होने की जरूरत नहीं, तुम गुरु हो गये। लेकिन यह तुम्हें कुछ भी समझ में नहीं है। न तुम्हें यह पता है कि मेरी बात और उनकी बात एक है। तुम्हें क्या पता होगा! तुम्हें अभी यही पता नहीं कि बात क्या है। दोनों बातें एक हैं यह तो तब पता चलेगा, जब बात क्या है यह पता चल जाए। और वह अनुभव से होगा। अभी तुम मान लेना चाहते हो कि दोनों की बातें एक होनी ही चाहिए। मान लेना चाहते हो। क्योंकि तुम इस झंझट में भी नहीं पड़ना चाहते कि दोनों की बातें भिन्न हों तो तुम्हारे भीतर चिंता पैदा होगी।

यहां रोज यह होता है। रोज मेरे पास पत्र आते हैं। जो जिसको मानता है... कोई लिखता है कि आपकी बात तो बिल्कुल ठीक रामकृष्ण परमहंस देव जैसी है। मैं उनका भक्त हूं। कोई कहता है, आपकी बात तो ठीक कृष्णमूर्ति जैसी। मैं उनका भक्त हूं। कोई कहता है, आपकी बात तो ठीक वही है जो कुरान में लिखी है।

ये लोग क्या कह रहे हैं? न इन्हें कुरान का पता है, न रामकृष्ण का, न कृष्ण-मूर्ति का, न मेरा। इनकी अड़चन क्या है? इनकी अड़चन यह है, ये यह समझाना चाह रहे हैं अपने को, कि बात अलग नहीं होनी चाहिए, नहीं तो झंझट खड़ी होगी। फिर कौन ठीक है यह सवाल उठेगा। फिर कृष्णमूर्ति ठीक हैं कि रामकृष्ण ठीक हैं कि रमण ठीक हैं? कौन ठीक हैं? ये इतनी झंझट में नहीं पड़ना चाहते। ये इतना महंगा सौदा नहीं करना चाहते। ये कहते हैं, सभी ठीक हैं, इसलिए जो भी पकड़े हो ठीक ही पकड़े हो। अब कुछ फिर विचार करने की, पुनर्विचार करने की कोई जरूरत नहीं है।

तुम्हें दुनिया में जितने समन्वयवादी दिखायी पड़ें उनमें से सौ में से निन्न्यानबे सिर्फ बेईमान होते हैं, जो कहते हैं, 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।' वे सिर्फ यह कर रहे हैं कि कौन झंझट में पड़े! कि उसका नाम अल्लाह है कि ईश्वर है, कि क्या है। जो भी हो ठीक है, लेना-देना क्या है? होगा, एक ही होगा। वे सिर्फ उपेक्षा कर रहे हैं। वह इतने भी--समादर नहीं है उनके भीतर कि इतनी शक्ति भी लगायें कि तय कर लें कि क्या ठीक है।

अधिकतर लोग, सब धर्म एक ही बात कहते हैं, इसीलिए कहते हैं ताकि चुनाव करने की झंझट से बचा जा सके। इसलिए नहीं कि उन्हें पता हो गया कि सभी धर्म एक हैं। यह तो पता होता है उसको जिसने धर्म के सार को अनुभव किया; जो पहुंचा उस शिखर पर। यह रामकृष्ण को पता था कि सभी धर्म एक हैं। यह मुझे पता है कि सभी धर्म एक है। यह तुम्हें पता नहीं है। और अगर तुम ऐसा मानकर चले कि सभी धर्म एक हैं तो इसका कुल परिणाम इतना होगा कि तुम किसी धर्म की मानकर चल न सकोगे। तुम कहोगे, सभी एक हैं। चलना क्या है? हमें मालूम ही है। वही

तो गीता कहती है, वही कुरान कहता है। न तुमने गीता पढ़ी है, न तुमने कुरान पढ़ा।

और गीता, कुरान पढ़कर भी तुम हो सकता है कि सोच लो कि दोनों एक हैं। लेकिन तुम्हें उस एक का अभी पता ही नहीं है तो तुम गीता में भी उसे कैसे खोजोगे और कुरान में भी तुम उसे कैसे खोजोगे? मैंने ऐसी किताबें देखी है जो सिद्ध करती हैं कि गीता-कुरान एक हैं; हिंदुओं के द्वारा लिखी गयीं। और ऐसी किताबें देखी हैं कि जो सिद्ध करती हैं कि कुरान और गीता एक हैं; मुसलमानों के द्वारा लिखी गयीं। और बड़ा मजा है, उन दोनों की किताबें बिलकुल अलग-अलग हैं। जो आदमी गीता को ठीक मानता है वह कुरान में वे ही बातें खोज लेता हैं जो गीता में हैं। शेष को छोड़ देता है। उसकी किताब का अलग ही अर्थ निकलता है। जो आदमी कुरान को ठीक मानता है, वह गीता में वही बातें खोज लेता है जो कुरान में हैं। और उनको छोड़ देता है जो गीता में हैं और कुरान में नहीं हैं। उसकी किताब का बिल्कुल ही अलग अर्थ निकलता है। वे दोनों बिल्कुल भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

महात्मा गांधी ने भी यही कहा कि कुरान में वही बात है जो गीता में है; लेकिन कुरान के वे हिस्से उन्होंने बिलकुल छोड़ दिये जो वस्तुतः कुरान है। उन्होंने सिर्फ गीता की प्रतिध्वनियां पकड़ लीं। गीता तो ठीक है यह उनको पता है। अब कुरान में भी जो-जो गीता से मिलता है, ठीक होना चाहिए। होना ही चाहिये क्योंकि गीता ठीक है। मगर जो गीता से नहीं मिलता उसके संबंध में क्या कहोगे? और बहुत-सी बातें हैं जो नहीं मिलतीं। और बहुत-सी बातें हैं जो न केवल नहीं मिलतीं बल्कि विपरीत जाती हैं, उनके संबंध में क्या कहोगे? वहां अड़चन खड़ी हो जाती है। उनके संबंध में तो वही आदमी कह सकता है जिसने सत्य को जाना। और यह जाना कि सत्य के अनेक पहलू हैं। और गीता एक पहलू कहती है और कुरान दूसरा पहलू कहता है। एक ही नहीं हैं। दोनों के दृश्य बड़े अलग-अलग हैं।

तुमने अपने कमरे की एक खिड़की खोली जो पूरब की तरफ खुलती है। और तुमने सूरज को ऊगते देखा। यह एक दृश्य है। हालांकि उसी सूरज का है, उसी आकाश का है, लेकिन यह एक दृश्य है। फिर तुमने पश्चिम की खिड़की खोली और वहां अभी कोई सूरज नहीं है। वहां तुमने दूसरे दृश्य देखे--पहाड़ देखे, आकाश में उड़ते पक्षी देखे। यह माना कि वही आकाश है, लेकिन यह दृश्य बिलकुल दूसरा है। अब पक्षी और सूरज एक नहीं हैं। पहाड़ और सूरज एक नहीं हैं।

अब जो व्यक्ति गीता और कुरान को एक करने में लगा है, वह सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि पहाड़ का मतलब सूरज होता है। 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम'।

कि सूरज का मतलब पहाड़ होता है। होना तो चाहिए एक ही। पूरब की खिड़की पूरब का दृश्य देती है, पश्चिम की खिड़की पश्चिम का दृश्य देती है। दक्षिण की खिड़की दक्षिण का दृश्य देती है। उत्तर की खिड़की उत्तर का दृश्य देती है।

और सत्य के अनेक पहलू हैं। और एक धर्म एक ही पहलू की बात करता है। एक की ही कर सकता है। और सत्य के इतने पहलू हैं कि कुछ पहलू ऐसे हैं जो इस पहलू से ठीक विपरीत पड़ते हैं। वे बातें एक नहीं हैं। एक ही सत्य के संबंध में हैं लेकिन बातें बिल्कुल अलग-अलग हैं।

तो कोई मेरे पास पत्र लिखकर भेज देता है कि हम तो सभी को सुनते हैं। आपको भी सुनते हैं, उनको भी सुनते हैं। मुझे कोई एतराज नहीं है। मुझे भी सुनें, उन्हें भी सुनें। लेकिन चलेंगे कब? सुनते ही रहेंगे? सुनते-सुनते तो तुम्हारे कान वैसे ही पक गये हैं। और कब तक सुनते रहोगे? आदमी सुनता है गुनने के लिये, गुनता है करने के लिये। तुम सिर्फ सुन ही रहे हो। सुनते-सुनते ही तुम सोचते हो, कुछ हो जानेवाला है? और फिर इसको भी सुन लिया, उसको भी सुन लिया।

तुम बड़े वणिक हो। तुम सोचते हो, पता नहीं किसके सुनने से मिल जाए! सभी को सुन लो, हर्ज क्या है! आयुर्वेदिक चिकित्सक के पास भी चले गये और दवा ले आये और एलोपैथिक चिकित्सक के पास भी चले गये और दवा ले आये। और हकीम के भी पास चले गये और होमियोपैथ के पास भी चले गये। और सबकी दवाएं घोल-घालकर पी गये। मरोगे! बीमारी तो मिटेगी नहीं, बीमार मिट जायेगा। और सब दवाएं ठीक हैं। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि दवाओं में कुछ गलती है। मगर होमियोपैथी का अपना विश्लेषण है, वह अलग खिड़की है। और एलोपैथी का अपना विश्लेषण है, वह अलग दृश्य है। और जीवन को पकड़ने की उनकी शैली भिन्न है। अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, होमियोपैथी-एलोपैथी तेरे नाम —— ऐसा मत करना।

अल्लाह का अपना ध्वनि-शास्त्र है, राम का अपना ध्वनि-शास्त्र है। राम के मंत्र की अलग प्रक्रिया है। अल्लाह के मंत्र की अलग प्रक्रिया है। अल्लाह का मंत्र अलग केंद्र से पैदा होता है तुम्हारे भीतर। राम का मंत्र अलग केंद्र से पैदा होता है। वे नक्शे अलग हैं। और उन नक्शों को मिला मत लेना। नहीं तो तुम राम से भी चूकोगे और अल्लाह से भी चूकोगे। कहीं ऐसा न हो, बीमार तो मर जाए और बीमारी बनी रहे। चिकित्सा-शास्त्रों का कभी घोलमेल मत करना। ये सब चिकित्सा-शास्त्र हैं। बुद्ध ने कहा है कि मैं वैद्य हूं। ये सब चिकित्सा-शास्त्र हैं। और प्रत्येक शास्त्र की अपनी पूर्णता है, अपनी निजता है। प्रत्येक शास्त्र का अपना निदान है, अपना व्यक्तित्व है। उसे खराब मत कर देना। और जब तुम एक शास्त्र की मानकर

चलो तो सारे शास्त्रों को भूल जाना। तभी तुम निमज्जित हो सकोगे, तभी तुम पूरे उसमें डूब सकोगे। इतना ही मैंने कहा है। तुम्हें जहां रुचि लगे, जहां प्रीति लगे, वहां पूरे डूब जाओ ताकि तुम पहुंच सको।

इसी संबंध में पांचवां प्रश्न: जिस भूल के लिये आपने उस दिन हमारी आलोचना की, उसका दोषी मैं भी हूं और हृदय से क्षमा मांगता हूं। आपकी कठोरता भी आपकी करुणा, आपके प्रेम से आती है ऐसा मेरा अनुमान है। जहां तक मैं समझता हूं, प्रेम और स्वतंत्रता आपकी देशना का आधार है। और मुझे लगा कि उस दिन प्रेम तो उभर कर ऊपर आया, लेकिन स्वतंत्रता थोड़ी खंडित हुई। क्या मैं भूल में हूं?

स्वतंत्रता तभी संभव है जब स्व का आविर्भाव हो जाए। वही उस शब्द का अर्थ भी है। अभी स्व का भी तुम्हें पता नहीं है, स्वतंत्रता तो कैसे संभव होगी? स्व के बिना स्वतंत्रता नहीं हो सकती। अभी बीज नहीं बोया गया, तुम फसल काट रहे हो। पहले बोओ तो, फिर काटना भी। अगर मैं तुमसे कहूं कि अभी तुमने बीज नहीं बोये, तुम फसल काट रहे तो तुम कहते हो हमें आप फसल नहीं काटने देते। तुम्हारी मर्जी, काटो! मगर फसल है कहां? फसल होनी भी चाहिए।

स्वतंत्रता स्व की छाया है। इसलिए तो उसका नाम स्व-तंत्रता। वह स्व का तंत्र है। लेकिन स्व कहां है? अभी तुम स्वयं कहां हो? अभी तुमने जाना कहां उस बात को जो तुम्हारी स्वयं की निजता है? अभी तुमने आत्मा को पहचाना कहां? अभी तुम स्वतंत्रता की बातें करोगे, भटक जाओगे। गड्ढों में गिरोगे। और फिर मैं यह भी नहीं कह रहा हूं, मना भी नहीं कर रहा हूं। तुम्हें अगर स्वतंत्रता में ही रस हो, अभी रस हो बिना स्व के, तुम करो। सिर्फ परिणाम तुम्हें सचेत कर देना चाहता हूं। उसके परिणाम घातक होंगे।

यह ऐसे ही होगा जैसे छोटा बच्चा अपनी मां से कहे कि मुझे तो आग की तरफ जाना है। और मेरी स्वतंत्रता है, स्वतंत्रता तो सभी का अधिकार है। तो मैं उस बच्चे से कहूंगा कि तू मजे से जा लेकिन जलने की तैयारी रखना। अगर जल जाए तो मां को फिर दोषी मत ठहराना। लेकिन मजा यह है कि अगर बच्चा जल जाए तो मां को दोषी ठहराता है कि तुमने रोका क्यों नहीं? तुम तो जानती थीं कि आग जलाती है। खैर मैं तो अबोध हूं; तुमने क्यों नहीं रोका? और अगर मां रोके तो स्वतंत्रता में बाधा आती है।

मैं अगर तुम्हें रोकूं कुछ गलत करने से तो तुम्हारी स्वतंत्रता में बाधा आ जाती है। अगर मैं न रोकूं तो कल्ल तुम मुझ ही को उतरदायी ठहराओगे कि आपने क्यों नहीं रोका? हम तो अंधे थे, आप तो अंधे नहीं थे। अगर हम दीवाल की तरफ

जा रहे थे तो आपने कहा क्यों नहीं कि टकराओगे, चोट खाओगे ? अगर हम जहर पीते थे तो चौंकाया क्यों नहीं हमें कि यह जहर है, अमृत नहीं ? तुम मेरी मुसीबत समझते हो ? अगर तुम्हें रोकूं तो निश्चित तुम्हें लगता है, तुम्हारी स्वतंत्रता में बाधा पड़ी। अगर तुम्हें जाने दूं तो आज नहीं कल तुम कहोगे कि आपने गुरु होने का दायित्व नहीं निभाया। इसलिए मैं तुम्हें सिर्फ स्थिति साफ कर देना चाहता हूं, फिर तुम्हारी मर्जी।

सदा याद रखना कि मैं जो भी तुमसे कहता हूं, उपदेश है, आदेश नहीं। उपदेश और आदेश का भेद ख्याल में रखना। यह कोई सेना नहीं है, जहां कोई आदेश दिये जा रहे हैं, कि ऐसा करो, दायें घूमो, बायें घूमो। सिर्फ तुमसे वही कह रहा हूं जो तुम्हारे काम पड़ जाए। फिर अंततः निर्णय तुम्हारा है। अगर मैं तुमसे कहता हूं कि मत जाओ उस तरफ गड्ढा है, तो मैं यह नहीं कहा रहा हूं कि तुम जा नहीं सकते। कि जाओगे तो सजा दूंगा। नहीं, सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि उस तरफ गड्ढा है, जाओगे तो गिरोगे, सजा पाओगे। मैं दूंगा ऐसा नहीं। वह गड्ढे में गिरने से सजा हो जायेगी। फिर भी तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि मत जाओ, इतना ही कह रहा हूं कि जानते हुए जाना। स्वीकार करते हुए जाना। अगर गड्ढे में गिरने की स्थिति को स्वीकार करने की हिम्मत हो तो मजे से जाना। लेकिन फिर लौटकर यह मत कहना कि मुझे रोका क्यों नहीं ?

प्रेम और स्वतंत्रता के बीच कठिनाई है। वही तो सारे माता-पिताओं की कठिनाई है। वही तो सभी गुरुओं की कठिनाई है। अगर बच्चे को प्रेम करो तो वह स्वतंत्रता मांगता है। अगर उसे स्वतंत्रता दो तो मां-बाप का प्रेम प्रमाणित नहीं होता। अगर पूरी स्वतंत्रता दे दो तो तभी संभव है, जब मां-बाप को कोई प्रेम न हो। तब तुम कहोगे प्रेम खंडित हुआ। मां-बाप अपने बच्चे को पूरी स्वतंत्रता दे सकते हैं—पूरी, बेशर्त, तभी जब प्रेम न हो। तब बच्चा छत से गिर रहा है तो वे मजे से खड़े देखते रह सकते हैं। यह उसकी स्वतंत्रता है। वह आग में जा रहा हो यह उसकी स्वतंत्रता है, जहर पी रहा हो यह उसकी स्वतंत्रता है। लेकिन इनको तुम मां-बाप कहोगे ? इनके पास प्रेम नहीं है। और अगर ये प्रेम का उपयोग करें, और जगह-जगह उसे खींचें और आग में न जाने दें, और छत से न गिरने दें तो तुम कहोगे यह क्या हुआ ! ये बच्चे की मार डालेंगे। उनकी स्वतंत्रता नष्ट हो रही है।

मां-बाप को देखना पड़ता है कि दोनों के बीच एक संतुलन बना रहे। प्रेम इतना ज्यादा न हो जाए कि बच्चे का जीवन नष्ट हो जाए। स्वतंत्रता इतनी ज्यादा न हो जाए कि बच्चे का जीवन कष्ट में पड़ जाए या नष्ट हो जाए। प्रेम और स्वतंत्रता के बीच एक संतुलन चाहिए। ठीक वैसा ही जैसे तुमने कभी किसी नट

को रस्सी पर चलते देखा हो। हाथ में एक लकड़ी लिये रखता है, संतुलन के लिये। जब बायीं तरफ ज्यादा झुक जाता है तब जल्दी से दायीं तरफ झुक जाता है ताकि संतुलन बन जाए। जरा और गया होता कि गिरता। बायीं तरफ गिरने से बचना है तो दायीं तरफ झुक जाता है। और दायीं तरफ थोड़ी दूर तक झुकता है और फिर तत्क्षण बायीं तरफ झुक जाता है, नहीं तो दायीं तरफ गिर जायेगा। तब रस्सी पर चल पाता है। और जीवन रस्सी पर चलने जैसा है। उतना ही कठिन है। उतने ही गिरने की संभावना है। प्रेम और स्वतंत्रता के बीच ऐसी ही व्यवस्था साधनी होती है।

गुरु प्रेम भी करेगा और स्वतंत्रता भी देगा। लेकिन देखेगा कि प्रेम इतना ज्यादा हुआ जा रहा है कि स्वतंत्रता टूटने लगी, तो स्वतंत्रता की तरफ झुक जायेगा। और देखेगा कि अब स्वतंत्रता इतनी ज्यादा हुई जा रही है कि अब प्रेम की गर्दन कट जायेगी, तो प्रेम की तरफ झुक जायेगा। वही सद्गुरु है, जो न तो प्रेम के लिये स्वतंत्रता को नष्ट होने दे, न स्वतंत्रता के लिये प्रेम नष्ट होने दे। जो दोनों को साध ले वही सद्गुरु। उसी की कीमिया से गुजरकर तुम्हारे जीवन में दोनों पंख होंगे—स्वतंत्रता का भी और प्रेम का भी। तुम आकाश की गति कर पाओगे। एक पंख से कोई नहीं उड़ सकता। अकेला स्वतंत्रता का पंख काफी नहीं है और अकेला प्रेम का पंख भी काफी नहीं है। प्रेमपूर्ण स्वतंत्रता—ये विरोधाभासी शब्द हैं। लेकिन यही जीवन का रसायन है।

आखरी प्रश्न : मैं प्रेम के संबंध में बहुत सोचता हूं। आपकी बातें ठीक भी लगती हैं; कभी ठीक और कभी ठीक नहीं भी लगती हैं। मेरे लिये क्या मार्गदर्शन है ?

प्रेम का सोचने से क्या संबंध ? करो ! जियो ! जलो ! सोचते-सोचते जीवन गंवा दोगे। अक्सर सोचनेवाले प्रेम नहीं कर पाते। क्योंकि सोचना होता है मस्तिष्क में और प्रेम होता है हृदय में। वे दोनों अलग केंद्र हैं। उनके अलग आयाम हैं। सोचनेवाला धन कमा सकता है, प्रेम गंवा देगा। प्रेम करनेवाला प्रेम कमा लेगा, हो सकता है धन गंवा दे। वे दोनों अलग यात्राएं हैं। और व्यक्ति को साफ-साफ निर्णित हो जाना चाहिए कि उसे प्रेम के मार्ग पर जाना है ? जाना है तो सोचो मत। प्रेम भाव है, विचार नहीं। क्या सोचोगे प्रेम के संबंध में ? सोच-सोच कर भी क्या सोच पाओगे ? यह ऐसा है जैसे अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में सोचे... सोचता रहे, सोचता रहे। क्या सोचेगा ? आंख की चिकित्सा करवानी होगी, सोचने से कुछ न होगा। तुम प्रेम के संबंध में क्या सोचोगे ? प्रेम की पीड़ा से गुजरना होगा।

और ध्यान रखना, तुम अगर तथाकथित सांसारिक प्रेम की पीड़ा से न गुजरे

तो तुम ईश्वरीय प्रेम को भी न पा सकोगे । यह संसार सीढ़ी है । इस सीढ़ी पर चढ़ना होगा । इसी संसार के प्रेम में तुम्हें धीरे-धीरे उस प्रेम की भनक सुनाई पड़ती है । मैं इस संसार से भागने को नहीं कह रहा हूं । मैं यह कह रहा हूं, इस संसार का पूरा उपयोग कर लो । यह एक अवसर है, महान अवसर है । यहां प्रेम के बहुत-बहुत मौके हैं । इन सब मौकों को ठीक-ठीक तलाश लो, खोज लो, इनका अनुभव ले लो, निचोड़ लो, इनका इत्र बना लो । यही इत्र तुम्हारी प्रार्थना में काम आयेगा । आखिर तुम्हारी प्रार्थना में इन्हीं सबका तो रंग होगा !

जिसने कभी अपनी पत्नी को प्रेम नहीं किया उसका परमात्मा से प्रेम भी कुछ अधूरा रहेगा, कुछ कमी रहेगी । जिसने कभी अपने बेटे को नहीं चाहा, जिसने कभी अपने पति को नहीं चाहा, अपने पिता को नहीं चाहा उसके परमात्मा के प्रेम का क्या अर्थ होगा ? कैसा होगा वह प्रेम ? सोचो !

जीसस ने परमात्मा को पिता कहा है-- अब्बा । अगर जीसस ने अपने पिता को प्रेम न किया हो तो जब वे परमात्मा को अब्बा कहेंगे, उसमें क्या अर्थ होगा ? वह अब्बा शब्द कोरा होगा, खाली होगा । उसमें कुछ भी नहीं होगा । विषय-वस्तु होगी ही नहीं । मीरा ने कृष्ण को प्रीतम कहा है । अगर अपने पति में, अपने प्रेमी में कभी कोई अनुभव न हुआ हो तो यह प्रीतम शब्द का क्या अर्थ होगा ? इसका कुछ भी अर्थ नहीं होगा । यह अर्थहीन शब्द होगा ।

सूफियों ने परमात्मा को अपनी प्रेयसी कहा है, अपनी प्यारी कहा है । लेकिन जिसने किसी स्त्री के प्रेम में आंसू न बहाये हों और जो किसी स्त्री के प्रेम में तड़फा न हो उसको क्या पता होगा ? वह कैसे परमात्मा को प्रेयसी कहेगा ? कैसे पुकारेगा प्राणप्यारी कहकर ? उसके शब्द होंठों पर होंगे, हृदय में नहीं होंगे । जिसने अपने बच्चे को प्रेम नहीं किया-- जैसे सूरदास कृष्ण के बालपन की ऐसी प्यारी-प्यारी, मीठी-मीठी गीतिकाएं गाते हैं, जिसने अपने बच्चे को प्रेम नहीं किया वह कृष्ण के बालरूप को कैसे प्रेम कर पाएगा ? क्या प्रेम कर पाएगा ! वह कितना ही लाख गाये कि बाल गोपाल नाचते, कि उनकी पांवों की पैंजनियां बजतीं । वह लाख करे, लेकिन उसके घर में जो गोपाल पांवों की पैंजनियां बजा रहे हैं उनसे उसको कुछ लेना-देना नहीं है । असम्भव है ।

तुम्हारे शब्दों का अर्थ तुम्हारे जीवन से आता है । इस जीवन के प्रेम को ठीक-ठीक पहचानो । इस पर रुक मत जाना, यह जरूर सच है । मगर इसके अनुभव से तो गुजरना ही है । रुकना भी नहीं है इस पर और इससे बचकर भी नहीं निकल जाना है । सोचते क्या हो ? जिंदगी हाथ से गुजरी जाती है ।

मैं कल एक गीत देखता था --

सोचता हूं कि मुहब्बत से किनारा कर लूं
दिल को बेगाना-ए-तरगीबो-तमन्ना कर लूं
सोचता हूं कि मुहब्बत है जुनूने-रुसवा
चंद बेकार-से बेहूदा खयालों का हुजूम
एक आजाद को पाबंद बनाने की हवस
एक बेगाने को अपनाने की सअइ-ए-मौहूम
सोचता हूं कि मुहब्बत है सरूरो-मस्ती
इसकी तन्वीर से रौशन है फजाये-हस्ती
सोचता हूं कि मुहब्बत है बसर की फितरत
इसका मिट जाना, मिटा देना बहुत मुश्किल है
सोचता हूं कि मुहब्बत से है ताबिंदा हयात
आपसे ये शमा बुझा देना बहुत मुश्किल है
सोचता हूं कि मुहब्बत पे कड़ी शर्तें हैं
इस तमुद्दन में मसर्रत पर बड़ी शर्तें हैं
सोचता हूं कि मुहब्बत है इक अफसुर्दा-सी लाश
चादरे इज्जतो-नामूस में कफनाई हुई
दौरे-सरमाया की रौंदी हुई रुसवा हस्ती
दरगहे-मजहबो-इखलाक से ठुकराई हुई
सोचता हूं कि बशर और मुहब्बत का जुनूं
ऐसे बोसूदा तमुद्दन में है इक कारे-जबूं
सोचता हूं कि मुहब्बत न बचेगी जिंदा
पेश-अज-वक्त की सड़ जाए ये गलती हुई लाश
यही बेहतर है कि बेगाना-ए-उल्फत होकर
अपने सीने में करूं जज्बा-ए-नफरत की तलाश
और सौदा-ए-मुहब्बत से किनारा कर लूं
दिल को बेगाना-ए-तरगीबो-तमन्ना कर लूं

यह गीत शुरू होता है इस बात से कि--सोचता हूं मुहब्बत से किनारा कर लूं । हट जाऊं मुहब्बत से । क्योंकि मुहब्बत में बड़ी झंझटें हैं । बड़े रस भी हैं, बड़े फूल भी हैं, उतने ही बड़े कांटे भी हैं ।

सोचनेवाला तो सभी सोचेगा न ! फूल भी, कांटे भी, दिन भी, रातें भी, सुख भी, दुख भी ।

सोचता हूं कि मुहब्बत से किनारा कर लूं
दिल को बेगाना-ए-तरगीबो-तमन्ना कर लूं

अभिलाषाओं से हृदय को रिक्त कर लूं क्योंकि अभिलाषा कष्ट में ले जाती है। लेकिन अभी कष्ट में तुम गये नहीं। हां, बुद्धों ने कहा है, अभिलाषा कष्ट में ले जाती है। मगर यह जाकर कहा है, अनुभव से कहा है। तुम अभी गये नहीं। तुम सोचते हो, मुहब्बत से किनारा कर लूं। मुहब्बत से किनारा करके भागोगे कहां? जाओगे कहां? वंचित रह जाओगे एक अनुभव से। बुद्ध कभी न हो पाओगे। बुद्ध ने मोहब्बत की और जाना। उस जानने से ऊपर उठे। किनारा नहीं किया, भागे नहीं, बचे नहीं। घाव सहे। कांटों से उनके हाथ लहूलुहान हुए। फूलों को पकड़ने की कोशिश की और कांटों से लहूलुहान हुए। लेकिन उसी से समझ आयी। उसी से प्रौढ़ता आयी।

सोचता हूं कि मुहब्बत से किनारा कर लूं
दिल को बेगाना-ए-तरगीबो तमन्ना कर लूं
सोचता हूं कि मुहब्बत है जुनूने-रुसवा

क्योंकि मुहब्बत तो एक पागलपन मालूम होती है। जो मुहब्बत में नहीं गये उनको सभी को पागलपन मालूम होती है। जो मुहब्बत में गये और उसके ऊपर उठे उनको भी पागलपन मालूम होता है। लेकिन दोनों के मालूम होने में बड़ा भेद है। मालूम मालूम होने में बड़ा भेद है। जो गये नहीं उनको इसलिए मालूम होता है पागलपन क्योंकि उनकी बुद्धि कहती है, फायदा क्या, मिलेगा क्या? रखा क्या है? जो गये उनको भी पागलपन मालूम होता है, लेकिन क्यों? क्योंकि उनको अब और बड़ा पागलपन दिखाई पड़ने लगा—परमात्मा का प्रेम। उसके सामने यह छोटा पागलपन अब जंचता नहीं।

सोचता हूं कि मुहब्बत है जुनूने-रुसवा
चंद बेकार-से बेहूदा खयालों का हुजूम
एक आजाद को पाबंद बनाने की हवस
एक बेगाने को अपनाने की सअइ-ए-मौहूम

एक झूठा प्रयत्न है, भ्रमात्मक प्रयत्न है आदमी को उलझाने का, गुलाम बनाने का, दास बनाने का।

सोचता हूं कि मुहब्बत है सरूरो-मस्ती
इसकी तन्वीर से रोशन है फजाये-हस्ती

फिर कभी लगता है कि मुहब्बत तो सरूर है, मस्ती है। और इसी की रोशनी से तो सारा जगत झिलमिला रहा है। इसी प्रेम के कारण तो लोग जी रहे हैं। इसी

प्रेम के कारण तो पिता मजदूर है, चट्टानें तोड़ रहा है। इसी प्रेम के कारण तो मां अपने को गला रही है। इसी प्रेम के कारण तो पति अपनी जिंदगी को दांव पर लगा रहा है। पत्नी है, अपना सब लुटा रही है। इसी प्रेम के कारण तो इस जगत में थोड़ी रोशनी दिखायी पड़ती है। थोड़े दीये जलते दिखाई पड़ते हैं। नहीं तो सब जगह मरघट हो।

जरा सोचो एक दिन को, कि प्रेम एकदम विदा हो जाए। एकदम प्रेम तय कर ले कि बहुत हो गया। जैसे तुम थक गये प्रेम से, एक दिन प्रेम तुम से थक जाए और कहे कि बहुत हो गया। अब विदा हो जाएं इस जगत से। अब यह जमीन रहने योग्य नहीं। फिर क्या होगा? जरा सोचो। चौबीस घंटे भी पृथ्वी टिक न सकेगी। सब टूट जायेगा, सब बिखर जायेगा। यहां सब धागे प्रेम के हैं। यहां सारी व्यवस्था प्रेम की है।

सोचता हूं कि मुहब्बत है बसर की फितरत

फिर कभी सोच आता है कि आदमी का स्वभाव है।

इसका मिट जाना, मिटा देना बहुत मुश्किल है
सोचता हूं कि मुहब्बत से है ताबिंदा हयात

यह जीवन उसी से तो रोशन है।

आपसे ये शमा बुझा देना बहुत मुश्किल है
सोचता हूं कि मुहब्बत पे कड़ी शर्तें हैं

बस, यह सोच ही सोच चलता है कि मुहब्बत पर बहुत शर्तें लगा रखी हैं लोगों ने; बड़ी झंझटें लगा रखी हैं। जो करे, मुश्किल में पड़ जाता है।

इस तमद्दुन में मसर्रत पर बड़ी शर्तें हैं

और लोगों ने खुशी पर भी बड़ी शर्तें लगा रखी हैं। बड़ा महंगा हो गया है सौदा।

सोचता हूं कि मुहब्बत है इक अफसुर्दा-सी लाश

फिर कभी यह भी खयाल आता है कि यह तो बड़ी पुरानी चीज हो गयी; मुहब्बत कोई नयी चीज तो है नहीं। सदा से चली आ रही है, सड़ गयी है, लाश है।

चादरे-इज्जतो-नामूस में कफनाई हुई
दौरे-सरमाया की रौंदी हुई रुसवा हस्ती
दरगहे-मजहबो-इखलाक से ठुकराई हुई

धार्मिकों ने, नीतिज्ञों ने, भले लोगों ने, संतों-साधुओं ने, सबने तो ठुकराया है इसे। यह ठुकराने ही योग्य है।

सोचता हूं कि बशर और मुहब्बत का जुनूं

ऐसे बोसीदा तमुद्दन में है इक कारे-जबूं
सोचता हूं कि मुहब्बत न बचेगी जिंदा

यह तो मरेगी ही। इस मरी हुई या मरती हुई चीज से क्या संबंध जोड़ना !

सोचता हूं कि मुहब्बत न बचेगी जिंदा
पेश-अज-वक्त कि सड़ जाए ये गलती हुई लाश

इसके पहले कि यह सड़ जाए, यही बेहतर है कि बेगाना-ए-उल्फत होकर, प्रेम से अपने को अलग करके--

अपने सीने में करूं जज्बा-ए-नफरत की तलाश

इससे बेहतर तो यही है कि अपने हृदय में घृणा के भाव को खोजूं बजाय प्रेम के।

यह बड़े मजे की कविता है। प्रेम से शुरू होती है, घृणा पर अंत होता है। अगर प्रेम इतना फिजूल है, झंझट का है तो फिर बेहतर यही है कि घृणा की तलाश की जाए।

यही बेहतर है कि बेगाना-ए-उल्फत होकर
अपने सीने में करूं जज्बा-ए-नफरत की तलाश
और सौदा-ए-मुहब्बत से किनारा कर लूं
दिल को बेगाना-ए-तरगीबो-तमन्ना कर लूं

और यह सत्य भी है बात। अडॉल्फ हिटलर का जीवन तुम पढ़ो। पढ़ना चाहिए। जैसे महात्माओं के जीवन पढ़ने योग्य हैं वैसे ही इन महात्माओं के जीवन भी पढ़ने योग्य हैं। उनसे भी बड़ी दृष्टियां मिलती हैं। अडॉल्फ हिटलर प्रेम की तलाश करता रहा और नहीं पा सका। और तब उसने सारी जिंदगी घृणा से भर दी। बनना चाहता था चित्रकार, नहीं बन सका। तो सृजनात्मक की जगह विध्वंसात्मक हो गया।

और तुम जिनको तथाकथित महात्मा कहते हो उनको भी जरा गौर से देखना। उनके जीवन का सार-तत्व भी परमात्मा से प्रेम कम है, संसार से घृणा ज्यादा है। उन्होंने भी घृणा की तलाश कर ली है। इन दोनों बातों में बड़ा फर्क है।

कोई आदमी परमात्मा के प्रेम से भरकर नाचता है, ध्यान करता है, भक्ति करता है। और कोई आदमी केवल संसार की घृणा से भरकर मंदिर में जा बैठा है। ये दोनों एक जैसे आदमी नहीं हैं। इन दोनों के पहलू अलग, इनकी प्रेरणा अलग। एक रुग्ण है, एक स्वस्थ है। जो आदमी संसार से घृणा करके मंदिर में जा बैठा है, इसके कारण मंदिर भी गंदा हो जायेगा। इसके जीवन का तत्व घृणा है। जो आदमी संसार के प्रेम को देखा, जाना, पहचाना और इसी प्रेम से धीरे-धीरे उसे परमात्मा

का सुराग मिला। इसी प्रेम के सहारे-सहारे उसे धीरे-धीरे यह समझ में आया कि यह सारा जगत प्रेम के तत्व से ही बना है। इस सारे जगत के पीछे कोई प्रेम का विराट तत्व खड़ा है। मैं उसी को खोज लूं। मैं छोटी-छोटी बूंदों में क्यों जीऊं ? मैं पूरे सागर को क्यों न पा लूं ?

जो इस जगत के प्रेम को अनुभव करके परमात्मा की खोज में गया, यह आदमी जहां बैठ जायेगा वहां मंदिर बन जायेंगे। यह जहां बैठेगा वहीं तीर्थ होंगे, वहीं काबा, वहीं काशी, वहीं कैलाश। और जो आदमी संसार की घृणा से भरकर-- न प्रेम कर पाया, न दे पाया, न ले पाया और धीरे-धीरे उद्विग्न हो गया, जिसकी ऊर्जा खट्टी हो गयी, सड़ गयी, जिसका प्रेम विकसित न हो पाया तो जहर हो गया, जिसकी सृजनात्मक शक्ति विध्वंसात्मक हो गयी, यह आदमी अगर मंदिर और मस्जिद में जाकर बैठ जायेगा तो मंदिर और मस्जिद भी उदास हो जायेंगे। तुम जरा देखो, तुम्हारे मंदिर, मस्जिद, चर्च कितने उदास हो गये हैं ! किनके कारण उदास हो गये हैं ? जो लोग वहां बैठे हैं, इन्होंने प्रेम की खोज की थी, सफल नहीं हो पाये, और घृणा की तलाश कर ली।

तुम कहते हो, मैं सोचता हूं प्रेम के संबंध में बहुत। कभी आपकी बातें ठीक लगती हैं, कभी गलत। सोचोगे तो ऐसे ही बिबूचन में पड़े रहोगे--यह ठीक कि वह ठीक। जानो ! जानने से निर्णय होता है। सोचने से निर्णय नहीं होता। अनुभव करो। जिंदगी तो ऐसे ही चली जायेगी, प्रेम ही कर लो। और मैं तुमसे कोई शर्त नहीं लगाता। कैसा भी प्रेम--मित्र से, गुरु से, पत्नी से, पति से, बेटे से, बेटी से। किसी से प्रेम कर लो।

बड़ी पुरानी कथा है कि एक आदमी नागार्जुन के पास आया और उसने कहा कि मुझे ध्यान करना है। नागार्जुन ने कहा, तेरा किसी से प्रेम है ? वह आदमी बोला कि अब आपसे क्या छिपाना ? मगर कहते संकोच लगता है। नागार्जुन ने कहा, फिर भी तू कह। उसने कहा, मुझे मेरी भैंस से ...! ग्वाला था और एक ही भैंस थी। वही उसका भोजन, वही उसकी जीवनचर्या, वही उसका सब। वह उसको चराने ले जाता, चराता, नहलाता, घर लाता, दूध बेचता और मस्त था। उसने कहा, मुझे बड़ा संकोच होता है। आप भी क्या सोचेंगे कि भैंस से प्रेम ? कुछ और न मिला तुझे करने को ? नागार्जुन ने कहा, कुछ फर्क नहीं पड़ता। पात्र से कुछ नहीं फर्क पड़ता, प्रेम से फर्क पड़ता है। तू फिकर न कर। तू यह सामने की गुफा में बैठ जा और अपनी भैंस का विचार कर। उसने कहा, आप भी क्या कह रहे हैं ! भैंस का विचार ? मैं तो सोचता था आप परमात्मा के विचार करने को कहेंगे। नागार्जुन ने कहा, तू बैठ उस सामने की गुफा में और भैंस का विचार कर। और इतना विचार कर कि

धीरे-धीरे लौलीन हो जा।

उस आदमी को भरोसा तो न आया। सोचा कि कोई मजाक तो नहीं कर रहे हैं? लेकिन नागार्जुन कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। वह जाकर बैठ गया। नागार्जुन ने कहा कि जब तक तुझे ऐसा न लगने लगे कि मैं भैंस ही हो गया, तब तक जारी रखना। फिर मैं आऊंगा। मैं जब तक न पुकारूं तब-तक तू निकलना भी मत। वह चला गया भीतर। एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन दिन बीत गये। तब नागार्जुन उसके द्वार पर जाकर दस्तक दिये। खुला दरवाजा था गुफा का। कहा कि अब तू बाहर निकल आ भाई। वह आदमी उठा, चारों हाथ-पैर पर चला और दरवाजे पर आकर अटक गया। नागार्जुन ने कहा, निकलता क्यों नहीं? उसने कहा, सींग फंसते हैं। तीन दिन तक एक ही भाव में तल्लीन रहा--भैंस, भैंस भैंस! हो गया भैंस।

नागार्जुन ने कहा, तेरे हाथ में सूत्र आ गया। यहां लोग हैं, जो वर्षों से मेहनत कर रहे हैं और इस सत्य को अनुभव नहीं कर पाये कि ध्यान रूपांतरण है। जिसका करोगे वही हो जाओगे। तेरे हाथ में सूत्र आ गया। अब इसी सूत्र का तू परमात्मा पर प्रयोग कर लेना। अब तू परमात्मा का विचार करना शुरू कर। यही प्रेम उनमें डाल। प्रेम यही है; भैंस में डाला, भैंस हो गया। परमात्मा में डालें, परमात्मा हो जायेगा।

जिन्होंने घोषणा की 'अहं ब्रह्मास्मि,' उनमें और इस आदमी में कोई फर्क नहीं है। दोनों ने एक ही प्रक्रिया का अनुसरण किया है।

तुम प्रेम करो। तुम प्रेम से परिचित होओ। सोचे-सोचे जीवन मत गंवाओ। अनुभव की संपदा कमाओ। और फिर एक दिन जब तुम प्रेम को जान लो कि प्रेम क्या है, उसी प्रेम को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देना। वही है असली फूल, जो परमात्मा के चरणों में चढ़ाया जाना है--तुम्हारा प्रेम का फूल। कहां खिला इसकी फिकर छोड़ो। ध्यान रखना, कमल कीचड़ में ही खिलते हैं। तो यह मत सोचो कि कीचड़ में कैसे कमल को खिलाऊं! कमल कीचड़ में ही खिलते हैं। यह संसार की कीचड़ है, यहां कमल को खिला लो। प्रेम इसमें कमल है। और जब प्रेम का कमल खिल जाए, तो चढ़ा देना उसे परमात्मा के चरणों में। तुम निश्चित अंगीकार हो जाओगे। तुम पर प्रसाद की वर्षा अनिवार्य है।

आज इतना ही।

कहो केते दिन जियबो हो, का करत गुमान।।
कच्चे बांसन का पिंजरा हो, जा में पवन समान।
पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान।।
कच्ची माटी के घड़ुवा हो, रस-बूंदन सान।
पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान।।
कागद की नइया बनी, डोरी साहब हाथ।
जौने नाच नचैहें हो, नाचब वोही नाच।।

धरमदास एक बनिया हो करे झूठी बाजार।
साहब कबीर बंजारा हो करैं सत्त व्यापार।।
सतगुरु आवो हमरे देस निहारौं बाट खड़ी।
वाही देस की बतिया रे लावै संत सुजान।।
उन संतन के चरन पखारूं तन-मन करि कुर्बान।
वाही देस की बतिया हमसे सतगुरु आन कही।।
आठ पहर के निरखत हमरे नैन की नींद गयी।
भूल गयी तन-मन-धन सारा व्याकुल भया शरीर।।
विरह पुकारै विरहिनी ढरकत नैनन नीर।
धरमदास के दाता सतगुरु पल में कियो निहाल।।
आवागमन की डोरी कट गयी मिटे भरम जंजाल।

मैं हैरि रहूं नैना सो नेह लगाई।।
राह चलत मोहि मिलि गये सतगुरु, सो सुख बरनि न जाई।
देइ के दरस मोहि बौराये, ले गये चित्त चुराई।।
छवि सत दरस कहां लगि बरनौं, चांद सूरज छपि जाई।
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई।।

प्रवचन : ५
दिनांक : ४।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना।
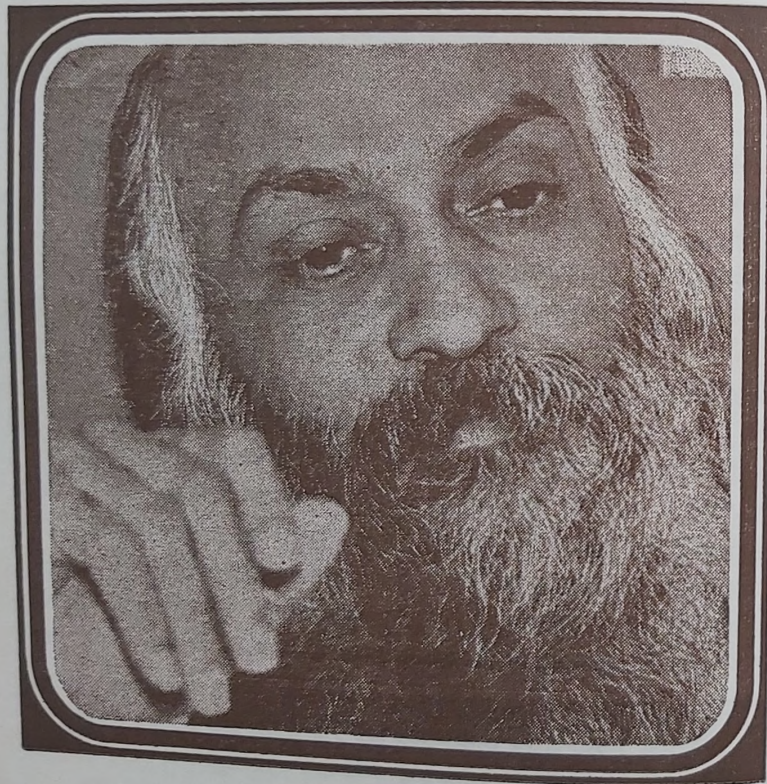
का करत गुमान !

खल्वतो-जल्वत में तुम मुझसे मिली हो बारहा
तुमने क्या देखा नहीं मैं मुस्कुरा सकता नहीं
मैं कि मायूसी मेरी फितरत में दाखिल हो चुकी
जब्र भी खुद पर करूं तो गुनगुना सकता नहीं
मुझमें क्या देखा कि तुम उल्फत का दम भरने लगीं
मैं तो खुद अपने भी कोई काम आ सकता नहीं
रूह-अफजा हैं जुनूने-इश्क के नग्मे मगर
अब मैं इन गाये हुए गीतों को गा सकता नहीं
मैंने देखा है शिकस्ते-साजे-उल्फत का समां
अब किसी तहरीक पर बरबत उठा सकता नहीं
दिल तुम्हारी शिद्दते-अहसास से वाकिफ तो है
अपने अहसासात से दामन छुड़ा सकता नहीं
तुम मेरी होकर भी बेगाना ही पाओगी मुझे
मैं तुम्हारा होके भी तुममें समा सकता नहीं
गाये हैं मैंने खलूसे-दिल से भी उल्फत के गीत
अब रियाकारी से भी चाहूं तो गा सकता नहीं
किस तरह तुमको बना लूं मैं शरीके-जिंदगी
मैं तो अपनी जिंदगी का बार उठा सकता नहीं
यास की तारीकियों में डूब जाने दो मुझे
अब मैं शमअ-ए-आरजू की लौ बढ़ा सकता नहीं

एक ऐसी सौभाग्य की या दुर्भाग्य की घड़ी है, जब जीवन का सब व्यर्थ हो जाता है। जहां-जहां मूल्य देखे थे, वहां-वहां राख दिखाई पड़ती है। जहां-जहां फूल देखे थे वहां-वहां कांटे। जहां सोचा था सौंदर्य है, वहां सपना। जहां धन मानकर चले थे वहां कुछ भी नहीं।

जैसे रात सोया हुआ आदमी सुबह जागता है और सपनों में देखे सारे महल और सपनों में देखे सारे व्यवसाय व्यर्थ हो जाते हैं। ऐसी भी एक सौभाग्य या दुर्भाग्य की घड़ी है, जब जीवन में आदमी एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। जो सोचा था ठीक है, सब व्यर्थ हो गया और इसके अतिरिक्त किसी सार्थक की कोई खबर नहीं है।

मैं दोनों शब्दों का उपयोग कर रहा हूं--सौभाग्य की या दुर्भाग्य की; सोचकर। क्योंकि यह घड़ी सौभाग्य की हो सकती है और दुर्भाग्य की भी हो सकती है। अगर तुम्हारे जीवन के द्वार-दरवाजे बंद हों और तुमने पहले से ही अनास्था में आस्था कर रखी हो, अविश्वास को विश्वास बना रखा हो, नकार और नास्तिकता तुम्हारे जीवन की पद्धति हो तो यह घड़ी दुर्भाग्य की घड़ी है। फिर तुम अंधेरे और अंधेरे में गिरते जाओगे और गर्त में खो जाओगे। फिर यह घड़ी बड़ी निराशा की घड़ी है। फिर तुम्हें जीवन अर्थहीन मालूम होगा, एक बेबूझ पागलपन मालूम होगा।

लेकिन यह घड़ी सौभाग्य की भी हो सकती है। अगर तुमने अपनी चेतना के द्वार-दरवाजे बंद नहीं किये हैं और नकार तुम्हारी जीवन-शैली नहीं है, तो तुम आंखें उठाकर अभी भी देख सकते हो। यह जीवन व्यर्थ हुआ इससे जीवन व्यर्थ नहीं होता। यह जीवन व्यर्थ हुआ इससे केवल उस जीवन के द्वार खुलते हैं। यह धन मिट्टी साबित हुआ इससे धन मिट्टी साबित नहीं होता, इससे नये धन की खोज, नये धन की यात्रा शुरू होती है।

जो दिखाई पड़ता है वह व्यर्थ हुआ, इससे सब व्यर्थ नहीं होता, इससे अदृश्य की यात्रा शुरू होती है। इसलिए मैंने कहे दोनों शब्द एक साथ--दुर्भाग्य या सौभाग्य की घड़ी।

जो व्यक्ति अपने जीवन को नकार में ढाल लेता है--नकार यानी जो मानकर ही बैठा है कि जीवन व्यर्थ है; जो मानकर ही बैठा है कि यहां कोई परमात्मा नहीं है; जो मानकर ही बैठा है कि जो दिखाई पड़ता है इसके पार और कुछ भी नहीं है। खोजा नहीं है, गया नहीं है, आंख नहीं उठाई है, जो मानकर बैठा है कि भीतर कुछ भी नहीं है लेकिन भीतर कभी झांका नहीं है। ऐसा जो मानकर बैठा है उसके लिये तो दुर्भाग्य की घड़ी आ गयी। उसके लिये तो बड़े संकट का क्षण आ गया। आत्मघात के अतिरिक्त अब कुछ भी नहीं सूझेगा। अपने को मिटा लूं, समाप्त कर लूं, बस यही समझ में आयेगा।

लेकिन जिसने अपने को इस तरह नकार में कस नहीं लिया है, जो कहता है, हो सकता है और भी जीवन हो। जो कहता है, हो सकता है बुद्ध और महावीर, कृष्ण और कबीर, नानक और दादू सही हों। जो कहता है मैं खोजूं, तभी निर्णय

लूंगा, उसके जीवन में यह घड़ी आत्मघात की नहीं है, आत्म-रूपांतरण की घड़ी है। यहीं से आदमी या तो अपने को मिटाना शुरू करता है या अपने को जगाना शुरू करता है।

यह बड़ा महत्वपूर्ण दोराहा है। और हर जीवन इस दोराहे पर आता है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, एक न एक दिन तुम्हें इस दोराहे पर आना ही होता है, जहां विकल्प होते हैं दो--या तो निराशा में डूब जाओ या नयी आशा के गीत को फूटने दो। या तो सब व्यर्थ मानकर हार जाओ, पराजित हो जाओ या कुछ और भी विजय हो सकती है उसके अभियान पर निकलो।

धनी धरमदास के जीवन में यह घड़ी आ गयी थी। सब था उनके पास। धन था, पद था, प्रतिष्ठा थी, यश था। सफलता ही सफलता के ढेर लगे थे। और एक दिन जाग आयी और यह दिखाई पड़ा कि यह सब तो बेकार है। क्योंकि जो भी मैंने इकट्ठा किया है, मौत छीन लेगी। मेरे पास ऐसा क्या है जो मौत न छीन सकेगी?

यह प्रश्न जिस दिन उठा उसी दिन नींद टूट गयी। उसी दिन से एक दूसरी खोज शुरू हुई। इस खोज में सद्गुरु अनिवार्य है। क्योंकि जब तुम अनजान की खोज पर निकलते हो तो किसी ऐसे व्यक्ति को खोजना होगा जो उस अनजान में गया हो। जब तुम सागर की यात्रा पर निकलते हो तो किसी ऐसे नाविक को खोजना होगा जिसने यात्रा की हो। और जब तुम पहाड़ पर चढ़ते हो तो तुम किसी ऐसे संगी-साथी को चाहते हो जो पहाड़ों से वाकिफ हो, परिचित हो।

यह बिलकुल स्वाभाविक है। अनजान की यात्रा में कोई चाहिए हाथ। अदृश्य की यात्रा में कोई चाहिए साथ--कोई ऐसा, जो उस दूसरे लोक की खबर तुम्हें दे सके। शब्द ओछे हैं, खबर ठीक-ठीक दी जा नहीं सकती लेकिन फिर भी इशारे किये जा सकते हैं।

और इशारे भी बड़े मूल्य के हैं। वे इशारे काम आते हैं। क्योंकि रास्ता बेबूझ है, रहस्यपूर्ण है। सुगम भी नहीं है, दुर्गम है। हजार मौके आयेंगे जब तुम अटक जाओगे, राह खो-खो जायेगी। और हजार मौके आयेंगे जब तुम गलत राह पकड़ लोगे। और हजार मौके आयेंगे जब तुम्हारा मन कहेगा, लौट चलो, यहां आगे कुछ भी मालूम नहीं होता, सब अंधेरा है। अपनी पुरानी दुनिया ही ठीक थी--बुरी-भली जैसी भी थी। लौट चलो, कम से कम साफ-सुथरी थी। हम जानते थे कहां चल रहे हैं। भूगोल हमारे हाथ में था, नक्शा हमारे हाथ में था। यह किस जंगल में खोये जाते हो?

भय की बड़ी दुर्दान्त घड़िया आयेंगी, जब ऐसा लगेगा कि यह तो जीवन की खोज न हुई, यह तो अपने हाथ से मौत की तलाश हो गयी। मैं फिर से दोहरा दूं--उस

परम की खोज में वह घड़ी निश्चित आती है जब तुम्हें लगता है, मैं मरा। उसी मृत्यु में से तो तुम्हारे नये जीवन का अंकुर निकलता है। बीज जब टूटता है तभी तो वृक्ष पैदा होता है। तुम मिटोगे तो ही तुम्हारे भीतर कुछ नये का सूत्रपात है।

कौन तुम्हें सम्हालेगा उस दिन? कौन तुम्हें सहारा देगा? कौन तुम्हें आश्वासन देगा कि घबड़ाओ मत, ऐसा मुझे भी हुआ है और फिर भी मैं हूं। सच तो यह है कि ऐसा जब से हुआ है, तब से ही मैं हूं; उसके पहले मैं कहां था!

बीज तो घबड़ा जायेगा। किसी वृक्ष का साथ चाहिए जो कहे, घबड़ाओ मत; टूटने से ही होना है। मिटने से ही पाना है। खोने में ही उपलब्धि है। धन्यभागी हैं वे, जो अपने को खो देते हैं, क्योंकि वे ही मालिक हो जाते हैं। वे ही सब कुछ पा लेते हैं। इस सूली पर चढ़ जाओ।

कोई हाथ का सहारा दे, आश्वासन दे। और उसकी आंखों की चमक और उसकी जीवन की ज्योति तुम्हारे भीतर श्रद्धा उमगाये तो शायद तुम सूली पर भी चढ जाओ। और सूली पर चढ़कर ही सिंहासन है।

ऐसी कठिन घड़ी में ही गुरु की जरूरत है। धरमदास को कबीर जैसा गुरु मिल गया।

गुरु दो तरह के होते हैं: एक तो जिनको हम परंपरागत गुरु कहें, जिन्होंने खुद नहीं जाना है लेकिन जाने हुओं का हिसाब-किताब कंठस्थ किया है। जिन्होंने शास्त्र पढ़े हैं, शास्त्रों का विश्लेषण किया है, शास्त्रों को छांटा है, शास्त्रों में डुबकी लगाई है-- सत्य में नहीं, शास्त्रों में। और शास्त्रों के संबंध में उनकी कुशलता है। शब्दों के वे मालिक हैं। सिद्धांतों पर उनकी पकड़ है।

एक तो परंपरागत गुरु है। अगर कोई सैद्धांतिक उलझन हो तो वह सुलझा देगा। अगर शास्त्र के संबंध में तुम्हारी कोई शंकाएं और जिज्ञासाएं हों तो वह हल कर देगा। इस तरह के परंपरागत गुरु तो तुम्हें जन्म से ही मिल जाते हैं। तुम जैन घर में पैदा हुए तो जैन मुनि तुम्हारा गुरु है। हिंदू घर में पैदा हुए तो कोई हिंदू पंडित तुम्हारा गुरु है। मुसलमान घर में पैदा हुए तो कोई मौलवी तुम्हारा गुरु है। ये तुम्हें जन्म से मिल जाते हैं। इनके लिये तुम्हें खोजना नहीं पड़ता। ये तुम्हें खोजते हैं। ये हर बच्चे की गर्दन पकड़ लेते हैं। इसके पहले कि बच्चा बड़ा हो और उसकी समझ में आये, उसकी समझ जगे, उसके पहले ही गर्दन पकड़ लेते हैं। क्योंकि समझ जग जाने के बाद इनके चक्कर में वह नहीं आ सकेगा।

इसलिए तुम्हारे सभी तथाकथित धर्म बड़ी चिंता में रहते हैं कि बच्चों को धार्मिक शिक्षा कैसे दी जाए। धार्मिक शिक्षा से उनका मतलब धर्म नहीं होता। धार्मिक शिक्षा से उनका मतलब होता है, इसके पहले कि बच्चे में बोध जगे उसे कैसे जकड़ दिया

जाए सिद्धांतों से। इसके पहले कि बच्चे का अपना विवेक काम करे, विश्वास का जहर उसमें डाल देना चाहिए।

हिंदू बाप चाहता है मेरा बेटा हिंदू हो जाए। मुसलमान बाप चाहता है, मेरा बेटा मुसलमान हो जाए। ये राजनीतियां हैं, इनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। मुसलमानों की संख्या ज्यादा रहे यह राजनीति है। हिंदुओं की संख्या ज्यादा रहे यह राजनीति है। संख्या में बल है। कहीं मेरा बेटा हिंदू न हो जाए, मुसलमान सोचता है। हिंदू सोचता है, मेरा बेटा कहीं ईसाई न हो जाए। डर है, भय है– कहीं एक की संख्या कम न हो जाए। संख्या में बल है। संख्या में राजनीति है।

इस भय से हर बाप अपने बेटे को जल्दी से जल्दी किसी धर्म में दीक्षित करवा देना चाहता है--अपने धर्म में। जो विश्वास उसके हैं वही अपने बेटे में भी डाल देना चाहता है।

इस तरह जो परंपरा से गुरु मिलता है वह तो गुरु है ही नहीं, गुरु का ढोंग है। असली गुरु तो खोजना पड़ता है। असली गुरु तो विवेक से मिलता है, विश्वास से नहीं। असली गुरु के लिये तलाश करनी पड़ती है। असली गुरु के लिये चिंता उठानी पड़ती है, संताप से गुजरना होता है।

और असली गुरु को पाने में तुम्हारे नकली गुरु बाधा बनते हैं क्योंकि असली गुरु शास्त्र से बंधा नहीं होता, असली गुरु सत्य में जगा होता है। असली गुरु सत्य बोलता है। शास्त्र से मेल बैठ जाए तो ठीक, न बैठे मेल तो उसे कुछ चिंता नहीं है। असली गुरु किसी परंपरा का हिस्सा नहीं होता। असली गुरु सदा ही सत्य का पुनराविर्भाव होता है, नया संस्करण होता है। असली गुरु खुद ही देखकर लौटा है। किन्हीं और आंखवालों का भरोसा नहीं है, अपनी आंख से देखकर लौटा है। जो देखा है वह कहता है।

कबीर ने कहा है कि मैं कागज की लिखी नहीं कहता। कहता आंखन देखी। जो आंख से देखा है वही कहता हूं।

अब जिसने भी आंख से देखा है उसके सत्य का जो प्रतिपादन होगा, विद्रोही होगा, बगावती होगा। परमात्मा इस जगत में सबसे बड़ी क्रांति है। परमात्मा परंपरा नहीं है क्योंकि परमात्मा पुराना नहीं है। परमात्मा प्रतिपल नया है। शास्त्र पुराने पड़ जाते हैं, उन पर धूल जम जाती है। परमात्मा पर कभी धूल नहीं जमती; वह शाश्वत जीवन है।

आज की सुबह कल की सुबह की पुनरुक्ति नहीं थी। और आज के पक्षियों ने जो गीत गाये हैं वे पहले कभी नहीं गाये थे। और सांझ आकाश में जो बदलियां तैरेंगी वैसी बदलियां पहले कभी नहीं तैरी थीं। यहां अस्तित्व में सभी कुछ प्रतिपल नया होता

रहता है। यहां सब नूतन है। जब तुम आंख खोलकर सत्य को देखोगे, उस नूतन का तुम पर आघात पड़ेगा। और तुम्हारी हृदय-तंत्री पर जो संगीत उठेगा वैसा संगीत पहले कभी नहीं उठा था। महावीर की हृदय-तंत्री ने एक गीत गाया था। बुद्ध की हृदय-तंत्री ने दूसरा गीत गाया, कबीर ने तीसरा। जिसने भी जाना है उसका अपना गीत है। उसका विशिष्ट गीत है। उसका अद्वितीय गीत है, बेजोड़ गीत है।

परंपरा उन्हीं-उन्हीं गीतों को बार-बार दोहराती है। परंपरा ऐसी है जैसे तस्वीर।

एक महिला ने पिकासो से कहा, वह दीवानी थी पिकासो की। उसने पिकासो से कहा कि कल तुम्हारी एक तस्वीर देखी किसी के घर में। इतनी प्यारी थी कि मुझसे रहा न गया। मैंने तुम्हारी तस्वीर चूम ली। पिकासो ने कहा, चूम ली--तस्वीर मेरी? फिर क्या हुआ? तस्वीर ने चुंबन का उत्तर दिया या नहीं? उस महिला ने कहा, क्या बात करते हो! तस्वीर कैसे चुंबन का उत्तर देगी? तो पिकासो ने कहा, फिर वह मैं नहीं था। तस्वीर ही रही होगी, कागज ही रह होगा, कागज पर रंग रहे होंगे, मैं नहीं था।

शास्त्र तस्वीर है। तुम शास्त्र को चूम सकते हो, शास्त्र चुंबन का उत्तर नहीं देता।

जब कबीर या बुद्ध या महावीर या धनी धरमदास जैसे आदमी से तुम्हारा मिलना हो जाए तो तस्वीर से मिलना नहीं होता, तुम जीवंत सत्य से मिल रहे हो। तुम चूमोगे, चूमने का उत्तर भी पाओगे।

गुरु वह है जो उत्तर दे। शास्त्र वह है, जिसमें तुम चाहो तो उत्तर खोज लो, मगर वह है उत्तर तुम्हारा ही। शास्त्र ने कुछ दिया नहीं। जब तुम गीता पढ़ते हो तो तुम सोचते हो, तुम कृष्ण को समझ रहे हो। तुम कृष्ण को क्या समझोगे! तुम कृष्ण को कैसे समझोगे? कृष्ण सामने थे तब अर्जुन को इतनी कठिनाई हुई समझने में। तुम कैसे समझोगे? कृष्ण उत्तर देने को मौजूद थे जीवंत, तब भी अर्जुन के मन में हजार-हजार शंकाएं उठती रहीं।

तुम्हारे मन में भी उठेंगी। तुम उन शंकाओं का हल भी कर लोगे। लेकिन वह तुम्हीं प्रश्न बना रहे हो, तुम्हीं उत्तर दे रहे हो। कृष्ण तो चुप हैं। वह तो पिकासो की तस्वीर हैं, वहां से कोई उत्तर नहीं आ रहा है।

शास्त्र मुर्दा होता है। इन दो शब्दों को याद रखना: शास्त्र और शास्ता। शास्ता यानी गुरु। जिससे शास्त्र पैदा होते हैं उसे खोजो। जो शास्त्र पैदा हो चुके हैं उनमें अब तुम तलाश करते रहोगे तो तुम नाहक कूड़ा-करकट खोजते रहोगे। और जो अर्थ तुम उनसे पाओगे वह तुम्हारा दिया हुआ अर्थ है। वह तुम्हारा ही दिया

हुआ रंग है। दूसरी तरफ से कोई उत्तर नहीं आया है, वहां कोई है नहीं।

अब गीता में कृष्ण कहां? अब धम्मपद में बुद्ध कहां? किताबों में कैसे जीवंतता हो सकती है? असली गुरु की तलाश शास्त्रों से अन्य शास्ता की तलाश है। ऐसे किसी मूल स्त्रोत की, जिससे अभी शास्त्र पैदा हो रहा है। पैदा हो जाने के बाद परंपरा बन जाती है। जब शास्त्र पैदा हो रहा है उस घड़ी में पकड़ लेना किसी को। जब कहीं वेद जन्म रहा हो उस घड़ी में पकड़ लेना पैर, तो तुम धन्यभागी हो। तो तुम धन्यता से भर जाओगे।

लेकिन दुर्भाग्य ऐसा है कि जब शास्त्र जन्म जाता है तब लोग पकड़ते हैं। क्योंकि लोग प्रतिष्ठा की फिकर करते हैं। प्रतिष्ठा में तो समय लगता है। बुद्ध जब जिंदा थे तब तो प्रतिष्ठा नहीं है। प्रतिष्ठा बनने में तो कुछ वर्ष बीतें, बुद्ध मरें, कहानियां गढ़ी जाएं, उनके आसपास शास्त्र रचा जाए, पुराण बनें, सैकड़ों वर्ष बीतें, तब प्रतिष्ठा मिलती है।

लोग प्रतिष्ठा से प्रभावित होते हैं। अब कबीर जिंदा जब हैं तब तो प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। प्रतिष्ठा बनने में समय लगता है। जिंदगी पर लकीर खींचने में समय लगता है।

इसलिए बड़ी सजग आंख चाहिए तो ही कोई गुरु को खोज सकता है। बड़ी गहरी प्यास चाहिए तो ही कोई गुरु को खोज सकता है। और जिसने गुरु को खोज लिया उसकी आधी यात्रा पूरी हो गयी। वह आधा परमात्मा में आ ही गया। उसका साथ मिल गया, जो परमात्मा से जुड़ा है तो तुम्हारा एक हाथ परमात्मा के हाथ में पहुंच ही गया। गुरु के जिसने पैर पकड़े, अनजाने उसने परमात्मा के पैर पकड़ लिये।

शास्ता को खोजना, शास्त्र को नहीं।

और ध्यान रखना, सभी शास्ता अंततः शास्त्र बन जाते हैं। और यह भी ख्याल रखना कि सभी शास्त्र प्रथम में शास्ता थे। मगर तुम कब पकड़ोगे? तुम तब पकड़ना जब शास्त्र जन्म रहा हो, जब सुबह हो रही हो, जब घटना घट रही हो, जब परमात्मा उतर रहा हो तभी पकड़ लेना। उतर चुका, फिर तस्वीरें रह जाती हैं, फिर मूर्तियां रह जाती हैं, फिर सिद्धांत रह जाते हैं। फिर तुम लाख सिर पटको उन मूर्तियों के सामने, कुछ भी न होगा। वहां से चुंबन का उत्तर नहीं आता। तुम्हारा प्रश्न आकाश में गूंजता है, कोई उत्तर देनेवाला नहीं।

गुरु का अर्थ है, तुम प्रश्न उठाओ और उत्तर आ सके--जीवंत; तुम्हारे लिये आ सके; तुम्हारे प्रश्न की संवेदना में आये; तुम्हारे प्रश्न के लिये आये; ठीक तुम्हें ध्यान में रखकर आये।

कबीर ऐसे गुरु थे। अब कठिनाई क्या हो जाती है... मैं कहता हूं, कबीर ऐसे

गुरु थे। अभी कुछ दिन पहले एक युवक आया संन्यास लेने। मैंने पूछा, कैसे संन्यास का भाव उदय हुआ ? कहा कि मैं कबीरपंथी हूं और आप कबीर पर इतना सुंदर बोले हैं कि कोई कभी नहीं बोला। इसलिए संन्यास लेने आया हूं। मैंने पूछा, रुकोगे दो-चार दिन ? उसने कहा कि नहीं, बस लेना है और गया। जाना है आज ही रात।

'कुछ ध्यान करोगे ? कुछ समझो-बूझोगे ? सिर्फ कपड़े रंग लेने से तो संन्यास नहीं हो जायेगा। कुछ ध्यान में उतरोगे ?'

उसने कहा, 'ध्यान तो मैं करता ही हूं। कबीर जी का शास्त्र पढ़ता हूं और ध्यान करता हूं। और आपने तो सब कह दिया है कि कबीर में सब है।'

ध्यान रखना, कबीर में सब था; 'है' मैं नहीं कह सकता। क्योंकि कबीर अब वैसे ही शास्त्र हो गये। कबीर ने जिन शास्त्रों का विरोध किया था, कबीर अब वैसे ही शास्त्र हो गये। अब शास्ता कहां है ? कबीर ने वेद का विरोध किया था, अब यह कबीरपंथी कबीर के बीजक को पकड़कर बैठा है उसी तरह, जिस तरह एक दिन कोई वेद को पकड़कर बैठा था। क्या फर्क हुआ ?

सब शास्ता आज नहीं कल शास्त्र बन जायेंगे। जब शास्त्र बन जाएं तब तुम फिर शास्ता की खोज में लग जाना। जीवंत अवतरण को पकड़ना। इसे ऐसा समझो, मैं तुमसे कहता हूं अवतारों को मत पकड़ो, अवतरण को पकड़ो। जब परमात्मा उतर ही रहा हो ताजा-ताजा, उष्ण, श्वास लेता हुआ, हृदय धड़कता हो, तभी पकड़ लो। उतनी हिम्मत हो तो ही कोई सद्गुरु से मिल पाता है।

नहीं तो लोग किताबें ढोते हैं। कायर किताबें ढोते हैं, हिम्मतवर सद्गुरु को खोज लेते हैं। कायर किताबों के बोझ में दब जाते हैं और मर जाते हैं। हिम्मतवर सद्गुरु के सहारे निर्भार हो जाते हैं और उड़ जाते हैं।

धनी धरमदास खूब उड़े। कबीर जैसा गुरु मिले तो आदमी बिना पंखों के आकाश में उड़ जाता है। ये वचन उन्हीं उड़ानों के वचन हैं। उन्हीं नये-नये आकाशों के अनुभव के वचन हैं। समझना।

कहो केते दिन जियबो हो, का करत गुमान

धरमदास कह रहे हैं, कितने दिन जियोगे ! एक बार सोच तो लो ठीक से। इस जिंदगी पर गुमान कर रहे हो ! इस जिंदगी पर बड़ा अहंकार कर रहे हो ! बड़े फूले-फूले चल रहे हो, छाती बड़ी अकड़ाकर चल रहे हो !

का करत गुमान !
कहो केते दिन जियबो हो

जियोगे कितने दिन ? यह छाती अकड़ी कितनी देर रहेगी ? यह सांस अभी आयी, अभी न आये। इसका भरोसा कहां है ! इतना तो पक्का है कि एक दिन नहीं

आयेगी। मृत्यु सुनिश्चित है। इस जगत में एक ही चीज सुनिश्चित है—मृत्यु। और तो सब अनिश्चित है, हो या न हो; मगर मृत्यु सुनिश्चित है।

तुमने देखा ! पांच हजार साल हो गये, आदमी औषधियां खोज रहा है, चिकित्सा के शास्त्र बना रहा है—हकीमी और आयुर्वेद और होम्योपैथी और एलोपैथी लेकिन मृत्यु की दर वही की वही है : सौ प्रतिशत। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। जन्म-दर बदली है, मृत्यु-दर नहीं बदलती। पहले भी जितने लोग पैदा होते थे उतने ही मरते थे, अब भी जितने लोग पैदा होते हैं उतने ही मरते हैं। एक बात बिलकुल निश्चित है, कोई फर्क नहीं पड़ता—सौ प्रतिशत लोग मरते हैं। थोड़ी देर-अबेर मरें, थोड़ा टालम-टूल हो जाती है लेकिन मृत्यु को समाप्त नहीं किया जा सकता।

मृत्यु इस जीवन का केंद्रीय सत्य है। इसलिए समस्त सद्गुरु तुम्हें मृत्यु के प्रति सचेत करते हैं। तुम्हें अच्छा भी नहीं लगता कि कोई तुम्हें मृत्यु की याद दिलाए। तुम्हें बुरा भी लगता है कि यह भी क्या अपशगुन की बात कही ! अभी तो हम जिंदा हैं और जवान हैं। सद्गुरु की बात तीखी भी लगती है, कडुवी भी लगती है। वही तो धनी धरमदास ने कहा, 'अति कडुवी।'

क्यों कडुवी लगती होगी ? जहर जैसी लगती है। क्योंकि सद्गुरु पहली जो याद दिलाता है, वह मौत की। धर्म की यात्रा मृत्यु से शुरू होती है। जिसको मृत्यु का ख्याल आना शुरू हो गया उसको धार्मिक हो ही जाना पड़ेगा। फिर ज्यादा देर अधार्मिक नहीं रह सकता। मृत्यु पीछा करने लगे, मृत्यु की छाया स्पष्ट होने लगे तो तुम्हारे जीवनमूल्य बदल जायेंगे।

फिर तुम इसी पागलपन से धन इकट्ठा करोगे—इसी छीना-झपटी से ? इसी गलाघोंट प्रतियोगिता में लगोगे ? मन कहने लगेगा, किसलिए ? अभी तो आयेगी मौत और सब पड़ा रह जायेगा। आती ही होगी। कौन जाने, द्वार पर ही आकर खड़ी हो, कब दस्तक दे दे !

कहो केते दिन जियबो हो, का करत गुमान

यह शरीर तो मिट्टी में पड़ा रह जायेगा। कितने शरीर हमारे जैसे इस जमीन पर चले, अब कहां हैं ? वैज्ञानिक कहते हैं, जिस जगह तुम बैठे हो वहां कम से कम दस आदमियों की लाशें गड़ी हैं। इतने लोग हो चुके हैं कि सारी जमीन मरघट है। अब तुम्हें मरघट मरघट का भेद नहीं करना चाहिए। सारी जमीन मरघट है। जहां बस्तियां थीं वहां अब मरघट हो गये, जहां मरघट थे वहां बस्तियां हो गयीं। सारी जमीन मरघट है। इतने लोग मर चुके हैं, जमीन का टुकड़ा-टुकड़ा कब्र है। मिट्टी के टुकड़े-टुकड़े किसी देह के हिस्से रह चुके हैं। यहां सब तरफ हड्डियां और लाशें बिखरी हैं। तुम मरघट में हो। जरा गौर से देखो, तुम्हें लाशें साफ दिखाई पड़ने

लगेंगी। तुम चल रहे हो लाशों पर। दस-दस आदमियों की लाशें नीचे पड़ी हैं जिन पर तुम चल रहे हो। कल तुम्हारी भी लाश उन्हीं में सम्मिलित हो जायेगी। लोग तुम पर भी चलेंगे।

का करत गुमान !

फिर यह इतनी अकड़, और झंडा लिये चले जा रहे हैं--झंडा ऊंचा रहे हमारा ! यह निपट मूढ़ता है। मगर हम सब अपना-अपना झंडा ऊंचा करने में लगे हैं। जरा-सा ऊंचा मकान बना लें पड़ोसी से, उसी में जीवन दांव पर लगा देते हैं। वह झंडा है तुम्हारा। कि जरा और बड़ी कार खरीद लें पड़ोसी से। वह झंडा है तुम्हारा। कि लड़की की शादी हो रही है तो शादी ऐसी करके दिखा दें कि गांव में किसी की न हुई हो। वह झंडा है तुम्हारा। हजार ढंग से तुम एक ही काम कर रहे हो-झंडा ऊंचा रहे हमारा। अच्छा यह हो कि अपना एक बड़ा डंडा ले लो, उसमें एक झंडा लगा लो और मजे से चलो। वह ज्यादा सीधा-सुथरा है और साफ है।

मैं जबलपुर कोई बीस वर्ष रहा। वहां एक आदमी-- दिमाग उसका खराब था। वह अपना तिरंगा झंडा लिये हमेशा घूमता रहता। कभी गया होगा जेल भी, तभी से पगला गया। और तभी से वह झंडा लिये घूमता। आजादी भी आ गयी मगर उसका ढंग अपना जारी है। लोग उसको पागल समझते हैं। वह कभी-कभी मेरे पास आता था। उससे मेरी दोस्ती थी। जिनके घर मैं रहता था वे कहते, आप भी क्या पागल से बातें करते हैं ! मैं उनसे कहता कि यह आदमी सीधा-साफ आदमी है। यह कहता है, झंडा ऊंचा रहे हमारा, खतम ! एक डंडे पर झंडा लगा लिया है, इसमें कोई ज्यादा झगड़ा भी नहीं है किसी से।

तुम भी यही कर रहे हो लेकिन तुम्हारे झंडे जरा सूक्ष्म हैं। तुम जरा बड़े पागल हो। तुम भी यही कर रहे हो। यह आदमी सीधा-सादा आदमी है। यह कहता है, इतनी झंझट क्या लेनी ! अब कहां जाकर बड़ा मकान बनाओ, फिर धन कमाओ, फिर दुनिया को दिखाओ कि मैं कौन हूं। चुनाव लड़ो ! यह कहता है, इतनी झंझट क्या करनी ! एक बांस ले लिया और उसमें कोई भी कपड़ा बांध लिया--झंडा ऊंचा रहे हमारा-- सुगमता से। इसमें कोई झगड़ा भी नहीं करता इससे, और यह अपना मजा ले रहा है पूरा।

लोगों के भीतर देखना, सारे जीवन कोशिश क्या चलती है ? एक ही कोशिश कि किसी तरह सिद्ध कर दूं कि मैं विशिष्ट हूं; मैं कुछ खास हूं। मेरे जैसा कोई और नहीं। मेरे होने से पृथ्वी धन्य है। मैं न होता तो न मालूम दुनिया का क्या होता ! मैं न रहूंगा तो दुनिया का पता नहीं क्या हो जायेगा।

धनी धरमदास कहते हैं कि थोड़ा सोचो ! केते दिन जियबो हो ! कितने दिन यह झंडा ऊंचा रखोगे ? का करत गुमान--किस बात का गुमान कर रहे हो ? पैरों के नीचे से धरती खिसकी जाती है। प्रतिपल मौत करीब आयी जाती है। रोज मर रहे हो।

जब से पैदा हुए हो तब से एक ही काम नियमित किया है, वह है मरने का। सुबह-शाम मरते ही जाते हो। जन्म के बाद मृत्यु घटनी शुरू हो गयी है। एक दिन का बच्चा एक दिन मर चुका। दो दिन का बच्चा दो दिन मर चुका। बीस साल का आदमी बीस साल मर चुका। मौत करीब आने लगी। हम सब क्यू में खड़े हैं और क्यू छोटा होता जाता है। उसमें से आगे से लोग खिसकते जाते हैं। जब भी कोई मरता है, तुम्हारी मौत और करीब आ जाती है क्योंकि क्यू में एक आदमी और कम हो गया। अब तुम चले खिड़की की तरफ। जल्दी ही टिकट तुम्हारे हाथ में भी आ जायेगी। भाग भी नहीं सकते हो। भागने का कोई उपाय भी नहीं है।

एक सूफी फकीर था, उसका एक शिष्य बाजार गया। और बाजार में मदारी खेल दिखा रहा था तो वह भी भीड़ में खड़ा होकर देख रहा था। किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा तो उसने पीछे लौटकर देखा। देखा, एक काली भयंकर छाया ! वह तो घबड़ा गया, प्राण कंप गये। उसने कहा, तू कौन ? उसने कहा, मैं मौत हूं। और तुझे खबर करने आयी हूं कि तू यहां क्या कर रहा है ? आज सांझ तेरी मौत आ रही है। आज शाम को मैं आऊंगी तुझे लेने। तू यहां क्या मदारी का खेल रहा है ?

फिर कहां मदारी का खेल ! मौत तो चली गयी, वह भागा। अपने गुरु के पास भागा वह आया। उसने कहा, मारे गये ! अब बचाओ। गुरु ने कहा, हम पहले ही से तेरे से कहते थे। अब बहुत देर हो चुकी। अब शाम को कितनी देर है ! सुबह हो चुकी, शाम को कितनी देर है ! जब सुबह ही हो चुकी तो शाम आने लगी करीब।

वह युवक तो इतना घबड़ाया था कि उसने सोचा कि अब ज्ञान की बातों में कोई सार नहीं है। फुरसत कहां ज्ञान की बातें सुनने की ? वह भागा राजा के पास गया। उसने राजा से जाकर अपनी कथा कही कि मुझे बचाओ। राजा ने कहा, तू एक काम कर, मेरे पास बड़ा तेज घोड़ा है, इसको लेकर तू निकल जा। भाग जा। जितने दूर निकल सके, निकल जा। सांझ तक सैकड़ों मील दूर निकल जायेगा। यह घोड़ा बड़ा तेज है। ऐसा घोड़ा दुनिया में दूसरा नहीं है।

उसने तो लिया घोड़ा और निकल भागा। बड़ा खुश था। रुका नहीं दिन में। पानी पीने को नहीं रुका, भोजन करने को नहीं रुका। भागता ही रहा। जितने दूर निकल जाए, अच्छा। सांझ को जब सूरज ढल रहा था तो उसने जाकर दमिश्क

नाम के नगर के बाहर बगीचे में घोड़े को बांधा। घोड़े को थपथपाया और कहा, तू गजब का घोड़ा है। सैकड़ों मील दूर ले आया। मेरा बड़ा धन्यवाद। तभी पीछे कंधे पर किसी ने हाथ रखा। वह घबड़ा गया। वह हाथ वही था जो सुबह था। उसने लौटकर देखा, मौत खड़ी थी और खिलखिला रही थी। और मौत ने कहा कि मैं भी घोड़े का धन्यवाद करती हूं। क्योंकि मैं बड़ी परेशान थी कि तेरी मौत तो दमिश्क में घटनी है शाम को और तू हजारों-सैकड़ों मील दूर है। तू शाम तक पहुंचेगा कैसे? मैं भी परेशान थी। मेरा तुझसे मिलना यहां तय है।

जब गुरु को बाद में मौत मिली तो गुरु ने कहा कि तूने मेरे शिष्य को क्यों डराया? उसने कहा, मैंने डराया नहीं। मैं तो खुद ही डर गयी थी उसको देखकर बाजार में खड़े हुए। मदारी का मजा ले रहा था। मैं खुद ही डर गयी थी कि करूंगी क्या! इसकी मौत तो सैकड़ों मील दूर दमिश्क में होने को है। इसको दमिश्क पहुंचायेगा कोई कैसे! मगर राजा के घोड़े ने काम कर दिया। वह ठीक वक्त पर ठीक सूरज ढलते-ढलते जगह पर पहुंच गया, जहां पहुंचना था।

जिंदगी भर तुम चलो, पहुंचते कहां हो? ठीक जगह पर जहां मरना होता है—दमिश्क! कोई अपने बड़े तेज घोड़े पर जा रहा है, किसी का घोड़ा नहीं है तो अपने टट्टू पर ही जा रहा है मगर लोग जा रहे हैं। गरीब पैदल ही जा रहे हैं। कोई हवाई जहाजों पर जा रहा है। अपनी-अपनी सुविधा! मगर सब जा रहे हैं दमिश्क। और जब तुम जाकर घोड़ा, अपना टट्टू, अपना गधा, अपना हवाई जहाज कुछ भी सही—बांधोगे, उतरोगे नीचे, जिस पंजे से तुम जिंदगी भी भागते रहे उसे कंधे पर पाओगे।

यह स्मरण आ जाए तो गुमान टूट जाता है।

लोग मुझसे पूछते हैं, अहंकार कैसे छोड़ें? उनसे मैं कहता हूं, अहंकार छोड़ने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मौत की समझ आ जाए, अहंकार छूट जाता है। मौत दिख जाए, फिर कैसा अहंकार?

इसलिए धनी धरमदास कहते हैं, का करत गुमान!

कच्चे बांसन का पिंजरा हो, जा में पवन समान

हो ही क्या तुम? कच्चे बांसन का पिंजरा। पके बांस भी नहीं, कच्चे बांस। जरा-सी हवा समा गयी है कच्चे बांस के पिंजरे में। छाती धुक-धुक हो रही है, श्वास आ-जा रही है। का करत गुमान! इसमें है क्या? इतना मूल्यवान यहां कुछ भी नहीं है। और इस जिंदगी में तुमने पाया भी क्या है?

मुख्तसर ये है कि दास्ताने-हयात
फूल ढूंढ़े हैं, खार पाये हैं

खोजो तो फूल थे, मिले कांटे हैं। कांटों के अतिरिक्त तुमने पाया क्या है? दुखों के अतिरिक्त पाया क्या है? सुख की तो सिर्फ आशा है, दुख का अनुभव है। आशा के सहारे जिये जाते हो कि शायद कल मिले, परसों मिले, शायद.. शायद.। न कल मिलेगा, न परसों मिलेगा। सुख मिलता कहां है? अंततः मौत मिलती है। जिंदगी दुख देती है और अंततः सरकते-सरकते तुम मौत में समा जाते हो।

तुम्हारी जिंदगी कितने कच्चे बांस की है यह तो देखो। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी की जिंदगी है, यही चमत्कार है। जरा जीवन की सीमा को देखो तो ख्याल में आ जाए। एक दो-चार-पांच मिनट के लिये श्वास न आये और तुम गये। कच्चे बांस का पिंजरा। बुखार एक सौ दस डिग्री पहुंच जाए, गये! दस-ग्यारह डिग्री का फासला है। इधर अंठानबे रहे तो ठीक, इधर एक सौ दस हुआ कि गये। बारह डिग्री तुम्हारी जिंदगी है।

कच्चे बांसन का पिंजरा हो ...

इधर श्वास में इतनी मात्रा ऑक्सिजन की आती रहे तो ठीक, और रात द्वार-दरवाजे बंद करके सो गये और सिगड़ी जला ली, सर्द रात, और धुआं कमरे में ज्यादा भर गया— सुबह फैसला! जरा-सा धुआं आ गया कि गये। दो बूंद जहर की जीभ पर पड़ जाए और गये। पक्का बांस भी नहीं है यह, जो टिके थोड़ी-बहुत देर, जो थोड़ा संघर्ष कर ले। और कितने रोग भीतर भरे हैं! यह चमत्कार है कि हम जी रहे हैं। इतनी छोटी सीमा है हमारे जीवन की। अंठानबे डिग्री से एक सौ दस डिग्री के बीच में; बारह डिग्री का खेल है। थोड़ी-सी श्वास इधर उधर, कि गये।

और कितना जटिल जाल है! जरा रक्तचाप बढ़ जाए कि गये। जरा मात्रा में खून में मिठास बढ़ जाए कि गये; कि मिठास कम हो जाए कि गये। जाना ही जाना चारों तरफ से घेरे हुए है। छोटी-सी दुनिया है। उसमें किस तरह जी रहे हो, एक चमत्कार है, एक रहस्य है। आदमी होना नहीं चाहिए, जीवन होना नहीं चाहिए। मौत का विराट सागर है और छोटा-सा द्वीप है हमारा। अंधेरा है मौत का सब तरफ और जरा-सा दीया जल रहा है। हवा का झोंका आया कि गया। मिट्टी का दीया है यह।

कच्चे बांसन का पिंजरा हो, जा में पवन समान

बस, थोड़ी-सी हवा है। जिंदगी हवा है, हवा का एक झोंका है। का करत गुमान! अकड़ किस बात की है? अकड़ के योग्य कुछ भी तो नहीं है। शायद

इसीलिए हम अकड़ रहे हैं। इसे समझना।

मनस्विद कहते हैं कि आदमी वही अकड़ता है जिसको अपने भीतर की हीनता का भाव साफ होता है। अकड़ हीनता को भुलाने का उपाय है, इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स से बचने की व्यवस्था है। अगर अपने को देखो तो बड़ी हीनता मालूम होगी। है ही क्या! मामला ही क्या है? एक हिचकी आ जाए कि गये। एक हिचकोला काफी है। एक धुकधुकी न हो हृदय की और गये। इतनी मौत करीब है। मौत और तुम्हारे बीच फासला क्या है? कागज की दीवाल समझो।

और शायद इसीलिए हम गुमान के लिये नये-नये रास्ते खोजते हैं। आखिर आदमी को जीने के लिये कुछ तो बहाना चाहिये। अगर जिंदगी को पूरा-पूरा देखे तो जीने के सब बहाने खो जाते हैं। तो देखता ही नहीं। अपनी तरफ नजर ही नहीं करता। दौड़ता ही रहता है, दौड़ता ही रहता है। न रहेगी फुरसत, न होगा स्वयं से साक्षात्कार। सुबह उठा कि भागा। थका-मांदा रात आया कि गिरा बिस्तर में, फिर सुबह हुई कि भागा। फुरसत नहीं मिले। एक घड़ी को अपने जीवन पर पुनर्विचारणा का अवसर न मिले, यह आदमी के जिंदगी का हिसाब है। वह भागा ही रहता है।

ध्यान का क्या अर्थ होता है? ध्यान का अर्थ होता है, चौबीस घड़ी में कम से कम एक घंटा बैठ जाओ। जिंदगी पर पुनर्विचार कर लो। आपाधापी से एक घंटा बचा लो। एक घंटा जरा अपने पर सोच लो, देख लो अपने को कि मामला क्या है, मैं कर क्या रहा हूं? करने योग्य भी है यह? कर-करके भी क्या पाऊंगा? इसका अंतिम परिणाम क्या होगा! उसी तरफ इशारा कर रहे हैं––

कहो केते दिन जियेबो हो का करत गुमान
कच्चे बांसन का पिंजरा हो, जा में पवन समान
पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान
कच्ची माटी के घड़ुवा हो, रस-बूंदन सान

कच्ची मिट्टी के घड़े हो। रज-वीर्य का थोड़ा-सा रस सना है, उसी थोड़े-से रस के आधार पर कच्ची मिट्टी बंधी है। कब बिखर जायेगी कोई नहीं कह सकता। नियमानुसार कभी भी बिखर जानी चाहिए थी। क्यों नहीं बिखरी यह अभी तक, यही चमत्कार है।

तुम जरा गौर से देखो। तुमने उलटी बात मान रखी है। कोई मर जाता है तो तुम कहते हो, कैसे मर गया! अभी कैसे मर गया! असमय में मर गया। तुम उलटी बात कर रहे हो। सच में जिंदा आदमी देखकर कहना चाहिए हद्द, अभी भी जिंदा हो? कैसे जिंदा हो? चमत्कार कर रहे हो। बड़ा जादू है। रोज सुबह उठकर

सोचा करे कि हद्द, आज फिर जिंदा हूं! तो रात फिर बच गया! विस्मय से मरना। बुद्धिमान आदमी विस्मय करता है जीवन पर। बुद्धू आदमी विस्मय करता मृत्यु पर। बस इतना ही फर्क है बुद्धिमत्ता और बुद्धूपन का। बुद्धू कहता है, कैसे यह हुआ कि मर गया आदमी! अभी कोई मरने का वक्त था? यह कोई समय था? बुद्धिमान आदमी कहता है कि तुम जिंदा हो? कैसे जिंदा हो! यह मिट्टी का घड़ा इतनी बरसातें झेल गया, अभी भी जिंदा है, पिघल नहीं गया! यह कागज की नाव इतने दूर तक चल गयी, अभी तक डूबी नहीं?

इसलिए ज्ञानी रोज सुबह उठकर चमत्कृत होता है, धन्यवाद देता है परमात्मा को कि आश्चर्य, अभी मैं हूं! आज और हूं? कुछ क्षण और मिले? नहीं मिलने चाहिए थे नियमानुसार। कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता यह मिट्टी का घड़ा कैसे जिया चला जाता है। मृत्यु दुर्घटना नहीं है, जीवन दुर्घटना है।

पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान
कच्ची माटी के घड़ुवा हो, रस-बूंदन सान
पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान

कभी बतासे को पानी में डालकर देखा? देर नहीं लगती। इधर डाला, उधर गला।

पानी बीच बतासा हो!
आदमी बुलबुला है पानी का
और पानी की बहती सतह पर
टूटता भी है, डूबता भी है
फिर उभरता है, फिर से बहता है
न समुंदर निगल सका इसको
न तवारीख तोड़ पायी है
वक्त की हथेली पर बहता
आदमी बुलबुला है पानी का

बड़ा चमत्कार है आदमी! बहता जाता है। तुमने कभी-कभी देखा न, पानी पर बहते हुए बुलबुले को? लगता है अब टूटा, अब टूटा, तब टूटा; फिर भी बहा जा रहा है। तुम भी उत्सुक हो जाते हो पानी को बबूले में बहते देखकर। और थोड़ी देर टिक जाता है तो चमत्कृत होते हो, अरे टिका! और बड़ा होता जा रहा है, पतला होता जा रहा है। क्योंकि जैसे-जैसे बड़ा होता है वैसे-वैसे पानी की जो पतली-सी तह है वह और पतली होती जा रही है, और झीनी होती जा रही है।

जैसे आदमी का अहंकार बड़ा होता है वैसे ही आदमी का होना और भी

चमत्कार होता जाता है। क्योंकि उतना ही बड़ा गुब्बारा। फूटने के उतने ही करीब। मगर यह चमत्कार घट रहा है।

इस चमत्कार को जो ठीक से देखता है उसके जीवन में क्रांति घट ही जाती है। वह फिर इस जगत की चीजों को नहीं जोड़ता। फिर इस जगत में अपना घर नहीं बनाता। नहीं कि भाग जाता है जंगल में क्योंकि जंगल भी इसी जगत का हिस्सा है। भागकर वहां जाने से क्या होगा ? नहीं कि गुफा में बैठ जाता है क्योंकि गुफा भी ऐसी ही मिट्टी की है जैसा तुम्हारा मकान। यहां पहाड़ भी रेत हो जायेंगे। यहां हर चीज मिट जानेवाली है। नहीं, कहीं भागता नहीं लेकिन अपने भीतर उसकी तलाश में लग जाता है जो शाश्वत है।

पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान

दुनिया की हकीकत है फकत एक दिखावा
कहने को तो सब कुछ है मगर कुछ भी नहीं है

कहने को ही सब कुछ है--घर है, मकान है, पत्नी है, पति है, बच्चे हैं, बेटियां हैं, रिश्तेदार हैं, मित्र हैं। कहने को सब कुछ है। बस, कहने को ही है। इधर सांस गयी कि सब व्यर्थ हुआ।

सांस जाए उसके पहले जाग जाओ। सांस जाए उसके पहले समाधि का थोड़ा अनुभव कर लो। जीवन उसी अनुभव के लिए एक अवसर है और तुम उसे गंवाते हो। तुम्हें भेजा गया है हीरे की खदान पर और तुम कंकड़-पत्थर बीन रहे हो। और जल्दी ही खबर आ जायेगी कि समय पूरा हो गया। तब तुम बहुत पछताओगे लेकिन मृत्यु फिर समय नहीं देती। फिर तुम लाख कहो कि चौबीस घंटे का वक्त दे दो, उतना भी नहीं मृत्यु से मिलता। आयी तो आयी। तो फिर कोई मोहलत नहीं है।

सिकंदर चौबीस घंटे ज्यादा जिंदा रहना चाहता था। क्योंकि वह अपनी मां को वचन देकर आया था कि सारी दुनिया को लौटकर जब जीतकर आऊंगा तो तेरे चरणों में सारी दुनिया का राज्य रख दूंगा। वह हिंदुस्तान से लौट रहा था। उस समय की जानी हुई सारी दुनिया उसने जीत ली थी। लेकिन अपनी राजधानी से चौबीस घंटे के फासले पर था, तब चिकित्सकों ने कह दिया कि अब बच न सकोगे। उसने बहुत आरजुएं कीं, बहुत मिन्नतें कीं। परमात्मा की कभी उसने याद नहीं की थी, पहली दफे याद की। सारी सेना ने प्रार्थना की। लाखों लोगों ने प्रार्थना की कि सिर्फ चौबीस घंटे....। क्योंकि सिकंदर की एक ही मन्शा थी कि पूरी कर लूं, कि जाकर मां के चरणों में सारा राज्य दुनिया का रख दूं। किसी बेटे ने कभी अपनी

मां के चरणों में सारी दुनिया का राज्य नहीं रखा; वह मैं करके दिखा दूं। वह सिर्फ चाहता था चौबीस घंटे, ज्यादा नहीं मांगता था। लेकिन वह भी नहीं हो सका।

सिकंदर को भी चौबीस घंटे ज्यादा नहीं मिलते। मौत आ ही गयी। जब मौत आ ही गयी तब उसे दिखाई पड़ा कि मैं चूक गया। इस जिंदगी को मैंने व्यर्थ की चीजें इकट्ठा करने में गंवा दिया। मैंने ऐसा कुछ भी सार्थक नहीं खोजा है, जो मैं कह सकूं परमात्मा के सामने कि यह मैं खोजकर लाया हूं। सब गंवाकर लौटा हूं। मैं भिखमंगे की तरह जा रहा हूं, सम्राट की तरह नहीं। सिकंदर के अंतिम वचन यही थे कि मैं भिखमंगे की तरह मर रहा हूं, सम्राट की तरह नहीं।

सम्राट की तरह भी मरने का ढंग है और भिखमंगे की तरह भी। अधिकतर लोग भिखमंगे तरह मरते हैं।

धरमदास सम्राट की तरह मरे, इसलिए कबीर ने उनको नाम दिया धनी धरमदास। धनी होकर मरे। कौन सा धन पा लिया ? ध्यान का धन। परमात्मा को पाकर मरे, आत्मा को जानकर मरे, जीवन की शाश्वतता को पहचानकर मरे। फिर कोई मृत्यु नहीं है। जिसने अपने भीतर के आत्यंतिक सत्य को पहचान लिया उसने अमृत को पहचान लिया। फिर कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु तो तभी तक घटती है जब तक हम बाहर से जुड़े हैं। मृत्यु हमें बाहर से तोड़ती है। और हम बाहर से जुड़े हैं। जैसे ही हम भीतर से जुड़ गये, फिर मृत्यु हमें नहीं तोड़ सकती।

कागद की नइया बनी, डोरी साहब हाथ
जौने नाच नचैहें हो, नाचब वोही नाच
का करत गुमान !

ये वचन बड़े प्यारे हैं। धरमदास कह रहे हैं,

कागद की नइया बनी, डोरी साहब हाथ

लेकिन उसका अंतिम धागा परमात्मा के हाथ में है। नाव बह रही है, है कागज की, लेकिन जब कागज की नाव भी बहेगी तो वह भी अकड़कर फूल जायेगी। वह भी कहेगी धाराओं से, लहरों से कि देखो ! देखो मेरा रोब। देखो मेरी गति। वह भी चांद-तारों के सामने इठलायेगी और अकड़ेगी। साहब के हाथ में डोरी है। नाव अपने से नहीं चल रही है।

तुम अपने से थोड़े ही जी रहे हो--डोरी साहब हाथ। तुमने अपने से क्या किया है ? सांस भी तो तुम अपने से नहीं ले रहे हो। वह भी चल रही है तो चल रही है। वही तो डोरी है। जब नहीं चलेगी तो तुम कुछ लाख उपाय करो, नहीं चला सकोगे। सिर कितना ही पटको, एक सांस भी भीतर नहीं ले सकोगे।

का करत गुमान !
कहो केते दिन जियबो हो

यह डोरी साहब के हाथ है यह समझ में आ जाए तो सद्‌गुरुओं की सारी शिक्षा का सूत्र तुम्हें पकड़ में आ गया।

जौने नाच नचैहें, नाचब वोही नाच

तुम यह कहो ही मत कि मैं हूं। वही है; जो नाच नचाता है, नाचता हूं। बचाता है, बचता हूं। डुबाता है, डूबता हूं। बनाता है, बनता हूं। मिटाता है, मिटता हूं। जैसे ही तुम्हें यह बात दिखाई पड़ने लगे कि उसके इशारे पर ही सब हो रहा है, वैसे ही तुम्हारा मैं-भाव खो जायेगा, गुमान खो जायेगा, अकड़ मिट जायेगी। तुम सरल हो जाओगे। तुम विनम्र हो जाओगे। तुम शून्य हो जाओगे। और शून्य में ही परमात्मा उतरता है।

शून्य ही सूली है जिसकी मैंने तुमसे बात कही। और शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होता है। पूर्ण सिंहासन है, जिसकी मैंने तुमसे बात कही। तुम शून्य हो जाओ तो तुम सूली पर चढ़ गये क्योंकि तुमने मैं को सूली दे दी। अब तुमने मैं-भाव छोड़ दिया। अब तुमने कहा कि--

कागद की नइया बनी, डोरी साहब हाथ
जौने नाच नचैहें हो, नाचब वोही नाच

अब तेरी मर्जी। जो करवाये। जैसा करवाये। तू ही करनेवाला है, मैं कर्ता नहीं हूं। कर्ता तू है। तेरा जीवन, तेरी मौत। तेरी हार, तेरी जीत। तेरा सौंदर्य, तेरी कुरूपता। सब तेरा। बुरा भी तेरा, भला भी तेरा।

इसको जरा ख्याल में रखना। पुण्य भी तेरा, पाप भी तेरा। चोरी करवाये तो चोरी। साधु बनाये तो साधु। तू कहे कि रावण बन, तो मैं कैसे राम बनूं? तू रावण बनाये तो रावण। तू राम बनाये तो राम। यह बड़ी गहरी अनुभूति है। यह नाटक है, इसमें तू जो पार्ट दे देगा, हम पूरा करेंगे।

जौने नाच नचैहें हो, नाचब वोही नाच

हम हैं ही नहीं। तेरी मर्जी ही सब कुछ है। ऐसी समर्पण की दशा में ही परमात्मा अवतरित होता है। परमात्मा को खोजने भी नहीं जाना पड़ता। इसको जिसने समझ लिया--डोरी साहब हाथ। कहीं खोजने नहीं जाना पड़ता। किसी हिमालय में नहीं। जहां तुम बैठे हो वहीं परमात्मा आ जाता है। बस, यह डोरी तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जाए।

धरमदास एक बनिया हो करे झूठी बाजार

धरमदास कहते हैं, मैंने खूब झूठा बाजार किया है। मैं बनिया हूं। मैंने खूब धन कमाया है झूठ का, पद कमाया है झूठ का, यश कमाया है झूठ का। मैंने झूठ

के सिक्के खूब चलाये। झूठ के सिक्कों में खूब जिया।

जिसको तुम संसार कहते हो, वह झूठ का व्यापार है। वहां सच्चा आदमी हार जाता है और झूठा जीत जाता है। वहां झूठ कला है। वहां सत्य आदमी बुद्धू समझा जाता है। वहां झूठ कुशल समझा जाता है। इसे जरा ख्याल में लेना।

तुम कई दफे चौंकते भी हो कि झूठे सफल हो रहे हैं। लेकिन संसार झूठ का व्यापार है। वहां झूठे ही सफल हो सकते हैं क्योंकि झूठ वहां भाषा है। वही समझी जाती है। वहां भोला-भाला आदमी, जो सच बोल दे, वह तो खेल के बाहर हो गया। वह तो खेल का हिस्सा ही न रहा। वहां सीधे-सादे की गति नहीं है। वहां जो जितनी तिरछी चाल चले, उतनी ही सफलता की संभावना है। इस झूठ के व्यापार में बेईमान सफल होते हैं। मगर उनकी सफलता क्या है? मर जायेंगे और सब सफलता पड़ी रह जायेगी; किसी काम न आयेगी।

धरमदास एक बनिया हो करे झूठी बाजार
साहब कबीर बंजारा हो करै सत्त व्यापार

और कहते हैं, कबीर से मिलना हुआ तब समझा कि एक और भी व्यापार है। एक और भी सौदा है। करने योग्य असली सौदा और ही है। वह इस कबीर बंजारे से मिलकर हुआ।

बंजारा शब्द बड़ा प्यारा है। बंजारा का अर्थ होता है, जिसका यहां कोई घर नहीं। बंजारा हम उसको कहते हैं न--खानाबदोश को। खानाबदोश शब्द भी बड़ा प्यारा है। उसका मतलब होता है, जिसका घर उसके कंधे पर है। खाना यानी घर, बदोश यानी कंधे पर। जिसका घर उसके कंधे पर। जिसका और कोई घर नहीं है, बस खुद ही अपना घर है।

बंजारा तंबू में जीता है। आज बांध लिया तंबू, कल उखाड़ दिया तंबू। उसके पास कोई स्थिर घर नहीं होता। बंजारा घर नहीं बसाता। बंजारा इस संसार में मंजिल नहीं मानता, पड़ाव बनाता है। रुक गये, सराय है जैसे। सुबह हुई, चल पड़े। इसलिए धरमदास कहते हैं,

साहब कबीर बंजारा हो करै सत्त व्यापार

और कबीर के पास आकर पता चला कि एक और भी व्यापार है, जो मैंने किया ही नहीं। मैं फिजूल के व्यापार में पड़ा रहा। मैं सपने में धन खोजता रहा। असली सिक्के भी हैं यहां। यहां असली संपदा भी है, लेकिन उस संपदा के लिये अंतर्यात्रा करनी होती है।

सतगुरु आवो हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी
वाही देस की बतिया रे लावै संत सुजान

उन संतन के चरन पखारूं, तन मन करि कुर्बान

एक बात ख्याल लेना, अचानक धनी धरमदास अपने को स्त्री की तरह प्रतिपादित करने लगते हैं। अचानक! अभी तक बोलते थे पुरुष की भाषा में। अब यहां कहते हैं, 'सतगुरु आवो हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी'; अचानक!

बस, यहीं से विद्यार्थी शिष्य बनता है। जैसे ही विद्यार्थी शिष्य बनता है, स्त्रैण हो जाता है। विद्यार्थी पुरुष होता है, शिष्य स्त्रैण होता है। मतलब खूब ख्याल में ले लेना। विद्यार्थी तलाश में होता है, खोजता है। खोज का अर्थ है पुरुष। शिष्य ग्रहण करता है, खोजता नहीं। स्वीकार करता है, अपने को खोल देता है, अंगीकार करता है। शिष्य स्त्रैण होता है।

जैसे स्त्री अंगीकार करती है। स्त्री गर्भ है। गर्भ खोजता है। स्त्री प्रतीक्षा करती है। स्त्री सिर्फ स्वीकार करती है अहोभाव से। इसलिए स्त्री अगर किसी पुरुष के पीछे पड़ जाए तो पुरुष डर जाता है। ऐसी स्त्रियों से लोग प्रेम नहीं करते जो पुरुषों के पीछे पड़ जाएं। क्योंकि वे स्त्रियां ही नहीं हैं। स्त्री का लावण्य यही है कि वह प्रतीक्षा करे, धैर्य करे। स्त्री पहल नहीं करती। उसे तुमसे लाख प्रेम हो, वह तुमसे यह न कहेगी आकर कि मुझे तुमसे प्रेम है। वह प्रतीक्षा करेगी, तुम जब कहोगे.... और तब भी शायद 'नहीं' नहीं कहेगी। तुम्हें अनुमान लगाना पड़ेगा कि उसका चेहरे का भाव हां का है, स्वीकार का है।

लेकिन जो स्त्री जाकर किसी से कहे, मुझे तुमसे प्रेम है, उसमें स्त्रैण तत्व की कमी है, कोमलता की कमी है। उसमें आक्रमक भाव है।

पुरुष आक्रमक है, स्त्री ग्राहक है।

विद्यार्थी और शिष्य का वही फर्क है। विद्यार्थी तलाश में खोजता है, सक्रिय रूप से। मिल जाए कहीं कुछ। शिष्य को मिल गया वह आदमी, जिसके पास घटना घट सकती है। अब वह अपने को खोल देता है। अपने द्वार-दरवाजे खोल देता है। अब वह स्त्रैण हो जाता है।

यह जो कृष्ण के पास तुमने गोपियों का नाच देखा है, इसका मौलिक अर्थ यही है कि गुरु के पास जो भी होगा, वही गोपी हो जाता है; वहीं स्त्रैण हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि उनके पास सिर्फ स्त्रियां ही स्त्रियां नाच रही थीं; मगर जो भी उनके पास नाच रहे थे वे सब स्त्रियां हो गये थे। इसलिए पुरुषों को भी पुरुष की तरह चित्रित नहीं किया है।

शिष्य में पुरुषभाव रहता ही नहीं। शिष्य में प्रीति होती है, स्त्रैण प्रीति। समर्पण-भाव होता है।

इसलिए अचानक भाषा बदल गयी। धनी धरमदास कहते हैं,

सतगुरु आवो हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी

अब वे कहते हैं कि मैंने अपना हृदय का द्वार तुम्हारे लिये खोल दिया, अब तुम मेरे आ जाओ मेरे देश में; अब तुम मुझमें समा जाओ।

मिलता नहीं सुकूं किसी उन्वां तेरे बगैर
फिरता हूं दश्त-दश्त परेशां तेरे बगैर

एक घड़ी होती है, जब आदमी खोजता फिरता है, खोजता फिरता है। फिर किसी आंख से आंख मिली। फिर किसी से रंग बैठा। किसी के साथ तार जुड़े।

पूजता हूं तुझे खयालों में
कर रहा हूं बंदगी खामोश

फिर सब खोज समाप्त हुई।

पूछता हूं तुझे खयालों में
कर रहा हूं बंदगी खामोश

फिर तो कहने को भी कुछ नहीं रह जाता। बंदगी भी खामोश हो जाती है। फिर तो सिर्फ प्रतीक्षा है एक प्रार्थना भरे हृदय की। शब्द भी नहीं है, सिर्फ राह है; सिर्फ बाट है।

सतगुरु आवो हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी
वाही देस की बतिया रे लावै संत सुजान

उस दूसरे देश की खबर लाते हैं जो, वे ही संत हैं। उस दूसरे देश होकर आते हैं जो, वही संत हैं। उस दूसरे देश की सुगंध से भरे आते हैं जो, वही संत हैं।

इस बगीचे में तुम जाओ, फूलों को तुम छुओ, फूलों से तुम बतियाओ, वृक्षों के पास नाचो, फिर तुम अपने घर लौट जाओ। फूल भी तुम न ले जाओ। शायद फूल ऐसे हैं कि ले जाए भी नहीं जा सकते। और तुम ले भी जाओ तो उस घर के निवासियों ने फूल कभी देखे नहीं; वे पहचान भी न सकेंगे। मगर फिर भी एक सुगंध तुम्हारे पास चली जायेगी, तुममें भरी चली जायेगी, तुम्हारे वस्त्रों में लगी चली जायेगी। एक ताजगी! एक भीना-भीना भाव! एक वातावरण!

वही वातावरण सद्गुरु के पास होता है। तुम उसके पास बैठकर अगर अपने नासापुटों में उसकी सुगंध लोगे, तो तुम्हें एक बात तो समझ में आयेगी कि कुछ है, जो इस जगत के पार का है। कुछ है जो दूर का है। कुछ है जो मैंने नहीं जाना; जिससे मैं अपरिचित हूं।

तुम गुरु की आंखों में आंखें डालकर देखोगे तो तुम्हें द्वार मिलेगा। द्वार--जो किसी अज्ञात में खुलता है।

ऐसी घड़ी में ही विद्यार्थी शिष्य हो जाता है।

न मालूम वह घड़ी क्या रही
जब हम तुमपे निसार हो गये

समझ भी नहीं पड़ता कि कब घट गई घटना। मगर एक निसार होने की घटना हो जाती है, न्योछावर होने की घटना हो जाती है।

न मालूम वह घड़ी क्या रही
जब हम तुमपे निसार हो गये

वैसी घड़ी आ जाए इसके लिए भटकना पड़ता है। कहां आयेगी, किस द्वार से गुरुद्वारा बन जायेगा, कहना मुश्किल है। कौन सा द्वार गुरुद्वारा बन जायेगा, कहना मुश्किल है। पहले से तय करना मुश्किल है।

और जो तय करके चले हैं वे चूक जायेंगे। सिर्फ खुले भाव से खोज होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म खोजना चाहिए। धर्म जन्म से नहीं मिलता। धर्म जन्म से मिल ही नहीं सकता। धर्म कोई वसीयत थोड़े ही है! धर्म कोई खून में थोड़े ही है! हड्डी मांस-मज्जा में थोड़े ही है! बाप से नहीं मिलता धर्म; न मां से मिलता है धर्म; न संस्कार से मिलता है धर्म; न शिक्षा से मिलता है धर्म।

धर्म खोजना पड़ता है– प्यास से भरकर, तड़फते हुए, जलते हुए। और जब कोई प्यासा आदमी खोजता है... खोजता है... खोजता है, एक घड़ी वह घटना घट जाती है।

न मालूम वह घड़ी क्या रही
जब हम तुमपे निसार हो गये

सरोवर दिखाई पड़ता है, और सब हो जाता है।

फिर जरूरी नहीं है कि तुम्हें जो सरोवर है, वह दूसरे को भी सरोवर हो। प्यासें अलग हैं, आंखें अलग हैं, व्यक्तित्व अलग हैं। जो तुम्हारे लिये गुरु है, जरूरी नहीं है कि दूसरे के लिये भी गुरु हो। इसलिए अपने गुरु को किसी पर थोपने की कोशिश मत करना। और न किसी और के गुरु को स्वीकार कर लेने की जल्दी कर लेना। खोजना। निजी खोज करना। और अगर ठीक-ठीक खोजा तो जरूर पाओगे। जो खोजता है उसे मिलता है। जो नहीं खोजते वे ही चूकते हैं। और जिस दिन मिल जायेगा उस दिन खोज बंद हुई, उस दिन पुरुष गया; उस दिन आक्रमक वृत्ति गयी। उस दिन तुम्हारे भीतर स्त्री का जन्म हुआ।

शिष्य स्त्रैण होता है। इसलिए बहुत ठीक किया धनी धरमदास ने, भाषा एकदम बदल दी।

सतगुरु आवो हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी
वाही देस की बतिया हम से सतगुरु आन कही

आठ पहर के निरखत हमरे नैन की नींद गयी

गुरु आया कि नींद गयी। गुरु यानी जागरण। फिर सोना कहां! फिर सपने कहां! फिर अंधेरा कहां! फिर रोशनी ही रोशनी है।

क्या जानूं आज किसका मुझे इंतजार है
पलकों की एक झपक भी मुझे नागवार है

और जब तुम्हारे पास जीवंत सत्य खड़ा हो तो कैसे झपकी लोगे? कैसे आंख झपकोगे? कहीं चूक न जाए। कहीं कोई संदेश चूक न जाए। कहीं कोई भावभंगिमा चूक न जाए।

आठ पहर के निरखत हमरे नैन की नींद गयी
भूल गयी तन-मन-धन सारा व्याकुल भया शरीर
विरह पुकारे विरहिनी ढरकत नैनन नीर

भूल गयी तन-मन-धन सारा––जिसके चरणों में तुम सब न भूल जाओ, समझना कि वे चरण तुम्हारे लिये गुरु के चरण नहीं हैं। जहां तुम कुछ भी बचा लो, समझ लेना कि वे तुम्हारे लिये गुरु के चरण नहीं हैं। जहां तुम बचा ही न सको कुछ ..।

और ध्यान रखना, न बचाने का अर्थ यह नहीं होता कि तुम सारा घर जाकर उसके चरणों में रख दोगे। नहीं बचाने का यह अर्थ भी नहीं होता कि अपना परिवार, अपनी दुकान, सब बरबाद कर दोगे। न बचाने का यही अर्थ होता है कि अगर उसका इशारा हो जाए तो तुम बरबाद करने को तैयार हो। तुम जरा भी नानुच न करोगे। यद्यपि कोई गुरु इशारा नहीं करता।

इसको ख्याल में रखना, गुरु तुमसे मांगता नहीं कि तुम सब दे दो। इससे बड़ा नुकसान हुआ है, और बड़ी हानि हुई है। इस तरह के वचन बड़े गलत ढंग से व्याख्या किये गये। इन वचनों का ठीक-ठीक अर्थ समझ में न हो तो बड़ी चूक हो सकती है, और बड़ा पाखंड पैदा हो जाता है। इस वचन का अर्थ समझो–

भूल गयी तन-मन-धन सारा व्याकुल भया शरीर

यह शिष्य अपनी मनोदशा का वर्णन कर रहा है कि मैं सब भूल गया। तन-मन-धन जो भी था, सब विस्मृत हो गया मुझे। सारा संसार जैसे एक झूठी कहानी हो गयी। गुरु ही केवल सत्य होकर सामने खड़ा है।

यह शिष्य अपनी तरफ से कह रहा है। लेकिन पाखंडी गुरुओं ने क्या किया? उन्होंने कहा कि जब तक तुम सारा तन-मन-धन मुझे न दो, तब तक तुम शिष्य ही नहीं हो।

मैं तुम्हें यह चेतावनी दूं–शिष्य को तो सब भूल जाता है, लेकिन जब शिष्य को ही सब भूल गया, शिष्य को ही सारे संसार का धन दो कौड़ी का हो गया, तो

उसके गुरु को क्या इस धन में कुछ रस हो सकता है ? उसका गुरु अगर यह धन मांगे तो शिष्य भला शिष्य हो, गुरु गुरु नहीं है। और गुरु अगर यह कोशिश करे कि देखो, शिष्य का यह लक्षण है कि वह सब भूले। तुम्हारे पास जितना धन हो, यहां ले जाओ। सब दान कर दो मुझे। तो वह गुरु अभी झूठ के व्यापार में पड़ा है।

यह शिष्य की भावदशा का वर्णन है। जब शिष्य की यह दशा है तो गुरु की तो क्या होगी ! उसे तो पता ही नहीं होता। उसकी तरफ से कोई मांग नहीं हो सकती।

इस तरह की बड़ी भ्रांतियां अतीत में हुई हैं। बुद्ध ने कहा कि जो उसकी खोज में निकला है, उसके मन में दान सहज होगा। वह देने को सदा तत्पर होगा। भिक्षुओं ने इसका क्या मतलब निकाला ? वे लोगों को समझाने लगे कि दो; क्योंकि दोगे तो ही तुम सतशिष्य हो।

यही हिंदू पंडित-पुरोहित करते रहे हैं सदियों से। दान का भाव शिष्य में उमगता है यह सच है; लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कोई इसका शोषण करना शुरू कर दे। पंडित-पुरोहित यही कर रहे हैं। रास्ते पर खड़े भिखारी भी यही कर रहे हैं।

तुमने देखा, भिखारी, जब तुम्हारा हाथ पकड़ लेता है और कहता है कि 'लोभ पाप का बाप बखाना, दान धर्म का मूल।' तो वह तुमसे यही कह रहा है कि दो। अगर नहीं दिया तो लोभी हो। और मजा यह है कि वह मांग रहा है, वह लोभी नहीं है। अगर तुम दो तो तुम दानी हो, धार्मिक हो।

वह तुम्हारे अहंकार को फुसला रहा है। वह यह कह रहा है कि देखो, अब बाजार में बदनामी हो जायेगी। लोग कहेंगे कि लोभी है, एक-दो पैसे भी न दे सका। इसलिए भिखारी भी तुमको ऐसी जगह पकड़ते हैं, जहां बदनामी हो जाने का डर हो; कि चौराहे पर पकड़ लेते हैं गांव के। एकांत में तुम मिल जाओ तो वे तुमको पकड़ते भी नहीं, क्योंकि एकांत में हो सकता है तुम एक झापड़ रसीद करो। देने की तो बात दूर।

लेकिन बीच बाजार में, जहां प्रतिष्ठा का सवाल है, जहां तुम दुकान लिये बैठे हो, जहां तुम झूठ का व्यापार कर रहे हो, वहां जरा झंझट की बात है। अब इसको दो पैसे न दो तो लोग कहेंगे कि अरे... ! तुम्हें देना पड़ता है। देना भी नहीं चाहते, दिल भी कचोटता है, जानते हो कि ठग रहा है। क्योंकि तुम खुद दूसरों को को ठग रहे। तुम जानते हो ठग की भाषा क्या है। यह ठग रहा तुम्हें। तुम जानते हो कि तुम बुद्धू बनाये जा रहे हो। मगर अब दो पैसे देने जैसे लगते हैं क्योंकि सारी प्रतिष्ठा, दो पैसे में अहंकार बचता है। दो !

भिखमंगे को लोग इसलिए नहीं देते कि दया आ रही है। भिखमंगे को लोग

इसलिए देते हैं कि अपनी प्रतिष्ठा दांव पर कौन लगाये। और अगर तुम नहीं देते तो भिखमंगा तुम्हें इस तरह से देखता है जैसे तुम नरक जा रहे हो। और अगर तुम देते हो तो भिखमंगा जानता है कि अरे, बुद्धू था। बड़ी दुनिया अजीब है। अगर तुम देते हो तो भिखमंगे आपस में कहते हैं, खूब बनाया। फिर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा कि यह बुध्दू फिर कभी आ जाए चक्कर में। दो, तो तुम बुध्दू हो; न दो तो तुम पापी हो।

बुध्दों ने जो वचन कहे हैं उनके भी बड़े-बड़े अनूठे अर्थ लोगों ने निकाल लिये हैं। अपने मतलब के अर्थ निकाल लिये हैं।

ध्यान रखना, इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई गुरु तुमसे मांगेगा कि तुम अपना सब दे दो। इसका इतना ही अर्थ है कि गुरु को देखते ही तुम्हारा सब जो था, वह व्यर्थ हो गया। अब उसमें कुछ रस न रहा।

भूल गयी तन-मन-धन सारा, व्याकुल भया शरीर

इधर मैं डूबने आया हूं दारिया-ए-मुहब्बत में
उधर दुनिया बुलाती है मुझे घबराकर साहिल से

जब तुम गुरु के पास जाओगे और तुम सारे तन-मन-धन को भूलने लगोगे तो सारी दुनिया तुम्हें खींचेगी, पुकारेगी कि लौट आओ, खतरे में पड़ रहे हो। गुरु का मिलन संसार पसंद नहीं करता। संसार बिलकुल राजी रहता है – पंडित के पास जाओ, पुरोहित के पास जाओ। संसार बिलकुल राजी रहता है। संसार बिलकुल साथ देता है कि जरूर जाओ। मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ, गुरुद्वारा जाओ। संसार कहता है यह तो करना चाहिए धार्मिक व्यक्ति को। रविवार चर्च हो आया करे। कभी-कभी बाइबल पढ़ लिया करे, कभी-कभी गीता पढ़ लिया करे, कभी-कभी सत्य-नारायण की कथा !

मगर गुरु के पास जाओ ... अगर कबीर मिल जाएं, या बुद्ध मिल जाएं या कृष्ण मिल जाएं तो सारा संसार विरोध करेगा। क्योंकि यह अलग व्यापार है। एक झूठ का व्यापार है, एक सच का व्यापार है। इन दोनों में बड़ा संघर्ष है। मैं तुमसे यह कहूं, अगर किसी के पास जाने से सारा संसार तुम्हारा विरोध करता हो, तब तो तुम समझ ही लेना कि रास्ते पर ठीक हो। क्योंकि इतने लोग गलत नहीं हो सकते। जब सारा संसार विरोध कर रहा है तो जरूर कुछ बात होनी चाहिए। तुम जरा सावधान हो जाना और होशियारी से खोज में लग जाना।

जहां, जिस धर्म के नाम पर संसार विरोध न करता हो वहां कुछ सार नहीं है, समझ लेना। क्योंकि उस धर्म से संसार का कुछ नहीं बिगड़ता। वह झूठ के व्यापार का हिस्सा है इसलिए कोई विरोध नहीं करता।

एक जैन महिला ने मुझे आकर कहा... इसके पति यहां मुझे सुनने आते हैं। वह बोली कि आप उनको समझाएं, इतने ज्यादा न आयें। क्या मामला क्या है? उसने कहा कि नहीं, धर्म ही सुनना हो तो अपने जैन मुनि क्या बुरे हैं! मंदिर जाएं। मैंने कहा, जब तुझे कोई एतराज ही नहीं है तो यहां कि आयें कि मंदिर जाएं, तुझे क्या फिकर है? उसने कहा कि यहां आने में सब एतराज करते हैं—परिवार के लोग, बच्चे। और सब मुझे कहते हैं कि तू अपने पति को गंवा देगी। जैन मंदिर में जाएं, हर्ज क्या...धर्म ही सुनना है न? तो जैन मंदिर में जा सकते हैं, वहां मजे से सुनें।

वह स्त्री यह कह रही है कि जैन मंदिर को तो हमने बाजार की दुनिया का हिस्सा बना लिया है। अभी इस मंदिर को बाजार का हिस्सा बनाने में समय लगेगा। और इस बीच कुछ गड़बड़ हो गयी तो बस...।

जब भी संसार तुम्हारा विरोध करता हो कहीं जाने से, जब पूरा संसार एकमत होकर विरोध करता हो, तब तो तुम समझ लेना कि तुम किसी ऐसी जगह जा रहे हो, जो इस झूठ के व्यापार से भिन्न है। कुछ भेद है; नहीं तो इतने लोग विरोध न करते।

धनी करमदास जब कबीर के पास गये तो यही झंझट खड़ी हुई थी। सारे लोग विरोध में थे। और धनी धरमदास पहले जीवन भर सत्यनारायण की कथा और मंदिर और यज्ञ और हवन, सब करवाते थे तब किसी ने विरोध नहीं किया था। सारा गांव कहता था अहा, धार्मिक आदमी है। जब कबीर के पास गये तो लोगों ने कहा, अब यह भ्रष्ट हुआ। अब इसका दिमाग खराब हुआ। यह कोई बात हुई? कबीर के पास जाना! इसे तुम संकेत समझना।

भूल गयी तन-मन-धन सारा, व्याकुल भया शरीर
विरह पुकारे विरहिनी, ढरकत नैनन नीर

और जिसके पास जाकर तुम्हारी आंखों में आंसू भर जाएं—दंभ नहीं, प्रेम के, प्रीति के आंसू। मंदिर से तुम अकड़कर लौटते हो कि कुछ धार्मिक हो गये। सच्चे ज्ञानी के पास से तुम विनम्र होकर लौटोगे कि तुम्हें अपनी जिंदगी की धूल और दिखाई पड़ गयी। झूठे ज्ञानी के पास से तुम थोड़ी जानकारी बढ़ाकर लौटोगे। सच्चे ज्ञानी के पास तुम्हारी जानकारी और छूट गयी। तुम और अज्ञानी होकर लौटोगे। तुम्हें लगेगा कि मेरे जैसा अज्ञानी कौन?

सच्चे ज्ञानी के पास से तुम रोते हुए लौटोगे—अपनी जिंदगी पर रोते हुए। तुम्हारी आंखों में आंसू होंगे—दो तरह के आंसू: अब तक जिंदगी गंवायी उसके आंसू, पश्चात्ताप के। और वह परमप्यारा मिल जाए, अब इसकी प्रार्थना के आंसू भी। अतीत के लिये आंसू और भविष्य के लिये आंसू।

विरह पुकारे विरहिनी, ढरकत नैनन नीर
धरमदास के दाता सतगुरु पल में कियो निहाल

और जहां आंसू भरे हों, जहां सब न्योछावर कर देने की क्षमता हो, जहां स्त्रैण हो जाने का शिष्यभाव पैदा हुआ हो, फिर गुरु को देर नहीं लगती। गुरु को देर तुम्हारे कारण लगती है। फिर से तुमसे कह दूं, गुरु को देर तुम्हारे कारण लगती है; अन्यथा क्षण में हो जाए बात। तुम्हीं अड़चन खड़ी करते हो। तुम होने नहीं देते।

धरमदास के दाता सतगुरु पल में कियो निहाल

ऐसी घड़ी तुम्हारे चित्त में आ जाए जैसी धरमदास को आयी—कि सब व्यर्थ हुआ। आंख आंसुओं से भर गयी। आंख जग गयी ऐसी कि नींद मुश्किल हो गयी। अब तक का किया हुआ सब अनकिया हो गया। और इस परम विनम्रता के क्षण में झुक गये चरणों में।

उन संतन के चरण पखारूं, तन-मन करि कुर्बान

सब लुटाने की तैयारी है, फिर देरी क्यों? फिर एक क्षण की देरी नहीं होती—पल में कियो निहाल।

धरमदास के दाता सतगुरु . . .

और गुरु तो सदा दे रहा है, बस लेने की तुम्हारे पास तैयारी चाहिए। वहां तो वर्षा हो रही है, तुम अपना घड़ा उलटा किये रहो तो नहीं भरेगा। तुम अपने घड़े को सीधा करो।

आवागम की डोरी कट गयी, मिटै भरम जंजाल
मैं हेरि रहूं नैना सो नेह लगाई

सद्गुरु से जो लगाव है, जो नेह है, जो प्रीति है, वह उन दो आंखों से प्रीति है, जिनमें परमात्मा की छबि दिखाई पड़ती है।

सद्गुरु कौन? जिसकी आंख में तुम्हें परमात्मा की थोड़ी आभा दिखाई पड़े जाए—जरा-सी झलक! तुमने परमात्मा नहीं देखा, तुम्हें परमात्मा की कोई खबर नहीं है, लेकिन किसी ने देखा है तो उसकी आंख में कुछ तो अक्स रह जायेगा, कुछ तो लकीरें तैरती रह जायेंगी, कुछ तो बिंब रह जायेगा। उसकी आंखों में कुछ तो परमात्मा को देखने का भाव झलकेगा। कुछ तो तैरता हुआ मिल जायेगा। तुमने नहीं सुना वह संगीत, लेकिन जिसने सुना है उसके पास उसकी शांति में कुछ तो स्वर गूंजते होंगे।

मैं हेरि रहूं नैना सो नेह लगाई
राह चलत मोहि मिलि गये सतगुरु
सो सुख बरनि न जाई

राह चलत--जो खोजता है उसको ही मिलते हैं सद्गुरु। घर बैठे रहे, खोजा ही नहीं तो सद्गुरु नहीं मिलते। जो विद्यार्थी बनता है, वही एक दिन शिष्य बनता है। जो विद्यार्थी ही नहीं बनता वह तो शिष्य कैसे बनेगा? जो एक दिन जिज्ञासु बनता है, वही एक दिन मुमुक्षु हो जाता है। चलना तो पड़ेगा।

राह चलत मोहि मिल गये सतगुरु
सो सुख बरनि न जाई

रास्ते में आज उनसे मुलाकात हो गयी
जी डर रहा था जिससे, वही बात हो गयी

गुरु जब मिलता है तो तुमने चाहा था वही मिला, और फिर भी जी धक से रह जाता है। क्योंकि गुरु मृत्यु भी है और जीवन भी।

देइ के दरस मोहि बौराये . . .

और जैसे ही गुरु का दर्शन मिला कि तुम पागल हुए। तुम पागल न हो जाओ तो गुरु से मिलन हुआ ही नहीं।

देइ के दरस मोहि बौराये
ले गये चित्त चुराई

जिस गुरु के पास जाकर तुम्हारा चित्त न चुरा लिया जाए, वह गुरु नहीं। जिसके पास जाकर तुम अपना चित्त न गंवा बैठो वह गुरु नहीं।

हमारे पास एक बहुत प्यारा शब्द है: हरि। हरि का अर्थ होता है, चोर: हर ले जानेवाला। हमने भगवान को नाम दिया हरि का। दुनिया में ऐसा कोई शब्द नहीं किसी भाषा में। किसी देश ने इतनी हिम्मत नहीं की कि भगवान को चोर कहे। यह तो जाननेवाले ही कह सकते हैं।

भगवान चोर है! चोर इस अर्थ में कि एक बार उस तरफ दृष्टि गयी कि तुम्हारा सब गया, सब लुटा। फिर तुम बच नहीं सकते। पहली घटना गुरु के पास घटती है। उसी बड़े चोर के छोटे संगी-साथी!

देइ के दरस मोहि बौराये
ले गये चित्त चुराई

एक पागलपन! एक ऐसा पागलपन छा जाता है, एक ऐसी मस्ती, एक ऐसी दीवानगी, एक ऐसी बेखुदी, जो अपरिचित है।

उठकर तो आ गये तेरी बज्म से मगर
कुछ दिल ही जानता है किस दिल से आये हैं

फिर उठते भी नहीं बनता, चलते भी नहीं बनता, जाते भी नहीं बनता। धनी धरमदास कबीर को मिले सो फिर घर नहीं लौटे। गये सो गये! घर

खबर भेज दो कि मैं पागल हो गया हूं। समझ लेना और मुझे क्षमा कर देना।

उठकर तो आ गये तेरी बज्म से मगर
कुछ दिल ही जानता है किस दिल से आये हैं

और पागलपन तो आता ही है। फकीरों का एक समुदाय बाउल कहा जाता है। बाउल का अर्थ होता है: बावला, पागल। सूफियों में फकीरों की एक अवस्था होती है, मस्त। मस्त का अर्थ होता है, दीवाना--जिसे होश नहीं रहा, हवास नहीं रहा; जिसे जिंदगी के हिसाब-किताब नहीं रहे। सभी पागल परमात्मा के प्यारे नहीं होते, लेकिन सभी परमात्मा के प्यारे जरूर पागल होते हैं।

लमहे यह आ गये हैं तेरे इंतजार के
मैं खुद जवाब देता हूं तुझको पुकार के

खूब पागलपन चढ़ता है। खुद भक्त भगवान की तरफ से जवाब भी देने लगता है, बातचीत होने लगती है।

लमहे यह आ गये हैं तेरे इंतजार के
मैं खुद जवाब देता हूं तुझको पुकार के

देइ के दरस मोहि बौराये--हो ही जायेगा पागलपन। जैसे चुंबक के पास छोटे-छोटे लोहे के कण जब खिंचने लगते हैं तो पागल न हो जायेंगे तो और क्या होगा? पागलपन बिलकुल सहज है। जन्मों-जन्मों से खोजते थे जिसे, उसकी पहली दफा झलक मिली है। होश न गंवा बैठोगे तो क्या करोगे? गणित खो जायेगा, तर्क खो जायेगा। बुद्धि के हिसाब-किताब एक तरफ हो जायेंगे। यह बड़े से बड़ा प्रेम है इसलिए बड़े से बड़ा पागलपन है।

प्रेम को तो लोग पागलपन कहते ही हैं। किसी सुंदर स्त्री के प्रेम में पड़े, किसी सुंदर पुरुष के प्रेम में पड़े, तब भी पागलपन हो जाता है, मगर वह क्या है! अगर कबीर मिल जाएं, अगर धनी धरमदास से मिलना हो जाए, अगर किसी धनी से मिलना हो जाए तो वहां परम सौंदर्य प्रगट होता है। वहां परम संगीत बज रहा है, वहां परम नाद उठ रहा है। तुम डोलोगे नहीं? बिना पिये तुम शराब न पी लोगे? यह हो ही जायेगा। यह हो ही जाना चाहिए।

हम खुदा के कभी कायल भी न थे
उनको देखा तो खुदा याद आया

शायद कभी सोचा भी न हो ठीक-ठीक ईश्वर के संबंध में, कोई धारणा भी न बनायी हो, खोज अस्पष्ट भी रही हो, लेकिन जब किसी फकीर को देख लोगे, किसी पहुंचे हुए को देख लोगे, किसी सिद्ध को देख लोगे तो पहली दफा एक झंकार! पहली दफा वीणा झंकार उठेगी।

दिल है कि 'नशूर' एक बाजा है
सीने में धड़कते तारों का
जब चोट लगे झनकार उठे
जब ठेस लगे थर्रा जाए

अभी तो तुमने सिर्फ थर्राना जाना है। संसार में तो चोटें ही लगती हैं इसलिए थर्राना ही जानते हैं। जब किसी सद्गुरु से मिलोगे, तब जानोगे संगीत क्या है। अभी शोरगुल सुना है, उसमें भी इतने मोहित हो गये हो, जब संगीत सुनोगे तब क्या होगा? गुरु के पास जो गया, फिर खिंचने लगता है चुंबक की तरह।

बेताब नजर, आंखों में लहू
सीने में जलन, दिल में हलचल
जब दूर का रिश्ता ऐसा है
नजदीक का आलम क्या होगा

ठीक कहते हैं धरमदास--

भूल गयी तन-मन-धन सारा, व्याकुल भया शरीर
विरह पुकारे विरहिनी ढरकत नैनन नीर
देइ के दरस मोहि बौराये, ले गये चित्त चुराई
छबि सत दरस कहां लगि बरनौं, चांद सूरज छपि जाई

वह जो देखा है गुरु में -- 'छबि सत दरस कहां लगि बरनौं!' धरमदास कहते हैं, उसका वर्णन नहीं कर सकता। वह अनिर्वचनीय है, अवर्णनीय है। शब्द नहीं उसे समा पायेंगे। भाषा उसे कहने में असमर्थ है।

छबि सत दरस कहां लगि बरनौं . . .

जो कबीर की आंखों में छबि देखी, जो कबीर की आंखों में उसका प्रतिबिंब देखा है--दर्पण में ही देखा है प्यारे को अभी। अभी प्यारे को नहीं देखा, दर्पण में ही देखा है। लेकिन दर्पण में ही देखकर सब मन बौरा गया है। उसे कहना कठिन है। चांद सूरज छपि जाई--उस रोशनी के सामने चांद फीका है, सूरज फीका है।

धरमदास बिनवैं कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई

और धरमदास कहते हैं, बस अब एक ही अभीप्सा, एक ही प्यास, एक ही बात बार-बार मन में उठती है कि फिर-फिर, बार-बार वह झलक मिलती रहे। इस योग्य मैं होता रहूं, इस ग्रहणशीलता के योग्य बनता रहूं कि बार-बार कबीर की आंख में, गुरु की आंख में वह दिखाई पड़े।

धीरे-धीरे शिष्य गुरु के इतने करीब आ जाता है कि शिष्य और गुरु की आंखें अलग नहीं रह जातीं। जिस दिन शिष्य गुरु की आंख से देखने लगता है, उस दिन

गुरु और शिष्य का मिलन हुआ। इसके पहले कि तुम परमात्मा से मिलो, गुरु से मिलना होगा। इसके पहले कि तुम परम के दर्शन के योग्य हो जाओ, तुम्हें धीरे-धीरे गुरु की आंख का ढंग सीखना होगा। तुम्हें गुरु की आंख के पीछे खड़े होकर देखना होगा।

सत्संग का कोई और अर्थ नहीं है, गुरु अपनी आंखें तुम्हें देता है। सत्संग का और कोई प्रयोजन नहीं है, तुम गुरु से आंखें लेते हो। यह आंख का लेन-देन है। यह दर्शन का लेन-देन है। होते-होते हो जाता है। संग-संग चलते, उठते-बैठते हो जाता है। सधते-सधते बात सध जाती है।

शिष्य को एक ही बात याद रखनी जरूरी है कि अपने को मिटा दे, पोंछ डाले; अपने को कोरा कागज कर ले, ताकि जो तस्वीर गुरु की आंखों में है, वह तस्वीर इस कोरे कागज पर उतरे तो कोई बाधा न पड़े। तुम्हारा कागज बहुत गुदा हुआ हो तो तस्वीर विकृत हो जायेगी। तुम्हारी प्लेट चित्त की बिलकुल खाली होनी चाहिए।

यह चित्त की प्लेट खाली कर लेना ही साधना है।

आज इतना ही।

प्रश्न-सार

- धर्म की परिभाषा के अनुसार धर्म परम नियम है। और आप कहते हैं धर्म विद्रोह है। यह परम नियम विद्रोही कैसे हो सकता है ?
- मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा आदमी हूं, फिर भी आप मुझे पंडित की डिग्री क्यों देते हैं ?
- सद्‌गुरु से आंतरिक निकटता का क्या अर्थ होता है ?
- अतीत तूफान बनकर घेर लेता है; आगे नहीं जाने देता। इससे छुटकारा कैसे हो ?
- क्या प्रेम को दूसरे के सहारे की जरूरत होती ही है ?
- आपके चरणों में बैठना ही इतना मधुर लगता है कि मोक्ष जाने की इच्छा नहीं होती।

प्रवचन : ६

दिनांक : ५।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना।
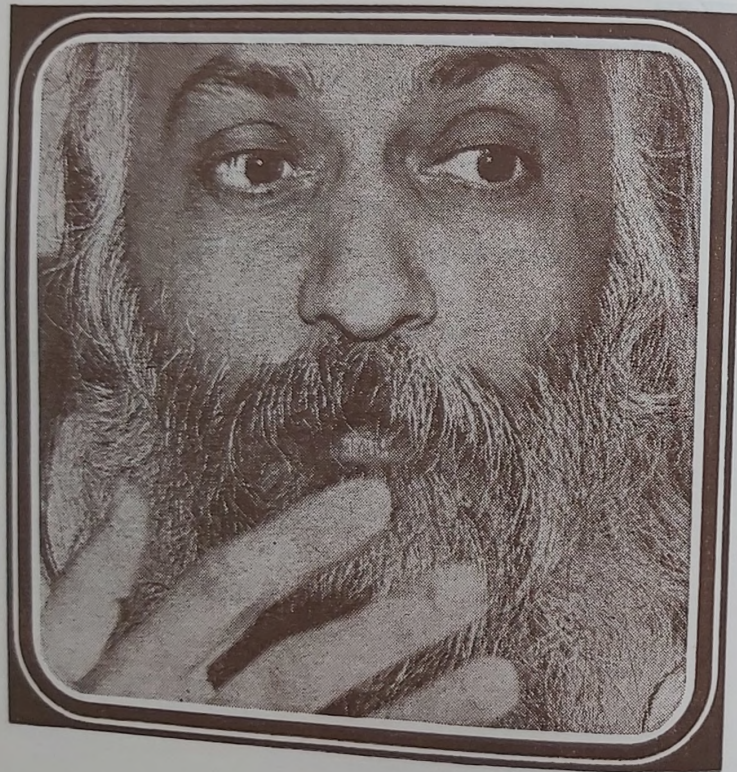
धर्म आग्नेय होता है

पहला प्रश्न : आप बहुधा कहते हैं कि धर्म विद्रोह है, बगावत है। लेकिन परिभाषा के अनुसार धर्म सबको धारण करनेवाला है, धर्म परम नियम है, धर्म शाश्वत है। यह परम नियम, यह शाश्वत विद्रोही कैसे हो सकता है?

शाश्वत ही विद्रोही हो सकता है। सत्य ही विद्रोही हो सकता है। विद्रोह असत्य के खिलाफ है। विद्रोह समय के खिलाफ है। समय का अर्थ होता है परंपरा। समय का अर्थ होता है रूढ़ि। समय का अर्थ होता है राख।

और आग राख के विपरीत बगावत है। बुद्ध एक अंगारा हैं। फिर जैसे ही बुद्ध का पक्षी उड़ जाता है, राख जमनी शुरू होती है। उसी राख से बुद्ध-धर्म निर्मित होता है। ऐसी ही राख से जैन धर्म निर्मित होता है, ऐसी ही राख से हिंदू धर्म निर्मित होता है।

तो धर्म के दो अर्थ को समझ लेना। एक तो धर्म है जो सारे जगत को धारण किये है; वह न तो हिंदू है, न मुसलमान, न ईसाई। वह तो सिर्फ धर्म है। फिर दूसरे धर्म का अर्थ है, हिंदू के साथ जुड़ा हुआ, ईसाई के साथ जुड़ा हुआ, जैन के साथ--जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म। यह धर्म शाश्वत नियम नहीं है। यह धर्म कभी पैदा हुआ और कभी मरेगा। अड़चन इसलिए पैदा होती है कि धर्म पैदा हो, यह तो बहुत शुभ। जब समय उसका पक जाए तो उसे मर भी जाना चाहिए। वह मरता नहीं। उसकी लाश को हम बचा रखते हैं।

जैसे तुम्हारी मां से तुम्हें प्रेम है। और प्रेम शुभ है। प्रेम के सब रूप शुभ हैं। लेकिन मां एक दिन मरेगी। माना कि तुम रोओगे, तुम्हारे प्राण आंसू बनकर बहेंगे। तुम छाती पीटोगे। लेकिन फिर भी अर्थी बनानी पड़ेगी और मां को मरघट ले जाना पड़ेगा। और अपने ही हाथों जला भी देना पड़ेगा। रोते-रोते जलाओगे। बड़ी पीड़ा और बड़ी उदासी में जलाओगे। महीनों तक घाव न भरेगा। बरसों तक याद न छूटेगी और जीवन भर के लिये चोट का निशान तो रह ही जायेगा। लेकिन फिर भी तो मां को जलाना पड़ता है।

कोई कहे कि मैं मेरी मां को मैं कैसे जलाऊं? मैं तो घर में सम्हालकर रखूंगा। तो सारा घर बदबू से भर जायेगा। घर में जीना मुश्किल हो जायेगा। तब घर में कोई बेटा पैदा होगा, जो बगावत करेगा और कहेगा, यह लाश जलाकर रहेंगे। इस लाश को मरघट ले जाकर रहेंगे। ऐसा मत समझना कि वह बेटा मां को प्रेम नहीं करता। लेकिन जिससे प्रेम किया था वह उड़ चुका। अब मिट्टी पड़ी रह गयी है। अब मिट्टी को ढोने से कोई अर्थ नहीं है। अब उचित है कि मिट्टी मिट्टी में मिल जाए।

धर्म जब पैदा होता है तब बड़ा प्यारा होता है, अपूर्व होता है। तब उसमें किरण होती है शाश्वत की। संगीत होता है, नाद होता है। जब बुद्ध में कुछ उतरता है तब वह जीवंत होता है। फिर बुद्ध के बिदा होते ही सुनी हुई बातें रह जाती हैं। शास्त्रों में लिखे हुए शब्द रह जाते हैं। उन शब्दों का संगीत तो मर चुका। वीणा रह गयी है, तार तो टूट चुके। अब तुम वीणा की पूजा करो, अब तुम वीणा का मंदिर बनाओ। यह सब झूठा होगा। और इस झूठ के कारण फिर से बुद्ध को पैदा होने में अड़चन हो जायेगी। तुमने एक बात नहीं देखी? कि जिस धर्म में भी बुद्ध-पुरुष होता है, वही धर्म उस बुद्धपुरुष को इन्कार कर देता है।

तो जरूर दो तरह के धर्म होंगे; एक तो जो बुद्धपुरुष लाता है वह, और एक जो इन्कार करता है वह। बुद्ध हिंदू घर में पैदा हुए, हिंदुओं ने अस्वीकार कर दिया। जीसस यहूदी घर में पैदा हुए, यहूदियों ने अस्वीकार कर दिया। सुकरात को यूनानियों ने ही जहर पिलाया।

तो एक तो शाश्वत धर्म है, जो कभी-कभी उतरता है किसी के निमंत्रण पर। किसी की आत्मा जब खिलती है तब। जब किसी का कमल खिलता है, तब उस कमल पर उतरती है कोई बात। सुवास! आकाश कभी-कभी पृथ्वी से मिलता है और आत्मा में कभी-कभी परमात्मा की भनक आती है। कभी-कभी आदमी के दर्पण में परमात्मा की छबि पकड़ी जाती है। मगर दर्पण टूट जाता है। सब दर्पण टूटने को हैं यहां। बुद्ध का दर्पण भी टूट जायेगा, मेरा दर्पण भी टूटेगा, तुम्हारा दर्पण भी टूटेगा। सब टूटने को हैं यहां। फिर तुम कांच के टुकड़ों को बटोरकर रख लेना। फिर उसमें छबि नहीं बनती। फिर सब नष्ट हो चुका। तुम लाश को फिर पूजते रहना।

खतरा यह है कि उस लाश की पूजा के कारण जब भी कोई समझदार व्यक्ति तुम्हारे घर में पैदा होगा और कहेगा, छुटकारा करो इस मुर्दा लाश से,तभी सारा घर उसके विपरीत हो जायेगा। वह कहेगा, हमारी मां को जलाने को कहते हो? हमारे शास्त्र को जलाने को कहते हो? हमारी परंपरा जो सदा से चली आयी, हमारे

पिता ने इस लाश को पूजा, उनके पिता ने पूजा, उनके पिता ने पूजा। इसी से तो हम पैदा हुए हैं। यह हमारी संस्कृति, यह हमारी सभ्यता। जब भी विवेक का जन्म होगा उस घर म, तभी उपद्रव शुरू होगा; तभी बगावत करनी पड़ेगी। किसी बेटे को बगावत करनी पड़ेगी। और मजा यह है कि जो बेटा बगावत कर रहा है, वही जीवन के पक्ष में है।

परंपरावादी जीवन का विरोधी होता है, लकीर का फकीर होता है। परंपरा-वादी अतीत का पूजक होता है। मुर्दा के प्रति उसके मन में सम्मान होता है। और जीवित के प्रति उसके मन में अपमान होता है। जिन्होंने जीवस को सूली दी वे कौन लोग थे? बुरे लोग नहीं थे, ख्याल रखना। अक्सर यह भ्रांति तुम्हारे मन में हो जाती है कि जिन्होंने सूली दी, होंगे राक्षस। गलती है बात। भले लोग थे, अच्छे लोग थे, प्रतिष्ठित लोग थे। पुजारी थे मंदिर के, पुरोहित थे, पंडित थे, सुसंस्कृत, सभ्य--जिनको तुम पुण्यात्मा कहते हो, दानी, मंदिर-मस्जिद बनानेवाले लोग थे। जिनको तुम सज्जन लोग कहते हो वे लोग थे। इस भ्रांति में कभी मत पड़ना कि जीसस को सूली देनेवाले लोग बुरे लोग थे। अच्छे लोगों के समूह ने सूली दी।

और जीसस जैसे आदमी को सूली दी, अड़चन क्या रही होगी? ये अच्छे लोग पुराने को मानते हैं, ये जीसस नये की खबर लाते हैं। ये अच्छे लोग, जो बाप-दादों ने कहा है उसको पकड़ कर रखना चाहते हैं। ये जीसस भविष्य का आगमन हैं। ये जीसस फिर से परमात्मा की नयी खबर लाते हैं। ये नये पैगंबर हैं। निश्चित ही विद्रोह होगा, कलह होगी; कलह परंपरा और सत्य के बीच है, राख और अंगार के बीच है; अतीत और वर्तमान के बीच है; मुर्दा और जीवंत के बीच है।

धर्म की परिभाषा तो ठीक है कि जो धारण करे। मगर हिंदू धर्म ने तुम्हें धारण किया है? अगर हिंदू धर्म मिट जाए तो पृथ्वी मिट जायेगी? कितने धर्म रहे और मिट गये, इसका तुम्हें पता है? और सभी धर्मों को यह ख्याल था कि उन्हीं के कारण सब धारण किया गया है। जमीन पर कितने धर्म आये और चले गये, उनका नाम-निशान भी नहीं बचा। तुम सोचते हो, जैन दुनिया में न होंगे तो सूरज नहीं ऊगेगा? जरा सोचो तो!

यह तो वही बात हो गयी जैसे तुमने सुना हो, एक बूढ़ी औरत का मुर्गा सुबह बांग देता था, और सोचती थी कि मेरे मुर्गे के बांग देने से सूरज ऊगता है। गांव के लोगों के सामने अकड़ती थी कि अगर मैं चली जाऊंगी इस गांव से, फिर पछताओगे। अगर मेरा मुर्गा न होगा तो सूरज नहीं ऊगेगा। याद रखना, जब मेरा मुर्गा बांग देता है तभी सूरज ऊगता है। और बात एक अर्थ में ठीक थी क्योंकि रोज मुर्गा बांग देता था तभी सूरज ऊगता था। यद्यपि मुर्गे के बांग देने से सूरज के

ऊगने का कोई कार्यकारण संबंध नहीं है। सचाई तो उलटी है, सूरज ऊगता है इसलिए मुर्गा बांग देता है। मगर पहले मुर्गा बांग देता है, फिर सूरज ऊगता है। घटना तो ऐसी घटती है।

गांव के लोगों ने हंसी-मजाक की। बूढ़ी बहुत नाराज हो गयी, अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गयी। और प्रसन्न इस भाव में है कि अब पछताएंगे, आयेंगे नाक रगड़ते हुए। और दूसरे गांव में भी जब उसके मुर्गे ने बांग दी तो सूरज ऊगा। उसने कहा, अब रोते होंगे, अब अंधेरे में सड़ते होंगे। अब हो गयी होगी अमावस। अब पता चलेगा कि सुबह अब नहीं होती। सुबह तो यहां हो गयी, वहां कैसे होगी?

तुम सोचते हो जैन धर्म न रहेगा तो सूरज न ऊगेगा, चांद-तारे न चलेंगे? सूरज ऐसे ही ऊगेगा, चांद-तारे ऐसे ही चलेंगे। क्योंकि जिसने सूरज को सम्हाला है वह जैन धर्म नहीं है, वह धर्म है। वह हिंदू धर्म नहीं है, धर्म है। वह परम नियम है। उस नियम का इन शास्त्रों और परंपराओं से कुछ लेना-देना नहीं है। ये शास्त्र और परंपरायें, उसी नियम की झलक पड़ी है किसी व्यक्ति में, उसके आधार पर बन गये हैं।

इसको ऐसा समझो। सूरज को किसी ने दर्पण में पकड़ा। और तुमने सूरज नहीं देखा, तुमने सिर्फ दर्पण में सूरज देखा। तुमने उसे पकड़ा। अब तुम दर्पण में देखे गये सूरज को ही समझते हो असली सूरज। भूल हो गयी। और यह बात भी सच है कि दर्पण में जो सूरज की झलक बनी थी, वह असली ही सूरज की झलक थी। मगर असली सूरज की झलक भी झलक ही है, सूरज नहीं है। जब तुम दर्पण के सामने खड़े होकर अपना चेहरा देखते हो तो तुम अपना चेहरा थोड़े ही देखते हो, चेहरे की झलक देखते हो, चेहरे का प्रतिबिंब देखते हो। और असली चेहरे का प्रतिबिंब भी प्रतिबिंब ही है। उसका कोई और मूल्य नहीं है। लेकिन उसी को जिसने चेहरा समझ लिया, वह आज नहीं कल कठिनाई में पड़ जायेगा।

तो मैं तुमसे कहता हूं कि महावीर के दर्पण में असली सूरज की झलक पड़ी थी। और जरथुस्त्र के दर्पण में भी असली सूरज की झलक पड़ी थी। संत वही है जिसमें असली सूरज की झलक पड़ती है। मगर जरथुस्त्र के माननेवालों ने जो पकड़ा उन्होंने जरथुस्त्र की आंखों में पड़ी झलक को पकड़ा। वह झलक बड़ी दूर हो गयी सूरज से। फिर उसी झलक की याद को लिये बैठे हैं। उसी झलक की पूजा कर रहे हैं। और मजा यह है कि सूरज रोज ऊगता है। तुम अपनी अग्यारी में बैठे हो। और सूरज रोज ऊग रहा है और तुम अपनी किताब खोलकर बैठे हो। और सूरज सामने खड़ा है।

परमात्मा चुक नहीं गया है महावीर में, और न बुद्ध में, और न कृष्ण में और

न राम में। परमात्मा चुकता ही नहीं। कितने ही अवतरण हों तो भी परमात्मा चुकता नहीं। जिस दिन तुम आंख उठाकर परमात्मा को देखोगे, तुम भी अवतार हो गये। चुक नहीं जायेगा। तुम उससे जीवंत हो उठोगे। सूरज कितने फूलों पर गिरता है, सारे फूल खिल जाते हैं। जो कली सूरज की तरफ देख लेती है, वही खिल जाती है।

तुम भी सूरज को देखो। बगावत से मेरा अर्थ है, कि जब भी कोई व्यक्ति सूरज को देख लेता है तब वह तुमसे यह कहना चाहता है कि तुम जिसको अभी तक सूरज समझ रहे हो, वह किताब में बनी तस्वीर है। उस तस्वीर पर बहुत भरोसा मत करना। और मैं तुमसे फिर दोहरा दूं कि तस्वीर असली सूरज की ही है, मगर तस्वीर तस्वीर है। किसको धोखा दोगे?

सोलोमन के संबंध में कहानी है, प्रसिद्ध कहानी है। सोलोमन की बुद्धिमत्ता की बड़ी कहानियां हैं, उनमें यह कहानी सर्वाधिक मूल्यवान है। सोलोमन की परीक्षा करने लोग आते थे क्योंकि सारी दुनिया में खबर थी, उससे बुद्धिमान कोई आदमी नहीं है। इथियोपिया की महारानी उसकी परीक्षा करने आयी थी। उसने बड़ी होशियारी से काम किया। वह दो फूल लेकर आयी——एक नकली और एक असली। एक असली गुलाब और एक नकली गुलाब। एक में गंध और दूसरे में गंध नहीं। लेकिन दूर से दोनों एक जैसे लगें। वह कोई दस फीट दूर सोलोमन के सिंहासन के सामने खड़ी हो गई। और उसने कहा, ये दो फूल हैं। आपकी मैंने बड़ी खबर सुनी है कि आप बुद्धिमान हैं। आप यह बता दें कि कौन नकली, कौन असली है।

सोलोमन ने एक क्षण देखा, थोड़ा बेचैन हुआ। दोनों फूल असली मालूम होते थे। अब जो भी नकली हो इसमें, इस कला से बनाया गया था कि असली का धोखा दे रहा था। एक क्षण सोलोमन ने सोचा और अपने दरबारियों से कहा कि दरबार के सारे दरवाजे और खिड़कियां खोल दो। रोशनी थोड़ी कम है। जरा रोशनी ज्यादा हो जाए तो मैं ठीक से देखूं। सब दरवाजे-खिड़कियां खोल दिये गये। एक क्षण प्रतीक्षा करता रहा, फिर उसने इशारा किया कि बायें हाथ में जो फूल है वह असली है। दरबारी भी हैरान हुए। वे भी सब टकटकी लगाकर देख रहे थे, रोशनी से कुछ फर्क न पड़ा था। दोनों फूल असली मालूम पड़ते थे।

महारानी भी हैरान हुई। उसने कहा, आपने पहचाना कैसे? सोलोमन ने कहा कि मैं धोखा खा जाऊं, आदमी हूं, इसलिए खिड़कियां खुलवायीं। तुमने ख्याल नहीं किया? एक मधुमक्खी अंदर आ गयी। बाहर बगीचा है। वह असली फूल पर जाकर बैठ गयी। मधुमक्खी को तो धोखा नहीं दे सकते। मधुमक्खी तो नकली फूल पर नहीं बैठ सकती। सोलोमन ने कहा, मैं सोच नहीं रहा था, मधुमक्खी की प्रतीक्षा

कर रहा था।

तुम्हारी तस्वीर है सूरज की, इसको ले जाकर तुम सूरजमुखी के फूल के पास खड़े हो जाओ, तब तुम्हें पता चलेगा, यह तस्वीर है या असली सूरज है। सूरजमुखी का फूल इसकी तरफ नहीं घूमेगा। सूरजमुखी के फूल को तुम धोखा नहीं दे पाओगे। सूरजमुखी का फूल हिंदू धर्म के चक्कर में नहीं आयेगा, सूरजमुखी का फूल असली सूरज को पहचानता है। जिस तरफ सूरज घूमता है उस तरफ फूल घूम जाता है।

तुम भी जानते हो कि प्यास लगी हो तो पानी शब्द से तृप्त नहीं होती। और भूख लगी हो तो पाकशास्त्र पढ़ने से कुछ भी नहीं होता। भोजन पकाना पड़ता है। पाकशास्त्र कितना ही अच्छा हो, और कितने ही विचारशील लोगों ने लिखा हो, और उसमें कितने ही सुस्वादु भोजनों को बनाने की प्रक्रिया लिखी हो लेकिन पाकशास्त्र को पढ़ने से कुछ भी नहीं होता। और लोग गीता पढ़ रहे हैं। और लोग कुरान पढ़ रहे हैं, और लोग बाइबल पढ़ रहे हैं और पेट में भूख है। परमात्मा की भख है और तुम किताबें पढ़ रहे हो। परमात्मा की भूख परमात्मा के अनुभव से ही तृप्त होती है।

तो असली धार्मिक आदमी विद्रोही होता है। विद्रोही इस अर्थ में कि वह तुमसे कहता है, छोड़ो ये कागज में बनी तस्वीरें, छोड़ो ये कागज के फूल। असली फूलों की तलाश करें। जीवंत को खोजें। जिसने सारे जगत को धारण किया हुआ है, उसमें डुबकी लगाएं।

तो धर्म का एक तो रूप है परंपरा। ये सब परंपराएं हैं--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख। ये समय पर शाश्वत की लकीरें हैं। समय की रेत पर शाश्वत के चरणचिह्न हैं। मगर शाश्वत जा चुका, चरणचिह्न रह गये हैं समय की रेत पर। इन चरणचिह्नों को ही मत पूजते रहो। उसको खोजो जिसके ये चरण-चिह्न हैं। कौन चला था बुद्ध में, कौन उठा था बुद्ध में, कौन झांका था बुद्ध में? उसको खोजो। तुम बुद्ध को पकड़कर बैठे हो। तुमने चरणचिह्न पकड़ लिये, चरण भूल गये। कौन नाचा था मीरा में?

मैं तुमसे कहना चाहता हूं जो कृष्ण में बोला, जो मीरा में नाचा, जो जीसस में सूली चढ़ा, उसको खोजो। तुम जीसस को पकड़े हो। कोई कृष्ण को पकड़े है। तुमने उंगलियां पकड़ ली हैं और चांद को भूल गये हो। कोई उंगली उठाता है और चांद की तरफ इशारा करता है कि वह रहा चांद। तुम उंगली पकड़ लेते हो। और उंगली गलत नहीं थी, चांद की तरफ बताती थी मगर चांद की तरफ देखना था, उंगली पकड़नी नहीं थी। जो उंगली पकड़ लेते हैं वे हिंदू, मुसलमान, ईसाई। जो चांद की तरफ बताता है, वह आदमी धार्मिक।

इसलिए धर्म बगावत है, धर्म विद्रोह है। धर्म जब भी पैदा होता है तो आग्नेय होता है, अग्नि जैसा होता है। जब मर जाता है तो राख के ढेर रह जाते हैं। फिर तुम्हारी मौज... ! राख के ढेर को विभूति कहो। तुम कुछ ऐसे हो कि व्यर्थ की चीजों को अच्छे-अच्छे नाम देकर अपने को धोखा देते हो। कोई साधु-संत राख उठाकर दे देता है तो तुम कहते हो विभूति मिल गयी। विभूति नाम में धोखा हो जाता है।

तुम्हारा सारा धर्म राख है। और स्वभावतः इस राख के आसपास बड़े न्यस्त स्वार्थ खड़े हो गये हैं। इस राख में बहुत लोगों ने व्यवसाय बना लिया है। इस राख में बहुत-से लोगों ने अपने जीवन की आजीविका खोज ली है। इस राख में बहुत-से न्यस्त स्वार्थ अपनी तृप्ति कर रहे हैं। इस राख के सहारे बहुत शोषण चल रहा है। इसलिए कोई बगावत करेगा तो बरदाश्त नहीं की जायेगी। सूली पर चढ़ाया जायेगा, पत्थर मारे जायेंगे, हत्या की जायेगी। यह राख का ही ढेर नहीं है, इस राख के ढेर के पास बहुत लोग खड़े हो गये हैं।

मैंने सुना है, एक फकीर का एक भक्त था। फकीर कुछ दिन गांव में ठहरा। जब जाने लगा, तो उस भक्त ने उसकी बड़ी सेवा की थी, याददाश्त के लिये फकीर ने अपना उसे गधा दे दिया, जिस पर वह यात्रा करता था। भक्त बहुत प्रसन्न हुआ। गरीब आदमी! गधा भी बहुत था। कुछ दिनों बाद गधा बीमार पड़ा और मर गया। वह उस गरीब की सारी संपदा थी, फिर उस संत की याद भी थी उस गधे के साथ जुड़ी। गधा ऐसा साधारण गधा भी नहीं था, विभूति था। संत ने दिया था, संत उस गधे पर बैठे थे। संत ने उस गधे को छुआ था, नहलाया भी था। संत के पवित्र हाथ के चिह्न थे उस गधे पर। वह कोई ऐसा-वैसा गधा नहीं था, पहुंचा हुआ गधा था, सिद्ध गधा था, महात्मा था।

गरीब आदमी तो बहुत रोया। गधा ही नहीं मरा, यह संत की याद भी चली गयी हाथ से। उसने उसकी कब्र बनाई, उसकी कब्र पर पत्थर लगवाया। उसकी कब्र को खूब फूलों से सजाया। उसको रोते देखकर, उसको कब्र पर फूल चढ़ाते देखकर, जो रास्ते से लोग निकलते थे वे भी फूल चढ़ाने लगे। लोग तो एक-दूसरे को देखकर चलते हैं। जब यह आदमी वहां बैठा रोता रहता तो वे सोचते कि जरूर, किसी महात्मा की कब्र होगी। गधे की कब्र तो किसी ने कभी सुनी भी नहीं। होगी तो महात्मा ही की होगी। फिर इतनी भी फिकर कौन करता है, किस महात्मा की! क्या लेना-देना? भक्तजन तो भक्तजन होते हैं। वे फूल चढ़ा देते, कोई पैसा चढ़ा जाता। धीरे-धीरे तो बड़ा उसको लाभ होने लगा। गधे से तो इतना लाभ नहीं था, जितना गधे की कब्र से लाभ होने लगा। कोई नारियल चढ़ा जाता, कोई भोजन लगा जाता। लोग मनौतियां बोलने लगे कि अगर हमारा ऐसा हो जायेगा तो हम पांच रुपये

चढ़ायेंगे कि पचास रुपये चढ़ायेंगे। अब सौ आदमी मनौती करें तो पचास की तो पूरी होती ही हैं। पचास नहीं आते लेकिन बाकी पचास तो आते ही हैं।

बात फैलती गई, फैलती गई। उस कब्र की बड़ी प्रसिद्धि हो गयी। कई वर्षों के बाद फकीर वापस लौटा। उसी झाड़ के नीचे आया तो देखा, वहां तो मंदिर बन गया है। वह तो बड़ा हैरान हुआ कि मंदिर यहां किसने बनवाया। और मंदिर में देखा तो उसका ही वह भक्त पुजारी बनकर बैठा है। अब तो बात ही बदल गयी है। बड़ी रंग-रौनक है, बड़े सेवक लगे हैं और लोग उसके हाथ-पैर दबा रहे हैं। उसने उसे पूछा कि भाई, हुआ क्या? वह तो देखा फकीर को, एकदम चरणों में गिर पड़ा। कहा, महात्मा, आपकी ही कृपा। विभूति! मैं समझा नहीं, महात्मा ने कहा, तू कर क्या... हुआ क्या यह? इतना सुंदर महल बन गया, मंदिर बन गया। इतने लोग, भक्ति-भाव, पूजन चल रहा है, मामला क्या है?

उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना? यह वह जो आप गधा दे गये थे। अब आपसे क्या कहूं, झूठ तो बोल नहीं सकता। किसी को आप बताइये मत। सब लोग समझते हैं किसी महात्मा की, किसी सिद्धपुरुष की। और है ही गधा सिद्ध। आपका छुआ हुआ था, आपका दिया हुआ था। उसकी कब्र बन गयी। वह मर गया, मैंने कब्र बना दी, उसी पर धीरे-धीरे यह सब खेल खड़ा हो गया है। फकीर हंसने लगा। उसने पूछा, आप हंसते क्यों हो? उसने कहा, हंसता इसलिए हूं कि मैं जिस गांव में रहता हूं, इसकी मां की कब्र पर यही सब खेल वहां चल रहा है। तू क्या समझता है, मैं कैसे जीता हूं? इसी गधे की मां...। जब से मरी, निहाल कर गयी। तो साधारण गधा नहीं है, इसकी मां भी ऐसी थी। यह खानदानी गधा था।

तो एक बार जब राख की पूजा शुरू हो जाती है और उसके पास न्यस्त स्वार्थ खड़े हो जाते हैं। फिर कोई अगर कहे कि यह राख है तो लोग तो नाराज होंगे ही। लोग तो क्रुद्ध होंगे ही। क्योंकि जिनके स्वार्थ पर चोट लगेगी वे इसे क्षमा नहीं कर सकेंगे। उन्होंने कभी क्षमा नहीं किया।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, समय की रेत पर जो चिह्न बनते हैं शाश्वत के, वे ही शाश्वत के दुश्मन बन जाते हैं।

एक धर्म है, जो सारे जगत को धारण करता है--विशेषण-शून्य। उसी को खोजो। हिंदू में मत उलझ जाना, मुसलमान में मत अटक जाना। तुम शाश्वत को खोजोगे तो ही तुम असली अर्थ में हिंदू हो पाओगे, असली अर्थ में मुसलमान हो पाओगे। और जो असली अर्थ में हिंदू है और असली अर्थ में मुसलमान, उसमें कुछ फर्क नहीं होता; फर्क हो नहीं सकता। जब तक फर्क होता हो तब तक समझना कि नकली अर्थ में हिंदू है, नकली अर्थ में मुसलमान है। जो असली अर्थ में परमात्मा को समझ

लेता है उसके लिये मंदिर और मस्जिद सभी उसी के घर हैं। कुरान में उसी की आयतें हैं, गीता में उसी के गीत हैं। सब उसका है। यह वैविध्य से भरा हुआ सारा जगत उसका है।

मगर यह तो होने ही वाला है और यह सदा होगा। पंडित में और ज्ञानी म संघर्ष है। ज्ञानी बगावती है, पंडित परंपरावादी है।

दूसरा प्रश्न : भगवान, मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा आदमी हू। कभी युनिवर्सिटी नहीं गया। कुछ भी शास्त्र पूरे पढ़े नहीं, फिर भी आप मुझे पंडित की डिग्री दिये चले जाते हैं। अभिप्राय समझाने की कृपा करें।

योग चिन्मय, पंडित डिग्री नहीं है, गाली है। कम से कम यहां तो निश्चित ही। पंडित तो एक तरह की हथौड़ी है जो मैं तुम्हारे सिर पर मारता हूं, ताकि तुम जागो।

तुम पंडित हो इसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि तुम जानकारी में उत्सुक हो जाते हो। जानकारी और जानने में फर्क है; बस वही फर्क समझ में आ जाए इसलिए बार-बार चोट करता हूं। और चोट करता हूं क्योंकि तुम्हें प्रेम करता हूं। यहां जो लोग इकट्ठे हैं, उन सबमें मुझे चिन्मय पर बहुत भरोसा है इसलिए चोट करता हूं। इसलिए बार-बार चोट करता हूं। बेरहमी से चोट करता हूं। क्योंकि संभावना है कि अगर तुम जागो तो जाग सकोगे।

और तुम्हारे सो जाने का डर बस एक जगह है, इसलिए बार-बार पंडित की गाली का उपयोग करना पड़ता है। वह जगह यह है कि तुम जानकारी में उत्सुक हो जाते हो जानने की बजाय। जानना अलग बात है। जानकारी उधार होती है, जानना निज का होता है, स्वयं का होता है। जानकारी किताब से आती है, जानना अंतरात्मा से उमगता है। जानकारी बाहर से आती है, जानना भीतर घटता है। जानकारी कूड़ा-करकट है, बोझ है। जानना निर्भार करता है, मुक्त करता है। जानना ध्यान से घटता है, जानकारी ज्ञान को अर्जित करने से। और मजा यह है कि जानकारी ध्यान में बाधा बन जाती है। क्योंकि जितना ही तुम जानते हो उतना ही अहंकार मजबूत होता है कि मैं जानता हूं, अब जानने को और क्या है!

इस देश का यही दुर्भाग्य है कि यह देश पंडित हो गया। पंडित यानी तोता। सभी लोग दोहरा रहे हैं। यहां अज्ञानी मिलता कहां? यहां तो ज्ञानी ही ज्ञानी हैं। यहां तो जिससे मिलो वही ज्ञानी है। यहां ब्रह्मचर्चा तो सभी तरफ चल रही है।

कहते हैं शंकर जब मंडनमिश्र से विवाद करने मंडला पहुंचे तो उन्होंने गांव के बाहर पनघट पर पानी भरती स्त्रियों से पूछा कि मंडनमिश्र का मकान कहां है? वे स्त्रियां हंसने लगीं। उन्होंने कहा कि तुम्हें इतना भी पता नहीं? जिस द्वार पर

तोते भी वेदपाठ करते हों, समझना वही मंडनमिश्र का घर है ।

एक दिन ऐसा था कि तोते भी वेदपाठ करते थे । अब ऐसा है कि वेदपाठी सिवाय तोतों के और कोई भी नहीं । वक्त बदल गया । अब खुद मंडनमिश्र वेदपाठ कर रहे हैं तोतों की तरह ।

तोते में और आदमी में फर्क क्या होता है ? वही ज्ञानी में और पंडित में फर्क है । तोता सिर्फ दोहराता है । उसे अर्थ का भी पता नहीं है । उसे शब्द मालूम है, वह सिर्फ शब्द दोहराता है । वह क्यों दोहरा रहा है इसका भी उसे पता नहीं है । सिखानेवाले ने क्यों सिखा दिया इसका भी उसे पता नहीं । तुम जब 'राम-राम, राम-राम' दोहराते हो, तुम्हें पता है तुम क्या दोहरा रहे हो ? तुम्हें राम का पता है ? जैसा धनी धरमदास को था, ऐसा तुम्हें पता है ! जैसा कबीर को था, नानक को था, ऐसा तुम्हें पता है ? तुम्हें राम का अर्थ पता है ? हां, तुम कहोगे पता है, शब्दकोश में जो लिखा है--कि राम भगवान का एक नाम है । यह पता होना हुआ? यह तोतापन है ।

तुम्हें राम का कोई अनुभव नहीं है तो अर्थ कैसे हो सकता है ? अनुभव से अर्थ आता है । जब तुमने राम की झलक पायी हो और तुम्हारे हृदय से रामनाम उठे, तब अर्थ होगा । जब तक वैसी झलक नहीं पायी है तब तक तुम कुछ भी कहते रहो, तुम्हारे कहने में कुछ अर्थ नहीं क्योंकि तुम्हारे कहने में तुम्हारे प्राण का कोई साथ नहीं है ।

मस्तिष्क एक यंत्र है, कम्प्यूटर है । इसमें जानकारी डाल दो, यह दोहराता चला जाता है । यह एक मशीन है । इस मशीन पर भरोसा मत कर लेना । जब मैं पंडित कहता हूं तो मैं यह कह रहा हूं कि तुमने मस्तिष्क पर बहुत भरोसा कर लिया है । चैतन्य के प्रति जागो, मस्तिष्क से मुक्त होओ । मस्तिष्क के पीछे छिपे हुए साक्षी को पकड़ो । ऐसा कुछ भी मत कहो जो सिर्फ जानकारी है । और तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी निन्यानबे प्रतिशत बोली खो गयी । क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत जानकारी है । लेकिन वह जो एक प्रतिशत बचेगी, वही तुम्हारे जीवन में आभा ले आयेगी । उसी से तुम्हारे जीवन में संपदा का आविर्भाव होगा ।

तुम पूछते हो कि मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा आदमी हूं । युनिवर्सिटी कभी गया नहीं । तुम सौभाग्यशाली हो; नहीं तो तुम यहां न होते । तुम्हारे भीतर पंडित होने का खतरा है ही । वही तुम्हारा एकमात्र पापकर्म है । अगर तुम युनिवर्सिटी गये होते तो तुम पंडित हो ही गये होते । अच्छा ही हुआ, बहुत पढ़े-लिखे नहीं हो, बहुत युनिवर्सिटी नहीं गये । नहीं तो तुम अपनी बुद्धि बचाकर लौट नहीं सकते थे ।

युनिवर्सिटी से मुश्किल से ही लोग अपनी बुद्धि बचाकर लौट पाते हैं । जो

लौट आयें वे धन्यभागी हैं । युनिवर्सिटी तो नष्ट कर ही देती है । क्योंकि युनिवर्सिटी तुम्हारी बुद्धि के विकास के लिये अवसर ही नहीं देती, सिर्फ तोतापन के विकास को अवसर देती है । युनिवर्सिटी सिखाती है--पचाना नहीं, वमन करना । भरो किसी तरह और परीक्षा की कापियों पर वमन कर दो । उल्टी करना सिखाती है । खून नहीं बनाती । युनिवर्सिटी से यह नहीं तय होता कि कौन आदमी बुद्धिमान है । इतना ही तय होता है किसके पास अच्छी स्मृति है, कुशल स्मृति है । कुशल स्मृति से बुद्धिमानी का कुछ लेना-देना नहीं ।

मनसविद कहते हैं कि कुशल स्मृति अक्सर ऐसे लोगों की होती है जो बुद्धिमान नहीं होते । और बुद्धिमान अक्सर ऐसे होते हैं, जिनकी स्मृति कुशल नहीं होती । यह अक्सर होता है । क्योंकि बुद्धि जब ऊंचाइयां भरने लगती है तो नीची बातों को भूल जाती है । और जब नीची बातें बहुत याद रहती हैं तो ऊंची उड़ान नहीं भरी जा सकती । और विश्वविद्यालय की सारी शिक्षा एक बात पर निर्भर है कि तुम किसी तरह से पुनरुक्त कर सको । उतनी ही कुशलता बस चाहिए । किस तरह पुनरुक्त करते हो इसकी भी फिकर नहीं । कैसे तुम कंठस्थ कर लेते हो । कैसे तुम घोट-घोट कर किसी तरह जाकर परीक्षा की कापी में उतार आते हो और फिर परीक्षा की कापी में उतारकर सदा के लिये भूल जाते हो । तुम विश्वविद्यालय से लौटने के बाद, दो साल बाद अगर तुम्हारी फिर परीक्षा ली जाए, तुम उसी परीक्षा में पास न हो पाओगे, जिसमें तुम पास हो चुके थे दो साल पहले । अचानक ली जाए परीक्षा तो तुम्हारे सौ स्नातकों में से निन्यानबे फैल हो जायेंगे । यह भी बड़ा मजा हुआ ।

एम. ए. करके लौटे तो दो साल बाद तो समझ और बढ़नी चाहिए । लेकिन दो साल बाद अगर अचानक पकड़ लो तुम्हारे एम. ए. करनेवाले को और उसकी परीक्षा ले लो, वे गये काम से ! उनका सर्टिफिकेट वापिस लेना पड़ेगा । किसको याद रहा ? अब कौन फिकर करता है कि हेन्री अष्टम नाम का कोई महामूढ़ कब इंग्लैंड का राजा था, लेना-देना किसको है ? अष्टम था कि सप्तम था कि नवम था; और था भी कि नहीं था, लेना-देना किसको है ? कौन याद रखता है, किसलिए याद रखता है ?

लेकिन विश्वविद्यालय इस तरह के कचरे को याद करवाता है । वह इसलिए करवाता है कि जो चीज तुम याद रख सकते हो, उससे तो परीक्षा होगी नहीं । क्योंकि उसको तो तुम सहज याद रख लोगे । उसमें तुम्हारी रुचि होगी । फिल्म तुम देखने जाते हो, वह तुम्हें पूरी याद रह जाती है । उसकी परीक्षा नहीं लेगा विश्वविद्यालय क्योंकि उसमें कोई सार ही नहीं । उसमें कुछ पता ही नहीं चलेगा क्योंकि वह सभी को याद रह जाती है । परीक्षा तो ऐसी फिजूल बातों की लेनी पड़ती है जो कि

कोशिश करके याद रहें। हेन्री सप्तम ! टिम्बक्टू कहां है ? कि ल्हासा की आबादी कितनी है ? इस तरह की व्यर्थ की बातें, जिनको तुम किसी तरह के रस से संबंध नहीं कर सकते, जिनको तुम भूल ही जाओगे, उनको याद रखने की कुशलता को लोग जानकारी, जाननेवाला, पंडित, प्रोफेसर इस तरह की भ्रांतियां पैदा करवा देते हैं।

अच्छा ही हुआ चिन्मय, कि तुम विश्वविद्यालय नहीं गये। खतरा था। तुम खो जाते। उस जंगल में खो जाने का डर था। अब भी थोड़ा खतरा है इसलिए तुम्हें बार-बार मैं पंडित कहता हूं। अब भी तुम्हारे भीतर एक गहरा संस्कार है, जो चूक-चूक जाता है; जो भूल-भूल जाता है साक्षी को और पकड़ लेता है ज्ञान को। यह क्रांति तुम्हारे भीतर घट जाए इसी आकांक्षा में चोट करता हूं। यह तुम्हें किसी दिन दिखाई पड़ जाए और तुम सारी जानकारी छोड़ दो। तुम निर्भार हो जाओ। तुम सिर्फ एक बात का ख्याल रखो, वह जो तुम्हारे भीतर छिपी हुई चेतना है उस पर जानकारी के पत्तों को मत छाने दो। चेतना की धारा को जानकारी के पत्तों से मुक्त रखो।

यहां पूना की नदी पत्तों से भर जाती है। इतनी भर जाती है कि पीछे कुछ दिखाई नहीं पड़ता, पत्ते ही पत्ते हो जाते हैं। ऐसा ही जानकार चित्त पत्तों से भर जाता है। धीरे-धीरे पत्ते इतने फैल जाते हैं कि अंतर्धारा भूल ही जाती है। तुम्हारी चेतना की नदी नील नदी न बन जाए, जमीन के भीतर न बहने लगे।

यह कोई डिग्री नहीं है, जो मैं तुमसे कहता हूं। यह कोई उपाधि नहीं है, यह व्याधि है। सजग रहो। जिस दिन कहना बंद कर दूंगा तुम्हें पंडित, समझना तुम्हारे जीवन का बहुत सौभाग्य का दिन आ गया। आशा रखता हूं कि वह दिन आयेगा इसीलिए कहता हूं।

ऐसे लोगों से भी आशा रखता हूं मैं, जिनसे आशा नहीं रखनी चाहिए। चिन्मय से तो मुझे आशा है लेकिन ऐसे भी लोग हैं यहां, जिनसे मुझे आशा भी नहीं है। आशा के विपरीत भी आशा रखता हूं। जैसे कृष्णप्रिया है। वह कुत्ते की पूंछ है; जिसके बाबत कहावत है, कि उसको बारह साल भी अगर बांस की पोंगरी में रखो, जब निकालोगे, वह फिर तिरछी ही जायेगी। मगर फिर भी उसको पोंगरी में रखता हूं। कौन जाने, कहावत एकाध बार गलत हो जाए ! आशा के विपरीत भी आशा रखता हूं। और हारे भी तो खोया क्या ! पाया तो कुछ पाया। और कहावतें गलत करने में भी एक मजा है। कृष्णप्रिया पर मेहनत किये चला जाता हूं कि अगर यह सही हो गया और कृष्णप्रिया अगर बदल गयी तो यह कहावत बदल देंगे।

तीसरा प्रश्न : अनुकंपा कर समझाएं सद्गुरु से आंतरिक निकटता का अर्थ।

एक तो निकटता भौतिक है। भौतिक निकटता से सद्गुरु के पास नहीं पहुंचा जाता। और सारे संबंध इस जगत में भौतिक संबंध हैं, गुरु का संबंध अभौतिक संबंध है।

तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ते हो, वह उसकी देह का प्रेम है। तुम अपनी मां को प्रेम करते हो क्योंकि तुम्हारी देह तुम्हारी मां से आयी है। तुम्हारी देह और तुम्हारी मां के देह में एक तरंग है, एक जोड़ है, एक सेतु है। तुम अपने भाई को प्रेम करते हो, अपनी बहन को प्रेम करते हो क्योंकि तुम एक ही स्रोत से उमगे हो। तुम्हारे भीतर एक तरह की समानांतरता है।

गुरु से प्रेम असंभव घटना है। घटती है, मगर करीब-करीब असंभव घटना है। क्योंकि देह का कोई नाता ही नहीं है। और अगर गुरु से भी तुम्हारा देह का नाता है तो फिर गुरु-शिष्य का संबंध नहीं है। फिर मित्रता होगी, प्रेम होगा, कुछ और होगा, श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा का अर्थ होता है, किसी एक व्यक्ति में तुमने देह नहीं देखी, आत्मा देखी।

और ऐसा नहीं है कि गुरु और शिष्य के संबंध में देह का खंडन करना है। नहीं, देह के ऊपर उठना है। देह तो दिखाई पड़ती है। देह है तो दिखाई पड़ेगी ही। लेकिन देह ही दिखाई नहीं पड़ती है, देह के भीतर जो ज्योतिर्मय बैठा है वह दिखाई पड़ने लगता है। और धीरे-धीरे उस ज्योतिर्मय में इतना डूब जाता है भाव, कि देह भूल जाती है। जिस व्यक्ति के पास बैठे-बैठे देह भूल जाए, वही तुम्हारा गुरु है। जिस व्यक्ति के पास बैठे-बैठे अदृश्य की प्रतीति होने लगे, वही तुम्हारा गुरु है। जिसके भीतर से भगवत्ता की पहली किरण तुम्हें दिखाई पड़े, जिसे तुम भगवान कह सको, वही गुरु है। मैं यह नहीं कहता कि गुरु को भगवान कहना चाहिए। जिसको तुम भगवान कह सको वही गुरु है।

यह आकस्मिक नहीं है कि बौद्धों ने बुद्ध को भगवान कहा और जैनों ने महावीर को भगवान कहा। और दोनों धर्म ईश्वर को माननेवाले धर्म नहीं हैं। ईश्वर को मानो या न मानो, लेकिन जब किसी व्यक्ति में मृण्मय देह के भीतर चिन्मय का भाव अनुभव होगा तो क्या करोगे ? भगवान शब्द का उपयोग करना ही पड़ेगा। भगवान का अर्थ ईश्वर नहीं होता, भगवान का इतना ही अर्थ होता है, जगत पदार्थ पर समाप्त नहीं है ऐसा किसी व्यक्ति में अनुभव हुआ। देह के पार कुछ है, इसका सुराग मिला। देह के पार कुछ है इसकी झलक--कभी-कभी पकड़ में आती है, कभी-कभी चूक जाती है। कोई क्षण होते हैं सौभाग्य के जब आंख खुलती है और एक क्षण को तुम रूपांतरित हो जाते हो।

तो गुरु के आंतरिक निकटता का पहला अर्थ--जिसमें तुम्हें भगवत्ता दिखाई

पड़े।

दूसरी बात--जिसके पास तुम्हारे भीतर समर्पित होने का सहज भाव पैदा हो; चेष्टित नहीं, सप्रयास नहीं, किसी हेतु से नहीं, मोटिवेटेड नहीं, अनायास। जिसके पास झुक जाना अनायास हो जाए। करना पड़े तो काम का नहीं। दूसरों को देखकर करो तो भी काम का नहीं। वह अनुकरण है, वह झूठा है।

ऐसा रोज हो जाता है। कोई व्यक्ति मेरा आकर चरण छू लेता है, दूसरा व्यक्ति जो उसके पीछे मिलने आया है वह भी यह देखकर कि चरण छूना चाहिए, छू लेता है।

मैं एक बार मृदुला के घर बंबई में मेहमान था। दो मित्र मुझे मिलने आये थे, दोनों बैठे थे। वर्षों से मुझे जानते थे, वर्षों से मुझे मिलने आते थे। तीसरा आदमी आया। वह नया आदमी था, वह पहली दफा आया था। उसे मेरे ढंग का भी कुछ पता नहीं था। वह साधु-संतों के पास जाता होगा। तो उसने जल्दी से सौ का एक नोट निकाला और मेरे चरणों में रखा। वह अपने गुरु के चरणों में रखता होगा। इसके पहले कि मैं उसको कुछ कहूं, वे जो दो सज्जन बैठे थे, उन्होंने भी जल्दी से रुपये निकाले और मेरे पैर में रखे।

मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने उनसे पूछा, भाई यह आदमी नया है, इसे नोट मूल्यवान मालूम पड़ता है। यह गुरु के पास भी जाए तो नोट को ही धन मानता है। मूल्य नोट में है। इसके पास और कुछ चढ़ाने को नहीं है, यह गरीब आदमी है। मगर तुम तो मुझे जानते हो। और तुमने, मैं दस साल से जानता हूं कभी नोट नहीं चढ़ाया, आज तुम्हें क्या हो गया? उन्होंने कहा, जब इस आदमी ने चढ़ाया तो हमने सोचा कि अरे, हमने कभी नहीं चढ़ाया! चढ़ाना चाहिए। हमसे बड़ी भूल हो रही है।

अब यह पहला आदमी तो गलती कर ही रहा है लेकिन फिर भी इसकी गलती कम से कम इसकी निजी है। ये दूसरे जो आदमी गलती कर रहे हैं, ये उधार गलती कर रहे हैं, इनकी गलती भी अपनी नहीं है। अगर तुम किसी की देखकर किसी के चरणों में झुक जाओ तो वह झूठ होगा। अगर तुम किसी लोभ के वश झुक जाओ तो झूठ होगा। अगर तुम इसलिए झुक जाओ कि शायद कुछ लाभ होगा, चुनाव में खड़े हो गये हैं, शायद जीत जायेंगे।

इधर मेरे पास लोग आ जाते हैं। चरण छूकर कहते हैं कि चुनाव में खड़े हो गये हैं, अब आपके हाथ में लाज है। मैं उनसे कहता हूं, अगर तुम सच में मेरा आशीर्वाद चाहते हो तो चुनाव में हारोगे। क्योंकि मैं वही आशीर्वाद दे सकता हूं कि भगवान न करे कि तुम जीत जाओ। क्योंकि पहले ही निकल आओ इस पागल-खाने के बाहर तो अच्छा है। घुसने के बाद निकलना बहुत मुश्किल हो जायेगा। एक दफे दिल्ली पहुंच गये फिर राजघाट पर ही मरते हैं लोग, फिर लौट नहीं पाते। दिल्ली के बाद राजघाट ही बचता है, फिर और जाओ कहां? तो अभी बाहर से ही निकाल लूंगा तुम्हें। वे कहते हैं, नहीं-नहीं, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं! आप मजाक कर रहे हैं। वे घबड़ाने लगते हैं कि आप मजाक रहे हैं। नहीं, ऐसा मत कहिये।

अगर मैं उनसे कहता हूं, मेरा आशीर्वाद चाहते हो तो मैं यही दूंगा कि परमात्मा करे कि तुम कभी राजनीति में सफल न हो पाओ। क्योंकि जो राजनीति में सफल हुआ वह धर्म में हार गया। जो संसार में सफल हुआ, वह शायद परमात्मा को याद ही न कर पाये। वह इसी सफलता में भटक जायेगा। कहते हैं न, हारे को हरिनाम! तो मैं तुमसे कहूंगा कि हार जाओ ताकि कम से कम हरिनाम याद आये। हारे में ही लोग याद करते हैं, जीते तो अकड़ जाते हैं। तो जीत अंततः महंगी पड़ती है। तो वे कहते हैं हम और संत के पास जाते हैं, वे तो आशीर्वाद देते हैं। मैं कहता हूं, उनकी वे जानें। वे किस भांति के संत हैं, वे जानें। मैं कोई संत नहीं हूं। मैं तो जो सच-सच है वही तुमसे, कह रहा हूं। मेरा तो हार्दिक आशीर्वाद यही है कि तुम कभी जीतो न।

अब यह आदमी झुकने आया था? यह झुकने नहीं आया था, यह कुछ लेने आया था। कुछ भीतर वासना थी, लोभ था। कुछ हेतु था। अगर हेतु से झुको तो गुरु के पास नहीं पहुंच सकोगे। अहेतुक झुक सकते हो? अहेतुक झुकने का क्या अर्थ होगा? उसका अर्थ होगा, कोई जगह झुकने योग्य लगी। कोई जगह थी, जहां बिना झुके नहीं रहा जा सका। कोई जगह थी, जहां सोचा भी नहीं था और झुक गये।

आलमे-कैफ-सा हो जाता है तारी मुझ पर
बैठे-बैठे जो मुझे याद तेरी आती है

गुरु सामने हो यह भी जरूरी नहीं है। याद भी आये तो झुक जाते हो।

आलमे-कैफ-सा हो जाता है तारी मुझ पर

एक विस्मय-विमुग्धता छा जाती है, एक रहस्य का लोक खुल जाता है, एक शराब बरस जाती है-- बैठे-बैठे जो मुझे याद तेरी आती है।

तेरे खिरामे-नाच की जब याद आ गयी
चलने लगी नसीम छलकने लगी शराब

शिष्य तो प्रेमी है। जैसे प्रेमी को अपनी प्रेयसी की याद आ जाए।

तेरे खिरामे-नाच की जब याद आ गयी
चलने लगी नसीम छलकने लगी शराब

हवा बहने लगती है, शराब ढलने लगती है। जैसे प्रेमी को प्रेयसी की याद

से हो जाता है, वह तो कुछ भी नहीं है। लेकिन जब कोई अहेतुक भाव से किसी के चरणों में झुक जाता है तो ऐसी बूंदाबांदी नहीं होती शराब की फिर, मूसलाधार वर्षा होती है। और हवा ऐसी आती है कि जो फिर जाती नहीं। एक नये ही लोक में पदार्पण हो जाता है।

साकी तेरी निगाह की मस्ती में डूबकर
मैं होश में न आऊं अगर मेरा बस चले

यह एक अनूठा नाता है, जहां गुरु की आंखों में झांककर इस जगत के पार जाने का द्वार मिल जाता है।

साकी तेरी निगाह की मस्ती में डूबकर

और गुरु से ज्यादा मस्त आंखें कहां पाओगे? और सारी मस्तियां तो क्षुद्र हैं। सुंदर से सुंदर स्त्री या सुंदर से सुंदर पुरुष की आंख भी कल कुरूप हो जायेगी। क्योंकि सौंदर्य देह का है। देह अभी शबाब में है, अभी जवान है, तो सब सौंदर्य है। कल देह की बाढ़ उतर जायेगी, यही आंखें कुरूप हो जायेंगी।

तुमने ख्याल किया? हमने बुद्ध की मूर्ति बुढ़ापे की नहीं बनाई; न राम की, न कृष्ण की, न महावीर की। क्या तुम सोचते हो, ये कभी बूढ़े न हुए होंगे? ये जरूर बूढ़े हुए थे। बूढ़े न होते तो मरते कैसे? जरूर बूढ़े हुए थे लेकिन हमने बुढ़ापे की मूर्ति नहीं बनायी। क्योंकि जिन्होंने इनको प्रेम किया, जिन्होंने इनको जाना, उन्होंने इनकी देह से तो ऊपर कुछ जाना, जो कभी बूढ़ा नहीं होता; जो सदा जवान है, जो चिरयौवन है। जिन्होंने बुद्ध की आंखों में झांका उन्होंने जाना कि वे चिर-यौवन के करीब आ गये। वहां उन्होंने शाश्वत की झलक देखी, जिसकी कोई उम्र नहीं होती। इसलिए बुद्ध की सब मूर्तियां जवानी की हैं, महावीर की सब मूर्तियां जवानी की हैं। कृष्ण की, राम की, सब मूर्तियां जवानी की हैं। ये सब बूढ़े हुए थे, मगर फिर भी इनमें कुछ एक झलक थी जो शाश्वत की थी, जो कभी बूढ़ी नहीं हुई।

साकी तेरी निगाह की मस्ती में डूबकर
मैं होश में न आऊं अगर मेरा बस चले

शिष्य तो झुकता है तो उठना नहीं चाहता। और कोई हेतु नहीं। तुम अगर शिष्य से पूछो, क्यों झुके? तो जवाब न दे सकेगा। जो जवाब दे सके वह शिष्य नहीं। फिर से दोहरा दूं--तुम अगर शिष्य से पूछोगे तुम झुके क्यों उन चरणों में, तो वह अवाक खड़ा रह जायेगा। उसे भरोसा ही नहीं आयेगा कि कोई यह सवाल भी पूछ सकता है। और उसके पास कोई उत्तर नहीं होगा। वह निरुत्तर रह जायेगा। वह मौन रह जायेगा। क्योंकि उत्तर का तो मतलब होगा कोई हेतु बतलाये--क्यों? हेतु वहां कुछ भी न था।

जब तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है, तुम कारण बता सकते हो, क्यों? आज तक कोई प्रेमी नहीं बता सका। और जिन्होंने बताया है, वे प्रेमी नहीं हैं। कोई कहता है इसलिए, कि उसके बाप के पास बहुत धन है, तो यह प्रेमी नहीं है। कोई कहता है इसलिए, कि वह बहुत पढ़ी-लिखी है; यह प्रेमी नहीं है। कोई कहता है कि उस पुरुष की अच्छी नौकरी है, इसलिए स्त्री प्रेम में पड़ गई है। यह प्रेम नहीं है। जहां प्रेम है वहां उत्तर नहीं हो सकता। 'क्यों' का क्या उत्तर हो सकता है? सन्नाटा हो जायेगा। क्यों? तुम इतना ही कह सकोगे, प्रेम है इसलिए। मगर यह कोई उत्तर हुआ? यही तो पूछा गया था। प्रेम किसलिए? तुम कहते हो, प्रेम है इसलिए। कोई कारण नहीं बताया जा सकता।

और गुरु के साथ प्रेम इस जगत का सबसे ऊंचा प्रेम है। उसके बाद तो बस, परमात्मा का प्रेम ही बचता है। गुरु के बाद फिर और सीढ़ी कहां? बस, फिर परमात्मा का आकाश है।

तुमने पूछा, 'समझाएं सद्‌गुरु से आंतरिक निकटता का अर्थ।'

अहेतुक झुक जाना। निरहंकार भाव में झुक जाना। ना-मैं की स्थिति में झुक जाना। अपने को पोंछ देना। अपने को बचाना नहीं।

अहंकार बड़े-बड़े उपाय करता है अपने को बचाने के। बड़ा कुशल है, बड़ी सूक्ष्म विधियां खोजता है। उनसे सावधान रहना।

कभी-कभी तो ऐसा होता है, तुम अहंकार के कारण भी झुक जाते हो। यह उलटी बात लगती है। मगर अगर झुकने के कारण ही अहंकार की तृप्ति होती हो तो तुम इसलिए भी झुक जाते हो। तुम यह भी अहंकार अपने मन में ले सकते हो कि देखो, मैं कितना विनम्र हूं, झुक गया चरणों में। जब दूसरे अकड़े खड़े थे, मैं झुक गया। मगर यह फिर झुकना नहीं रहा। तुम चूक गये। झुके और नहीं झुके। जहां मैं आ गया, वहां चूक हो गयी।

गुरु के पास होने का अर्थ है, इस भांति होना कि तुम हो ही नहीं। जितने तुम नहीं हो उतने ही पास हो। गुरु तो नहीं ही है। वह तो परमात्मा में लीन हुआ। वह तो शून्य हुआ। उसके पास तुम उतने ही निकट आते जाओगे, जितने शून्य होते जाओगे। और जिस दिन शिष्य और गुरु दोनों एक-से शून्य हो जाते हैं उसी दिन मिलन घट जाता है। उस दिन फिर गुरु गुरु नहीं, शिष्य शिष्य नहीं। फिर दो नहीं बचे, फिर एक ही बचा।

यह याद से भी होने लगेगा। इसलिए गुरु के पास होना अनिवार्य नहीं है। कहीं भी होओ, वहीं घट जायेगा।

पासे-अदब से छुप न सका राज इश्क का
जिस जां तुम्हारा नाम सुना, सिर झुका दिया

बुद्ध का बड़ा शिष्य था सारिपुत्र। जब सारिपुत्र ज्ञान को उपलब्ध हो गया तो बुद्ध ने कहा, सारिपुत्र, अब तुझे मेरे साथ होने की जरूरत नहीं है, अब तू जा, और सोये हैं लोग, उनको जगा। सारिपुत्र की आंखों से आंसू टपकने लगे। बुद्ध ने कहा, तू और रोता है ? वर्षों से सारिपुत्र ने बुद्ध को नहीं छोड़ा था, छाया की तरह चलता था। लेकिन अब जानता था कि घड़ी आ गयी है, जाना पड़ेगा। जब बुद्ध की आज्ञा हो गयी तो गया भी। लेकिन कहीं भी होता, रोज सुबह जिस दिशा में बुद्ध होते, उस दिशा में सिर झुकाकर जमीन पर पड़ जाता। अनेक उसके शिष्य थे, वे उसको कहते थे कि आप तो स्वयं बुद्ध हो गये हैं, अब आप क्यों झुकते हैं ? उसने कहा कि मैं उसी कारण तो बुद्ध हुआ कि मैं नहीं रहा। अब झुकता हूं यह कहना भी ठीक नहीं है, झुकना घटता है। और जिसके शून्य के पास बैठ-बैठकर मैं शून्य हुआ उसका अनुग्रह भूले नहीं भूलता। उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकूंगा।

इसलिए पुरानी कहावत कहती है, पिता के ऋण से उऋण हुआ जा सकता है, मां के ऋण से उऋण हुआ जा सकता है लेकिन गुरु के ऋण से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं। एक ही उपाय है कि जो तुमने गुरु से पाया है उसे दूसरों में बांट देना। जैसे गुरु ने तुम्हें जगाया, ऐसे तुम किसी और को जगा देना। जो तुम्हारा बुझा दीया जल उठा है गुरु के पास, और बुझे दीयों को तुम्हारे दीये के पास आकर जल जाने देना। यह संक्रांति तुमसे औरों में घटती रहे, बस।

निकटता का अर्थ है मिट जाना।

आ गयी मौत बेअजल उसकी
तूने देखा जिसे नजर भरके

पुराने शास्त्र एक अपूर्व बात कहते हैं, वे कहते हैं, 'आचार्यो मृत्युः।' गुरु मृत्यु है। गुरु के पास जाओगे तो मरोगे, मिटोगे। मिटोगे तो ही हो सकोगे।

आ गयी मौत बेअजल उसकी
तूने देखा जिसे नजर भरके

गुरु तो देखता ही है नजर भरकर। वह आधी नजर तो देख ही नहीं सकता। उसका तो प्रत्येक कृत्य समग्र होता है। लेकिन तुम अपनी आंख बचा जाते हो। शिष्य वही है जो आंख न बचाये; जो झेल ले। वह जो गुरु की तलवार गिरे तो फूल की माला की तरह झेल ले।

मुझे आजमाइश में मत डालियेगा
मैं मर जाऊंगा आपसे दूर होकर

एक मौत है जो गुरु के पास घटती है, एक मौत है जो उससे दूर होकर घटेगी।

गुरु से दूर होकर जो मौत घटती है उसी को तुमने अब तक जीवन समझा है। और गुरु के पास होकर जो मौत घटती है वही परम जीवन है। वही पुनरुज्जीवन है, वही नया जीवन है, दिव्य जीवन है--या जो भी नाम तुम उसे देना चाहो; निर्वाण कहो, संबोधि कहो, समाधि कहो।

चौथा प्रश्न : सब कुछ ठीक चलता रहता है, फिर किसी कमजोर क्षण में मेरा सारा अतीत एक तूफान-समान घेर लेता है और कहता मालूम होता है, जाने नहीं दूंगा। सिर की सारी नसें खिचाव में आती हैं। प्रवचन में समाधान हो जाता है पर फिर संसार में जाकर वही शक्तियां प्रबल होना चाहती हैं।

पूछा है प्रतिभा ने।

ऐसा स्वाभाविक है। यहां तुम एक तरंग में होते हो। मेरी लहर के साथ बहते हो। संसार में जाते हो, फिर तुम अकेले हो जाते हो। अभी तुम्हें वह कला नहीं आयी है कि तुम मुझे अपने साथ वहां भी ले जा सको। मैं तो तैयार हूं। आते-आते वह भी आ जायेगी। यहां तो तुम एक वातावरण में होते हो। यह गैरिक संन्यासियों का अपना एक जगत है। इसकी अपनी एक धुन है, अपनी एक हवा है। इस हवा में तुम सहज ही ऊंचे आकाश में उठ जाते हो। अकेले रह जाओगे, अपने ही पंखों पर तुम्हें अभी भरोसा नहीं है। मेरे साथ-साथ तुम दूर की उड़ान ले लेते हो। लेकिन अपने पर ही छोड़े जाओ तो तुम भयभीत हो जाते हो, शंकालु हो जाते हो। तुम्हें भरोसा नहीं आता। आत्मविश्वास नहीं उठता कि मैं इतनी ऊंची उड़ान पर जी सकूं। संसार में लौटते हो, वहां भीड़ है और तरह के लोगों की। वहां और तरह की हवा है। उस हवा में तुम फिर खिंच जाते हो नीचे की तरफ।

तो प्रतिभा का प्रश्न महत्वपूर्ण है, सभी के लिये काम का है। 'सब कुछ ठीक चलता रहता है, फिर किसी कमजोर क्षण में...।'

वे कमजोर क्षण आते रहेंगे। लेकिन उन कमजोर क्षणों को जागकर देखो। उन कमजोर क्षणों को तादात्म्य मत कर लेना। उनके साथ अपने को एक मत समझ लेना। वे तुम नहीं हो। कमजोर क्षण आयेगा। तुम दूर खड़े होकर देखना साक्षीभाव से। लड़ना भी मत उससे, झगड़ना भी मत, धकाने की कोशिश भी मत करना, बदलने की चेष्टा भी मत करना। उपेक्षा से देखना।

एक बात सदा ख्याल रहे कि मित्रता भी लगाव का संबंध है, शत्रुता भी लगाव का संबंध है। जिससे तुम प्रेम से जुड़ते हो उससे भी जुड़ जाते हो और जिससे तुम घृणा से जुड़ते ही उससे भी जुड़ जाते हो। दोनों ही जोड़ हैं। मित्र ही नहीं एक-दूसरे के सगे होते, शत्रु भी एक-दूसरे के बड़े सगे होते हैं। मित्र तो भूल भी जाएं, शत्रु भूलते ही नहीं। इसलिए यह मन का एक अनिवार्य नियम ख्याल में रखना कि

जिन चीजों से मुक्त होता होना हो उनके साथ दुराव, दुश्मनी मत बना लेना, अन्यथा जोड़ हो जायेगा। फिर छूटना मुश्किल हो जायेगा। न तो मैत्री बनाना और न शत्रुता—— उपेक्षा! उपेक्षा सूत्र है। देखते रहना, जैसे हमें कुछ लेना नहीं है!

जैसे रास्ते से कोई गुजर रहा, है, हमें क्या लेना-देना है? अच्छा आदमी गुजरे, बुरा आदमी गुजरे, हमें क्या लेना-देना है? गरीब गुजरे, अमीर गुजरे, रास्ता चलता ही रहता है। ऐसे ही तुम्हारे मन के रास्ते पर बहुत तरह की चीजें गुजरती हैं। तुम दूर खड़े हो जाओ, यह राह चलने दो। तुम इसमें उपेक्षा रखना।

जब तुम्हें कोई कमजोर क्षण आता मालूम पड़े तो भयभीत भी मत होना और बाहें कसकर लड़ने को तैयार भी मत हो जाना। उन दोनों ही हालत में तुम उलझ जाओगे। कमजोर क्षण है, देखना। क्रोध उठा, कमजोर क्षण है, देखना। न तो क्रोध की मानकर क्रोध करना और न क्रोध को दबाने में लग जाना क्योंकि जो आज दबाया है, कल उभरेगा। और दबाते-दबाते बहुत बुरी तरह उभरेगा। दमन से कोई कभी मुक्त नहीं होता। और जो आज किया है वह अभ्यास बन जायेगा, कल फिर करना पड़ेगा।

करने से भी कोई मुक्त नहीं होता। क्रोध करने से भी कोई मुक्त नहीं होता क्योंकि अभ्यास सघन होता जाता है। और क्रोध को दबाने से भी कोई मुक्त नहीं होता क्योंकि दबी हुई क्रोध को ऊर्जा ऐसे इकट्ठी हो जाती है, जैसे केतली का ढक्कन बंद हो और भीतर भाप इकट्ठी हो जाए। केतली फूट सकती है।

तो न तो क्रोध से लड़ना और न क्रोध से दोस्ती करना। चुपचाप देखते रहना: क्रोध आया, धुआं उठा। जैसे आया, वैसे ही चला जायेगा। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा है, इतना ही भीतर मन में कहना: क्रोध आया। और जब देखो कि अब क्रोध जाने लगा तो फिर मन में कहना: क्रोध गया। बस इतनी जागरूकता रखना—क्रोध आया, क्रोध गया। इससे ज्यादा कोई चिंता लेने की जरूरत नहीं है। और धीरे-धीरे जिन चीजों के प्रति तुम्हारी उपेक्षा होगी उनका आगमन कम होता जायेगा।

'सब कुछ ठीक चलता रहता है,'पूछा है, 'फिर किसी कमजोर क्षण में मेरा सारा अतीत एक तूफान के समान घेर लेता है।'

अतीत बार-बार घेरेगा। क्योंकि अतीत आसानी से नहीं जाता। तुमने ही तो बनाया है उसे। तुमने ही तो इतना संवारा है उसे। तुमने ही तो इतना पानी दिया है अतीत की जड़ों में। एकदम जायेगा कैसे? तुमने ही तो बड़ी मेहनत उठायी है—— यह कारागृह जिसमें तुम बंद हो, तम्हारा ही बनाया हुआ घर है। एकदम जायेगा भी नहीं, जाते-जाते जायेगा। जब अतीत का तूफान आ जाए.... और प्रतिपल आता है। स्मृतियां घेर लेती हैं, वही अतीत का तूफान है। तब भी तुम उपेक्षा रखना।

देखना कि स्मृतियां उठ गयीं, चारों तरफ घिर गया चित्त, बीच में खड़े हो जाना तूफान के।

तुमने देखा? अंधड़ में बीच में एक जगह होती है जहां अंधड़ नहीं होता। कभी गरमी के दिनों में जब बवंडर उठता है और आंधी उठती है, और हवा जोर से घूमती है और उठाकर ले जाती है धूल को। और किन्हीं-किन्हीं देशों में इतनी जोर से उठती है कि लोगों तक को उठाकर ले जाती है। छोटे बच्चे उड़ जाते हैं, बूढ़ी-बूढ़े उड़ जाते हैं। किन्हीं देशों में तो रास्तों के किनारे रस्सियां खंभों से बांधकर लटकायी गयी हैं कि जब बवंडर उठे तो जल्दी से रस्सी पकड़ लो, नहीं तो खतरा है। लेकिन जब बवंडर चला जाता है तब तुमने जाकर देखा जमीन पर, धूल पर निशान बने देखे? सब तरफ बवंडर होता है लेकिन केंद्र पर कोई बवंडर नहीं होता। जैसे गाड़ी का चाक चलता है —— चाक चलता है, कील ठहरी रहती है। ठहरी कील पर चलता हुआ चाक घूमता है। अगर कील न ठहरी हो तो चाक घूम नहीं सकेगा। यह बड़े मजे की बात है। जो घूमता है वह उस पर ठहरा है जो नहीं घूमता।

तुम्हारे भीतर भी कितना ही तूफान उठे, एक केंद्र सदा तूफान के बाहर होता है, वह तुम्हारा आंतरिक केंद्र है। तुम वहीं सरक जाना, वहीं खड़े हो जाना। उठने देना तूफान को। थोड़ी देर में तूफान आया है, चला जायेगा। अभी नहीं था, अभी फिर नहीं हो जायेगा। और अगर तुमने अपने बीच के केंद्र पर खड़े होने की कला सीख ली तो बड़ा आनंद होगा। तब तूफान का मजा भी ले सकते हो। कैसा ही तूफान हो, स्मृतियों का हो कि कल्पनाओं का हो क्रोध का हो, कि लोभ का हो कि मोह का हो, कि वासना का हो। कैसा ही तूफान हो, उन सबका स्वभाव एक है। और तुम्हारे भीतर एक केंद्र है जिस तक कोई तूफान कभी नहीं पहुंचता। भूकंप आते हैं लेकिन तुम्हारे भीतर एक केंद्र है, जहां तक कोई कंप नहीं पहुंचता। वह निष्कंप है। उसकी ही तो तुम्हें याद दिला रहा हूं। उसमें ही प्रवेश करना तो ध्यान है। उसी को जगा लेना तो बुद्धत्व है। उसी के साथ रम जाना, उसी के साथ एक हो जाना तो निर्वाण है।

'सब कुछ ठीक चलता है, फिर किसी कमजोर क्षण में मेरा सारा अतीत एक तूफान-समान घर लेता है और कहता मालूम होता है, जाने नहीं दूंगा।'

अतीत सदा रुकावट डालता है। खींचता है पीछे की तरफ। अतीत तुम्हारा बोझ है। लेकिन तभी तक खींच सकता है जब तक तुमने अतीत के साथ अपना तादात्म्य किया है। इसलिए तो संन्यासी का नाम बदलते हैं, इसलिए तो उसका वस्त्र बदल देते हैं। क्यों? क्या होगा नाम बदलने से, वस्त्र बदल देने से? कुछ भीतर कीमिया है। अगर तुम्हारा नया नाम हो जाए तो पुराने नाम से तादात्म्य टूटता है।

समझो कि तुम्हारा नाम रहीम था और मैंने राम कर दिया, या तुम्हारा नाम राम था और मैंने रहीम कर दिया। कल तक तुम्हारा नाम राम था, आज रहीम हो गया। धीरे-धीरे तुम इस नये नाम के साथ एक हो जाओगे। रास्ते पर कोई राम को गाली दे रहा होगा, तुम्हें चिंता भी नहीं उठेगी। तुम्हारा उससे तादात्म्य छूट गया। और तब तो तुम्हें एक बात और समझ में आ जायेगी कि जब राम से रहीम हो सकता है, रहीम से राम हो सकता है तो मेरा कोई नाम है नहीं। सब काम-चलाऊ हैं। मैं अनाम हूं।

इस बात की स्मृति जगाओ प्रतिभा, कि मैं अनाम हूं। मेरा न कोई अतीत है, न मेरा कोई भविष्य है। मैं तो बस अभी हूं, यहां हूं। यही क्षण मेरा शाश्वत जीवन है। इस क्षण के अतिरिक्त किसी और चीज से डोल जाना संसार है। और इस क्षण में पूरे अडोल खड़े हो जाना मोक्ष है।

कहा है, 'प्रवचन में समाधान हो जाता है पर फिर संसार में जाकर वही शक्तियां प्रबल होना चाहती हैं।'

स्वभावतः! सुनते हो मुझे, गुनते हो मुझे, मेरे साथ चल पड़ते हो एक नवीन यात्रा पर। भूल जाते हो अपने अतीत को, वह पीछे पड़ा रह जाता है। वापस लौटे बाजार में, वह अतीत फिर तुम पर कब्जा करना चाहता है। बदला लेना चाहेगा। तुम घंटे भर को भूल गये थे, वह तुम्हें जोर से पकड़ लेना चाहेगा--और भी जोर से, जितना पहले पकड़ा था। क्योंकि तुम पर संदेह पैदा होने लगेगा। तुम किसी दिन छोड़कर ही चले जाओ। तुम किसी दिन बिलकुल ही भूल जाओ। तो अतीत सब तरह के जाल फैलाएगा।

लेकिन यहां बैठो या बाहर जाओ, सजगता को कायम रखने की कोशिश करो। मैं तुम्हारे साथ हूं, अगर तुम मेरे साथ हो। यही स्मरण तुम्हें बना रहे प्रतिभा, इसीलिए तो संन्यास दिया है। जहां जाओ-- रास्ते पर, बाजार में, भीड़ में, जहां चलो, ये गैरिक वस्त्र तुम्हें याद दिलाते रहें कि तुमने जीवन की एक नयी शैली स्वीकार की है। एक नया आयाम स्वीकार किया है।

याद बनाओ कि अब तुम संसार की खोज में उत्सुक नहीं हो, तुम्हारी उत्सुकता परमात्मा में है। और दिन में कई बार इसकी याद कर लो। एक क्षण को कभी भी आंख बंद कर लो और इसकी याद कर लो। जितनी बार इसकी याद हो सके दिन में, उतनी बार याद कर लो। यही याददाश्त धीरे-धीरे सघन होगी। बुद्ध ने इसे सम्यक स्मृति कहा है, 'राइट माइंडफुलनेस'। बार-बार याद करना होगा। जैसे--

रसरी आवत जात है सिल पर पड़त निशान

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान

ग्राम्य कहावत है। लेकिन कभी-कभी ग्राम्य कहावतों में सदियों की प्रज्ञा प्रगट होती है। पत्थर पर भी साधारण-सी रस्सी बार-बार आती रहती है, जाती रहती है कुएं पर, तो पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है--रस्सी का! कोई सोच भी नहीं सकता था। पहले दिन जब रस्सी का शुरू हुआ था आगमन, कोई भरोसा भी नहीं कर सकता था कि पत्थर जैसी कठोर चीज पर रस्सी जैसी कोमल चीज का निशान पड़ जायेगा।

लाओत्सु ने कहा है, पहाड़ से जल की धार गिरती है, पत्थरों पर गिरती है जल की कोमल धार। पत्थरों को भरोसा भी नहीं होता कि हमें तोड़ देगी। लेकिन एक दिन पत्थर रेत होकर बह जाते हैं। और जल की धार .... कोमल से कोमल तत्व हो सकता है कोई तो जल की धार।

ऐसा सातत्य स्मरण का रहे। जब भी लगे कि अतीत पकड़ता है, एक क्षण को शिथिल करो, माला को हाथ में लो, एक बार अपना गैरिक वस्त्र देखो, आंख बंद करके स्मरण करो। और तत्क्षण तुम पाओगे, बाहर हो गये, तूफान गया। धीरे-धीरे पत्थर जैसी अतीत की आदत भी टूट जायेगी। निश्चित ही टूट जाती है। साधते-साधते सब सध जाता है। सिर्फ धैर्य चाहिए और सतत श्रद्धा चाहिए कि होगा।

इस सदी में अगर कोई एक चीज खो गयी है तो वह धैर्य खो गया है। लोग तत्क्षण चाहते हैं। अभी हो जाए। कुछ चीजें हैं जो समय लेती हैं। जितनी मूल्यवान चीजें हैं उतना समय लेती हैं। मौसमी फूल बो दो तो अभी कुछ दिन में फूल आ जायेंगे, मगर कुछ दिन में चले भी जायेंगे। उनका कोई स्थायित्व नहीं है। लेकिन अगर तुम्हें चिनार का कोई बड़ा दरख्त खड़ा करना हो तो वर्षों लगेंगे। बड़ा दरख्त जब खड़ा होगा और चांद-तारों से बातें करेगा, तब आनंद होगा। लेकिन वर्षों की साधना पीछे होती है। जल्दी भर मत करो, अधैर्य भर मत करो।

धैर्य हो और सतत अभ्यास जारी रहे, एक दिन क्रांति निश्चित घटती है। कबीर को घटी, कृष्ण को घटी, क्राइस्ट को घटी, तुम्हें घट सकती है। जो एक आदमी को घटी है वह प्रत्येक आदमी को घट सकती है।

छठवां प्रश्न : ऐसा लगता है कि भक्ति में गुरु की महिमा सर्वाधिक है। क्या प्रेम को दूसरे की, श्रेष्ठ की, सहारे की जरूरत सबसे अधिक है?

प्रेम का अर्थ ही होता है, दो चाहिए। प्रेम की धारा दो किनारों के बीच बहती है। जैसे नदी की धारा दो किनारों के बीच बहती है। एक किनारा हो तो नदी नहीं हो सकती। दो किनारे चाहिए। एक किनारा हो तो सूखी नदी हो सकती है। रेगिस्तान होगा, जलधार नहीं हो सकती। जलधार को बांधने के लिये दो किनारे

होंगे। ध्यान अकेले हो सकता है, प्रेम अकेले नहीं हो सकता। इसलिए ध्यान की परम प्रक्रिया में गुरु को विस्मृत किया जा सकता है। गुरु को छोड़ा जा सकता है।

कृष्णमूर्ति अकारण ही नहीं कहते कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि सारी प्रक्रिया ध्यान की है। ध्यान में गुरु अनिवार्य नहीं है, अपरिहार्य नहीं है। क्योंकि ध्यान का अर्थ है, अपने भीतर जाना है। अगर गुरु से कुछ सहारा भी मिलता हो तो बहुत प्रारंभिक है। ऐसे ही जैसे रास्ते पर तुमने किसी से पूछ लिया कि स्टेशन की तरफ कौन-सा रास्ता जाता है। इसके कारण वह तुम्हारा गुरु नहीं हो गया। धन्यवाद दिया और तुम अपने रास्ते पर चले गये।

ध्यान के मार्ग पर गुरु का इतना ही अर्थ होता है--एक तरह का मार्गदर्शक। लेकिन भक्ति के मार्ग पर, प्रेम के मार्ग पर गुरु बड़ा बहुमूल्य है। उसके बिना तो घटना नहीं घटेगी। वहां तो वह केवल मार्गदर्शक नहीं है, वहां तो वह स्वयं परमात्मा का प्रतीक है।

तो ध्यानी चाहे तो गुरु से मुक्त हो सकता है और पहुंच सकता है। लेकिन वहां भी अड़चन मालूम होती है। इस बात को समझने के लिये भी कि गुरु की कोई जरूरत नहीं, लोगों को कृष्णमूर्ति को समझने जाना पड़ता है। तो कृष्णमूर्ति गुरु हो गये। गुरु का मतलब क्या होता है? जिसके बिना समझ में न आये।

अगर कृष्णमूर्ति निश्चित ही मानते हैं कि गुरु की कोई जरूरत नहीं, उन्हें बोलना ही नहीं था। बोलने का मतलब क्या होता है? बोलने का मतलब होता है कि कुछ है, जो मैं न बोलूंगा तो तुम्हें पता न चलेगा। अगर मेरे बिना बोले तुम्हें पता चल ही जानेवाला है तो मैं बोलूं क्यों? और कृष्णमूर्ति आग्रह से बोलते हैं, अति आग्रह से बोलते हैं। तुम्हारी समझ में न आये तो वे नाराज भी हो जाते हैं। अपना सिर पीटते मालूम होते हैं। स्वाभाविक, इतनी चेष्टा करते हैं समझाने की, फिर तुम्हारी समझ में न आता हो.... और कई बार ऐसा कृष्णमूर्ति की बैठक में हो जायेगा कि रात भर रामलीला देखी और सुबह लोग पूछते हैं, सीता राम की कौन थी? कृष्णमूर्ति समझाते हैं घंटों कि ध्यान की कोई प्रक्रिया नहीं है और फिर जब प्रश्न का समय होता है, कोई खड़े होकर पूछता है, ध्यान कैसे करें? फिर बात वहीं के वहीं आ गयी! सीर पीट लेने जैसी बात है। इस आदमी ने सुना ही नहीं। यह फिर पूछ रहा कि विधि क्या है? तो करें कैसे? कृष्णमूर्ति कहते हैं, कोई गुरु नहीं है। और लोग उनसे पूछ रहे हैं; मार्ग पूछ रहे हैं, दिशा पूछ रहे हैं।

ध्यान के मार्ग पर गुरु एक मार्गदर्शक है--गाईड। उसके बिना भी हो सकता है। और अगर उसकी जरूरत भी है, तो भी बहुत गौण है। वह केंद्रीय तत्व नहीं। लेकिन भक्ति के मार्ग पर गुरु बिलकुल केंद्रीय है। भक्ति के मार्ग पर परमात्मा को

भूला जा सकता है, गुरु को नहीं भूला जा सकता। क्योंकि गुरु के द्वारा परमात्मा मिलेगा। इसलिए गुरु को नहीं भूला जा सकता।

कबीर ने कहा न, 'गुरु गोविंद दोई मिले, काके लागूं पांव।' किसके चरण छुऊं? दोनों सामने खड़े हैं। 'बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताय'। लेकिन बलिहारी फिर उन्होंने गुरु की ही कही। क्योंकि गुरु के द्वारा ही गोविंद मिला। नहीं तो गोविंद का तो पता ही न चलता। गुरु में ही गोविंद की पहली भनक आयी। गुरु में ही गोविंद को पहली दफा देखा। गुरु द्वार बना। उसी द्वार से भीतर छिपे रहस्यों का पता चला।

तो भक्त के लिये गुरु बड़ा महिमापूर्ण शब्द है। और जब तुम एक मार्ग को समझ रहे हो--जैसे कि धनी धरमदास का मार्ग भक्ति का मार्ग है--तो यहां गुरु कोई साधारण शब्द नहीं है, सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द है। गुरु शब्द का अर्थ होता है, सबसे वजनी। गुरु का अर्थ होता है वजनी। इससे ज्यादा वजन और किसी शब्द में नहीं है। इसमें गुरुत्व है, इसमें गुरुत्वाकर्षण है। गुरु वैसे ही है जैसे मैग्नेट, चुम्बक। गुरु के बिना भक्ति का शास्त्र ही निर्मित नहीं होता।

ढूंढ़ने पर भी इलाजे-दर्द-ए-दिल मिलता नहीं
गो बहार आयी मगर दिल का कमल खिलता नहीं

इस जिंदगी में बहुत बार तुम पाओगे कि बहार आयी, वसंत आया, बहुत बार प्रेम आया और गया, मगर दिल का घाव वैसा का वैसा रहा।

ढूंढ़ने पर भी इलाजे-दर्द-ए-दिल मिलता नहीं

इस संसार में खोजते रहो, खोजते रहो, कहीं कोई राहत नहीं मिलती।

गो बहार आयी मगर दिल का कमल खिलता नहीं

फिर कभी किसी के पास आकर दिल का कमल खुल जाता है, वही गुरु। जिसके पास तुम्हारे दिल का कमल खुल जाए, जो तुम्हारे लिये सूरज जैसा हो, कि तत्क्षण तुम्हारी पंखुड़ियां खुल जाएं। रात भर कमल बंद होता है, सुबह सूरज ऊगा और खुल जाता है। संसार में तुम भटकते रहते, भटकते रहते--वह रात। अंधेरी रात।

ढूंढ़ने पर भी इलाजे-दर्द-ए-दिल मिलता नहीं
गो बहार आयी मगर दिल का कमल खिलता नहीं

कई बार छोटे-मोटे दीये जलते हैं, तारे टिमटिमाते हैं, मगर कमल है कि खुलता नहीं। जिसके पास आकर अचानक पंखुड़ियां खुल जाएं, जिसके पास आकर तुम अचानक पाओ, अब तुम कली नहीं हो, फूल हो--तुम आ गये गुरु के पास। गुरु की पहचान कैसे होगी? बस, ऐसे पहचान होती है। ऊपर से कुछ पहचान नहीं है,

कोई लक्षण नहीं है ऊपर से । बस, तुम्हारे भीतर पहचान होती है ।

तो जरूरी नहीं है कि जो तुम्हारे लिये गुरु हो वह दूसरे के लिये भी गुरु हो। तुम्हारा कमल खिल गया हो किसी के पास, दूसरे का न खिले। उसके लिये किसी और सूरज की तलाश हो। इसलिए कभी भूलकर अपने गुरु को किसी और पर मत थोपना। और भूलकर भी किसी और के गुरु को अपना गुरु मत समझ लेना। एक ही कसौटी है--तुम्हारे भीतर का कमल खुलने लगे। बस उसके अतिरिक्त और कोई कसौटी नहीं है। उसी से पहचानना। फिर दुनिया की फिकर मत करना। क्योंकि दुनिया समझ ही न पायेगी। तुम्हारा कमल तुम समझोगे। तुम्हारी पत्नी भी नहीं समझेगी, तुम्हारा पति भी नहीं समझेगा, तुम्हारा बेटा नहीं समझेगा, तुम्हारा बाप नहीं समझेगा, कोई नहीं समझेगा। निकटतम जो है वह भी नहीं समझेगा क्योंकि तुम्हारे भीतर कोई नहीं जा सकता। सिवाय तुम्हारे वहां किसी की गति नहीं है। वहां तो तुम ही जानोगे, मेरा कमल खिल गया।

जब तुम्हारा कमल खिल जायेगा, और तुम किसी के पीछे चल पड़ोगे, सारी दुनिया पागल कहेगी कि तुम्हें हो क्या गया? दीवाने हो गये हो? होश गंवा दिया? यह क्या कर रहे हो? हमें तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता। और वे भी गलत नहीं कहते, उन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। उनका कोई कसूर भी नहीं है। उनको क्षमा करना, उन पर नाराज भी मत होना। लेकिन उनकी मान लेने की भी कोई जरूरत नहीं है। क्षमा जरूर करना, नाराज भी मत होना, और अपने मार्ग पर चलते भी जाना क्योंकि गुरु दुश्वार है, कभी-कभी मिलता है। सदियां बीत जाती हैं तब मिलता है। जन्मों-जन्मों के बाद मिलता है।

गुरु वही है जिसमें तुम्हें थोड़ी देर को यह भूल जाए संसार। थोड़ी देर को यह भूल जाए कि कोई आदमी है, स्त्री है, पुरुष है। थोड़ी देर को देह विस्मृत हो जाए। थोड़ी देर को कोई आदमी तिरोहित हो जाए और परमात्मा की भावभंगिमा प्रगट हो।

मानिक अधर, नीलमी आंखें, यह पुखराज बदन
मन घायल कर गयी तुम्हारी हीरकनी चितवन

किसी की आंख में तुम्हें राम की और कृष्ण की, बुद्ध और महावीर की आंख दिखाई पड़ जाए। किसी के पास पहुंचकर ऐसा लगे, आ गया वह स्थान, जहां से अब जाने की जरूरत नहीं है। किसी की छाया तले विश्राम करने का मन हो जाए कि यह पड़ाव मेरी मंजिल हो जाए।

जैसा भक्त गुरु को देखता है वैसे दूसरे लोग नहीं देखते। इसलिए भक्त और दूसरे लोगों में कभी भी ताल-मेल नहीं बैठ पाता।

जो तुम्हें
चलते-फिरते
देखते हैं,
वे तुम्हें
नहीं जानते
मैंने
तुम्हें
उड़ते देखा है,
अभी
आम की डाली से
अभी
आकाशगंगा से
जुड़ते देखा है!

मगर स्वभावतः यह बात तुम किसी से कहोगे, कोई मानेगा नहीं। किसी से कहना भी मत। यह तो जब दो दीवाने मिलें तभी करने की बात है।

जो तुम्हें
चलते-फिरते
देखते हैं,
वे तुम्हें
नहीं जानते
मैंने
तुम्हें
उड़ते देखा है,
अभी
आम की डाली से
अभी
आकाशगंगा से
जुड़ते देखा है!

गुरु की याद भी आ जाए तो गुरु की याद में ही छिपी हुई परमात्मा की याद आ गयी। क्योंकि गुरु गली है, जहां परमात्मा का मंदिर कहीं मिलेगा।

कुछ याद करके आंख से आंसू निकल पड़े
मुद्दत के बाद गुजरे जो उसकी गली से हम

गुरु गली है।

कुछ याद करके आंख से आंसू निकल पड़े
मुद्दत के बाद गुजरे जो उसकी गली से हम

गुरु का अर्थ है, करीब ही मंदिर है। कहीं करीब ही होगा। अब ज्यादा दूरी न रही। अब हम घर के करीब आ रहे हैं।

गुरु शुरुआत है परमात्मा की। गुरु के द्वारा परमात्मा ने तुम्हें पुकारा। गुरु के द्वारा परमात्मा ने तुम्हारी आंख में झांका। गुरु के द्वारा परमात्मा ने तुम्हें संदेश भेजा। इसलिए तो मुसलमान कहते हैं, पैगंबर। पैगंबर का अर्थ होता है, संदेशवाहक, चिट्ठीरसा, ईश्वर का पत्र ले आया—पत्रवाहक।

पहली-पहली बार जैसे चांद ऊग आया है आज
सर्द होंठों ने किसी का नाम दोहराया है आज

मगर यह बात तो प्रेमी समझेंगे। जो इन पर बौद्धिक रूप से सोच-विचार करेंगे उन्हें तो ये बातें कविता मालूम पड़ेंगी। ये कविताएं नहीं हैं। ये जीवन के परम, परम गुह्य सत्य हैं। मगर उन्हीं के लिये सत्य हैं जो हृदय से समझने की क्षमता रखते हैं। जो बुद्धि में जीते हैं उनके लिये ये सत्य नहीं हैं।

पहली-पहली बार जैसे चांद ऊग आया है आज
सर्द होंठों ने किसी का नाम दोहराया है आज
बेखुदी आज सबपे तारी है
किसी ने छेड़ा है मेरे दिल का साज

आदमी एक वीणा है जो बजायी नहीं गयी। गुरु ऐसा व्यक्ति है जिसने पहली बार तुम्हारी वीणा को छेड़ा। तुम्हें पहली बार पता चला कि मेरे भीतर स्वर है, कि मेरे भीतर सौंदर्य है, कि मेरे भीतर संगीत है, कि मैं एक सरगम लिये फिरता था, कि मेरी पीड़ा यही थी कि मेरी वीणा का मुझे पता नहीं था।

एक कहानी मैंने सुनी है, एक घर में एक पुराना वाद्य रखा था—बहुत पुराना। सदियों पहले से, परंपरागत, बाप-दादों से चला आया था। बड़ा वाद्य था। कोई उसे बजाना भी नहीं जानता था। कब किसी ने बजाया था इसकी याद भी घर के लोगों को न रह गयी थी। वह वाद्य बड़ा उपद्रव था। कभी बिल्ली उस पर छलांग लगा देती, उसके तार झनझना जाते। कभी रात कोई चूहा तारों को खींच देता, लोगों की नींद टूट जाती। कभी कोई बच्चे जाकर उसके साथ उछल-कूद कर देते, सारे घर में शोरगुल मच जाता। आखिर घर के लोग परेशान हो गये। उन्होंने कहा, इसे फेंको, यह नींद हराम करता है। यह घर में चैन नहीं है इसके मारे। कोई न कोई बच्चा पहुंच ही जाता है। कब तक रोको, कब तक पहरा लगाओ? फिर चूहों पर क्या पहरा

लगाओ, फिर बिल्लियों पर क्या पहरा लगाओ! और इसे झाड़ो, पोंछो यह अलग। और यह घर का स्थान घेर रहा है यह अलग। और घर में लोग बढ़ते जाते हैं, जगह की जरूरत है, इसे फेंको।

उन्होंने उस वाद्य को उठाया और जाकर म्युनिसिपल के कचराघर में रख आये। वे लौट भी नहीं पाये थे घर तक, बीच में ही थे, कि किसी भिखारी ने उस वाद्य को बजाना शुरू कर दिया। वहीं से वापस लौट गये। भीड़ लग गयी। लोग मंत्रमुग्ध खड़े हो गये। ऐसा संगीत सदियों से नहीं सुना गया था। अब उनको समझ आयी घर के लोगों को, कि हमने कितना बहुमूल्य वाद्य फेंक दिया है! जैसे ही संगीत पूर्ण हुआ, उन्होंने झपट्टा मारा और भिखारी से कहा, यह वाद्य हमारा है। भिखारी ने कहा, यह बात गलत है। वाद्य उसका जो बजाना जानता है। तुम तो फेंक चुके।

गुरु तुम्हें पहली बार तुम्हारे वाद्य की याद दिलाता है। इसीलिए तो शिष्य गुरु का हो जाता है क्योंकि वाद्य उसका, जिसको बजाना आता है।

दूर तक दैरो-हरम आये नजर
तेरे दर पर जब कभी सजदा किया

जब भी कोई गुरु के चरणों में झुकता है हृदयपूर्वक, तो उसे मंदिर-मस्जिद दिखाई पड़ते हैं। 'दूर तक दैरो-हरम आये नजर।' सारे तीर्थ खुल जाते हैं—काशी और काबा, गिरनार और जेरुसलेम।

दूर तक दैरो-हरम आये नजर
तेरे दर पर जब कभी सजदा किया

उन चरणों से सारे तीर्थ खुल जाते हैं। उन चरणों से अमृत मिलने लगता है। मगर यह भक्त की भाषा है।

ध्यानी की यह भाषा नहीं है। ध्यानी को कोई हक भी नहीं है, इस भाषा के संबंध में कुछ कहे। उसे यह भाषा आती ही नहीं है। उसे इस संबंध में नहीं बोलना चाहिए। उसकी दूसरी भाषा है।

ऐसा ही समझो कि एक गणित की भाषा होती है, वह अलग बात है। और एक काव्य की भाषा होती है, वह अलग बात है। किसी गणितज्ञ को कोई हक नहीं है कि काव्य के संबंध में कुछ कहे। क्योंकि कविता में कभी-कभी दो और दो चार भी होते हैं, कभी नहीं भी होते। कभी-कभी दो और दो पांच भी होते हैं, कभी दो और दो तीन भी होते हैं, कभी दो और दो मिलकर एक भी हो जाता है। कविता का अलग लोक है, उसका अलग तर्क है। हृदय के अपने तर्क हैं, जिनको मस्तिष्क को अनुभव करने का कोई द्वार नहीं है। गणितज्ञ को कविता के संबंध में कुछ कहने का हक नहीं है। और न कवि को गणित के संबंध में कुछ कहने का हक है। लेकिन

अक्सर ऐसा हुआ कि ध्यानी निंदा करेंगे भक्ति की, भक्त निंदा करेंगे ध्यानी की।

मैं पहली बार एक अनूठा प्रयोग कर रहा हूं मनुष्य के इतिहास में कि मैं भक्त और ज्ञानी, दोनों की तरफ से बोल रहा हूं। क्योंकि मैंने दोनों मार्ग से चलकर देखा है। और दोनों मार्ग उसी तक पहुंच जाते हैं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं और गलत कहते हैं। ठीक कहते हैं, जहां तक ध्यान का संबंध है। न गुरु की जरूरत है, न ध्यान की, न योग की, न विधि-विधान की। और गलत कहते हैं, जहां तक भक्ति का संबंध है। वहां से भी लोग पहुंचे हैं। और वहां से ज्यादा लोग पहुंचे हैं। जितने लोग ध्यान से पहुंचे उससे ज्यादा लोग भक्ति से पहुंचे हैं। क्योंकि स्वभावतः मनुष्य प्रेम के ज्यादा करीब है। प्रेम ज्यादा स्वाभाविक है। प्रीति ज्यादा स्वाभाविक है। ध्यान चेष्टा है, प्रयत्न है, साधना है। प्रीति सहजता है, स्वाभाविकता है।

अंतिम प्रश्न : 'मारू वनरावन छे रुणु बैकुंठ नहीं रे आबूं।'

मेरा वृंदावन इतना मनभावन है कि मैं वैकुंठ नहीं जाना जाहती।

मीरा का वचन है। आप क्यों मोक्ष और मुक्ति की बात करते हैं ? आपके चरणों में बैठना ही मधुर लगता है।

इसीलिए बात करता हूं क्योंकि यह तो मधुरता की शुरुआत है। इसको अंत मत मान लेना। गुरु प्रारंभ है, अंत नहीं। गुरु से गुजरना, गुरु पर रुक मत जाना। गुरु द्वार है, उससे पार हो जाना। अगर द्वार पर इतना सुख मिलता है तो मंदिर के अंतःकक्ष की तो सोचो! उसी का नाम मोक्ष है।

अक्सर ऐसा होता है कि प्यासे आदमी को दो बूंद मिल जाएं तो भी खूब तृप्ति मालूम होती है। जन्म-जन्म की प्यास! एक बूंद गिर जाए कंठ में। लेकिन उस पर रुक मत जाना। बूंद से सागर की खोज शुरू करना। बूंद है तो सागर है। सागर होगा कहीं। और बूंद जब मिल गयी तो सागर भी मिलेगा। इसलिए गुरु के चरणों के माधुर्य को आनंद से लो लेकिन वहीं बैठकर मत रह जाओ। आगे बढ़ो। आगे ही बढ़ते जाना है। जब आगे बढ़ने को कुछ भी न रह जाए तभी रुकना। जब तक आगे बढ़ने को कुछ भी बचे, तब तक रुकना मत। और आगे, और आगे--तभी तुम परमात्मा तक पहुंच पाओगे। अन्यथा संसार भी रोक सकता है, धर्म भी रोक सकता है। कुछ लोग दुकानों में अटक जाते हैं, कुछ लोग मंदिरों में अटक जाते हैं। कहीं मत अटकना।

सद्गुरु वही है जो तुम्हें अपने में अटकने न दे।

तुम्हारी बात मेरी समझ में आती है। तुम्हें अगर मेरे पास बैठकर आनंद मिल

रहा है, और इससे बड़ा आनंद तुमने कभी जाना नहीं है, तो मैं समझता हूं कि तुम्हारी अड़चन क्या है। तुम सोचते हो, अब और क्या मोक्ष? अब कहां जाना, क्या करना? तुम्हारी बात मैं समझता हूं लेकिन मेरी भी मैं समझता हूं। इसके आगे और है बहुत, जो मैंने जाना है। तुमने अभी इतना ही जाना है। तुम्हें वहां तक पहुंचाकर ही छोड़ूंगा। उस यात्रा में तुम्हें मुझे भी छोड़ देना होगा। क्योंकि द्वार पीछे रह जायेगा।

सद्गुरु की परिभाषा मेरी यही है जो एक दिन कहे, पकड़ो मेरा हाथ और और एक दिन कहे, छोड़ो मेरा हाथ। हाथ पकड़े तब तक, जब तक संसार न छूट जाए। जैसे ही संसार छूट जाए, हाथ छोड़ दे। क्योंकि अब जो हाथ पहले पकड़ने में साधक हुआ था, अब बाधक हो जायेगा। मैं तुम्हें संसार से छुड़ाने को चाहता हूं, मेरा हाथ पकड़ो। फिर परमात्मा से मिलाने को चाहूंगा, मेरा हाथ छोड़ो।

तुम्हें अभी छाया मिली है उसकी। उससे ही मिलना है। अभी तुमने उसका प्रतिबिंब देखा है मेरी आंखों में। अब उसी को खोजना है। अभी तुमने झील में पड़ते हुए चांद का प्रतिबिंब देखा है। अब चांद को खोजना है। झील में पड़ा प्रतिबिंब भी बड़ा प्यारा होता है, मगर प्रतिबिंब आखिर प्रतिबिंब है।

आज इतना ही।

साहेब, तेरी देखौं सेजरिया हो।
लाल महल के लाल कंगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो ॥
लाल पलंग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो ॥
लाल साहेब की लालिनि मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो ॥

पिया बिन मोहि नींद न आवै ॥
खन गरजे खन बिजुली चमके, ऊपर से मोहि झांकि दिखावै ।
सासु ननद घर दारूनि आहैं, नित मोहि बिरह सतावै ।
जोगिन व्हैके मैं बन-बन ढूंढूं, कोऊ न सुधि बतलावै ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, कोई नेरे कोई दूर बतावै ।

भगति-दान गुरु दीजिये, देवन के देवा हो।
चरनकंवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो।
तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो।
तुमहिं और निरखत रहौं, मेरे और न देवा हो ॥
आठ सिद्धि नौ निद्धि हों, बैकुण्ठ-निवासा हो।
सो मैं ना कछु मांगहूं, मेरे समरथ दाता हो।
सुख संपत्ति परिवार धन, सुंदर बर नारी हो।
सपनेहुं इच्छा ना उठे, गुरु आन तुम्हारी हो ॥
धरमदास की बीनती साहेब सुनि लीजै हो।
दरसन देहु पट खोलिके, आपन करि लीजै हो ॥

प्रवचन : ७
दिनांक : ६।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना ।
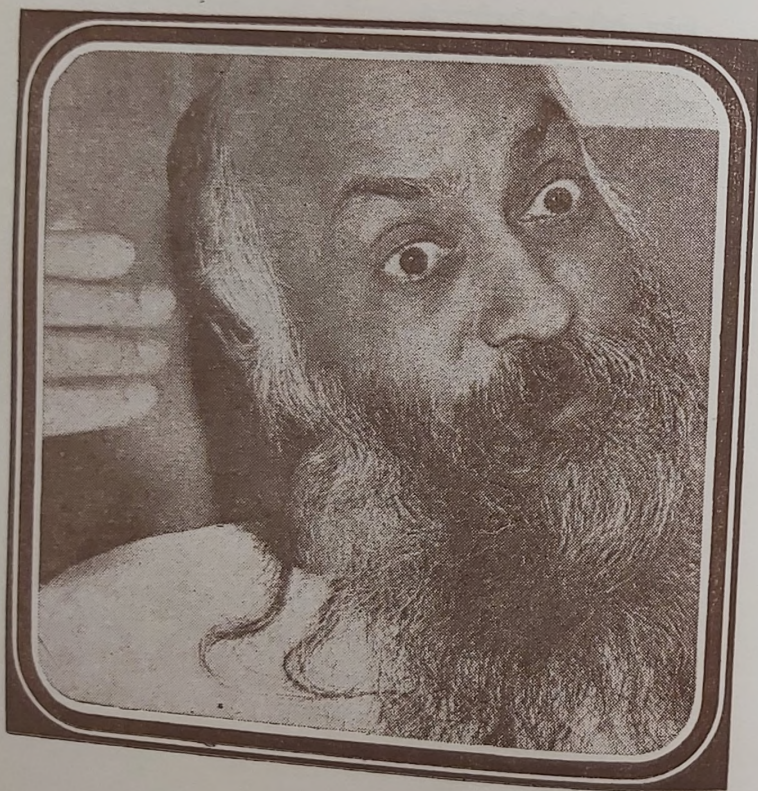
मैं तुम्हारे प्रेम का प्रतिबिंब बनकर रह गयी
मैं तुम्हारे दाह का अभिशाप सारा सह गयी
अनुगता चिर बावली मैं दूर की छाया बनी
मैं तुम्हारे सबल प्राणों की सिमटती लघु अनी
व्यर्थ पाने का जिसे आयास उस अपनत्व-सी
काटता जो मृत्यु-सा उस अंतहीन ममत्व-सी
आस की विश्वास की चादर लपेटे चल पड़ी
भग्नयुग की शेष सीमा पर कहानी बन खड़ी
प्रणय की उन्मुख विकलता के सहारे बह गयी
मैं तुम्हारी प्यास का प्रतिबिंब बनकर रह गयी
खोज वे पगचिह्न हारी प्रेम खोया, श्रेय भी
साथ सपनों का सखा ले मैं चली जिन पर कभी
पर न मुझको द्वार अब भवितव्य का मिलता कहीं
मर्त्य और अमर्त्य मेरे खो गये दोनों यहीं
प्रिय, तुम्हारे स्पर्श का अभिमान मेरी जीत है
देह में बंदी चिरंतन मुक्ति का संगीत है
एक जीवित स्वप्न रातोंरात बनकर ढह गयी
मैं तुम्हारी विवशता का गात बनकर रह गयी

भक्ति है मिटने की कला। भक्ति है शून्य होने का उपाय। भक्ति है, अपने को मंदिर जैसा रिक्त कर लेना, ताकि परमात्मा की मूर्ति विराजमान हो सके। जो खाली हैं वे ही भक्त हो सकते हैं। जो नहीं हैं वे ही भक्त हो सकते हैं। जो जितना है उतना ही परमात्मा से जुड़ने में कठिनाई पायेगा।

अहंकार के अतिरिक्त भक्ति के मार्ग पर न तो कोई अज्ञान है, न कोई पाप है। मैं हूं, यही पाप है। मैं हूं, यही अज्ञान है। इसलिए न तो व्रत काम आयेंगे, न उपवास,

न तीर्थयात्राएं, न पुण्य काम आयेंगे। काम तो एक ही बात आ सकती है कि मैं मिट जाऊं।

और मैं इतना कुशल है कि पुण्य से भी अपने को भर लेता है, पूजा-पाठ से भी अपने को सजा लेता है, तीर्थ-व्रत से भी अपनी पुष्टि कर लेता है। मैं से जो सावधान होगा उसे एक बात दिखाई पड़ जायेगी: कृत्य के सहारे मैं नहीं मिटता। फिर तीर्थ जाओ, काशी या काबा। कृत्य के सहारे मैं नहीं मिटता। फिर चाहे पुण्य करो, चाहे व्रत-उपवास। कृत्य के सहारे मैं नहीं मिटता क्योंकि कृत्य में ही कर्ता का भाव है। और जहां कर्ता का भाव है वहां मैं हूं।

अकृत्य से मिटता है मैं। समर्पण से मिटता है मैं। मैं असहाय हूं, इस भाव में मैं की मृत्यु हो जाती है। असहाय का फंदा तुम्हें घेर ले तो मैं को फांसी लग जाती है।

जीवन को ठीक से देखोगे तो पाओगे, किया क्या है? कर क्या सकते हो? हो रही हैं चीजें जरूर। जो भी होता है उसी को तुम झपटकर अपना कर्तृत्व बना लेते हो। किसी से तुम्हारा प्रेम हो गया और तुम कहते हो, मैंने प्रेम किया। हुआ को तुम बड़े जल्दी किया में बदल लेते हो। और हुए को किये में बदला कि अहंकार निर्मित हुआ। किये को हुए में बदल डालो, भक्ति का सूत्र तुम्हारे हाथ में आ गया।

मत कहो कि मैंने प्रेम किया और मत कहो कि मैंने क्रोध किया और मत कहो कि मैंने पुण्य किया। मत कहो, मैंने पाप किया। कहो, हुआ। जरा इस छोटे-से भाषा के परिवर्तन पर ध्यान दो। मुझसे क्रोध हुआ—मैं के खड़े होने की जगह न रह जायेगी। मुझसे प्रेम हुआ—मैं को खड़े होने को भूमि कहां बची? तुम तो बांस की पोंगरी हो गये। अब जो भी करता है, परमात्मा करता है।

इसलिए भक्त न तो अपने को पापी मानता है, न पुण्यात्मा। क्योंकि जो अपने को पापी मानते हैं वे एक तरह के अहंकार से भर जाते हैं और जो पुण्यात्मा मानते हैं वे दूसरी तरह के अहंकार से भर जाते हैं।

और अगर कोई गौर से खोज करेगा तो पुण्यात्मा का अहंकार पापी के अहंकार से ज्यादा बड़ा होता है। स्वाभाविक, उसके हाथ में सोने की जंजीरें होती हैं, जिनको आभूषण कहा जा सकता है। पापी के हाथ में तो लोहे की कुरूप जंजीरें होती हैं जंग-खायी। दिखाना नहीं चाहता किसी को, छिपाना चाहता है। पुण्यात्मा तो अपनी जंजीरों को भी दिखाना चाहता है, प्रदर्शन करना चाहता है। कितना उसने दान दिया, कितने पूजा-पाठ किये, कितने यज्ञ-हवन करवाये, उन सबकी गिनती रखता है। उसी गिनती में बचता है। पुण्यात्मा धीरे-धीरे इतने अहंकार से भर जाता है कि परमात्मा दूर की, बहुत दूर की बात हो जाती है।

परमात्मा तुमसे उतना ही दूर है जितना अहंकार तुम्हारा प्रबल है। परमात्मा उतने ही करीब है जितना अहंकार निर्बल है। अहंकार को निर्बल करो।

मैं तुम्हारे प्रेम का प्रतिबिंब बनकर रह गयी
मैं तुम्हारी प्यास का प्रतिबिंब बनकर रह गयी
एक जीवित स्वप्न रातोंरात बनकर ढह गयी
मैं तुम्हारी विवशता का गात बनकर रह गयी

विवश हो जाओ। विवशता में ही परमात्मा का अवतरण है। अवश हो जाओ। रोओ जरूर, पुकारो जरूर, मगर अवशता में, विवशता में, असहाय अवस्था में। असहाय हृदय से उठी आह प्रार्थना बन जाती है।

यह भक्ति की आधारशिला है। आज के सूत्र इस आधारशिला को समझने में बड़े सहयोगी होंगे। पहला सूत्र :

साहेब तेरी देखौं सेजरिया हो

धनी धरमदास कह रहे हैं, तेरी सेज मुझे दिखाई पड़ती है। यह सारा अस्तित्व तेरी सेज है।

सिर्फ अंधे ही हैं जिन्हें परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और जब कोई आकर कहता है कि परमात्मा कहां है तो वह बड़ा अजीब प्रश्न पूछ रहा है। उसे पूछना चाहिए, मेरी आंखें कहां हैं? लेकिन लोग पूछते हैं, परमात्मा कहां है। लोग पूछते हैं, परमात्मा दिखाई पड़े तो हम मान लें। यह अंधा कह रहा है, रोशनी दिखाई पड़े तो हम मान लें। और जब तक दिखाई न पड़ेगी, हम मानेंगे नहीं। अंधा गलत प्रश्न से यात्रा शुरू कर रहा है।

और जिसने गलत प्रश्न पूछा वह गलत उत्तरों के जाल में पड़ जायेगा। तुमने पूछा, परमात्मा कहां है कि तुम फंसे; कि तुम पंडित-पुरोहित के उपद्रव में फंसे। यह तुम्हें बतायेगा परमात्मा कहां है। वह नक्शे बनायेगा, वह स्वर्ग बनायेगा, नर्क बनायेगा। वह तुम्हारी मांग की पूर्ति करेगा। इस जगत में कुछ भी मांगो, कोई न कोई पूर्ति कनेरवाला मिल जायेगा। गलत मांगा तो गलत की पूर्ति करनेवाला मिल जायेगा।

इसलिए सम्यक प्रश्न बड़ी अनिवार्य बात है। सम्यक जिज्ञासा ही एक दिन सत्य तक ले जाती है।

सम्यक जिज्ञासा क्या है? सम्यक जिज्ञासा यह है कि मेरे पास देखनेवाली आंख नहीं है। पूछो, मुझे परमात्मा दिखाई क्यों नहीं पड़ता है? कृष्ण को दिखाई पड़ता है, क्राइस्ट को दिखाई पड़ता है, मुझे क्यों नहीं दिखाई पड़ता? लेकिन बजाय यह पूछने के कि मुझे क्यों नहीं दिखाई पड़ता, तुम सोचते हो क्राईस्ट पागल रहे होंगे।

जो है नहीं उसको देखते हैं, पागल तो होंगे ही। जो नहीं है वह तो पागलों को ही दिखाई पड़ता है।

पश्चिम में बहुत-सी किताबें लिखी गयी हैं जीसस के संबंध में जिनमें जीसस को न्युरॉटिक, पागल सिद्ध करने की कोशिश की गयी है। क्योंकि जीसस उन चीजों को देखते हैं जो किसी और को दिखाई नहीं पड़तीं। और पागल का क्या लक्षण होता है? तुम्हें वृक्ष दिखाई पड़ता है, कृष्ण को वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता। नहीं कि वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन वृक्ष केवल आवरण है। वृक्ष के भीतर जो हरा है वह परमात्मा है। तुम्हें फूल दिखाई पड़ता है। कृष्ण को भी फूल दिखाई पड़ता है लेकिन फूल की तरह नहीं, प्रतीक की तरह। फूल के भीतर जो छिपा है, वह जो फूल के भीतर सुर्ख है, लाल है, वह जो फूल के भीतर खिला है वह परमात्मा है। सारी खिलावट उसकी है, सारे रंग उसके हैं, सारी अभिव्यक्तियां उसकी। पत्थर से लेकर फूल तक वही न मालूम कितने रंग-रूपों में प्रगट हो रहा है।

तुम्हें लहरें दिखाई पड़ती हैं, जाननेवाले को, देखनेवाले को लहरें तो दिखाई पड़ती ही हैं लेकिन लहरों में छिपा सागर दिखाई पड़ता है। तुम लहरों पर समाप्त हो जाते हो। तुम पूछते हो, सागर कहां है? मुझे लहरें ही लहरें दिखाई पडती हैं, सागर कहां है? और जाननेवाला कहता है, लहरें तो हो ही नहीं सकतीं सागर के बिना।

यह सब जुड़ा है। इस सबको जोड़नेवाला जो तत्व है, इस सबको पिरोनेवाला जो सूत्र है वही परमात्मा है।

साहेब तेरी देखौं सेजरिया हो

धरमदास कहते हैं, तेरी सजी सेज देखता हूं।

और जिसको परमात्मा की सेज दिखाई पड़ने लगे उसके जीवन में आनंद का आविर्भाव हो जाता है। और क्या चाहिए? फिर सेज कितनी ही दूर हो लेकिन मिलन की घड़ी करीब आने लगी। दूर है तो भी दूर नहीं।

इस सेज को देखने से दो घटनाएं पैदा शुरू होती हैं। एक--आनंद का भाव उमगता है कि परमात्मा है। चांद-तारों में उसकी झलक मिलती है। सूरज में किरणें होकर वह उतरता है। हवाओं के झोंकों में वही सुगंध है। लोगों की आंखों में वही चमक है। चेहरों पर वही सौंदर्य है। बच्चों की खिलखिलाहट में वही खिलखिलाहट है।

एक तरफ तो आनंद का भाव उमगता है और दूसरी तरफ एक बड़ी गहरी विरह की वेदना भी उठती है कि सेज अभी दूर है। अभी मैं सेज का अंग नहीं हुआ। अभी प्राणप्यारे को मिलकर सेज पर सो नहीं गया हूं। अभी दूरी है। अभी थोड़ा फासला है। अहंकार गलना शुरू हुआ है, मिट ही नहीं गया है।

जब अहंकार गलता है तो परमात्मा दिखाई पड़ना शुरू होता है और जब अहंकार मिट जाता है तो तुम परमात्मा के साथ एक हो जाते हो। 'दरसन देहु पट खोलिके आपन करि लीजे हो।' पहले दर्शन घटता है, तो पहले जरा घूंघट उठाओ, दर्शन दे दो--'दरसन देहु पट खोलिके आपन करि लीजे हो।' और फिर पीछे अपने में ही मुझे डुबा लो। फिर मुझे सेज पर बुला लो।

साहेब तेरी देखौं सेजरिया हो

मेरी नजरें समेट ले जलवे
अपने रुख से जरा नकाब उलट

जैसे ही उसकी झलक मिलनी शुरू होती है--झलक पहले तो घूंघट से ही मिलती है, बहुत-बहुत घूंघट के पार मिलती है।

घूंघट में छिपी प्रियतमा को देखा है? दिखती भी है, नहीं भी दिखती। झलक ही मिलती है। लेकिन झलक आशा जगाती है, उत्साह उमगती है। हृदय आंदोलित हो उठता है। वीणा तरंगित होती है। भीतर कोई गुनगुनाने लगता है। वसंत आ गया!

लाल महल के लाल कंगूरा...

वह जो घूंघट में परमात्मा की थोड़ी-सी झलक दिखाई पड़ी है, सारे जगत को लाल कर जाती है। उसकी ही लाली से भर जाती है।

लाल रंग का प्रतीक समझना। लाल रंग बड़ा अनूठा रंग है। इसलिए संन्यास के लिये गैरिक चुना गया है सदियों से। इन सूत्रों में संन्यास के रंग की चर्चा है।

लाल कई चीजों का प्रतीक है। पहला: जीवन का, क्योंकि रक्त का प्रतीक है। परमात्मा जीवन है।

लाल महल के लाल कंगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो
लाल पलंग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो
लाल साहेब की लालिनि मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो

सब तरफ लाली ही लाली दिखाई पड़ती है।

धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो

और जिस गुरु ने इस लाली की तरफ आंखें खोल दीं उसकी बलिहारी है।

कबीर का प्रसिद्ध वचन है, उसकी ही झलक कबीर के शिष्य धनी धरमदास के इस वचन में है।

'लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल'

जो इस लाली को देखने जायेगा वह रंग जायेगा। उसमें डुबकी मारी कि तुम

भी वही हुए।

तो पहला तो प्रतीक है लाल जीवन का। क्योंकि रक्त जीवन है। रक्त में ही उसकी रसधार है।

खूं बहाता नहीं तू अगर बागबां
फूल कोई गुलिस्तां में खिलता नहीं

तुम्हारी धमानियों में जो दौड़ता है लाल रक्त, वह परमात्मा ही है। तुम्हारे भीतर जो जीवन की ऊर्जा है वह उसी की ऊर्जा है। तुम जब पूछते हो, परमात्मा कहां है, तुम भी कैसी अजीब बात पूछते हो! वही धड़क रहा है तुम्हारे हृदय में। वही दौड़ रहा है तुम्हारी नसों में। वही बोल रहा, वही सुन रहा, वही पूछ रहा है, परमात्मा कहां है? परमात्मा पूछता है, परमात्मा कहां है!

खूं बहाता नहीं तू अगर बागबां
फूल कोई गुलिस्तां में खिलता नहीं

परमात्मा ने अगर अपने को तुममें न बहाया होता तो तुम खिले न होते। तुम होते ही नहीं। तुम पूछने के लिये भी नहीं हो सकते थे। प्रश्न भी न उठता। जिज्ञासा भी न होती, जिज्ञासु भी न होता।

फिर लाल रंग यौवन का रंग भी है; जवानी का, शबाब का। परमात्मा सदा युवा है। जीवन कभी मरता ही नहीं। जीवन कभी बूढ़ा भी नहीं होता। लहरें बच्ची होती हैं कभी, कभी जवान होती हैं, कभी बूढ़ी होती हैं, कभी मर भी जाती हैं। सागर तो सदा जवान है, सदा एकरस। सागर न तो कभी बच्चा है, न कभी जवान, न कभी बूढ़ा। वहां उम्र नहीं होती।

परमात्मा की कोई उम्र नहीं है। परमात्मा पर समय की कोई सीमा नहीं है। हम लहरें हैं इसलिए हमें होना पड़ता है, फिर कभी मिट भी जाना पड़ता है। हम सदा नहीं हो सकते। 'हम' की तरह हम सदा नहीं हो सकते लेकिन परमात्मा की तरह हम सदा हैं। जिस दिन तुम अपने भीतर की भगवत्ता को पहचानोगे, उसी दिन तुम पाओगे, न तुम कभी तुम बच्चे थे, न तुम जवान हो, न तुम बूढ़े हुए, न तुम कभी मरे। यद्यपि बहुत बार मौत आयी है, मगर तुम कभी मरे नहीं। और बहुत बार जन्मे लेकिन तुम कभी जन्मे नहीं। तुम अजन्मे, अमृत!

लाली उस यौवन का रंग है।

लाली उत्सव का रंग भी है। परमात्मा उत्सव है। जिन्होंने परमात्मा को अपनी उदासी का आधार बना लिया उन्होंने परमात्मा को पहचाना ही नहीं। तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में अगर उदास लोग बैठे हों तो समझ लेना कि संसार से तो टट गये हैं, परमात्मा से नहीं जुड़े हैं।

जो परमात्मा से जुड़ गया वह संसारी से ज्यादा आनंदित होना चाहिए; होना ही चाहिए। जब संसार में, क्षुद्र में डूबे हुए लोग इतने प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं तो जो विराट से जुड़ गया उसकी प्रसन्नता का क्या अनुमान लगाएं! उसे कैसे आंकें? कैसे तौलें? किस तराजू पर? सब तराजू छोटे पड़ जाते हैं। यहां कोई किसी स्त्री के प्रेम में पड़कर इतना मगन हो जाता है और तुम परमात्मा के प्रेम में मगन नहीं हो, बैठे हो उदास मुर्दे की तरह?

तो तुमने परमात्मा की कुछ गलत धारणा बना रखी है। तुमने परमात्मा की लाली नहीं देखी। तुम उससे परिचित नहीं हो। परमात्मा नृत्य है, उत्सव है।

यही मेरी मौलिक अवधारणा है जो मैं तुम्हें देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, मेरे संन्यासी नाचते हुए संन्यासी हों, आनंदमग्न संन्यासी हों। संसारी को मात कर दें अपने उत्सव में तो ही संन्यासी हैं। संसारी थोड़ी-बहुत शराब पी लेता है, इतना मस्त दिखाई पड़ता है, तुम परमात्मा को पिओगे, और तुम शराबी जैसे भी मस्त नहीं हो पाते? तुम परमात्मा को पीते हो और सम्हल-सम्हलकर चल जाते हो? तुम्हारे पैर नहीं डगमगाते? तो तुमने कोई नकली परमात्मा पी लिया। तुमने कोई किताबों का परमात्मा पी लिया। तुम्हारा असली परमात्मा से मिलन नहीं हुआ, आलिंगन नहीं हुआ; अन्यथा तुम पागल हो ही जाओगे मस्ती में। मदमस्त हो जाओगे।

उत्सव का रंग है लाल। इसीलिए तो फूल उत्सव के प्रतीक हैं। फूल लाल हैं।

बहुत करीब है शायद बहार का मौसम
कली-कली मेरे दामन की मुस्कुरायी है

जैसे ही वसंत करीब आता वैसे ही कली-कली दामन की मुस्कुरा उठती है। न मालूम कहां-कहां छिपे फूल प्रगट हो जाते हैं। मिट्टी से निकलते हैं फूल। मिट्टी में दबे थे, छिपे पड़े थे। वसंत की प्रतीक्षा थी।

ऐसे ही परमात्मा की प्रतीक्षा है। जैसे-जैसे परमात्मा निकट आता है, तुम्हारे साधारण जीवन में इतनी सुगंध भर जाती है, इतने फूल खिल जाते हैं! तुम्हें स्वयं भी भरोसा नहीं होगा जब पहली दफा फूल खिलने शुरू होते हैं। जब पहली दफा नाच आता है, तुम अपने पैरों पर भरोसा न कर पाओगे कि मेरे पैर और नाच रहे हैं! कि मेरा कंठ और गा रहा रहा है! यह मैंने कोकिल होना कबसे जाना? यह मोरपंख का नाच मुझे कबसे आया?

तुम्हें याद भी नहीं है। तुमने कभी सीखा हो इसका भी तुम्हें स्मरण नहीं है। तुम्हें पता था, इसका भी कभी पता नहीं था। आज अचानक जाग उठा है।

बहुत करीब है शायद बहार का मौसम
कली-कली मेरे दामन की मुस्कुरायी है

और जानना तुम तभी कि तुम्हारे जीवन में धर्म का कुछ पदार्पण हो रहा है, जब कलियां खिलने लगें, जब फूल मुस्कुराने लगें, जब तुम पर लाली फैलने लगे।

तो लाल उत्सव और वसंत और फूलों का रंग है।

फिर लाल क्रांति का रंग भी है। कम्युनिस्टों ने तो बहुत बाद में चुना, संन्यासी हजारों साल से उसे चुने बैठे हैं। फिर कम्युनिस्टों की क्रांति कोई बड़ी क्रांति भी नहीं है। कम्युनिस्टों की विचारपद्धति में बड़ी क्रांति हो भी नहीं सकती। पदार्थ ही पदार्थ है, इसमें बड़ी क्रांति की संभावना नहीं है। मिट्टी ही मिट्टी है, इसमें बड़ी क्रांति की संभावना नहीं है। क्रांति होगी भी तो क्या? एक मिट्टी का ढंग दूसरी मिट्टी का ढंग हो जायेगा।

क्रांति तो घट ही सकती है संन्यासी के जीवन में--जो कहता है, पत्थर से लेकर परमात्मा तक की संभावना है! पत्थर परमात्मा हो सकता है तो क्रांति हो सकती है। पत्थर पत्थर ही होता रहे तो क्या खाक क्रांति! थोड़ा-बहुत फर्क हुआ होगा, थोड़ा-बहुत ढंग बदला होगा। सुधार हो सकता है, कम्युनिज्म में क्रांति की कोई संभावना नहीं है, सुधार की संभावना है--ज्यादा से ज्यादा। वह भी कोई बहुत बड़ा कीमती सुधार नहीं हो सकता, नाममात्र का होगा।

रूस में क्रांति हुई, जार हट गया और जार से बड़ा जार स्टेलिन उसकी जगह बैठ गया। कोई क्रांति नहीं हुई। एक गुलामी गयी, दूसरी गुलामी आयी। एक गुलामी जब गयी और दूसरी आयी तो बीच में थोड़ी देर के लिये लोगों को राहत मालूम पड़ी। जैसे कि तुम किसी अर्थी को मरघट ले जाते हो तो कंधा बदल लेते हो। एक कंधे पर बोझ बढ़ गया, दूसरे कंधे पर रख लिया। एक कंधे से दूसरे कंधे पर रखने में थोड़ी देर को संक्रमण के काल में राहत मिलती है, मगर फिर दूसरा कंधा दुखने लगता है।

अभी तुम इंदिरा को उतारे थे इस कंधे से, अब दूसरे कंधे पर मोरारजी दुखने के करीब आने लगे। क्रांति होती कहां? कंधे बदले जाते हैं। बीच में तुम बड़े उत्सुक हो लेते हो, बड़े प्रसन्न हो लेते हो कि हो गयी क्रांति। आ गया सब कुछ।

कुछ कभी आता नहीं। क्रांति तो सिर्फ एक है, वह धर्म जानता है। वह क्रांति है कि तुम देह न रहो, आत्मा हो जाओ। वह क्रांति है कि संसार संन्यास हो जाए। वह क्रांति है कि पत्थर में परमात्मा दिखाई पड़े।

इतना भेद हो तो क्रांति। क्रांति जैसा बहुमूल्य शब्द आदमियों के बदलने से नहीं होता। जयप्रकाश नारायण को कहो, क्रांति जैसे इतने बहुमूल्य शब्द को ऐसी क्षुद्र बातों के लिये उपयोग नहीं करते। जयप्रकाश तो कहते हैं, आमूल क्रांति हो गयी। छोटी-मोटी नहीं, आमूल ही क्रांति हो गयी। पत्ता बदला नहीं है, वे कहते हैं मूल बदल गया। पत्ते पर शायद तुमने थोड़ा रंग-रोगन कर दिया होगा। वह भी उतरा

जा रहा है। वह भी साल होते-होते सब पानी में बहा जा रहा है। आमूल क्रांति हो गयी!

क्रांति सिर्फ एक है, मैं तुमसे कहूं बार-बार, और वह है कि तुम्हें यहां जड़ में चैतन्य का दर्शन होने लगे। यह जगत तुम्हारे लिये परमात्मा से भर जाए, आपूर हो जाए, लबालब हो जाए।

इसलिए संन्यासियों ने सदियों पूर्व लाल रंग चुना था। क्रांति का रंग है क्योंकि अग्नि का रंग है। अग्नि जलाती है और निखारती है; आग्नेय है। अग्नि से जो गुजरेगा सोना, वह निखरकर कुंदन होकर बाहर आता है। जो परमात्मा के लाल रंग से गुजर गया वह निखर जायेगा, कुंदन हो जायेगा। जलायेगा यह लाल रंग--जैसे अग्नि जलाती है। जलना जरूरी है, नहीं तो निखार नहीं होता।

और लाल रंग मदिरा का रंग भी है--बेखुदी का रंग, बेहोशी का रंग, डूब जाने का रंग, विसर्जित हो जाने का रंग। परमात्मा मदिरा है, मधुशाला है। जो मंदिर मधुशाला न हो वह मंदिर नहीं। उसे गलत लोगों ने कब्जा कर लिया होगा। उसे उदास और रुग्ण लोगों ने जकड़ रखा है। वहां वीणा बजनी ही चाहिए। वहां बांसुरी पर गीत उठने ही चाहिए। वहां ढोल पर थाप पड़नी ही चाहिए। वहां पैर में घूंघर बंधने ही चाहिए। वहां नृत्य उठे और लोग मस्त हों। और ऐसे मस्त हों कि उस मस्ती में बिलकुल डूब जाएं। अपनी याद न रहे। अपनी सुध-बुध न रहे। जब अपनी सुध-बुध खोती है तभी उसकी सुध आती है। जब तक अपनी सुध है तब तक उसकी याद नहीं आती।

इन सारी बातों का प्रतीक है लाल रंग। लाल रंग संन्यास का रंग है क्योंकि परमात्मा का रंग है।

साहेब तेरी देखौं सेजरिया हो

धरमदास कहते हैं, तेरी सेज देखता हूं, बड़ी अनूठी है। लाल ही लाल है। सब ढंगों से लाल है।

लाल महल के लाल कंगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो

तेरे महल के कंगूरे लाल हैं। तेरे महल पर लगे किवाड़ लाल हैं।

लाल पलंग के लाल बिछौना...

तेरा पलंग लाल है, तेरा बिछौना लाल है।

...लालिनि लागि झलरिया हो

तेरे द्वार पर लगी झालर भी लाल है।

लाल साहेब की लालिनि मूरत...

तू भी लाल है, तेरा चेहरा भी लाल है।

...लालि लालि अनुहरिया हो

सब तरफ लाल ही लाल देख रहा हूं।

धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो

इस परम अनुभूति के क्षण में भी गुरु नहीं भूलता। धरमदास कहते हैं, धन्य भाग मेरे कि गुरु मिले। उन्होंने मेरी आंख खोली और साहब से मिलाया और इस उत्सव को जगाया और इस मधु की धारा को बहाया।

पिया बिन मोहि नींद न आवै

और जब तुम्हें सेज करीब दिखाई पड़ने लगे परमात्मा की तो फिर कोई और चीज मन न भायेगी। जब परमात्मा दिखाई पड़ने लगे तो और सब प्रेम फीके पड़ जायेंगे। और सब प्रेम साधारण हो जायेंगे, लौकिक हो जायेंगे। इनका अर्थ खो जायेगा। तुमने जितने प्रेम बना रखे हैं उनमें तभी तक अर्थ है, जब तक परम प्रेम का पदार्पण नहीं हुआ है। तुमने जो घर बना रखे हैं वे तभी तक घर मालूम होते हैं, जब तक परमात्मा का आवास नहीं दिखा है। उसके दिखते ही तुम्हारे महल मिट्टी हो गये, तुम्हारे संबंध साधारण हो गये।

और ध्यान रखना, भक्त यह नहीं कहते कि तुम घर-द्वार छोड़कर भाग जाना। मगर जो घटना घटती है उसका वर्णन तो करना होगा। जैसे ही परमात्मा का जरा-सा अनुभव होना शुरू होता है, इस जगत की सब चीजें फीकी हो जाती हैं; तुलना में फीकी हो जाती हैं। अब जिसके हाथ में कोहनूर हीरा लग गया हो उसे तुम सस्ते कंकड़-पत्थर सम्हालने को कहो, कैसे सम्हाले? छोड़ना भी नहीं पड़ता और सब छूट जाता है। छूट जाता है इसलिए, क्योंकि विराट दिखाई पड़ जाता है। जो छोड़ता है उससे छूटता नहीं। जिससे छूटता है वही छोड़ पाता है।

भेद को समझ लेना। जो छोड़ता है चेष्टा करके, उसको तो अभी अर्थ था। अर्थ नहीं होता तो चेष्टा क्या करनी थी! कोई आदमी कहता है कि मैं सब छोड़ कर आ गया—धन-दौलत, पत्नी-बच्चे। और उसके चेहरे पर तुम रौनक देखते हो छोड़ने की तो समझना कि कुछ छूटा नहीं। अब यह मजा ले रहा है इस बात में कि देखो, मेरे जैसा त्यागी कोई और है? कितना बड़ा काम कर आया हूं!

एक मुनि से मेरी बात होती थी। वे कहने लगे, शायद आपको पता न हो, लाखों मैंने छोड़े, घर-द्वार छोड़ा। मैंने उनसे कहा, छूटा नहीं। आप लौट जाओ वापिस। कहने लगे, मतलब? मैंने कहा, लोग कूड़ा-करकट रोज अपने घर के बाहर फेंकते हैं, उसकी चर्चा नहीं करते कि हमने आज इतना कूड़ा-करकट छोड़ा है; म्युनिसिपल के डब्बे में डाला है। जरा देखो हमारी तरफ! अखबारों में खबर नहीं छपाते कि इतना हमने त्याग कर दिया है।

आपको छोड़े कितना समय हुआ? उन्होंने कहा, कोई तीस साल हो गये। मैंने कहा, तीस साल के बाद भी अभी तुम्हें याद है कि लाखों थे? उन लाखों में अभी भी अर्थ है, रस है। वे लाखों गये नहीं, वे तुम्हारी चेतना को अभी भी घेरे हुए हैं। तुमने छोड़ा मगर वे छूटे नहीं। छोड़ना बाहर की घटना नहीं है, भीतर की घटना है। जिस चीज में से अर्थ खो जाता है वह छूट ही जाती है। फिर चाहे तुम उसके पास ही बैठे रहो। हीरे-जवाहरात तुम्हारे पास पड़े रहें, अगर तुम्हें अर्थ नहीं रहा तो बात छूट गयी।

देखा कभी, छोटे बच्चे तुम्हें भी झंझट में डाल देते हैं। छोटे बच्चे को यात्रा पर ले जा रहे हो, वह अपना गुड्डा रखे हुए है। गंदा भी हो गया है, तेल भी लग गया है, धूल भी लगी है...अब छोटा ही बच्चा है इसका गुड्डा भी...! मगर वह साथ ही ले जाना चाहता है। वह कहता है इसके बिना हम जा ही नहीं सकते। इसके बिना वह सो नहीं सकता। तुम उसे लाख समझाओ कि यह गुड्डा है, तू पागल हुआ? इसको छाती से लगाकर सोने की कोई जरूरत नहीं है। हम भी सोते हैं। वह...वह मगर उसकी समझ में कुछ नहीं आता। वह गुड्डे के बिना सो नहीं सकता। उसे रात गुड्डा चाहिए ही।

फिर तुम देखते हो, एक दिन घड़ी आती है जब वह समझ जाता है, गुड्डा गुड्डा है। जिस दिन उसे समझ में आ जाता है उस दिन तुम उससे कहो कि बेटा, यह गुड्डा सम्हालकर रखो, रात सोना है। वह हंसेगा। वह कहेगा, किसको आप... मुझे बुद्धू समझते हो? जिस गुड्डे को वह छोड़ता नहीं था वह कब घर के किसी कोने-करकट में पड़ा रह गया, कब फेंक दिया गया, उसे कुछ याद भी नहीं रह जाती। इसका नाम छूटना।

तुम्हें जब विराट दिखाई पड़ता है, क्षुद्र में से अर्थ खो जाता है। क्षुद्र म पहले अर्थ खो जाए, फिर विराट दिखाई पड़ेगा ऐसा जिन्होंने तुमसे कहा है उन्होंने गलत कहा है। जो तुमसे कहते हैं, पहले कंकड़-पत्थर छोड़ो तब तुम्हें हीरे मिलेंगे, वे गलत कहे हैं। पहले हीरे खोजो, कंकड़-पत्थर छूटेंगे। पहले नयी सीढ़ी पर पैर रख लो, नया अनुभव कर लो, नये आयाम को उतर जाने दो, फिर तुम जहां थे उससे छूट जाने में जरा भी अड़चन नहीं होगी। श्रेष्ठ जब मिल जाए तो अश्रेष्ठ को छोड़ने में जरा भी अड़चन नहीं होती।

लेकिन श्रेष्ठ का कुछ पता न हो और अश्रेष्ठ को छोड़ना...बड़ा कष्ट होता है। फिर उस कष्ट की परिपूर्ति के लिये अहंकार को बनाना पड़ता है। इसलिए तुम त्यागियों का सम्मान करते हो। वह सम्मान सिर्फ परिपूर्ति है। तुम यह कह रहे हो, तुमने इतने घाव खाये, इसके बदले में हम तुम्हें सम्मान देते हैं।

जब कोई आदमी मुनि हो जाता है, त्यागी हो जाता है, तुम शोभायात्रा निकालते हो। इसने किया क्या है? अगर संसार व्यर्थ है तो इसने कुछ छोड़ा नहीं। अगर संसार सार्थक है तो इसने छोड़कर गलती की। दो बातों में कोई भी एक बात सही होगी। इसका जुलूस किसलिए निकाल रहे हो? हां, इसे देखकर अपनी छाती पीट लेते यह समझ में आ सकता था। कि इसने छोड़ दिया और हम बुद्धू की तरह अभी भी पकड़े हुए हैं। मगर इसका जुलूस किसलिए निकाल रहे हो? इसने कोई बहुत बड़ा गुण-वत्ता का काम किया? कोई बहुत बड़े गौरव का काम किया? इसे जो था वह दिखाई पड़ गया। इसमें गौरव क्या है? और इसलिए जो गलत अब तक पकड़ रखा था वह इसके हाथ से छूट गया। छूट गया--ख्याल रखना, छोड़ा नहीं। छोड़ा तो घाव रह जाते हैं। छोड़ा तो भीतर चोट रह जाती है। फिर उस चोट को भरने के लिये मलहम-पट्टी चाहिए। वही मलहम-पट्टी समाज को करनी पड़ती है। इनकी पूजा करो, इन्होंने धन छोड़ दिया, पद छोड़ दिया। इनका जुलूस निकालो, इनके चरण छुओ, इनकी सेवा में जाओ। ये बड़े त्यागी हैं।

अब यह अहंकार को भरने की दूसरी तरकीब हुई। पहले ये अहंकार को भरते थे कि लाखों इनके पास हैं। अब इससे अहंकार को भरा जा रहा है कि लाखों इन्होंने छोड़े हैं। और ध्यान रखना, दूसरा अहंकार पहले से ज्यादा सूक्ष्म है और ज्यादा खतरनाक है। शुद्ध जहर है। पहले में तो कुछ अशुद्धि भी थी। पहला तो तुम पीते तो शायद मरते नहीं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन मरना चाहता था। जहर ले आया, पीकर और सो गया। कई बार आंख खोलकर रात में देखी, अभी तक मरा नहीं? करवट भी बदली, कचोटी भी ली शरीर में। दर्द भी मालूम होता है कचोटी लेता है तो। तो अभी मरा नहीं? मामला क्या है! सुबह भी हो गयी, दूधवाला द्वार पर दस्तक भी देने लगा, पत्नी चाय इत्यादि बनाने लगी, घर में बच्चे चहलकदमी करने लगे। उसने कहा, मामला क्या है! अभी तक मरा नहीं?

आंख खोलकर देखी, सब वही का वही है। उठा, दर्पण में जाकर देखा, वही का वही है। भागा गया जहर के दुकानदार के पास, कहा कि यह मामला क्या है? उसने कहा, भाई, हम क्या करें! हर चीज में मिलावट है। कोई जहर आज-कल शुद्ध मिलता है?

अब कोई मरना भी चाहे तो मर नहीं सकता। जी भी नहीं सकता, मर भी नहीं सकता। जहर भी शुद्ध नहीं मिलता।

साधारण आदमी की जिंदगी में जो जहर है वह अशुद्ध जहर है। जिसको तुम त्यागी कहते हो उसकी जिंदगी में शुद्ध जहर है। उसने सब अशुद्धि अलग कर दीं,

जहर ही जहर बचा है। उसका अहंकार बड़ा पवित्र अहंकार है। वही शुद्धता है। उसका अहंकार बड़ा धार्मिक अहंकार है। उससे सावधान रहना।

जिसे बोध होता है उसका संसार तो गया ही, उसकी जगह त्याग नहीं आता। त्याग के आने का कोई अर्थ नहीं है अब। उसकी जगह परम भोग का अवतरण होता है।

भक्त परम भोगी है। वह परमात्मा को भोगता है अब। तुम क्षुद्र को भोगते हो, वह विराट को भोगता है। तुम ऊपर-ऊपर की चीजों में पड़े हो, वह भीतर पहुंच गया है। उसने डुबकी मार ली। तुम सागर के किनारे शंख-सीप बीन रहे हो, वह डुबकी मार गया और हीरे इकट्ठे कर रहा है, जवाहरात इकट्ठे कर रहा है कि मोती इकट्ठे कर रहा है।

पिया बिन मोहि नींद न आवै

और एक बार झलक मिलनी शुरू हुई परमात्मा की, फिर नींद नहीं, फिर चैन नहीं। फिर पहली दफे विरह की अग्नि जलती है। पहली दफे तुम्हें समझ में आना शुरू होता है कि क्या होने को थे और क्या हो गये! क्या पाने के हकदार थे, क्या हमारा अधिकार है--जन्मसिद्ध अधिकार, या कहो स्वरूपसिद्ध अधिकार। परमात्मा होना हमारी क्षमता है। इससे कम पर जो राजी हो गया, जब समझ में आयेगा तो वह रोयेगा नहीं तो और क्या करेगा? छाती नहीं पीटेगा तो और क्या करेगा?

अश्क आंखों से बह गये मेरी
दर्द दिल से मगर जुदा न हुआ

रोयेगा। आंखों से आंसू बह जायेंगे। लेकिन ये आंसू दर्द को कम नहीं करेंगे, दर्द को बढ़ायेंगे।

अश्क आंखों से बह गये मेरी
दर्द दिल से मगर जुदा न हुआ

एक अजीब अवस्था में आ जाता है भक्त।

मैं हंसता हूं दिन भर, मैं रोता हूं शब भर
खुदा जाने मुझको यह क्या हो गया है

हंसता भी है क्योंकि 'जित देखूं तित लाल, लाली मेरे लाल की।' सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगा। हंसता भी है और रोता भी है क्योंकि अभी मैं लाल नहीं हो गया हूं। लाली चारों तरफ है। सब तरफ फूल खिले हैं। और आज सब तरफ फूल खिले देखकर और सब तरफ आयी हुई मधुऋतु को देखकर अपने भीतर फूल नहीं खिले हैं यह बात और अखरती है, काटती है।

किसी में फूल खिले दिखाई न पड़ते होते तो यह भी ठीक था। यह मरुस्थल जैसा अपना जीवन भी ठीक था। ऐसा ही सबका जीवन है; अन्यथा होता कहां है? एक स्वीकार का भाव था, एक सांत्वना थी। आज चारों तरफ दिखाई पड़ता है कि परमात्मा खिला है। मुझे क्या हुआ है? मैं क्यों नहीं खिला हूं? मेरा फूल कहां? मेरी नियति क्या है?

मैं हंसता हूं दिन भर, मैं रोता हूं शब भर
ख़ुदा जाने मुझको यह क्या हो गया है

निकलती ही नहीं दिल से यह जालिम
निगाहे-यार कुछ ऐसी लड़ी है

परमात्मा के संबंध में जो शब्द सर्वाधिक सार्थक हो सकते हैं, वे प्रेम के शब्द हैं। स्त्री और पुरुष के बीच जो प्रेम घटित होता है, उसी को अनंत गुना कर लो तो परमात्मा और मनुष्य के बीच जो प्रेम घटित होता है, उसका थोड़ा अनुमान तुम्हें होगा। और इस जगत में कोई घटना नहीं है जिससे उसका अनुमान हो सके।

निकलती ही नहीं दिल से यह जालिम
निगाहे-यार कुछ ऐसी लड़ी है

तीर की तरह चुभ जाता। आनंद भी होता है कि धन्यभागी मैं कि उसके तीर ने मुझे चुना और पीड़ा भी होती है कि अब मिलन कब हो? अब एक पल भी दूरी सही नहीं जाती।

पिया बिन मोहि नींद न आवै
खन गरजै, खन बिजुली चमके
ऊपर से मोहि झांकि दिखावै

इधर प्राणों में बादल गरज रहे हैं, बिजलियां चमक रही हैं और मजा देखो यह, कि ऊपर से अपनी झलक दिखा जाता है। इधर जार-जार रो रहा हूं मैं, इधर आंसुओं से आंखें भरी हैं, इधर प्राणों में कांटे चुभे हैं, यहां रोआं-रोआं जल रहा है विरहाग्नि से और उसका मजा देखो—

खन गरजै, खन बिजुली चमके
ऊपर से मोहि झांकि दिखाव

और बार-बार उसकी झांकी हो जाती है। बिजली में भी उसी की चमक मालूम पड़ती है और बादलों के गर्जन में भी उसी की आवाज, उसी का नाद मालूम पड़ता है। आंसुओं में भी वही बहता मालूम पड़ता है और आग में भी वह लपटता मालूम पड़ता है।

जाते ही उनके खुल गये यादों के मैकदे
गो उनसे लाख दूर हूं फिर भी नशे में हूं

दूरी है फिर भी नशा है। कभी-कभी भक्त पास भी आ जाता है इस नशे में। कभी रोते-रोते करीब भी आ जाता है। आंसुओं से बेहतर सेतु नहीं है। इसे दोहरा दूं—आंसुओं से बेहतर कोई प्रार्थनाएं नहीं हैं। जो रोना जानता है उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं है। जो आंखों से कहना जानता है उसे शब्दों से कहने की जरूरत नहीं है।

जब तुम्हारे आंसू बहने लगें, तुम करीब आ जाते हो। आंसुओं से ज्यादा परमात्मा के करीब और कोई चीज नहीं लाती। न सिद्धांत, न शास्त्र, न तुम्हारी रटी हुई तोतों जैसी प्रार्थनाएं, न तुम्हारे श्लोक, न तुम्हारे भजन, न तुम्हारे कीर्तन। आंसू जितने करीब लाते हैं, और कोई चीज करीब नहीं लाती। क्योंकि आंसू सीधे हृदय से आते हैं। और आंसू प्राकृतिक हैं। शब्द तो सब सीखे गये हैं, सामाजिक हैं। और आंसू तुम्हारे हृदय को कंपा जाते हैं। वही कंपन परमात्मा के करीब लाता है। उसी कंपन में तुम्हारी लय उससे बंध जाती है। उसी कंपन में तुम उसके साथ हो लेते हो।

मेरे अश्कों का करिश्मा देखिये
सामने वो मुस्कुराकर आ गये

जरा दिल खोलकर रोना सीखो और तुम चकित हो जाओगे; इधर आंखें आंसुओं से क्या भरती हैं, परमात्मा की झलक आंसुओं से मिलने लगती है। आंसू जैसे दर्पण बन जाते हैं।

मेरे अश्कों का करिश्मा देखिये
सामने वो मुस्कुराकर आ गये

जितना रो सकोगे उतने करीब आओगे। और ध्यान रखना, इस रोने में दुख भी है और इस रोने में आनंद भी है। यह बड़ी विरोधाभासी दशा है। इसको हम ऐसा नहीं कह सकते कि आंसू सिर्फ दुख के हैं। अगर दुख के हैं तो भक्त उदास होगा। इसको हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि सिर्फ सुख के हैं। ये दोनों के मध्य हैं। इसमें एक तरफ भारी दुख है कि और जल्दी घटना क्यों नहीं घटती? और एक तरफ बड़ा धन्यभाव है कि घट तो रही है, पहुंच तो रहे हैं, करीब आना हो तो रहा है! इतने करीब आये यह भी क्या कम है!

सासु ननद घर दारूनि आहैं, नित मोहि बिरह सतावै

सास-ननद का प्रतीक लिया है धरमदास ने। जो अपने हैं वही परमात्मा के बीच बाधा बन जाते हैं। जिनको तुमने अपना माना है वही बाधा बन जाते हैं। और उसके पीछे कारण है। क्यों बाधा बन जाते हैं? क्योंकि ईर्ष्या उमगती है।

यह सास का और बहू का झगड़ा बड़ा पुराना है। क्यों है? मनस्विद से पूछो,

यह झगड़ा मिटेगा नहीं। यह मिट नहीं सकता। इसे समझो थोड़ा, तो उससे तुम दूसरे सूत्र को भी समझ पाओगे। इसी संसार को समझने से तो हम धीरे-धीरे परमात्मा को समझ पाते हैं।

सास और बहू का झगड़ा क्या है? मां ने अपने बेटे को प्रेम किया था। नौ महीने पेट में रखा था। फिर वर्षों तक उसकी सेवा की है, सब तरह के कष्ट उसके साथ सहे हैं। रात सोयी नहीं है, बीमार रहा है तो जागी है। हजार तकलीफें आयी हैं, उनको पार किया है। और अचानक यह बेटा एक दिन किसी और स्त्री का हो जाता है; इससे बड़ी ईर्ष्या पैदा होती है।

मां को भारी ईर्ष्या पैदा होती है कि यह मेरा बेटा किसी और स्त्री का हो गया? यह बहुत चेतन में नहीं होती, इसलिए किसी मां से पूछना मत। उसके चेतन में नहीं होती। यह उसके अचेतन हिस्से का अंग है। उसके अचेतन में होती है। आज वह देखती है हर बात में, कि बेटा उससे मिलने को वैसा उत्सुक नहीं है जैसे पहले था। हो भी नहीं सकता। उसका आंचल पकड़कर घूमता था, अब आंचल पकड़कर घूम भी नहीं सकता। घूमना उचित भी नहीं है। आखिर एक समय तो मां का आंचल छोड़ ही देना होगा। और जो बेटा न छोड़ पाये वह रुग्ण है, बीमार है।

अब यह बेटा किसी स्त्री से मिलने को उत्सुक होता है, मां से मिलने को ज्यादा उत्सुक नहीं होता। मिलता भी है तो औपचारिक। पास आकर बैठ भी जाता है, दो बातें भी कर लेता है तो वह ऐसे ही मौसम इत्यादि की, कि तबियत इत्यादि कैसी है। मगर एक फासला बढ़ना शुरू होता है।

मां के कष्ट को तुम समझना। यह बेटा एक दिन उसके पेट में इतना अपना था कि एक ही था उसके साथ। फिर पेट से बाहर हुआ, फासला पहला शुरू हुआ। अलग हुआ। फिर डॉक्टर ने बीच में दोनों के जोड़ भी था, वह भी काट दिया। फिर भी लेकिन बेटा मां के दूध पर निर्भर था। उसके स्तनों से जुड़ा था। वही उसका भोजन थी, वही उसका जीवन थी। एक दिन दूध भी गया। यह बेटा अब खुद अपना भोजन लेने लगा। और भी संबंध टूटा।

यह संबंध टूटने की लंबी कथा है। मां और बेटे का संबंध, संबंध टूटने की कथा है। फिर एक दिन यह स्कूल चला गया। फिर एक दिन विश्वविद्यालय चला गया। फिर वहीं रहने लगा। वर्षों में कभी आता छुट्टियों में। कभी चिट्ठी-पत्री आ जाती है। और फिर एक दिन आखिरी संबंध टूट गया, जब एक और स्त्री इसके जीवन में आ गयी। तब उस स्त्री ने आकर इसको फिर सम्हाल लिया। उस स्त्री ने पूरा कब्जा ले लिया।

रूस में एक कहावत है कि मां एक बेटे को बुद्धिमान बनाने के लिये पच्चीस

साल लगाती है और एक दूसरी स्त्री, पांच मिनट नहीं लगते और बुद्धू बना देती है। पच्चीस साल बुद्धिमान बनाने में और पांच मिनट बुद्धू बनाने में!

चोट तो मां को लगती होगी। किये-धरे पर पानी फेर दिया। एक अचेतन ईर्ष्या का जन्म होता है। वह बहू को बरदाश्त नहीं कर पाती।

और बहू के मन में भी मां को बरदाश्त करना कठिन होता है। क्योंकि उसे पता है कि यह बेटा मां के साथ इतना इकट्ठा रहा है जितना इकट्ठा मेरे साथ कभी नहीं हो सकेगा। यह मेरे गर्भ में समा नहीं सकता। ज्यादा से ज्यादा इसका प्रतीक—इसका बेटा मेरे गर्भ में समा सकता है, यह नहीं समा सकता। प्रेयसी चाहेगी कि यह मुझमें इस तरह डूब जाए जिस तरह एक दिन मां में डूबा था और बिलकुल एकरस था, एक-तरंग था। जरा भी भेद नहीं था। मां का हृदय धड़कता था तो यह धड़कता था। मां की श्वास चलती थी तो इसकी श्वास चलती थी। ऐसा यह मेरे साथ हो जाए।

यह हर पत्नी की आकांक्षा है। मगर यह हो नहीं सकता। यह संभव नहीं है। और यह संभव किसी के साथ हुआ था। बहू भी मां को माफ नहीं कर सकती। मां भी बहू को माफ नहीं कर सकती। यह कलह है।

बहनें भी माफ नहीं कर सकतीं घर में आयी भाभी को। क्योंकि भाई उनका था; बिलकुल उनका था। आज अचानक अधिकार गया, एकाधिकार गया। आज बहनों को साफ-साफ पता है कि अब भाई किसी और का है। संबंध अब औपचारिक होंगे। भाई का सारा प्रेम अब अपनी प्रेयसी की तरफ बहा जाता है।

यही अड़चन परमात्मा के प्रेम में और भी बड़ी होकर आती है। क्योंकि जब कोई परमात्मा के प्रेम में उत्सुक हो जाता है तो जिन-जिन से प्रेम किया है उन सभी को परमात्मा से ईर्ष्या खड़ी हो जाती है। इसलिए संसार में तुम जब तक परमात्मा के प्रेम में नहीं पड़े हो, एक तरह की सुविधा रहेगी। जिस दिन तुम परमात्मा के प्रेम में पड़े, अगर तुम स्त्री हो तो तुम्हारा पति बाधा डालेगा। अगर तुम पुरुष हो तो तुम्हारी पत्नी बाधा डालेगी। तुम्हारे बेटे बाधा डालेंगे। क्योंकि उन सबको लगेगा, एक और उपद्रव का सूत्रपात हुआ। और परमात्मा का प्रेम तो ऐसा है कि तुम्हारी सारी जीवन-चेतना को खींच लेगा। सब वंचित हो जायेंगे। किसी की तरफ तुम्हारे जीवन से प्रेम की धार बहनी बंद हो जायेगी।

इससे घबड़ाहट पैदा होती है। इसलिए धार्मिक कोई हो जाए घर में तो सारा घर विरोध करता है। हजार-हजार तरह के बहाने खोजता है लेकिन मौलिक कारण यह है।

यहां मेरे पास आकर कोई संन्यस्त हो जाता है, फिर अड़चन शुरू होती है।

उसकी पत्नी रोती चली आती है। मैं उसको कहता हूं कि यह घर नहीं छोड़ रहा है। यह मेरा संन्यास घर छोड़नेवाला संन्यास नहीं है। यह कायर संन्यास नहीं है। यह भगोड़ा संन्यास नहीं है। यह घर में ही रहेगा। जैसा था वैसे ही रहेगा, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन वह कहती है, नहीं, फर्क तो पड़ ही गया। आप क्या कहते हैं फर्क नहीं पड़ेगा ? घर छोड़कर न जाए मगर फर्क तो पड़ ही गया। मेरे और इसके बीच यह गैरिक रंग फर्क डाल रहा है। आपकी माला इसके गले में देखती हूं और मुझे बेचैनी होती है। यह मेरा नहीं रहा। यह आपका हो गया।

मैं समझता हूं। यह अड़चन तो है। वह ठीक ही कह रही है।

अब मैं जानती हूं कि यह मेरे पास बैठा है लेकिन सोच आपकी रहा है। विचार आपका कर रहा है। आपने क्या कहा है उसका हिसाब बिठा रहा है। यह दुकान पर भी रहेगा लेकिन मन अब इसका वहां नहीं है। आपने यह क्या कर दिया !

तो पत्नी बाधा डालेगी, पति बाधा डालेगा, मित्र बाधा डालेंगे। इसे समझना। तुम जैसे ही उनसे अन्यथा होने लगोगे, वे सभी बाधा डालेंगे। क्योंकि वे बरदाश्त नहीं कर सकेंगे कि अचानक तुम्हारे जीवन में कोई एक ऐसा सूत्र आ जाए, जिसके कारण उनके सारे संबंध अस्तव्यस्त हो जाएं। वही अर्थ है :

सासु ननद घर दारूनि आहैं....

बड़ी कठोर है सास, बड़ी कठोर है ननद। ये सारे लोग कठोर हो उठे हैं मुझ पर। जब से तुम्हारी सेज दिखाई पड़ी है और जब से तुम्हारी तरफ चलना शुरू हुआ है, सारे संसार के लोग मेरे प्रति बड़े कठोर हो गये हैं।

....नित मोहि बिरह सतावै

ये सब मुझे पीछे खींच रहे हैं और मैं तुम्हारी तरफ आने को आतुर हूं।

बड़ी संकट की अवस्था खड़ी हो जाती है। और इस अवस्था को पैदा करने में तथाकथित धार्मिकों ने भी हाथ बंटाया है। सदियों से उन्होंने संन्यास की एक ऐसी परंपरा पकड़ रखी थी, जो जीवन-विरोधी थी। इसलिए लोगों के मन में बड़ा भय पैदा हो गया है। संन्यास शब्द ही भय पैदा करनेवाला हो गया है। संन्यास शब्द में माधुर्य नहीं रहा, रस नहीं रहा। संन्यास शब्द में एक तरह की शत्रुता है संसार के प्रति; निंदा है संसार के प्रति।

और इसलिए लोग घबड़ा जाते हैं, चौंक जाते हैं। लोग कहते हैं, ऐसे औपचारिक धर्म ठीक हैं। कभी मंदिर हो आये, कभी साधु के चरण छू आये, कभी पूजा-पाठ कर लिया। यह सब ठीक है, मगर प्रामाणिकता से धर्म में उत्सुकता ली कि लोग विरोध में हो जाते हैं। अप्रामाणिक रूप से उत्सुकता लो, ठीक है। कभी दान कर दो, कोई हर्ज नहीं है। कभी मंदिर में दो पैसे चढ़ा दो, कोई हर्ज नहीं है। और कभी-कभी

रविवार को चर्च हो जाओ, किसी को कोई अड़चन नहीं।

सच तो यह है, रविवारवाले चर्च में पत्नी भेजती है पति को कि जाओ, जाना ही चाहिए। बाप भी बेटों को भेजता है, जाना ही चाहिए। पति भी पत्नी को कहता है कि जाना चाहिए। सबको जाना चाहिए। वह सामाजिक औपचारिकता है, सामाजिक लोक-व्यवहार है। वह असली धर्म नहीं है। असली धर्म के भय के कारण लोगों ने नकली धर्म पैदा कर लिया है, जिसमें कोई खतरा न हो। अपने को बचाकर जहां से वापिस आ सकें, ऐसा धर्म पैदा कर लिया है। जैसे-के-तैसे वापिस आ सकें।

इसलिए जब भी कोई बुद्ध या कोई कबीर या कोई नानक इस जगत में आता है तो अड़चन शुरू होती है। क्योंकि वह इस झूठे औपचारिक धर्म को तोड़ देता है। वह वास्तविक धर्म को देना शुरू करता है।

लेकिन धार्मिकों का हाथ भी है। बुद्ध की बात मानकर जो लोग संन्यस्त हो गये उनके घरों की हम थोड़ा सोचें। पत्नियां, बच्चे अनाथ हो गये। हजारों परिवार उजड़ गये। महावीर की मानकर जो संन्यस्त हो गये उनके परिवारों की भी तो सोचो! और बड़ा मजा यह है कि महावीर को मानकर जो संन्यस्त हुए, ये पैर भी फूंक-फूंककर रखते हैं। चींटी न मर जाए इसकी चिंता है और बच्चों की हत्या करके आ गये हैं। पत्नी की गर्दन उतारकर आ गये हैं।

ये अहिंसक हैं ! ये जो तुम्हारे मुनि इत्यादि बैठे हैं मंदिरों में, ये महाहिंसक हैं। अहिंसा इनको छू भी नहीं गयी है। जो लोग बुद्ध की बात मानकर—हजारों लोग ! थोड़ी-बहुत संख्या में नहीं, लाखों लोग संन्यस्त हुए, भिक्षु हुए, इनके परिवारों की कोई कथा तो लिखे ! इनके परिवारों की कोई बात तो चलाये ! इनके परिवारों पर क्या गुजरी ? बच्चों ने भीख मांगी, स्त्रियां वेश्याएं बनीं, इनकी कोई चर्चा भी नहीं करता। क्योंकि चर्चा कौन करे ! नहीं तो बुद्ध पर लांछन चला जायेगा। महावीर पर लांछन चला जाएगा। इनकी चर्चा कोई नहीं उठाता। एक बड़ा महत्त्वपूर्ण इतिहास अछूता पड़ा है। इसको किसी न किसी को छेड़ना ही चाहिए कि बच्चे कहां गये इनके ? मरे, जिंदा रहे, भीख मांगी ? इनकी पत्नियों ने क्या किया ? वेश्यागिरी की कि आत्मघात कर लिया ! इस सबका जुम्मा किस पर है ? और ये बेचारे चींटी भी न मर जाए, फूंक-फूंककर चलते रहे। यह भी बड़ी मजे की बात हुई।

कई बार ऐसा हो जाता है कि छोटी-छोटी चीजों का तो तुम हिसाब रख लेते हो और बड़ी-बड़ी चीजों को भूल ही जाते हो। इसलिए मैं एक नये संन्यास की शुरुआत कर रहा हूं। ऐसा संन्यास पृथ्वी पर कभी नहीं था, जो सिर्फ आंतरिक रूपांतरण है। और बाहर जैसा है, सब वैसा ही रहे। फिर भी भय तो पुराना है। संन्यास शब्द

पुराना है।

एक युवक ने संन्यास लिया, मैं सोहन के घर मेहमान था। उसकी मां आ गयी। वह तो चिल्लाती, रोती--मोटी स्त्री है, और भारी शोरगुल मचाती। वह तो आकर लोटने लगी फर्श पर। मैं उसको कहूं कि तू सुन भी तो! यह संन्यास घर से भागनेवाला नहीं है। वह कहे, मुझे कुछ सुनना ही नहीं है। माला वापिस लो, मेरा एक ही बेटा है। मैं कहूं तेरा एक ही है, छीनते नहीं हैं। वह सुने ही नहीं। वह कहे, मैं मर जाऊंगी। और लोट रही, पोट रही।

उसकी भी बात मुझे समझ में आती है। उसके इस लोटने-पोटने में हजारों साल की व्यथा है। संन्यास शब्द ही जहरीला हो गया है। उस पर मैं नाराज नहीं हूं। उसको लोटते-पोटते देखकर मैं बुद्ध और महावीर की सोचने लगा था। इसमें कितनी स्त्रियों का लोटना-पोटना छिपा है, कितनी दारुण कथा छिपी है! यह सुनने को भी राजी नहीं है। संन्यास शब्द पर्याप्त है। उसके, संन्यास शब्द के साहचर्य इतने विकृत हो गये हैं...।

ऐसा समझो न, तुम सिनेमाघर में बैठे हो, कोई चिल्ला दे, 'आग! आग!' और लगे भागने। फिर इसकी भी कोई फिकर नही करता कि आग लगी है या नहीं लगी है या किसी ने मसखरी की है, इसकी भी कौन फिकर करता है! आग शब्द का मामला ऐसा है। शब्द ही घबड़ा देता है। संन्यास...! अब वहां भभूतमल पीछे बैठे हुए हैं, अब वे कितने दिन से सोच रहे हैं संन्यास लेना है, मगर पत्नी कहती है, संन्यास? बस, अड़चन है, घबड़ाहट है। मेरे संन्यास में घबड़ाहट है, जो कि तुम्हें तोड़ता नहीं, जो कि तुम्हें जोड़ देता है।

मगर जब धनी धरमदास ने ये वचन कहे तब संन्यास तोड़नेवाला ही था। और भी अड़चन रही होगी।

सासु ननद घर दारूनि आहैं नित मोहि बिरह सतावै
जोगन व्हैके मैं बन-बन ढूंढूं, कोऊ न सुधि बतलावै

किधर-किधर नहीं पहुंची है हुस्ने-यार की बात
कहां-कहां मेरी वहशत का तजकरा न गया

और इधर तुम पागल होने शुरू हुए परमात्मा में कि चारों तरफ अफवाहें उड़नी शुरू होती हैं।

किधर-किधर नहीं पहुंची है हुस्ने-यार की बात
कहां-कहां मेरी वहशत का तजकरा न गया

जगह-जगह खबर पहुंचनी शुरू हो जाती है। राह चलते लोग पूछने लगते हैं, भाई क्या हो गया? दिमाग तो ठीक है? यह क्या पागलपन चढ़ा है तुम्हें? जो

तुमसे कभी बोले न थे, जिन्होंने कभी तुममें कोई उत्सुकता न ली थी, वे भी तुम्हें समझाने आने लगते हैं। तुम्हें मेरी बात समझ में न आये, संन्याल लेकर देखो! अपरिचित, अनजान, राह चलते राहगीर टोक लेते हैं कि भाई, तुम्हें क्या हो गया?

और एक बड़े मजे की बात है। चित्त का विरोधाभास कैसा है! ये वे ही लोग हैं, जो संन्यासियों के चरण भी छूते हैं, महात्माओं के पास भी जाते हैं। यह बड़ी अजीब बात है। अगर संन्यास से इतना भय है तो संन्यासियों के पास जाना बंद करो। लेकिन उसमें और एक भय है कि कहीं संन्यासी ठीक ही न हों।

तो इन्होंने इंतजाम कर लिया है, एक समझौता कर लिया है कि हम तो संन्यास कभी न लेंगे। तुम तो ले ही लिये हो, हम तुम्हारे चरण छुएंगे। कुछ न कुछ पुण्य लाभ, कुछ न कुछ जूठन हमें भी मिल जायेगी। हम तो बचेंगे संन्यास से, मगर तुमने ले लिया, बड़ा अच्छा किया। इनके पैर छूकर एक तरह का प्रॉक्सी संन्यास--कि चलो हम कम से कम श्रद्धा तो करते हैं। हमारा भाव तो देखो। भाव तो अच्छा है। अभी थोड़ी साहस की कमी है, कभी साहस होगा तो करेंगे। इस जनम में नहीं तो अगले जनम में।

और ऐसा ये कई जन्मों से चरण छू रहे हैं महात्माओं के। चरण छूने का इनका अभ्यास भारी हो गया है। ये चरणदास हो गये हैं! मगर इनके जीवन में कोई क्रांति नहीं होती।

जोगन व्हैके मैं बन-बन ढूंढूं, कोऊ न सुधि बतलावै

यहां किसी को पता हो तो कोई बतलाये! जिनको तुम सोचते हो पता है, उनको भी पता नहीं है। तुम जब सोचना शुरू करते हो, खोजना शुरू करते हो तब तुम्हें पता चलता है कि किनको पता है, किनको पता नहीं है।

बुद्ध ने जब यात्रा शुरू की तो वे अनेक गुरुओं के पास गये। जिस गुरु के पास गये, उन्होंने बड़े अनन्यभाव से उस गुरु के चरणों में अपने को समर्पित किया। उनकी खोज, उनकी निष्ठा अपूर्व थी। वे निश्चित ही खोजने निकले थे। सारा जीवन दांव पर लगाने की तैयारी थी। वह कुछ ऐसी कुनकुनी खोज नहीं थी, ज्वलंत खोज थी। जिस गुरु ने जो कहा वही किया। और हर गुरु ने उनसे आखिर में क्षमा मांगी और कहा कि मुझे माफ करो। मुझे असल में खुद भी पता नहीं। जो मैंने सुन रखा था, इधर-उधर से इकट्ठा कर रखा था वह तुमसे बता दिया। अब अगर इससे नहीं होता है तो तुम कोई और गुरु खोज लो।

जब गुरुओं के पास गये तब पता चला कि गुरुओं में भी गुरु शायद ही कोई हो। जब तक तुम खोजते नहीं तब तक तुम्हें कुछ अड़चन भी नहीं होती।

ऐसा समझो न कि तुम रोज बाजार से निकलते हो, तुम्हें हीरे खरीदने ही नहीं हैं तो किस दुकान पर असली हीरे बिकते हैं और किस दुकान पर नकली पत्थर बिकते हैं, तुम्हें लेना-देना क्या ? सब असली हों कि सब नकली हों, तुमने कभी इस पर विचार ही नहीं किया। तुमने हीरे खरीदे ही नहीं हैं, न खरीदने हैं। तुम क्यों चिंता में पड़ो ? तुम्हारी नजर ही हीरों की दुकान की तरफ नहीं जाती।

जिस दिन हीरा खरीदना है उस दिन सवाल उठता है। उस दिन तुम विचार करोगे कि कौन-सा असली, कौन-सा नकली। जौहरी को दिखाओगे, जांच करवाओगे। तब तुम्हें हैरानी होगी कि कई दुकान तो सिर्फ पत्थर बेचते हैं। जिन दुकानों पर हीरे भी बिकते हैं, उन पर भी बहुत तो पत्थर ही हैं, हीरे तो कुछ हैं। क्योंकि लेनदार ही कभी आता है। खरीददार ही कभी आता है। हीरे की परख कहां है ?

जोगन व्हैके मैं बन-बन ढूंढू....

धनी धरमदास कहते हैं, गांव-गांव भटकता हूं, जंगल-जंगल जाता हूं, जहां खबर मिलती है कि किसी को खबर है वहां जाता हूं, लेकिन 'कोऊ न सुधि बतलावै।' कोई मुझे परमात्मा का पता नहीं बताता। कोई गैल नहीं बताता, राह नहीं बताता, द्वार नहीं बताता।

अहसास भी होने लगा है कि परमात्मा सब तरफ है लेकिन कहां से पकडूं ? किस दिशा से उसमें छलांग लगाऊं ? किस किनारे से कूदूं ? कौन-सा घाट मेरा घाट है, जिससे मैं उतरूं तो दूसरे पार पहुंच जाऊं ? दूसरा पार दिखाई पड़ रहा है। दूसरा पार है इसका भरोसा भी आ गया है लेकिन किस घाट को तीर्थ बनाऊं ?

वह करम उस वक्त करते हैं हमारे हाल पर
जब हमारे हाल की हमको खबर होती नहीं

लेकिन जब कोई ऐसा विरहिणी होकर, जोगिन होकर भटकता है, द्वार-द्वार दरवाजे-दरवाजे खटखटाता है भिक्षापात्र लेकर कि मुझे कोई पता बता दो, कि मेरा प्यारा कहां है। झलक तो मिलती है, स्वर भी सुनाई पड़ते हैं लेकिन किस दिशा से आते हैं, कुछ समझ नहीं बैठती। कहां जाऊं, कैसे खोजूं, कैसे मिलन हो जाए? जब कोई विरह में भटकता है, भटकता है और ऐसी घड़ी आ जाती है--आखिरी घड़ी, सब तरह से हताश और निराश और असहाय हो जाता है...

वह करम उस वक्त करते हैं हमारे हाल पर
जब हमारे हाल की हमको खबर होती नहीं

उस क्षण परमात्मा की कृपा बरसती है। कोई विधि नहीं है परमात्मा को पाने की--विरह, रोता हुआ हृदय, पुकारती हुई आत्मा, सब दांव पर लगाने की तैयारी। हजार द्वार खटखटाने पड़ते हैं तब उसका द्वार आता है। और ऐसा नहीं है कि उसका

द्वार दूर है, मगर हजार द्वार खटखटाने से ही आता है।

एक सूफी फकीर बैठा है एक वृक्ष के नीचे। और एक युवक ने आकर कहा कि मुझे गुरु की तलाश है, मैं कहां खोजूं ? और अगर मुझे गुरु मिल जाए तो मैं पहचानूंगा कैसे? तो उस गुरु ने कुछ लक्षण बताये, कि वह इस तरह के वृक्ष के नीचे बैठा मिलेगा, इस तरह के कपड़े पहने होगा, इस तरह की उसकी आंखें होंगी। तू जा, खोज, मिल जायेगा।

वह युवक खोजता रहा, खोजता रहा, खोजता रहा--तीस साल! बूढ़ा हो गया तब थका-मांदा, सब तरह से पराजित होकर कि न कोई गुरु, न कोई परमात्मा है। कहीं मिलता ही नहीं। एकदम हताश होकर अपने गांव वापिस लौटा। थका-मांदा उसी वृक्ष के नीचे बैठा। वह बूढ़ा अभी भी जिंदा था, बहुत बूढ़ा हो गया था।

जब उस वृक्ष के नीचे बैठा तो बड़ा हैरान हुआ। यह तो वही वृक्ष था जिसकी इस बूढ़े ने बात की थी। और बूढ़ा उसी ढंग का आदमी था, जिस ढंग की इसने बात की थी। एकदम चरण पकड़ लिये और कहा कि हद कर दी! मेरी जिंदगी बरबाद कर दी। मैं तुमसे ही तो पूछा था, अगर तुम ही मेरे गुरु थे तो कहा क्यों नहीं?

उस बूढ़े ने कहा, ये तीस साल अगर तुम भटकते न तो तुम मुझे पहचानते न। मैं तो था, गुरु तो था लेकिन शिष्य कहां था ? इन तीस सालों ने तुम्हें शिष्य बनाया। दर-दर भटके और ठोकरें खाईं, असहाय हुए, अहंकार गिर गया तुम्हारा। अहंकार अंधा बना रहा था। उस दिन भी यही वृक्ष था मगर...मैंने तो परिभाषा की थी कि इस वृक्ष के नीचे बैठा मिलेगा गुरु। यही वृक्ष था।

और युवक ने कहा, याद आता है, यही वृक्ष था। आप इसी जगह बैठे थे। और यही मैं हूं। और यही मैंने...अपना ही वर्णन किया था तुझसे। और किसी गुरु को मैं जानता भी नहीं। अपना ही वर्णन किया था। लेकिन तूने सुना और चल पड़ा। तो एक बात पक्की थी कि तू अभी अंधा है। तीस साल चोट खा-खाकर तेरी आंख खुली। अब तू पहचान सकता है।

तेरी मुसीबत की फिक्र छोड़, मेरी मुसीबत की सुन। तीस साल से तेरी राह देख रहा हूं। और मैं कितना बूढ़ा हो गया हूं यह भी तो सोच। तू तो जवान था तो भटकता रहा। मैं किस तरह अपनी सांस को अटकाये बैठा हूं कि कहीं तू आये वापिस, और मैंने जो परिभाषा दी थी उसको पूरा कौन करेगा ?

जोगन व्हैके मैं बन-बन ढूंढू, कोऊ न सुधि बतलावै
धरमदास बिनवै कर जोरी, कोई नेरे कोई दूर बतावै

कोई कहता है परमात्मा बहुत पास है, कोई कहता है परमात्मा बहुत दूर है। कोई कहता है परमात्मा सगुण है, कोई कहता है परमात्मा निर्गुण है। कोई कहता

है परमात्मा का आकार, कोई कहता है निराकार। और उलझ जाती है बात, सुलझती नहीं। सुधि तो कोई नहीं दिलवाता, उलटे दर्शन की बातें होती हैं, तत्वचर्चा होती है।

और धरमदास जानते हैं कि फासला ज्यादा नहीं है क्योंकि उसकी लाली चारों तरफ दिखाई पड़ती है। उसकी ही धूप में हम खड़े हैं, उसी की धूप में नहा रहे हैं। उसी की श्वास हमारे भीतर प्राण बनकर चल रही है। उसी का खून हमारे भीतर बह रहा है। दूर भी नहीं है।

सच तो यह है, उसे दूर भी कहना गलत, उसे पास भी कहना गलत। क्योंकि वह पास से भी पास है। तुम ही हो वह। तो जो कहता है दूर, वह गलत कहता है। जो कहता है पास, वह गलत कहता है।

क्योंकि पास भी तो दूरी का नाम है। पास भी तो एक तरह की दूरी है। कितने ही पास हो तो भी दूरी तो रहती ही है। दूरी में जरा ज्यादा दूरी, पास में थोड़ी कम दूरी, मगर दूरी में तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। और जरा-सी दूरी में भी तो चूक हो सकती है।

थोड़े-से फासले में भी हायल हैं लिग्जिशें
साकी सम्हालकर मेरे, साकी सम्हालकर

जरा-से फासले में तो आदमी गिर सकता है। एक कदम पर तो चोट खा सकता है। एक कदम पर तो भटक सकता है। एक कदम गलत कि सब गलत हो जाता है और एक कदम सही कि सब सही हो जाता है।

तो पास से पास भी बड़ी दूरी है। और दूर से दूर भी बहुत दूर नहीं है। अगर ठीक दृष्टि हो, ठीक छलांग हो तो एक कदम में यात्रा पूरी हो जाती है। सच तो यह है, न वह दूर है, न वह पास है; वह तुम्हारे भीतर है। तुम हो।

इसका पता जब तक कोई न बताये तब तक गुरु नहीं मिला।

भगति दान गुरु दीजिये, देवन के देवा हो
चरनकंवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो
तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो
तुर्महि ओर निरखत रहौं, मेरे और न दूजा हो
आठ सिद्धि नौ निद्धि हौं, बैकुण्ठ-निवासा हो
सो मैं ना कछु मांगहूं, मेरे समरथ दाता हो
सुख संपत्ति परिवार धन, सुंदर वर नारी हो
सपनेहुं इच्छा ना उठै, गुरु आन तुम्हारी हो
धरमदास की बीनती साहेब सुनि लीजै हो

दरसन देहु पट खोलिके, आपन करि लीजै हो

खोजते-खोजते गुरु का द्वार आ गया। धरमदास ने बहुत-बहुत गुरुओं को खोजा तब कबीर को पाया।

जो खोजता है वह पाता है। हालांकि खोज कठिनाई से भरी है। यहां रास्ते में बहुत धोखे भी हैं, बहुत धोखे की दुकानें भी। यह स्वाभाविक है। जहां असली सिक्के होते हैं वहां नकली सिक्के भी होते ही हैं। नकली चलते ही असली के सहारे हैं। अगर असली न हों तो नकली नहीं हो सकते। असली का होना जरूरी है, तो नकली भी चल सकता है।

और अर्थशास्त्र का एक नियम है कि जब भी तुम्हारी जेब में असली और नकली सिक्का हो तो पहले तुम नकली को चलाने की कोशिश करते हो। स्वाभाविक! क्योंकि असली तो कभी चल जायेगा, नकली जितने जल्दी निकल जाए।

तो जब भी बाजार में नकली सिक्के होते हैं, असली छिप जाते हैं और नकली चलते हैं। चलन नकली का होता है। यह बिलकुल स्वाभाविक नियम है। तुमने भी जाना होगा। तुम्हारी जेब में दो नोट पड़े हैं दस-दस के——एक नकली और एक असली। तुम जहां जाते हो, जल्दी से नकली निकालकर हाजिर करते हो, असली को छिपाये रखते हो। असली की क्या जल्दी है? कभी भी काम आ जायेगा। पहले नकली तो चल जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मेरे पास आया और उसने कहा कि आज तीन अच्छे काम किये। कहा, वे कौन-से अच्छे काम किये नसरुद्दीन? उसने कहा कि पहला अच्छा काम तो यह किया कि एक भिखमंगे को एक रुपया दान दिया।

'एक रुपया?' मैंने कहा।

उसने कहा, 'इसीलिए तो कहने जैसी बात है। पूरा एक रुपया दिया।'

'दूसरा अच्छा काम क्या किया?'

उसने कहा, 'दूसरा अच्छा काम यह हुआ कि वह जो नकली दस रुपये का नोट मैं लिये फिरता था, वही उसको दिया था और कहा था कि नौ वापिस दे दे।'

'तीसरा अच्छा काम क्या किया?'

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'तीसरा अच्छा काम यह कि वह भी प्रसन्न और मैं भी प्रसन्न। दोनों प्रसन्न हुए। उसको एक रुपया मिला, मेरा दस का नकली नोट चला। मुझे नौ मिले, उसको एक मिला। दोनों को मिला। दोनों का चित्त प्रसन्न।

तुम्हारे पास नकली सिक्का हो तो पहले तुम उसे एकदम चलाने में उत्सुक हो जाते हो। बाजार में नकली सिक्के चलते हैं, असली छिप जाते हैं।

अक्सर जीवन के और तलों पर भी यही बात सच है। पंडित-पुजारी चलते

हैं। दो कौड़ी के लोग चलते हैं। क्योंकि वे दो कौड़ी के लोग तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। असली गुरु तुम्हारी इच्छा की पूर्ति नहीं करता, तुम्हारी इच्छा को तोड़ता है।

असली गुरु के पास मौत है, नकली गुरु के पास सांत्वना है। असली गुरु तुम्हें मिटायेगा क्योंकि तभी परमात्मा से मिलन हो सकता है। नकली गुरु तुम्हें सब तरह के भरोसे देता है कि घबड़ाओ मत। इधर दान कर दो, इधर यज्ञ कर दो, इधर हवन करवा दो, सब ठीक हो जायेगा। तुम फिकर न करो, बाकी मैं फिकर लूंगा। चिट्ठी लिख दूंगा परमात्मा के नाम ताकि सनद रहे।

मैं सुरत में एक घर में मेहमान था। मुझे वहां पता चला कि मुसलमानों का एक संप्रदाय, जिसके प्रधान सुरत में रहते हैं, चिट्ठियां देता है लोगों को कि इस आदमी ने एक लाख रुपया दान दिया। यह चिट्ठी सनद रहे। जब वह आदमी मरता है तो वह चिट्ठी उसके साथ उसकी कब्र में रख दी जाती है ताकि वह खुदा को दिखा देगा।

क्या मजा चल रहा है! खुदा के नाम चिट्ठियां लिखी जा रही हैं, जिन्हें खुदा का कुछ पता नहीं। वे लाख रुपये...यह आदमी इसी आशा में जी रहा है कि लाख रुपये की चिट्ठी पास है, खुदा को दिखा देंगे। हुंडी पास है, सब काम सुलट जायेगा। और इस आशा में यह और कुछ भी नहीं कर रहा है। इसको क्या करना ध्यान! क्या करनी प्रार्थना! इसे क्या मतलब कबीर को खोजे? इसको तो मिल गये इसके गुरु। बड़े सस्ते में मिल गये। और दोनों का चित्त प्रसन्न है। गुरु का प्रसन्न है, उन्हें लाख मिल गये। शिष्य का प्रसन्न है कि आगे का लोक सुधर गया। दोनों के चित्त प्रसन्न हैं।

सस्ते गुरु तुम्हें बदलते नहीं। सस्ते गुरु तुम्हें चोट भी नहीं करते। सस्ते गुरु मलहम-पट्टी करते हैं। सस्ते गुरु तुम्हारी चोट को भुलाते हैं। सस्ते गुरु कहते हैं, सब ठीक हो जायेगा, समय की बात है। सस्ते गुरु कहते हैं, सब ठीक ही है। यह तो तुमने अपने पिछले जन्मों का कर्म भोगा, बात खतम हो गयी। सस्ते गुरु कहते हैं, आत्मा अमर है, मरोगे नहीं, घबड़ाओ मत। सस्ते गुरु कहते हैं, परमात्मा की बड़ी अनुकंपा है। वह सब क्षमा कर देगा। तुम चिंता न लो। तुम तीर्थयात्रा कर आओ, कि हज कर आओ।

ये सब बातें तुम्हें बदलतीं नहीं; तुम्हारे जीवन में क्रांति नहीं लातीं। लेकिन जब तुम सद्गुरु को पाओगे तो तुम्हारा रोआं-रोआं बदला जायेगा। तुम्हारी आत्मा फिर से ढाली जायेगी। तुम फिर से निर्मित किये जाओगे। और निश्चित ही इसके पहले कि तुम निर्मित किये जाओ, तुम्हें तोड़ा जायेगा।

इसलिए सद्गुरु से लोग भागते हैं। सद्गुरु से लोग बचते हैं। सद्गुरु तुम्हारा समर्थन नहीं करता। जो तुम्हारा समर्थन करता हो उससे तुम्हें लाभ नहीं होगा, याद रखना। वह तुमसे कुछ लूटना चाहता है इसलिए तुम्हारा समर्थन कर रहा है। उसका कुछ लाभ है, कुछ हेतु है तुममें जुड़ा हुआ। वह तुम्हें प्रसन्न करना चाहता है। वह धर्म से उसका कुछ लेना-देना नहीं। वह धर्म के नाम पर एक तरह की राजनीति चला रहा है।

रोते-रोते धरमदास खोजते रहे, खोजते रहे। जो खोजता रहेगा उसे एक दिन मिल जायेगा। जो सांत्वना में नहीं अटकेगा उसे सत्य मिलेगा। मिल गये एक दिन कबीर। कबीर से उन्होंने क्या प्रार्थना की?

भगति दान गुरु दीजिए...

और कुछ नहीं मांगा––भक्ति! भक्त का हृदय मुझे मिल जाए। भक्त के हृदय का अर्थ होता है:

गम दे कि खुशी, हाथ में तकदीर है तेरे
जो तेरी रजा है वही अब मेरी रजा है

भक्त का अर्थ होता है, मैं छोड़ता अपने को। तू जहां ले चल! जहां ले जाए–– नर्क, तो वह मेरे लिये स्वर्ग है क्योंकि तू वहां लाया। अब मेरी अपनी कोई निजी मांग नहीं है––'भगति दान गुरु दीजिये।'

तो कबीर के चरणों में गिरकर धनी धरमदास ने कहा है कि कुछ और नहीं मांगता, मुझे भक्त का हृदय दे दो। मुझे वह हृदय दे दो, जो परमात्मा के इशारे पर चलने लगे। मुझे वह हृदय दे दो, जिसमें से अहंकार विदा हो जाए।

भगति दान गुरु दीजिये, देवन के देवा हो

गुरु को गुरुदेव कहा है: 'देवन के देवा हो।' क्योंकि गुरु के द्वारा ही परमात्मा मिलता है। इसलिए उसकी महिमा परमात्मा से भी बड़ी है। वही सेतु बनता है। उसी के द्वारा आदमी परमात्मा तक पहुंचता है। उसी की आंख से देखकर तुम्हारे जीवन में रूपांतरण शुरू होते हैं। इसलिए देवों का देव कहा है।

भगति दान गुरु दीजिये, देवन के देवा हो
चरनकंवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो

बस, इतनी ही मुझे सुध दे दो कि तुम्हारे चरणकमल मुझे भूलें न। कभी बिसरूं न।

चरनकंवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो
तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो

कर चुका बहुत, धरमदास ने कहा, तीरथ और ब्रत। तीरथ करते ही करते

तो कबीर मिले थे। मथुरा में कबीर मिल गये थे।

तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो

और अब बहुत कर चुका मंदिरों में पत्थरों की पूजा; अब नहीं।

मैकदे के दर पै यह बेवक्त दस्तक किसने दी ?
दैरो-काबा का कोई भटका हुआ इन्सां न हो

मधुशाला के द्वार पर यह दस्तक किसने दी है? मधुशाला का मालिक सोचने लगा, खोल ही देना चाहिये। मंदिर और मस्जिद का भटका हुआ कोई बेचारा न हो।

कबीर के सामने जब धनी धरमदास आये थे तो ऐसे ही---मंदिर और मस्जिद का भटका हुआ आदमी! न मालूम कितनी पूजाएं, न मालूम कितने पाठ! धन था बहुत, सुविधा थी बहुत। बड़े यज्ञ करवाते थे। लाखों यज्ञों में फुंकवाते थे।

मैकदे के दर पै यह बेवक्त दस्तक किसने दी ?
दैरो-काबा का कोई भटका हुआ इन्सां न हो

ध्यान रखना, तुम्हारे मंदिर और मस्जिद तुम्हें भटकाते हैं। क्योंकि मंदिर और मस्जिद अब जीवंत नहीं हैं, मुर्दा हैं। कोई मंदिर जीवंत होता है जब वहां कोई सद्‌गुरु होता है।

निश्चित ही गिरनार कभी जीवित थी और काबा कभी जीवित था और काशी कभी जीवित थी, लेकिन स्थान जीवित नहीं होते। स्थानों में क्या भेद है? पूना की भूमि हो कि काशी की, कुछ भेद नहीं है। जमीन एक है, जुड़ी है, संयुक्त है। लेकिन काशी में कभी बुद्ध का आगमन हो जाता है तो काशी तीर्थ हो जाती है।

काशी के निकट सारनाथ में बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन दिया, उस घड़ी सारनाथ तीर्थ था। बस उस घड़ी तीर्थ था। जब वह सूरज सारनाथ पर उतरा, जब बुद्ध की आंखें सारनाथ पर पड़ीं, जब बुद्ध के चरणों ने सारनाथ को छुआ तब तीर्थ था। फिर तब से नाहक पूजा हो रही है। अब मंदिर है, पुजारी बैठा है, भिक्षु बैठे हैं। दूर-दूर देशों से लोग यात्रा करके आते हैं।

निश्चित ही बुद्धगया तीर्थ था, जब बुद्ध को समाधि फली। लेकिन फिर तब से तो बात उजड़ गयी। समाधि ही न रही, समाधि जिसमें फली थी, वह न रहा। फूल जो खिला था, जा चुका, विदा हो गया। पक्षी उड़ गया। अब तो पिंजरा पड़ा है, तुम पिंजरे को पूजते रहो। जितना पूजना हो उतना पूजते रहो। लेकिन पिंजरे से अब कुछ हल नहीं होगा।

ठीक धरमदास कहते हैं,

तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो
तुमहिं ओर निरखत रहौं, मेरे और न दूजा हो

वे कहते हैं, बस इतनी ही मुझे कामना है कि तुम मुझे दिखाई पड़ो और तुम्हें मैं देखता रहूं ... देखता रहूं। 'तुमहिं ओर निरखत रहौं।' क्योंकि तुम्हीं में देखते-देखते मुझे उसका दर्शन हो जायेगा, जिसकी लाली मुझे सबमें दिखाई पड़ती है लेकिन घाट नहीं मिलता।

आठ सिद्धि नौ निद्धि हों, बैकुण्ठ-निवासा हो
सो मैं ना कछु मांगहूं, मेरे समरथ दाता हो

वे कहते हैं कि तुम सब दे सकते हो मगर मेरी कोई मांग नहीं है। 'तुम समरथ दाता हो।' तुम चाहो तो क्या न दो ? लेकिन मैं मांगता ही नहीं। मुझे चाहिए ही नहीं। आठ सिद्धि नौ निद्धि---मुझे कोई योगबल नहीं चाहिए, कोई सिद्धियां, ऋद्धियां, निद्धियां नहीं चाहिए।

इक फरेबे-आरजू साबित हुआ
जिसको जौके-बंदगी समझा था मैं

बहुत मंदिरों में झुककर देख लिया, बहुत यज्ञ-हवन करके देख लिये, समझता तो था कि यह बंदगी है, प्रार्थना है लेकिन वह सब झूठ था। वे सब उस लोक में सुख पाने की आकांक्षाएं थीं। वह संसार का ही विस्तार था।

तुम्हारा स्वर्ग भी तुम्हारे संसार का ही विस्तार है। वहां भी तुम क्या मांग रहे हो ? वही जो तुम यहां मांग रहे हो। वहां भी तुम सुंदर स्त्रियां चाहते हो, अप्सराएं, ऊर्वशियां। वहां भी तुम यही सब चाहते हो---धन-दौलत, सोने के महल, हीरे से पटे रास्ते। वहां भी तुम यही चाहते हो कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठो, हर इच्छा पूरी हो जाए।

तुम्हारी बहिश्त क्या है ? तुम्हारी वासना का फैलाव। वहां भी तुम चाहते हो कि शराब के झरने बहते हों। यह फर्क न हुआ। यह तुम्हारा सपना वही का वही है। तुम जरा भी बदले नहीं।

इक फरेबे-आरजू साबित हुआ
जिसको जौके-बंदगी समझा था मैं

वह सब फरेब था। वासना का ही धोखा था। वासना की ही नयी उड़ान थी, वासना का ही नया उपाया था फिर से मुझे पकड़ लेने का। इसलिए---

तिरथ बरत मैं ना करौं ना देवल पूजा हो
तुमहिं ओर निरखत रहौं मेरे और न दूजा हो

गुरु की ओर देखते-देखते कुछ घटता है। सत्संग की इसीलिए बड़ी चर्चा है। देखते-देखते घट जाता है। क्यों ? क्योंकि देखते-देखते टकटकी बंध जाती है। देखते-

देखते, सुनते-सुनते, पास बैठे-बैठे कुछ ऐसी घड़ियां आ जाती हैं जब विचार तुम्हारे भीतर शांत हो जाते हैं। और जहां तुम्हारे भीतर विचार शांत हुए, वहीं द्वार खुल जाता है।

आठ सिद्धि नौ निद्धि हौं, बैकुण्ठ-निवासा हो
सो मैं ना कछु मांगहूं, मेरे समरथ दाता हो
सुख-संपत्ति, परिवार, धन, सुंदर वर नारी हो
सपनेहुं इच्छा ना उठे, गुरु आन तुम्हारी हो

धरमदास कहते हैं, तुम्हारी सौगंध खाकर कहता हूं। गुरु आन तुम्हारी हो! सपनेहुं इच्छा ना उठे। अब सपने में भी इच्छा नहीं उठती, जागने की तो बात ही छोड़ दो। देख लिया सब।

और यह बड़े मजे की बात है, ख्याल में लेना। जिसने देख लिया वही मुक्त होता है। जिसने सब देख लिया... धन देख लिया, वह धन से मुक्त हो जाता है। जिसने कामवासना देख ली, वह कामवासना से मुक्त हो जाता है। जिसने भोगा नहीं वह मुक्त नहीं होता। संसार मुक्ति का उपाय है।

मैं फिर से दोहरा दूं, क्योंकि ऐसा वचन तुम्हें शायद ख्याल में न हो: संसार मोक्ष का मार्ग है। संसार विधि है मुक्ति की। क्योंकि जो यहां देख लो उसी से छुटकारा हो जाता है। और जब तक न देखो तब तक बंधन रहता है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, जो भोगना हो भोग ही लेना, नहीं तो छूटोगे नहीं। अगर कामवासना मन को पकड़े है तो घबड़ाओ मत, उतर ही जाओ उसमें। परमात्मा की दी हुई वासना है और परमात्मा का दिया हुआ यह संसार है। इसके पीछे कुछ गहन प्रयोजन है। उतर ही जाओ उसमें सब हिसाब-किताब भूलकर। और तुम एक दिन अचानक पाओगे, देख लिया और कुछ पाया नहीं। हाथ राख लगी। जिस दिन यह अनुभव होगा उस दिन कामवासना से तुम मुक्त हुए। उसी दिन तुम्हारे भीतर काम समाप्त और राम की शुरूआत हो जाती है। फिर सपने में भी इच्छा नहीं उठती।

नहीं तो जो-जो तुम दिन में दबाओगे, रात सपने में उठेगा। फ्रायड ने तो बहुत बाद में कहा कि सपना दिन में दबायी गयी बातों का ही प्रतिफलन है, धनी धरमदास ने तो बहुत पहले कहा—'सपनेहुं इच्छा ना उठे।'

तुमने देखा नहीं? जिस दिन उपवास करो उस दिन रात भोजन ही भोजन चलता है। राजमहल में निमंत्रण हो जाता है। कर रहे हैं भोजन, कर रहे हैं।

तुम जैनियों से पूछो, पर्युर्षण में क्या करते हैं। दिन भर उपवास करते हैं, रात भर भोजन करते हैं। सपने में योजना बनाते हैं कि किसी तरह ये दस दिन तो बीत... बीत ही जायेंगे। एक तो बीत गया, नौ बचे। दो बीत गये, आठ बचे। बीते जा रहे हैं।

दिन भर मंदिर में जाकर बैठे रहते हैं कि किसी तरह उलझे रहें पूजा-पाठ में ताकि भोजन की याद न आये। मगर रात में क्या करोगे?

महात्मा गांधी जिंदगी भर ब्रह्मचर्य की चेष्टा में लगे रहे और ब्रह्मचर्य नहीं सम्हला, नहीं सधा सो नहीं सधा। कारण? संघर्ष, जबरदस्ती। पर आदमी ईमानदार थे तो झूठ नहीं कहा। आखिरी उम्र तक कहा कि सपने में अभी भी कामवासना आती है। मगर सपने में आती है तो उसका मतलब साफ है कि जागृत में दबा ली। जो जगे में दबाया वह सपने में आयेगा क्योंकि सपने में तुम्हारा जो दबाव था वह छूट जाता है। तुम्हारा नियंत्रण खुल जाता है। होश नहीं रहता। उठ आती है बात।

इसलिए किसी सज्जन की अगर सज्जनता देखनी हो तो जब वह शराब पिये हो, तब देखो। तब असली आदमी होता है। अक्सर शराब पिये आदमी असली होता है। जब वह होश-हाश में होता है तब नकली होता है। उसका तुम भरोसा मत करना, जब वह होश में चला जा रहा है सब टाइ इत्यादि बांधकर और बिलकुल नियमबद्ध; तब उसका भरोसा मत करना, वह जो कह रहा है। लेकिन जब शराब पीकर कुछ कहे तो उसको तो नोट कर रखना।

गुरजिएफ तो नियम से यह करता था कि जब उसके पास नये शिष्य आते तो उनको इतनी शराब पिला देता कि वे बेहोश हो जाते और अंट-संट बकने लगते। वह अंट-संट असली चीज है। वह सब नोट करवा लेता। वह कहता यह इनके भीतर दबा हुआ पड़ा है। इसी से मुझे लड़ना होगा।

फ्रायड की पूरी मनोविश्लेषण की प्रक्रिया इतनी ही है कि तुम्हारे सपनों का पता चल जाए बस, फिर सब पता चल गया। अब यह बड़े मजे की बात है। तुम जागृत में इतने बेईमान हो कि तुम्हारी असलियत जानने के लिये सपने में जाना पड़ता है। सपना झूठा है, उसमें तुम्हारी असलियत मिलती है। जागरण सच्चा है, उसमें तुम इतने झूठे हो गये हो कि तुम्हें सीधे-सीधे नहीं पकड़ा जा सकता।

तो वर्षों लग जाते हैं। पड़ा है मरीज फ्रायड के कोच पर और अपने सपने सुना रहा है। सुनाते-सुनाते कुछ सूत्र पकड़ में आने मनोवैज्ञानिक को होते हैं कि मामला कहां है, अड़चन कहां है।

अब जैसे एक आदमी ऐसे तो साधु है और कहता है, मुझे कोई पद इत्यादि की फिकर नहीं। लेकिन रात सपना देखता है हमेशा आकाश में उड़ने का। ऊपर से ऊपर उठा जा रहा है, ऊपर से ऊपर उठा जा रहा है। अब यह सपना सिर्फ प्रतीक है। दिन में दिल्ली नहीं गये, रात चले। उड़े! राष्ट्रपति हो गये। आकाश में ऊंचे उठते जा रहे हैं।

तुम सपने को झुठला न सकोगे। दिन में तो तुम बड़े अपनी पत्नी के प्रति

निष्ठा रखते हो लेकिन रात में सपने में ले भागे पड़ोसी की औरत को। वह असलियत हैं। इसलिए पत्नियां इसमें ज्यादा भरोसा रखती हैं। रात को देखती रहती हैं, सुनती रहती हैं क्या बोल रहे, क्या बक रहे। जरा बुदबुदाते कि पत्नी जगकर बैठ जाती, क्या बोल रहे! किसका नाम ले रहे?

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन.,.रात में उसकी पत्नी ने पकड़ लिया उसको; 'कमला ...कमला...कमला' कर रहा था। हिलाया कि क्या मामला है? मगर आदमी हुशियार। उसने कहा, कमला एक घोड़ी का नाम है। उस पर मैं दांव लगाने की सोच रहा हूं!

स्त्रियां जानती हैं कि तुम्हारे सपने में अगर तुम मुस्कुरा रहे हो तो जरूर किसी स्त्री से बात कर रहे हो। स्त्रियां पूछती हैं कि रात मुस्कुरा क्यों रहे थे? मतलब क्या? क्योंकि अपनी पत्नी के साथ तो कोई मुस्कुराता ही नहीं। तुम देखना, एक जोड़ा चला जा रहा है, अगर बिलकुल उदास चला जा रहा है, कुटा-पिटा दिख रहा है तो समझ लेना कि पति-पत्नी हैं। अगर पुरुष प्रसन्न दिख रहा है और उछलता दिख रहा है तो समझ लेना किसी और की स्त्री के साथ जा रहा है।

मैं एक दफा ट्रेन में सवार था। मेरे कंपार्टमेंट में एक महिला को एक सज्जन बिठा गये। फिर वे हर स्टेशन पर आते। मैंने महिला से पूछा कि कौन हैं? उन्होंने कहा, मेरे पति हैं। 'शादी को कितने दिन हुए?' क्योंकि महिला कोई चालीस साल की थी। उन्होंने कहा, सात साल-आठ साल हो गये। मैंने कहा, मुझसे झूठ मत बोलो। सात-आठ साल के बाद यह हालत नहीं रहती।

हर स्टेशन पर कभी भजिया ले आयें, कभी रसगुल्ला ले आयें, कभी आईस्क्रीम ले आयें—यह हालत पति की नहीं...। अगर ये तुम्हारे सात साल पुराने पति हैं तो जो एक दफे छूटकर यहां से भागते तो फिर दूसरे स्टेशन पर भी मिलते कि नहीं, यह भी पक्का नहीं है। आखिरी उतरनेवाले स्टेशन पर मिलते शायद, या न मिलते। कोई कुछ नहीं कह सकता।

उसने कहा, आप ठीक पहचाने। वे मेरे पति नहीं हैं, मेरे प्रेमी हैं। मैंने कहा, तब बिलकुल ठीक है। तब चल सकता है।

स्त्रियां जानती हैं कि अगर सपने में तुम मुस्कुरा रहे हो तो कुछ गड़बड़ चल रही है। तुम किसी और स्त्री के साथ बात में लगे हो।

तुम्हारे सपने तुम्हारे दिन भर के दबाये हुए रोग हैं। इसलिए महाज्ञानी को सपने नहीं आते। आने नहीं चाहिए। वह लक्षण है। वह समाधि का लक्षण है—जब सपने नहीं आते। कुछ दबाया ही नहीं है तो सपने कैसे आयेंगे? सपना तो दबाने से आता है। जितने ज्यादा सपने उतने तुम रुग्णचित्त हो; उतने तुम बीमार हो। जब सपना आता ही नहीं, उसका अर्थ है, तुम अपने जीवन को जागकर जी रहे हो, कुछ

दबा नहीं रहे हो।

धनी धरमदास कहते हैं,

सपनेहुं इच्छा ना उठै, गुरु आन तुम्हारी हो

तुम्हारी कसम खाकर कहता हूं कि स्वर्ग जाने की इच्छा सपने में भी नहीं है। वैकुण्ठ पाने की इच्छा सपने में भी नहीं है।

धरमदास की बीनती साहेब सुनि लीजै हो
दरसन देहु पट खोलिके, आपन करि लीजै हो

वे कहते हैं कि दरवाजा खोल दो मेरे लिये। गुरु, मेरे लिये गुरुद्वारा हो जाओ। दरवाजा खोल दो मेरे लिये। परदा हटा लो मेरे लिये। मेरी और कोई मांग नहीं है। मैं सिर्फ इतना ही देखना चाहता हूं कि तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह क्या है। और सब तरफ उसकी झलकें मिली हैं। मैं जानता हूं कि तुम्हारे भीतर मुझे घाट मिल जायेगा।

दरसन देहु पट खोलिके, आपन करि लीजै हो

बस, इतनी ही इच्छा है कि अपना पट खोल दो, मंदिर के द्वार खोल दो और मुझे अपने में समा लो।

और जितनी हसरतें पैदा हुई थीं, मिट गयीं
एक मिट जाने की हसरत अब हमारे दिल में है

बस, यही भक्ति का सार-सूत्र है।

और जितनी हसरतें पैदा हुई थीं, मिट गयीं
एक मिट जाने की हसरत अब हमारे दिल में है

मिटो! मिटोगे तो हो जाओगे। खो जाओ तो अपने को पा लोगे। और जब मिटकर पाओगे तब चकित हो जाओगे कि जिसे दुर्भाग्य समझा था वह सौभाग्य था।

मुझे तो तुमने मिटाने की कोशिशें की थीं
मेरा नसीब कि मुझको तुम्हारे जुल्म फले

पहले तो जब गुरु तुम्हें तोड़ेगा तो ऐसा ही लगेगा कि बड़ा कठोर है; जुल्म कर रहा है। लेकिन जिस पर कर रहा है वह धन्यभागी है।

मुझे तो तुमने मिटाने की कोशिशें की थीं
मेरा नसीब कि मुझको तुम्हारे जुल्म फले

यह तो अंत में पता चलता है कि गुरु की करुणा थी कि वह कठोर था। गुरु तुम्हारे शीश को काट ही देगा। तुम्हारे अहंकार को टुकड़े-टुकड़े कर देगा, छिन्न-भिन्न कर देगा। तुम्हारी बुद्धिमत्ता तुमसे छीन लेगा। तुम्हारे सिद्धांत, तुम्हारे शास्त्र सब राख कर देगा। तुम्हारे मन को समाप्त करना है। तुम मिटो तो ही परमात्मा

के लिये आने का मार्ग खुल सकता है।

लेकिन भक्त वही है जो जिये तो उसकी चाह करता है, मरे तो उसकी चाह करता है।

मुस्ताके-दीद वादे-फना भी दूं ऐ सबा
ले चल उड़ाके खाक मेरी कूए-यार में

मिट भी जाता है, मर भी जाता है तो उसकी एक ही प्रार्थना होती है कि मेरी जो खाक बचे, राख बचे, वह मेरे प्यारे की गली में मुझे उड़ाकर ले चलना।

मुस्ताके-दीद वादे-फना भी दूं ऐ सबा

उस प्यारे को देखने की आकांक्षा ऐसी है -- मुस्ताके-दीद। वादे-फना -- मिटकर भी। दूं ऐ सबा--ए हवाओं, इतनी कृपा करना।

ले चल उड़ाके खाक मेरी कूए-यार में

उस प्यारे की गली में मेरी खाक को भी उड़ाकर ले चलना, जब मैं मिट जाऊं। जीता है भक्त तो परमात्मा के लिये, मरता है तो परमात्मा के लिये। जीवन उसका, मृत्यु उसकी। भक्ति का मार्ग सुगम है और दुर्गम भी। सुगम--क्योंकि प्रेम सरल है, स्वाभाविक घटना है। और दुर्गम--क्योंकि अहंकार को काटना बड़ा कठिन है।

इस जगत में सबसे बड़ी कठिनाई वही है -- मैं को कैसे गंवा दें? अपने को मिटाने की हसरत कैसे करें! कैसे आकांक्षा करें मिटने की!

संसार है होने की आकांक्षा। मैं हो जाऊं, बड़ा हो जाऊं, महत्त्वपूर्ण हो जाऊं, प्रतिष्ठित हो जाऊं, यशस्वी हो जाऊं, धनी हो जाऊं। संसार है होने की आकांक्षाओं का अनेक-अनेक रूप। जिस दिन सब होने में तुम पाते हो कुछ होता नहीं, व्यर्थ पानी पर लकीरें खींचते हो, खींच भी नहीं पाते कि मिट जाती हैं, उस दिन तुम कहते हो, हो-होकर देख लिया और नहीं हो पाया, अब न होकर देखूं। अब एक ही बात और बची है कि न होकर देखूं। जिस दिन तुम्हारे भीतर यह भाव उठा, उसी दिन तुम परमात्मा के करीब आने शुरू हो गये।

धन्यभागी हैं वे जिनके भीतर मिटने का भाव, मिटने की आकांक्षा पैदा हो जाती है।

आज इतना ही।

प्रश्न-सार

- क्या हम वासना करने और नहीं करने के लिये स्वतंत्र हैं?
- कबीर और धरमदास को लाल रंग पसंद था, मोहम्मद को हरा और नानक को नीला रंग पसंद था। कृपा कर इसका रहस्य समझाएं।
- कबीर और धरमदास जैसे परम भक्त भी रोने-धोने के गीत लिखें, यह समझ में नहीं आता।
- दस साल से शराब पीना, धूम्रपान, जुआ खेलना, आदि व्यसन जुड़े थे। संन्यास लेते ही सब तिरोहित हो गये। अब तो बिना पिये नशा चढ़ा रहता है।

प्रवचन : ८
दिनांक : ७।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना।
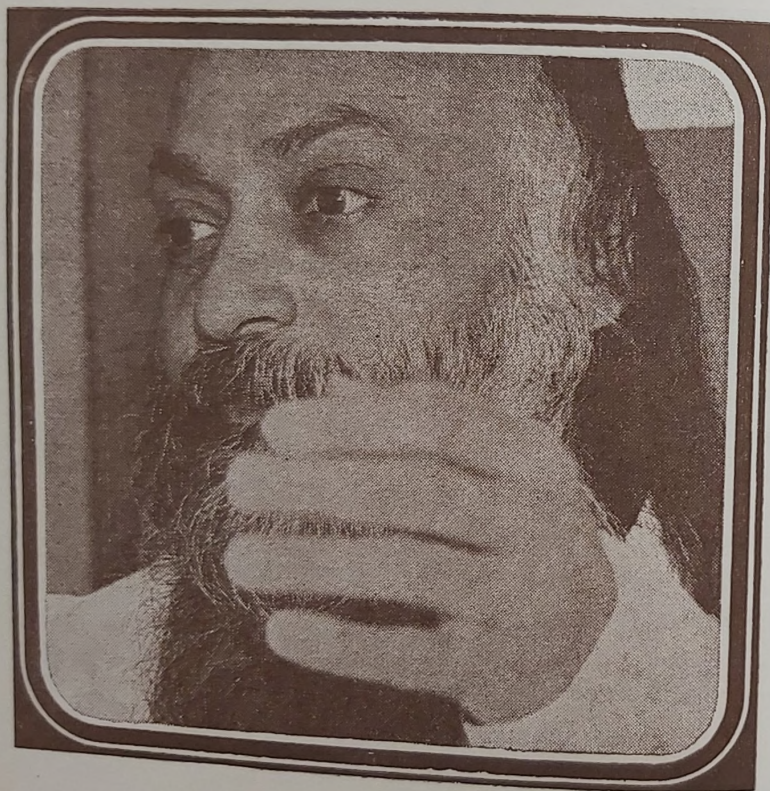
परमात्मा सबरंग है

पहला प्रश्न : क्या हम वासना करने और नहीं करने के लिये स्वतंत्र हैं?

यह प्रश्न थोड़ा जटिल है और मनुष्य की जीवन-प्रक्रिया में उतरे बिना समझ में न आ सकेगा। जब तक मैं-भाव है तब तक कोई स्वतंत्रता नहीं है। तब तक 'डोरा साहेब हाथ।' जब तक अहंकार है तब तक कोई स्वतंत्रता नहीं है। और मजा यह है कि अहंकार ही स्वतंत्र होना चाहता है। और अहंकार स्वतंत्र नहीं हो सकता। अहंकार अज्ञान है, अज्ञान में कहां स्वतंत्रता! अहंकार निद्रा है, निद्रा में कहां स्वतंत्रता! अहंकार मूर्च्छा है, मूर्च्छा में कहां स्वतंत्रता!

लेकिन मनुष्य अहंकार से मुक्त हो सकता है। और अहंकार से मुक्त होते ही स्वतंत्रता उपलब्ध हो जाती है। स्वतंत्र तब कोई नहीं होता लेकिन स्वतंत्रता होती है। यह जटिलता है, यह पहेली है। जब तक स्वतंत्र होने के लिये कोई है तब तक स्वतंत्रता नहीं; और जब स्वतंत्र होने के लिये कोई भी न बचा तब स्वतंत्रता। उन्हीं को मिलती है स्वतंत्रता, जो स्वतंत्र होना ही नहीं चाहते; जो प्रभु के चरणों में अपने को सब भांति समर्पित कर देते हैं।

यह सवाल भी कि मैं स्वतंत्र रहूं, एक अर्थ में प्रभु से संघर्ष है। इसमें विरोध है। इसमें लड़ाई है। मैं स्वतंत्र रहूं इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा का बस मुझ पर न हो, मेरा बस मुझ पर हो। मैं जो चाहूं वह हो। मैं जैसा चाहूं वैसा हो। उसकी मर्जी मेरी मर्जी नहीं। और तब तुम परतंत्र हो। क्योंकि उसकी मर्जी ही मर्जी है। तब तुम्हें जगह-जगह परतंत्रता का अनुभव होगा। जगह-जगह तुम दीवाल से टकराओगे। और ध्यान रखना, परमात्मा तुम्हारे लिये दीवाल नहीं बना था टकराने के लिये। उसने सब जगह द्वार बनाये हैं। खुला आकाश है उसका। लेकिन तुम्हारा अहंकार झंझट खड़ी कर देता है। तुम्हारा अहंकार दीवाल निर्मित कर देता है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारी आंख पर पर्दा हो जाता है। और अहंकार स्वतंत्र होना चाहता है। और अहंकार ही है जो स्वतंत्र नहीं होने देता। इस जटिलता को समझाओगे तो इस प्रश्न के सुलझाव का रास्ता बनेगा।

अहंकार तुम्हारी गुलामी है। मैं ही तुम्हारा बंधन है। और किसने तुम्हें बांधा है? जैसे ही यह मैं मिटा, फिर स्वतंत्रता ही स्वतंत्रता है। तुम नहीं हो और स्वतंत्रता है। उसी स्वतंत्रता का नाम परमात्मा है।

परमात्मा स्वतंत्र है। परमात्मा स्वतंत्रता है। उसके साथ एक होकर तुम भी स्वतंत्र हो, तुम भी स्वतंत्रता हो। उससे भिन्न रहकर, उसके विरोध में रहकर, उससे संघर्ष करते हुए तुम्हारी कोई स्वतंत्रता नहीं है। तब कभी-कभी ऐसा लगेगा कि तुम स्वतंत्र हो। वह भ्रांति है। वह भ्रांति इसलिए पैदा होती है कि कभी-कभी आकस्मिक रूप से तुम्हारी मर्जी उसकी मर्जी से मेल खा जाती है। तब तुम्हें लगता है, मैं स्वतंत्र हूं। लेकिन अधिक बार तुम्हें लगेगा कि मैं स्वतंत्र नहीं हूं क्योंकि तुम्हारी मर्जी उसकी मर्जी से मेल नहीं खाती। जब मेल खा जाती है तो तुम जीत जाते हो। तुम उसे अपनी जीत समझते हो। वह जीत परमात्मा की जीत है। लेकिन जब तुम्हारी मर्जी मेल नहीं खाती तब तुम्हें अपनी हार अनुभव होती है। वह हार तुम्हारी हार है। सब जीत परमात्मा की, सब हार तुम्हारी--ऐसा गणित है। जब भी हारो, समझना अपने कारण हारा हूं। और जब भी जीतो, समझना उसके कारण जीता हूं।

ऐसा समझो कि नदी जिस धारा में बह रही है, जिस दिशा में बह रही है, तुम भी उसके साथ हो लिये तो जीत ही जीत है। तुम सोचोगे कि आह, नदी मेरे साथ बह रही है। तुम नदी के साथ बह रहे हो। लेकिन तुम सोच सकते हो कि नदी मेरे साथ बह रही है। और तुमने अगर नदी के धारे के खिलाफ लड़ना शुरू किया, उल्टी धार में बहना शुरू किया, ऊपर की तरफ जाना चाहा, तो हारोगे। और तब तुम्हें लगेगा, नदी मेरे खिलाफ है। नदी मुझे हराने की कोशिश कर रही है। नदी मेरी दुश्मन है।

हवा का जिस तरफ रुख होता है, सूखा पत्ता उसी तरफ उड़ चलता है। जीत ही जीत है। लाओत्सु ने कहा है, एक वृक्ष के नीचे बैठा एक सूखे पत्ते को गिरते देखता था। उसके गिरने में ही मुझे जीवन का राज मिला। जब हवा के झोंके ने पत्ते को गिराया तो पत्ते ने 'नहीं' नहीं कहा। पत्ता गिर गया। पत्ता राजी था। जरा नानुच न की, जरा इन्कार न किया, जरा नकार न किया। इतना भी न कहा कि यह कैसा न्याय है? इतने समय तक मैं इस वृक्ष से जुड़ा रहा, तुम मेरी रसधार से मुझे तोड़े देते हो? मेरी जड़ों से मुझे अलग किये देते हो? मेरे जीवन को नष्ट किये देते हो? नहीं, इतनी शिकायत भी न थी। बड़े प्रार्थनापूर्ण ढंग से पत्ता छूट गया।

हवा पूरब ले चली तो पत्ता पूरब चला। और हवा ने रुख बदल लिया बीच में और पश्चिम की तरफ चलने लगी तो पत्ता पश्चिम की तरफ चला। तब पत्ते ने यह नहीं कहा कि यह कैसा विरोधाभास है! कभी पूरब, कभी पश्चिम, कभी इधर,

कभी उधर। संगति कहां है? इस व्यवहार में असंगति है। मैं असंगति से राजी नहीं हो सकता। पूरब चलना हो तो पूरब चलो, पश्चिम चलना हो तो पश्चिम चलो। लेकिन यह क्या, कभी पूरब कभी पश्चिम?

नहीं, पत्ते ने कुछ भी न कहा। हवा पूरब ले गयी तो पूरब गया, हवा पश्चिम ले चली तो पश्चिम गया। पत्ता हवा के साथ एक हो गया। उसने दुई न रखी, भेद न रखा। हवा ने उठाया तो पत्ता आकाश में उठा। और हवा ने गिरा दिया तो पत्ता पृथ्वी पर विश्राम करने लगा। न तो आकाश में उठकर उसने अहंकार किया कि देखो मुझे--मेरे पद को, मेरी प्रतिष्ठा को, मेरी ऊंचाई को, मेरी बुलंदी को। और जब नीचे गिरा दिया तब वह रोया भी नहीं; तब वह बिसूरा भी नहीं; तब क्षण भर को उसने हीनता और दीनता भी अंगीकार नहीं की। मस्त था हवाओं में, मस्त था जमीन पर।

लाओत्सु उठ आया वृक्ष के नीचे से और वही उसके जीवन का क्रांति का क्षण हो गया। उसके बाद वह पत्ता हो गया सूखा। फिर कोई हार नहीं रही। फिर कैसी हार?

जीसस को सूली लगी। सूली लगने के एक क्षण पहले जीसस के मुंह से एक जोर से आवाज निकल गयी। कहा आकाश की तरफ देखकर कि हे प्रभु, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? शिकायत हो गयी। इसका मतलब यही हुआ, जीसस कुछ और देखना चाहते थे और दिखाया कुछ और जा रहा है। जीसस पूरब जाना चाहते थे और हवाएं पश्चिम की तरफ जाने लगीं। जीसस सोचते थे, चमत्कार होगा। प्रभु उतरेगा और मुझे बचाएगा। कुछ इस तरह की बात रही होगी। लेकिन सूली लगी जा रही है, कोई हाथ आकाश से उतरे नहीं। उन हजार हाथोंवाले ईश्वर का एक हाथ भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता। आकाश में कोई ढंग भी नहीं मालूम पड़ते कि कुछ होनेवाला है। सब चुपचाप घटा जा रहा है। यह मौत घटी जा रही है, यह सूली लगी जा रही है। परमात्मा का प्रसाद कहीं से आता नहीं मालूम पड़ता।

तुम भी चीखे होते। जीसस को क्षमा करना। उस चीख में जीसस की मनुष्यता अपने पूरे रूप में प्रगट हुई है। कौन होगा जो नहीं चीखता? जिसने सदा भरोसा किया परमात्मा पर और सोचा कि सब ठीक होगा। जो होगा ठीक ही होगा। आज आखिरी कसौटी पर खड़ा है और परमात्मा का कहीं कोई पता नहीं। कहीं पगध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, वह आता कहीं दिखाई नहीं पड़ता। यह विषाद की घड़ी, यह अंधकार की घड़ी-- उसने दीया भी नहीं जलाया है, उसकी तरफ से कोई एक संदेश भी नहीं उतरा। कोई इलहाम भी न हुआ। उसने जीसस के हृदय में इतना भी न कहा, घबड़ा मत। जैसे परमात्मा है ही नहीं, और आकाश खाली है। जैसे

अब तक की सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ गयीं। जैसे अब तक की सारी पुकार का कोई प्रयोजन नहीं था।

स्वाभाविक जीसस चिल्ला उठे आकाश की तरफ देखकर -- हे प्रभु, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? क्या तूने मुझे त्याग दिया? क्या तूने मुझे बिसार दिया? मुझे तेरा प्रसाद नहीं मिलेगा? यहां जीसस की मनुष्यता प्रगट हुई। लेकिन तत्क्षण जीसस की समझ में भी आ गयी बात कि इसमें शिकायत हो गयी है। प्रार्थना मेरी खंडित हो गयी है। जहां शिकायत है वहां प्रार्थना की मृत्यु है। प्रार्थना शिकायत जानती ही नहीं। प्रार्थना को शिकवा से पहचान ही नहीं है। प्रार्थना तो परम राजीपन है। जीवन हो तो जीवन और मृत्यु हो तो मृत्यु। और सिंहासन हो तो, और सूली हो तो। यह बात प्रार्थना जानती ही नहीं कि प्रभु, यह तू मुझे यह क्या दिखा रहा है?

जीसस को दिख गयी बात। गहन प्रज्ञा-पुरुष थे। आंखें उनकी साफ थीं। एक धुएं की लकीर खिंची थी, एक छोटी-सी बदली आ गयी थी और सूरज क्षण भर छिप गया था। लेकिन बदली गुजर गयी और सूरज फिर प्रकाशित हो उठा। और जीसस मुस्कुराए और उन्होंने आकाश की तरफ आंखें उठाकर कहा, 'नहीं-नहीं, मेरी मत सुनना। जो तेरी मर्जी हो, पूरी हो। लेट दाय किंगडम कम, लेट दाय विल बी डन। तू उतर, तेरा राज्य उतरे। तेरी इच्छा पूरी हो।'

और इसी घड़ी को मैं मानता हूं कि जीसस क्राइस्ट बने। इस एक क्षण में मनुष्य विदा हो गया, ईश्वरत्व प्रगट हुआ। अब तक जीसस मनुष्य थे, महामानव थे। इस घड़ी में छलांग लग गयी। बस इस एक क्षण में संक्रमण हुआ। इसी क्षण क्राइस्ट का जन्म हुआ। क्राइस्ट यानी बुद्ध, क्राइस्ट यानी कृष्ण।

यह जानकर तुम हैरान होगे कि क्राइस्ट शब्द कृष्ण शब्द का ही रूपांतरण है। कृष्ण से ही क्रष्टो बना और क्रष्टो से क्राइस्ट। बंगाली अभी भी इस तरह के नाम रखते हैं। जिनका नाम कृष्ण रखते हैं उनको क्रष्टो कहते हैं। बंगाली में अभी भी क्रष्टो एक रूप है कृष्ण का।

यह परम घड़ी एक क्षण के अंतराल में घट गयी। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, जब जीसस ने कहा, 'हे प्रभु, यह तूने मुझे क्या दिखाया? क्या तूने मुझे त्याग दिया?' तब जरूर उन्हें लगी होगी स्थिति साफ कि मैं परतंत्र हूं, विवश हूं। अभी 'मैं' बाकी था। थोड़ा-सा बाकी था, जरा-सा बाकी था। एक धूमिल-सी रेखा बाकी थी। इस क्षण में जीसस ने अनुभव किया, मैं परतंत्र, इसीलिए शिकायत। लेकिन जैसे ही कहा, 'तेरी मर्जी पूरी हो,' वह छोटी-सी रेखा भी खो गयी। आखिरी दाग मिट गया। और तब स्वतंत्रता है।

ख्याल रखना, स्वतंत्र होने को कोई नहीं बचता तब स्वतंत्रता है। इसलिए बुद्ध का वचन बड़ा महत्वपूर्ण है। बुद्ध ने कहा है, मैं को नहीं मुक्त होना है, मैं से मुक्त होना है। मुक्ति में मैं नहीं बचेगा, तभी मुक्ति है। जब तक मैं है तब तक मुक्ति कहां? इसलिए बुद्ध ने परम अवस्था को अनत्ता कहा। अत्ता नहीं, आत्मा नहीं कहा, अनात्मा कहा। क्योंकि आत्मा में मैं-भाव है। मैं हूं कुछ, न कुछ किसी न किसी रूप में।

तुमने पूछा है, 'क्या हम वासना करने और नहीं करने के लिये स्वतंत्र हैं?

तुम जब तक हो तब तक परतंत्र। तुम जब नहीं हो तब स्वतंत्र। तुम परतंत्रता हो। तुम्हारा अभाव स्वतंत्रता है। अभी तो तुम--जो होता है, होता है। तुम कर क्या पाते हो?

लोग इस तरह की बातें करते हैं कि ऐसा मत करो, वैसा करो। मगर यह होता कहां है? तुम सोचते हो, शराबी नहीं जानता है कि शराब बुरी है? तुमसे ज्यादा भली तरह जानता है। तुमने तो पी ही नहीं। तो तुम्हें बुराई का पता क्या? किताबों में पढ़ ली होगी। साधु-महात्माओं से सुन ली होगी, उन्होंने भी नहीं पी है। जिन्होंने पी ही नहीं उन्हें बुराई का पता क्या? तुम्हारी बातचीत तो सिर्फ बातचीत है। शराबी अनुभव से जानता है कि बुरी है।

शराबी से भूलकर मत कहना कि शराब बुरी है, छोड़ दो। यह तो वह भी अपने से हजारों बार कह चुका है। छूटती नहीं है। बुरी है, जानता है, रोज-रोज जानता है। रोज-रोज यह पीड़ा मन में उठती है और रोज-रोज छोड़ना भी चाहता है। यह भी मत सोचना कि कोई शराबी छोड़ना नहीं चाहता है। सभी छोड़ना चाहते हैं। उस नरक से सभी मुक्त होना चाहते हैं। सबसे बड़ी पीड़ा तो यह है कि छोड़ने में मैं इतना असमर्थ हूं, यही परतंत्रता का भाव बड़ी पीड़ा देता है। लेकिन नहीं छूटती। जब तक तुम हो तब तक नहीं छूटती।

सिगारेट नहीं छूटती। छोटी-छोटी आदतें हैं वे नहीं छूटतीं। शराब तो बड़ी आदत है। और शरीर के रसायन में प्रविष्ट हो जाती है। इसलिए छोड़ना मुश्किल होने लगता है। लेकिन छोटी-छोटी आदतें हैं वे नहीं छूटतीं। क्रोध है, वह नहीं छूटता। लोभ है, वह नहीं छूटता।

तुम्हारा किसी से प्रेम हो गया। तुम कहते हो, मेरा प्रेम हो गया या मैंने प्रेम किया। मगर तुमने क्या किया? हो गया। एक आकस्मिक घटना है। 'डोरा साहेब हाथ!' तुम तो कठपुतली हो। कोई छिपा हुआ हाथ तुम्हें नचा रहा है।

मैं कल एक गीत पढ़ रहा था।

अब न इन ऊंचे मकानों में कदम रक्खूंगा

मैंने इक बार यह पहले भी कसम खायी थी
अपनी नादार मुहब्बत की शिकस्तों के तुफैल
जिंदगी पहले भी शर्माई थी, झुंझलाई थी
और ये अहद किया कि ब-ई-हाले-तबाह
अब कभी प्यार भरे गीत नहीं गाऊंगा
किसी चिलमन ने पुकारा भी तो बढ़ जाऊंगा
कोई दरवाजा खुला भी तो पलट आऊंगा
फिर तेरे कांपते होंठों की फुसकार हंसी
जाल बुनने लगी, बुनती रही, बुनती ही रही
मैं खिंचा तुझसे मगर तू मेरी राहों के लिये
फूल चुनती रही, चुनती रही, चुनती ही रही
बर्फ बरसाई मेरे जहन्नो-तसुव्वर ने मगर
दिल में एक शोला-ए-बेनाम-सा लहरा ही गया
तेरी चुपचाप निगाहों को सुलगते पाकर
मेरी बेजार तबियत को भी प्यार आ ही गया
अपनी बदली हुई नजरों के तकाजे न छुपा
मैं इस अंदाज का मफहूम समझ सकता हूं
तेरी जरकार दरीचों की बुलंदों की कसम
अपने अकदाम का मकसूम समझ सकता हूं
अब न इन ऊंचे मकानों में कदम रक्खूंगा
मैंने एक बार यह पहले भी कसम खायी थी
इसी सरमया-ओ-इफलास के दोराहे पर
जिंदगी पहले भी शर्माई थी, झुंझलाई थी

लेकिन कसमें काम कहां आतीं? तुम्हारे निर्णय काम कहां आते? तुम्हारे निर्णय किसी कीमत के नहीं हैं। हां, कभी-कभी लगता है काम आ जाते हैं––अगर उसका परम निर्णय से साथ बैठ जाता है। वह आकस्मिक बात है, वह संयोग की बात है। जिस तरफ परमात्मा जा रहा था उसी तरफ तुम भी कभी चल पड़ते हो तो जीत हो जाती है। और जब भी तुम उसके विपरीत चल पड़ते हो, हार हो जाती है।

हार यानी परमात्मा के विपरीत होना। जीत यानी उसके साथ होना। सब जीत उसके साथ है, सब हार अहंकार की है। इसलिए जीते जगत में वे, जिन्होंने अहंकार छोड़ा। हारे वे, जिन्होंने अहंकार को बुलंद किया, और बुलंद किया, और

बड़ा किया, और बड़ा किया।

खुदी में जिये तो परतंत्र, खुदा में जिये तो स्वतंत्रता।

जैसे तुम हो, वैसे तो जो हो रहा है वही हो सकता है। और तुम्हारे तथाकथित धर्मगरु तुम्हें यही सिखाते हैं। शराब पीते हो, शराब छोड़ो। झूठ बोलते हो, झूठ मत बोलो। लोभ करते हो, लोभ मत करो। वे तुम्हें यही भ्रम देते हैं कि तुम्हारे हाथ में है बात। बात ऐसी नहीं है। तुम तो सिर्फ एक चीज मिटा दो––अपने को मिटा दो, बाकी सब बदलाहट अपने से हो जायेगी। न तुम लोभ की फिकर करो और न तुम बेईमानी की फिकर करो और न तुम चोरी की फिकर करो, न तुम झूठ की फिकर करो। ये तुम्हारे अहंकार की छायाएं है। तुम अहंकार को मिटा दो, ये छायाएं अपने से मिट जायेंगी। लेकिन तुम छायाओं से लड़ते हो। मूल को सम्हाले रखते हो, पत्तों को काटते रहते हो। फिर नये पत्ते ऊग आते हैं।

एक लोमड़ी सुबह-सुबह अपने मांद से बाहर निकली। सूरज ऊगता था, और लोमड़ी की बड़ी छाया बनी। बड़ी छाया! सुबह-सुबह का सूरज, और लोमड़ी ने अपनी छाया की तरफ देखा और कहा कि आज तो नाश्ते में कम से कम एक ऊंट मिलना चाहिए। इतनी बड़ी छाया थी। फिर खोजती रही ऊंट को। मिल भी जाता तो क्या करती? लोमड़ी ऊंट को नाश्ता नहीं बना सकती। ऊंट मिला भी नहीं। दुपहर हो गयी, सूरज सिर पर आ गया। भूख भी बढ़ रही है। नाश्ता भी हाथ नहीं लगा है, भोजन तो अभी बहुत दूर। फिर से एक बार अपनी छाया को देखा। सूरज ऊपर है, छाया सिकुड़कर बहुत छोटी हो गयी। उसने छाया को देखकर कहा कि अब तो अगर एक चींटी भी मिल जाए तो काम चल जायेगा।

तुम्हारे अहंकार की कितनी बड़ी छाया होती है, इस पर निर्भर करता है तुम्हारा जीवन। कोई है जो कहता है, सारी दुनिया मिले तो तृप्ति होगी। उसका अहंकार बड़ी छाया बना रहा है। कोई कहता है, थोड़ा-बहुत भी मिल जायेगा तो भी चल जाए। उसका अहंकार थोड़ी छोटी छाया बना रहा है। मगर दोनों के अहंकार हैं–– सुबह की छाया, दुपहर की छाया। छाया छाया है।

जिनको तुम सांसारिक कहते हो उनके अहंकार सुबह की छायाएं हैं, और जिनको तुमने महात्मा समझ रखा है उनके अहंकार दुपहर की छायाएं हैं। और कुछ फर्क नहीं है। जिसको मैं संत कहता हूं उसकी छाया ही खो गयी। उसी को संत कहता हूं। अब वह जानता है कि मैं हूं ही नहीं। सुबह ऊंट की जरूरत थी, दुपहर चींटी से काम चल जाता है। जब मैं हूं ही नहीं तो बिना नाश्ते के काम चल जायेगा। अब कुछ करने को नहीं बचा। अब कुछ खोजने को नहीं रहा।

और अधिक लोग छायाओं से लड़कर ही टूट जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। तुम

अपनी वासनाओं से मत लड़ो। फिर मैं तुम्हें क्या कह रहा हूं, तुम क्या करो? तुम एक ही काम करो, तुम अपनी वासनाओं के प्रति जागो, होश से भरो। जो जीसस ने किया आखिरी घड़ी में। देखी अपनी शिकायत, गौर से देखी और बात समझ में आ गयी। इतनी बात समझ में आ गयी कि मैंने अपने को परमात्मा से अलग मान लिया। मैंने अपनी अलग इच्छा रखी। बस, उसी क्षण सब बंधन टूट गये।

तुम अलग-थलग न जियो। तुम उसके साथ जियो। यही धर्म का मौलिक संदेश है--आधारभूत कीमिया, प्रक्रिया, जो व्यक्ति को रूपांतरित करती है। इसलिए मैं तुम्हारी दृष्टि वासना की तरफ नहीं ले जाना चाहता; होश की तरफ ले जाना चाहता हूं। इसका सवाल नहीं कि तुम शराब पीते हो, इसका सवाल नहीं कि तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़े हो, इसका सवाल नहीं कि तुम्हें धन का मोह है। असली सवाल इसका है कि तुम जरा जागने लगो। तुम जो कर रहे हो वही जागकर करने लगो। तुम शराब पीते हो, वही जागकर करने लगो। स्त्री से प्रेम है, वही जागकर करने लगो। धन से मोह है, वही जागकर करने लगे। थोड़ा होश सम्हालो। उसी होश में तुम गलने लगोगे। जैसे सुबह के सूरज के निकलते ही ओस के कण उड़ जाते हैं, ऐसे ही होश का सूरज निकला कि तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी मूर्च्छा, तुम्हारी मूर्च्छा में फैले हुए ओस के कण विदा होने लगते हैं। जैसे सुबह सूरज के ऊगने पर तारे विलीन हो जाते हैं ऐसे ही होश के जागने पर सारी वासनाएं विलीन हो जाती हैं। रात के अंधेरे में खूब चमकती थीं, दिन के उजाले में खोजे से नहीं मिलतीं।

तुम उजाले को जगाओ। उस उजाले को जगाने की एक प्रक्रिया ध्यान है, एक प्रक्रिया भक्ति है। दो तरह से जग सकता है उजाला। या तो जागकर जियो या समर्पित होकर जियो। दोनों हालत में अहंकार मर जाता है। जागनेवाला अपने भीतर खोज-खोजकर पाता है, कोई अहंकार है ही नहीं। और भक्त अपने को समर्पित करके पाता है, भगवान के चरणों में चढ़ाकर पाता है कि मैं नाहक ही परेशान हो रहा था। मैं ऐसी परेशानियों से परेशान हो रहा था जो कि थीं ही नहीं। मैंने झूठ सपने देख रखे थे। सपने भी बहुत डरा देते हैं।

रात सपना देखते हो, सांप दिखाई पड़ जाए सपने में, चीख निकल जाती है। आंख खुलती है तो पता चलता है, सपना था, तब बड़ी हैरानी होती है कि झूठे सपने से असली चीख कैसे निकल गयी? चीख असली, सपना झूठा। सपने में देखते हो, एक पहाड़ तुम्हारी छाती पर गिरा जा रहा है। कंप जाते हो। छाती धड़क जाती है। आंख खुल जाती है, पाते हो न कोई पहाड़ है, न कुछ गिरने को है वहां। हो सकता है अपना ही हाथ छाती पर रखा हो, उसके वजन की वजह से पहाड़ का

ख्याल आया। लेकिन जब था सपना तब बिलकुल ऐसा ही लगा था कि गये, समाप्त हुए, अब बचना मुश्किल है। अभी भी छाती धड़क रही है। जाग गये हो, सपना सपना है यह भी पता चल गया, फिर भी छाती जोर से धड़क रही है। झूठे सपने ने सच्ची छाती धड़का दी।

झूठ भी परिणाम पैदा कर सकता है, जो सच हों। अहंकार सबसे बड़ा झूठ है लेकिन उसके परिणाम बड़े सच हैं। अहंकार नाम के झूठ का परिणाम संसार है। तुम संसार से लड़ रहे हो, वह ऐसे ही है जैसे कोई सपने के सांप से लड़ रहा हो। तुम संसार से लड़ रहे हो, वह ऐसे ही है जैसे कि कोई सपने में पहाड़ को धक्के मार रहा हो कि मेरे ऊपर न गिर जाए। तुम जागो। तुम जरा गौर से अपने जीवन को देखो, निरीक्षण करो।

यह एक मार्ग है--निरीक्षण का, ध्यान का, सम्यक स्मृति का, सुरति का। एक दूसरा मार्ग है हृदय का, कि तुम झुक जाओ किसी चरण में। चरण तो बहाना है, झुकना असली बात है। किसके चरण में झुक गये, राम के कि कृष्ण के कि बुद्ध के, कुछ फर्क नहीं पड़ता। झुक गये! बस उसी झुकने में तुम पाओगे कि मैं गया। मैं अकड़ा रहे तो ही रहता है, खड़ा रहे तो ही रहता है। इसलिए पूरब के सारे धर्मों ने झुकने की प्रक्रियाएं खोजीं।

अभी एक युवक आकर संन्यस्त हुआ, तिब्बती लामाओं के साथ था। तो तिब्बती लामाओं में तो ध्यान की पहली प्रक्रिया यही है कि जितनी बार आश्रम में तुमसे बुजुर्ग संन्यासी मिलें उतनी ही बार साष्टांग जमीन पर लेटकर उनको नमस्कार करो। कभी-कभी यह हो जाता है कि नये साधु को हजार बार दिन में करना पड़ता है। मगर उस प्रक्रिया का बड़ा अपूर्व फल होता है। इतनी बार झुकते-झुकते-झुकते अकड़ टूट जाती है। इसी झुकते-झुकते-झुकते बरफ पिघल जाती है। अहंकार सख्त नहीं रह जाता।

या तो पिघलो या जागो। दोनों हालत में अहंकार को नहीं पाओगे। और जहां अहंकार नहीं है वहीं स्वतंत्रता है। फिर यह सवाल ही नहीं उठता--वासना, नहीं वासना। तुम ही नहीं हो इसलिए निर्णायक होने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। तुम गये कि परमात्मा निर्णायक है। अभी तो तुम्हारा प्रेम, अभी तो तुम्हारे जीवन के संबंध मजबूरियां हैं।

> दूर सुनसान-से साहिल के करीब
> इक जवां पेड़ के पास
> उम्र के दर्द लिये वक्त के मटियाले निशां
> बूढ़ा-सा पाम का इक और भी है पेड़,

खड़ा है,
सैकड़ों सालों की तनहाई के बाद
झुकके कहता है जवां पेड़ से, 'यार,
सर्द सन्नाटा है, तनहाई है
कुछ बात करो'

तुम्हारा प्रेम क्या, तुम्हारा संबंध क्या? यही--कि तनहाई है, सर्द सन्नाटा है, कुछ बात करो। प्रेम के नाम पर तुम अपने अकेलेपन को मिटाने की कोशिश कर रहे हो। किसी तरह किसी चीज में व्यस्त हो जाओ। लोभ के नाम पर भी तुम यही कर रहे हो। बाजार में खो जाओ, भीड़ में डूब जाओ, अपना अकेलापन मिट जाए। और शराब के नाम पर भी तुम यही कर रहे हो। और राजनीति के नाम पर भी तुम यही कर रहे हो। तुम जो भी कर रहे हो उसमें सारी चेष्टा एक ही है--'यार, सर्द सन्नाटा है, तनहाई है, कुछ बात करो।' कुछ उलझाओ मुझे। मुझे व्यस्त करो। अपने साथ रहता हूं तो उदास होने लगता हूं। किसी का संग-साथ कर लूं। कोई मित्र मिल जाए। पत्नी, पति, बच्चे, परिवार--तुम चिंताएं तलाश कर रहे हो।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, हम चिंताओं से मुक्त कैसे हों? और मैं उनसे कहता हूं कि तुम तलाश कर रहे हो, मुक्त होने की बात पूछते हो। सच तो यह है यह प्रश्न तुम्हारा एक नयी चिंता की तलाश है--हम चिंताओं से कैसे मुक्त हों? संसार की चिंताएं काफी नहीं पड़ रही हैं, अब तुम परमात्मा की और मोक्ष की चिंता भी उधार लेना चाहते हो। वह भी कहीं से मिल जाए। बाजार काफी नहीं है, तुम इसमें मंदिर भी बीच में लाना चाहते हो। अखबार काफी नहीं हैं, तुम शास्त्र भी और पकड़ना चाहते हो। धन ही काफी नहीं है, अब तुम ध्यान की भी चिंता करना चाहते हो। इस फर्क को समझना।

दो तरह के लोग ध्यान करने आते हैं: एक तो वे, जो और नयी चिंताएं बढ़ाना चाहते हैं; और एक वे जो अपनी चिंताओं को समझ गये और उनकी जड़ काटना चाहते हैं। इनमें बड़ा फर्क है। इनमें बुनियादी फर्क है। जो अपनी चिंताओं को समझ गया वह एक बात तो समझ जाता है कि मैं अब तक चिंताएं तलाश करता था। नहीं मिलती थीं तो बेचैन होता था।

तुम जरा सोचो, चौबीस घंटे लिये सब सन्नाटा हो जाए तुम्हारे मस्तिष्क में। तुम जी पाओगे? चौबीस घंटे की तो बात दूर, यहां मेरे रोज अनुभव में यह घटना आती है। लोग ध्यान करते हैं, और मांगते हैं कि शांति चाहिए, जब घटती है तो कंप जाते हैं। घबड़ाकर आ जाते हैं कि बहुत भय लग रहा है। जब पहली दफा चित्त में सारे विचार की प्रक्रिया रुक जाती है तो ऐसा लगता है जैसे मौत हो गयी।

क्योंकि वह सदा का शोरगुल एकदम बंद हो गया। हुआ क्या? और बड़ी बेचैनी होती है। ऐसी बेचैनी जो तुमने कभी नहीं जानी थी। हालांकि तुम सदा बेचैन रहे मगर वे बेचैनियां कुछ भी न थीं, बचकानी थीं। अब पहली दफा तुम्हें एक असली बेचैनी का अनुभव होता है। सब तरफ सन्नाटा है, तुम चाहते भी हो कोई विचार चले।

'यार, सर्द सन्नाटा है, तनहाई है,
कुछ बात करो'

अपने मन से कहते हो, कुछ बोलो। ऐसे चुप मत हो जाओ बिलकुल।

लोग मेरे पास घबड़ाकर आ जाते हैं, वे कहते हैं, ध्यान तो लग रहा है लेकिन अब बड़ी घबड़ाहट हो रही है। अब ऐसा लग रहा है कि किसी शून्य में प्रवेश कर रहे हैं कि किसी अतल खाई में गिर रहे हैं। कि किसी ऐसी गुफा में प्रवेश कर रहे हैं जिसका दूसरा अंत मिलेगा कि नहीं मिलेगा? किसी बोगदे में प्रवेश कर रहे हैं, लौट पायेंगे कि नहीं? किसी सागर में नाव छोड़ रहे हैं, दूसरा किनारा मिलेगा या नहीं? आये थे यही कहते कि इस किनारे से कैसे छुटकारा हो? और जब जंजीर टूटती है इस किनारे से तो घबड़ाहट होती है कि दूसरा किनारा है भी, मिलेगा भी? बाजार भी गया, दुकान भी गयी, व्यवसाय भी गया, संबंध भी गये। यह परमात्मा मिलेगा भी? भय पकड़ता है। फिर से इसी किनारे से जंजीर को जोड़ लें ऐसी आकांक्षा पकड़ती है।

मनस्विद कहते हैं, इतने प्रौढ़ लोग बहुत कम हैं पृथ्वी पर, जो बिना विचार के थोड़ी देर भी जी लें। हालांकि लोग कहते हैं कि ये विचार बंद हो जाते तो अच्छा होता, लेकिन इनका कहना वैसे ही है कि जैसे लोग अक्सर कहते हैं, अब तो थक गये जिंदगी से, अब मर जाते तो अच्छा होता। मगर कोई मरना नहीं चाहता।

बौद्ध कथा है। एक बूढ़ा आदमी लकड़हारा लौटता है जंगल से। सत्तर साल का हो गया। थक गया लकड़ी काटते-काटते, रोटी कमाते-कमाते। अब तो बुढ़ापा भी आ गया है, लकड़ी काटी भी नहीं जाती। वजन ढोया भी नहीं जाता। कई बार कहता था अपने मित्रों से कि अब तो प्रभु उठा ले। उस दिन बुखार भी था, थका-मांदा भी था, भूखा भी था। लकड़ियां काटकर जंगल से लौटता था, बड़ी उदासी थी, बड़ी खिन्नता थी। कोई कारण भी नहीं दिखाई पड़ता था जीने का। यही लकड़ियां काटना, यही बेचना। किसी तरह दो रोटी कमानी। सार क्या है? सोचता होगा।

उस विषाद के क्षण में गठरी पटक दी नीचे और आकाश की तरफ हाथ जोड़कर, घुटने के बल टेककर जमीन पर कहा कि हे मृत्यु, तू सभी को आती है, एक मुझ पर नाराज क्यों है? तू मुझे क्यों नहीं आती? मुझे उठा ले। जवानों को तूने

उठा लिया, बच्चों को तूने उठाया, और मुझ बूढ़े को छोड़े चली जाती है। मुझे भूल ही गयी है क्या? उसकी आंख से आंसू बह रहे हैं। संयोग की बात! कहानी पुरानी है, अब तो ऐसा संयोग होता नहीं। मौत वहां से गुजरती थी; दया आ गयी। मौत आकर सामने खड़ी हो गयी। उस बूढ़े ने मौत देखी, छाती धक से हो गयी। भूल गया सब विषाद।

मौत ने कहा कि बोलो, किसलिए बुलाया? उसने कहा, कुछ नहीं, गठरी गिर गयी, कोई उठानेवाला यहां मिलता नहीं इसलिए पुकारा था। गठरी उठवा दो, बड़ी कृपा। गठरी उठाकर सिर पर रख ली और चल पड़ा। भूल गया। कई बार कहा था उसने।

बूढ़े अक्सर कहने लगते हैं कि अब तो मौत उठा ले। मगर यह मत सोचना कि वे सच में ही यह कह रहे हैं कि मौत उठा ले। मौत उठाने आयेगी तो वे भी कहेंगे, जरा तबीयत खराब रहती है, कोई दवाई वगैरह नहीं है? कोई औषधि इत्यादि। तू तो मौत है, तुझे तो हर तरह की औषधि पता होगी। तेरे से ज्यादा कौन जानता है जीवन और मृत्यु के संबंध में? कुछ सूत्र मुझे दे दे।

ऐसे ही लोग कभी-कभी चित्त से परेशान होकर कहने लगते हैं कि यह तो अब किसी तरह विचार से छुटकारा हो जाता तो अच्छा होता। और इसी तरह लोग अहंकार से परेशान होकर कहने लगते हैं कि इस अहंकार से मुक्ति हो जाती तो अच्छी होती। मगर ये सब झूठी बातें हैं। जब होती है मुक्ति तो घबड़ा जाते हैं; तब कंपते हैं।

गुरु का बड़ा काम तुम्हें ध्यान की प्रक्रिया का प्रारंभ करवा देना नहीं है, गुरु का बड़ा काम तब आता है जब ध्यान होना शुरू होता है और तुम भागना शुरू करते हो। और तुम डरते हो, और तुम कंपते हो। और तुम कहते हो नहीं, मुझे जाना नहीं है। उस वक्त गुरु की असली जरूरत होती है कि तुम्हारी फिकर न करे और दे दे धक्का। तुम चिल्लाते ही रहो, वह दे दे धक्का। उस समय ही गुरु की असली जरूरत होती है। ध्यान की प्रक्रियाएं तो शास्त्र से भी मिल सकती हैं। लिखी हैं, विधियां हैं लेकिन शास्त्र तुम्हें धक्का नहीं दे सकता, जब घड़ी आयेगी संकट की। और बड़ी संकट की घड़ी यह है, जब परमात्मा सामने खड़ा होता है, तब तुम्हारी महामृत्यु घटती है।

प्रेम के नाम पर तुम केवल अपने एकांत से बचना चाहते हो। वासना के नाम पर भी तुम अपने अकेलेपन को भरना चाहते हो। तुम्हारी सारी वासनाएं एक निष्कर्ष में निचोड़ी जा सकती हैं कि तुम अपने साथ रहने को राजी नहीं हो अभी। तुम अपने साथ घबड़ाते हो। तुम्हें कुछ न कुछ आड़ चाहिए--कभी लोभ, कभी मोह,

कभी प्रेम, कभी क्रोध, कभी ईर्ष्या, कभी कुछ, कभी कुछ। तुम्हें कुछ न कुछ चाहिए ताकि तुम संलग्न रहो। तुम्हें कोई रोग चाहिए ताकि तुम उलझे रहो।

छोटे बच्चों को हम खिलौना पकड़ा देते हैं न, ताकि वह शोरगुल न करे, उलझा रहे। ऐसे ही तुमने अपने कई तरह के खिलौने पैदा कर लिये हैं। उन्हीं का नाम वासना है। उनको छोड़ने से भी कुछ न होगा। अगर तुम उनको जबरदस्ती छोड़कर चले जाओगे, बिना होश आये, तो तुम मंदिरों में बैठकर नये खिलौने गढ़ लोगे। कोई माला जपता रहेगा बैठे-बैठे, वह भी खिलौना है। पहले यह रुपये गिनता था।

अब तुम जरा सोचो। रुपये गिनने में, माला जपने में कोई फर्क नहीं है। पहले यह गिड्डी रुपये की गिनता रहता था, अब यह माला गिनता 'राम-राम, राम-राम, राम-राम। क्या फर्क है? गिनती जारी है। पहले यह धन का हिसाब देखता था रोज शाम को, कितना कमा लिया, अब यह पुण्य का हिसाब देखता है, कितना कमा लिया। कमाई जारी है। दुकान चल रही है। बाजार से छुटकारा नहीं हुआ है। पहले बाजार छोटा था, अब जरा बाजार और बड़ा हो गया, उसमें स्वर्ग भी सम्मिलित हो गया। नक्शा और बड़ा हो गया। कुछ भेद नहीं पड़ा है। यह वही का वही आदमी है। यह मंदिर में बैठकर भी, आश्रम में बैठकर भी करेगा क्या? नयी-नयी तरकीबें खोज लेगा अपने को उलझाये रखने की।

इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि बाजार से भागो। क्या फायदा है भागने से? अगर तुम अभी उलझाने की तरकीबें खोजे बिना नहीं रह सकते तो जहां रहोगे वहीं तरकीबें खोज लोगे। मैं तुमसे कहता हूं, जागो। तुम देखना शुरू करो।

वासना बुरी नहीं है, असली बुराई इसमें है कि तुम क्यों अपने को उलझाना चाहते हो? एकांत से डर लगता है। क्यों? इसलिए एकांत से डर लगता है कि एकांत में अहंकार की मृत्यु हो जाती है। अगर तुम बिलकुल अकेले रह जाओ तो तुम चकित होकर पाओगे कि तुम बचे ही नहीं। मैं के बचने के लिये तू का संबंध चाहिए। तब तक तू हो तब तक मैं बचता है। जहां तू गया वहां मैं गया। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए अकेले में घबड़ाहट होती है। एकांत अहंकार की मृत्यु है और अहंकार की मृत्यु में ही परम स्वातंत्र्य है।

दूसरा प्रश्न : कल आपने कबीर और धरमदास के संदभ में लाल रंग की महिमा बतायी लेकिन मोहम्मद को हरा रंग पसंद आया और नानक को नीला; यद्यपि वे दोनों भक्त ही थे। कृपा कर समझाएं।

एक-एक व्यक्ति अनूठा है। उसकी अपनी पसंद है, अपना रुझान है। उसका जीवन को देखने का अपना झरोखा है। यह सारा जगत परमात्मा से भरा है। ये

सब रंग उसके हैं। परमात्मा सबरंग है। लेकिन प्रत्येक की अपनी सूझ है। अपने प्रतीक खोजने पड़ते हैं।

कबीर और धरमदास ने लाल की बड़ी प्रशंसा की।

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल

तो मैंने कल तुम्हें लाल रंग का अर्थ कहा कि लाल है जीवन का प्रतीक; कि लाल है उत्सव का प्रतीक; कि लाल है फूलों और वसंत का रंग। इसलिए गैरिक रंग का एक नाम वासंती रंग भी है। लाल है जीवन के खिलाव का प्रतीक, सूरज का प्रतीक, प्रकाश का प्रतीक, क्रांति का प्रतीक, अग्नि का प्रतीक। यह सब मैंने तुमसे कल कहा। स्वभावत: यह प्रश्न मन में उठा होगा, फिर मोहम्मद ने लाल क्यों न चुना? हरा कुछ कम नहीं। हरे के अपने अर्थ हैं।

समझने की कोशिश करो। हरा भी जीवन का प्रतीक है। जब तक जीवित होता है वृक्ष, हरा होता है। जब मर जाता है तब हरा नहीं रह जाता। वह जो हरी धार वृक्ष में बहती है वह जीवन की धार है। लेकिन फिर भी दोनों प्रतीकों में भेद है। फूल तो अंत में आता है। हरा रंग पहले आता है, लाल रंग बाद में आता है। लाल रंग निष्पत्ति है, लाल रंग मंजिल है। हरा रंग यात्रा है।

और मोहम्मद का जोर यात्रा पर ज्यादा है। और एक अर्थ में बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर यात्रा ठीक है तो लाल रंग तो आ ही जायेगा। अगर वृक्ष ठीक-ठीक हरा है और उसमें रसधार बहती है तो फूल तो आयेंगे ही आयेंगे; उनकी तुम चिंता न करो। उनके लिये तुम्हें विचार करने की जरूरत नहीं है। साधन सम्यक है तो साध्य तो आयेगा ही। असली विचार साधन का है। अगर साधन सम्यक नहीं है तो तुम लाख फूलों का विचार करते रहो, फूल नहीं आयेंगे, नहीं आयेंगे।

माली फूलों का हिसाब थोड़े ही करता है, वृक्ष के हरेपन को ध्यान में रखता है। देता पानी, देता खाद, वृक्ष जीवंत रहे तो जीवन की अंतिम ऊंचाई पर वे शिखर फूल के अपने आप प्रगट होते हैं। वृक्ष में से फूल खींच-खींच कर थोड़े ही निकालने होते हैं! वे तो अपने से आते हैं। वे सहज अभिव्यक्तियां हैं। अगर कोई भी चीज ठीक रास्ते पर चलती रहे, चलती रहे तो मंजिल मिल ही जाती है। इसलिए मंजिल विचारणीय नहीं है, तीर्थ विचारणीय नहीं है, तीर्थयात्रा विचारणीय है। लाल रंग है साध्य, हरा है साधन। मोहम्मद ने हरे को चुना क्योंकि वह साधन है। और सारे धर्म साधन ही हैं। साध्य तो भीतर घटनेवाली अनुभूति है। वह सहस्त्रदल कमल भीतर खिलेगा। वह फूल कभी खिलेगा, वह लाल सुर्खी कभी भीतर फैलेगी। लेकिन उसकी कल्पना में पड़ने से कुछ सार नहीं। तुम वृक्ष को हरा करो।

इसी को दूसरे अर्थों में तुम समझो। मोहम्मद ने पूर्णिमा का चांद नहीं चुना, दूज का चांद चुना प्रतीक की तरह। क्यों? क्योंकि दूज का चांद यात्रा पर है, पथिक है, चल पड़ा है। पहुंच ही जायेगा, पूर्णिमा तो होने ही वाली है।

बौद्धों ने पूर्णिमा को चुना है, मोहम्मद ने दूज के चांद को।

एक ऐतिहासिक घटना है कि ईरान के बादशाह ने अपने एक वजीर को भारत भेजा मुगल बादशाह से मिलने। जैसा दरबारों में होता है, उस वजीर के कई विरोधी भी थे, कई प्रतियोगी भी थे, कई दुश्मन भी थे, कई उसकी जड़ें काटने को तत्पर भी थे। वे कोशिश में लगे थे कि कुछ न कुछ भूल-चूक मिल जाए। जब वजीर हिंदुस्तान आया और हिंदुस्तान के बादशाह को संबोधन किया दरबार में तो उसने कहा कि आप पूर्णिमा के चांद हैं। ईरान के बादशाह दूज के चांद हैं।

विरोधियों को खबर लगी। उन्होंने जाकर ईरान के बादशाह के कान भरे कि यह तो हद्द हो गयी, यह तो अपमान हो गया। अपना आदमी और हिंदुस्तान के बादशाह को पूर्णिमा का चांद कहे और आप को दूज का चांद बतलाये! यह तो बात बुरी हो गयी। बादशाह भी नाराज था।

जब यह वजीर वापिस लौटा, इसको नगर के द्वार पर ही गिरफ्तार कर लिया गया, हाथ में जंजीरें डाल दी गयीं। इसे दरबार में बुलाया गया और कहा कि तुम इसका उत्तर दो अन्यथा फांसी की सजा। यह हंसा। यह आदमी बड़ा बुद्धिमान रहा होगा। इसने कहा, निश्चित मैंने भारत के बादशाह को कहा कि आप पूर्णिमा के चांद हैं और आपको मैंने दूज का चांद कहा। क्योंकि पूर्णिमा के चांद के आगे अब कुछ नहीं है मौत के सिवाय। पूर्णिमा का चांद तो पहुंच गया आखिरी जगह। जहां पूर्ण हुआ वहां मौत हुई। आप विकासमान हैं। अभी आपको बहुत कुछ होना है। आप ऊगते सूरज हैं, वह डूबता सूरज है। आप इससे परेशान क्यों हो गये?

दूज का चांद विकासमान है, वैसे ही हरा रंग विकासमान है। लाल रंग पूर्णाहुति, हरा रंग विकास। इसलिए मोहम्मद ने जीवन के लिये हरा रंग चुना। वह संभावना का प्रतीक है, यात्रा का, साधन का, मार्ग का।

मोहम्मद का जोर विकास पर है, क्रांति पर नहीं। इवोल्यूशन पर, रेवोल्यूशन पर नहीं। मोहम्मद मानते हैं कि सब चीजें अपने समय में विकसित होती हैं। क्रांति की कोई जरूरत नहीं है। क्रांति झपट्टा है, जल्दबाजी है। विकास धैर्य है, धीरज है। तब तुम समझोगे कि हरा रंग विकास का प्रतीक है, लाल रंग क्रांति का।

हरा रंग शांति का प्रतीक है। तुमने हरे रंग को देखा गौर से? इसलिए तो जंगल में जाकर शांति मालूम पड़ती है, हरे पहाड़ पर बैठकर चित्त शांत हो जाता है। हरे रंग को देखते-देखते तुम्हारी आंखें भी हरी हो जाती हैं, शांत हो जाती हैं। हरे

रंग का जो परिणाम है वह शांति है। इस्लाम शब्द का ही अर्थ होता है शांति। शांति पर बड़ा जोर है। वही ध्यान की भंगिमा है।

मोहम्मद को तलवार उठानी पड़ी लेकिन बड़ी विवशता से। उठाना नहीं चाहते थे, बड़ी मजबूरी में। विरोधियों ने उठवा दी। कोई और उपाय न था इसलिए उठानी पड़ी। लेकिन तलवार पर भी जो संदेश लिखा था वह यही था : 'मेरा संदेश शांति है।' तलवार पर खोद रखा था। यह अजीब तलवार हुई क्योंकि तलवार पर शांति का संदेश खोदा हुआ है। यह इस बात की खबर है कि मोहम्मद का बस चलता तो तलवार उठाते ही नहीं। किसी को कंकड़ भी न मारते।

लेकिन मजबूरी थी। चारों तरफ बड़ा जंगली वातावरण था। मोहम्मद को काम करने की सुविधा ही न थी। तो शांति के लिये लड़ना पड़ा। विरोधाभासी लगती है बात। और उसी में इस्लाम भ्रष्ट भी हुआ। मोहम्मद तो मजबूरी में लड़े लेकिन उनके पीछे आनेवालों ने लड़ने में मजा लेना शुरू कर दिया। वे मजबूरी तो भूल गये मोहम्मद की। वह तलवार पर लिखा संदेश तो कभी का धूमिल होकर मिट गया। तलवार हाथ में रह गयी। तलवार खतरनाक चीज है। ठीक हाथ में हो तो काम की होती है, गलत हाथ में हो तो बड़ी महंगी पड़ जाती है। छोटे बच्चे के हाथ में जैसे तलवार दे दो, वैसी खतरनाक चीज है।

और दुनिया में गलत आदमी हैं, गलत आदमियों की भीड़ है। इनके हाथ में तो फूल भी खतरनाक हो जाता है, तलवार की तो कहना ही क्या? इनके हाथ में फूल भी हो तो उसका उपयोग भी पत्थर की तरह करेंगे किसी का सिर तोड़ देने के लिये। इनके हाथ में तलवार हो तब तो कहना ही क्या! इनको बड़ी सुविधा हो गयी।

तो इस्लाम–शांति का धर्म, अशांति का कारण बन गया। मगर मोहम्मद का चुनाव तो उचित ही था। उस चुनाव में कोई भूलचूक नहीं खोजी जा सकती। हरे रंग को उन्होंने शांति के रंग की तरह चुना।

नानक ने नीला रंग चुना है। नीला रंग विराट का रंग है––विराट आकाश का, असीम का, अनंत का। नानक का मन असीम के साथ तल्लीन है, जो दिखाई नहीं पड़ता और है; जो पकड़ में नहीं आता और है। जिस पर सीमा नहीं खींची जा सकती और जो सबको घेरे हुए है, उस आकाश की तरह है परमात्मा।

तुमने देखा, आकाश का रंग नीला है। यह तुम जानकर हैरान होओगे कि वैज्ञानिक कहते हैं आकाश में कोई रंग नहीं है। है भी नहीं। फिर नीला क्यों दिखाई पड़ता है? वे कहते हैं आकाश के विस्तार के कारण नीले की भ्रांति पैदा होती है। जहां गहराई होती है वहां नीला रंग पैदा होता है––होता नहीं तो भी। जब पानी की धार छिछली होती है, सफेद मालूम होती है। जब पानी की धार गहरी हो जाती

है तो नीली हो जाती है। एक कप में भरो नीली नदी के पानी को और तुम पाओगे वह सफेद है। लेकिन नदी में नीला मालूम पड़ रहा है। क्यों? गहराई के कारण। गहराई का आयाम नीले रंग की भ्रांति पैदा कर देता है।

आकाश में कोई रंग नहीं है सिर्फ, लेकिन गहराई बड़ी है। किस नदी में इतनी गहराई होगी? किस सागर में इतनी गहराई होगी? प्रशांत महासागर सब से गहरा है लेकिन उसकी गहराई भी पांच मील है। पांच मील बड़ी गहराई है मगर आकाश के मुकाबले क्या गहराई है? यह तो अंतहीन है। इसकी गिनती मीलों में होती ही नहीं। इसकी गिनती तो प्रकाशवर्ष में करनी पड़ती है।

प्रकाशवर्ष सबसे छोटी इकाई है आकाश के संबंध में। प्रकाशवर्ष का अर्थ समझ लेना। एक सेकेंड में प्रकाश चलता है एक लाख छियासी हजार मील। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। साठ सेकेंड : एक मिनट में साठ गुना। फिर साठ मिनट : एक घंटे में और साठ गुने से साठ गुना। फिर एक वर्ष में प्रकाश जितना चलता है, तीन सौ पैंसठ दिन में, वह सबसे छोटी इकाई है आकाश को नापने की। उस इकाई से भी नापा नहीं जाता। एक सीमा तक हम जाते हैं। हमारी सीमा आ जाती है, आकाश की सीमा नहीं आती। हमारे यंत्र चुक जाते हैं, आकाश नहीं चुकता।

नानक ने नीले को चुना विराट की तरह। आकाश नानक के लिये परमात्मा का प्रतीक है। ऐसा ही वह अगम, अगोचर, अलख। ऐसा ही वह ओंकार। निर्गुण का रंग है नीला इसलिए हमने कृष्ण को, राम को नीला बनाया है।

अब कोई नीले आदमी होते नहीं, नीली जाति होती नहीं। सफेद हैं लोग, काले हैं लोग, पीले लोग हैं। नीले लोग होते ही नहीं दुनिया में। हां, कभी-कभी कुछ बच्चे पैदा होते हैं जिनके खून में खराबी होती है, जो बच नहीं सकते। वे नीले होते हैं। वे बच ही नहीं सकते। उनके खून में खराबी होती है। उनमें प्रतिरोधक शक्ति नहीं होती। उनका खून लाल नहीं होता, नीला होता है। लेकिन कृष्ण और राम को इस देश ने नीला कहा। कृष्ण का तो नाम ही श्याम पड़ गया है। इतना नीला रंगा कि नीला नाम ही हो गया उनका––श्याम। श्याम यानी नीला। गहराई का प्रतीक, निर्गुण का प्रतीक, निराकार का प्रतीक, विस्तार और असीमता का प्रतीक।

अलग-अलग धर्म अलग-अलग रंगों को चुने। सभी रंग उसके हैं।

जैनों ने सफेद को चुना है क्योंकि शुभ्र रंग त्याग का प्रतीक है। वैज्ञानिक भी उनसे राजी हैं। अगर तुम वैज्ञानिक से पूछो रंगों का विश्लेषण तो वह तुमसे कहेगा, अगर तुम लाल फूल देखते हो तो उसका मतलब यह होता है कि उस फूल

ने लाल रंग की किरणें छोड़ दीं। जब किरण फूल पर गिरती है प्रकाश की तो उसम सात रंग होते हैं। पूरा इंद्रधनुष होता है। अब यह बहुत मजे की बात है, तुम्हें फूल उस रंग का दिखाई पड़ता है जिस रंग की किरण वह नहीं पीता। छह रंग पी जाता है, वे तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते। वह तो पी गया, उसने आत्मसात कर लिया। जो छोड़ देता है एक रंग, वह तुम्हें दिखाई पड़ता है। फूल लाल, क्योंकि उसने लाल रंग की किरण नहीं पी। अब यह बड़े मजे की बात हो गयी। जो फूल लाल नहीं है वह लाल दिखाई पड़ता है। और जो फूल पीला, उसने पीले रंग की किरण छोड़ दी। और जो फूल नीला, उसने नीले रंग की किरण छोड़ दी। बाकी छह को पी गया। जिनको पी गया वे तो उसमें डूब गये, एक हो गये, आत्मसात हो गये। जो छूट गया वह रंग तुम्हारी आंख पर पड़ता है--छूटा हुआ रंग। वही तुम्हें दिखाई पड़ता है।

काले रंग का अर्थ होता है, सब पी गया, कुछ नहीं छोड़ा। इसलिए काला रंग लोभ का प्रतीक है। सब पी गया, कुछ नहीं छोड़ा। काला कोई रंग नहीं है। काला रंगों का अभाव है। और सफेद का अर्थ है सब रंग छोड़ दिये। सातों रंग छोड़ दिये, कुछ नहीं पिया। सातों रंग छोड़ दिये तो सातों रंग के मिलन से सफेद मालूम होता है। सफेद रंग सातों रंगों का मिलन है। और काला रंग सातों रंगों का अभाव है। और बाकी रंग सब बीच में हैं।

जैनों ने सफेद रंग चुना क्योंकि त्याग उनका सूत्र है--सब छोड़ देने का। सबसे मुक्ति हो जाए। ऐसी निर्मलता हो कि कोई भी चीज पास न रह जाए। ऐसा अपरिग्रह भाव हो। कोई भी परिग्रह नहीं। मेरा कुछ भी न बचे। जहां मेरा कुछ नहीं बचता वहां मैं समाप्त हो जाता है। इसलिए शुद्ध निर्मल चित्तदशा में अहंकार नहीं होता। हो ही नहीं सकता। वह भी बड़ा प्यारा प्रतीक है।

बौद्धों ने पीला रंग चुना क्योंकि पीला रंग मृत्यु का प्रतीक है। और बुद्ध कहते ही हैं जीवन तो दुख है। जन्म दुख, जवानी दुख, बुढ़ापा दुख। यहां दुख ही दुख है। इस जीवन से छुटकारा चाहिए इसलिए पीला रंग प्रतीक हो गया। पीला रंग जीवन के छुटकारे का प्रतीक है। जब पत्ता पीला हो जाता है तो गिर जाता है। पीला रंग मृत्यु का रंग है। जीवन से छुटकारा। जीवन के उपद्रव से छुटकारा। जीवन के चाक से छलांग लगा ली, कूद गये। निर्वाण का रंग है पीला।

और मृत्यु का अर्थ होता है निरहंकारिता। फिर निरहंकारिता। मर गये! कुछ नहीं बचा, मैं भी नहीं बचा, शून्य बचा। तो पीला रंग शून्य का प्रतीक हो गया।

ये अलग-अलग धर्मों की अपनी-अपनी साधना-पद्धतियां, अपने योग, अपने ध्यान, अपने-अपने यात्रा पथ, अपना-अपना लक्ष्य--उनके प्रतीक हैं। लेकिन एक ख्याल रखना, परमात्मा सबरंग है। परमात्मा पूरा इंद्रधनुष है। हां, तुम्हें कोई एक प्रक्रिया पकड़कर उसकी तरफ चलना होगा। तुम्हें कोई एक किरण पकड़कर उसकी तरफ चलना होगा। उस किरण को तुम जोर से आग्रहपूर्वक सम्हालते हो। मगर यह मत समझना कि बाकी रंग उसके नहीं हैं, सब रंग उसके हैं।

तीसरा प्रश्न : समझ में नहीं आता कि कबीर और धरमदास जैसे परमभक्तों को भी विरह सताये और वे साधारण प्रेमीजनों जैसे रोने-धोने के गीत लिखें। कृपा करके समझाइये।

'रोने-धोने' शब्द में तुम्हारा भाव जाहिर हो गया कि तुम्हारे मन में प्रेम के मार्ग का स्वीकार नहीं है। 'रोने-धोने' में निंदा आ गयी। 'रोने-धोने' में आलोचना आ गयी। 'रोने-धोने' में तुमने बता दिया कि यह बात तुम्हें जंचती नहीं।

क्यों नहीं जंचती? कारण भी तुमने बता दिया कि 'साधारण प्रेमीजनों जैसे।'

प्रेम कभी भी साधारण नहीं। प्रेम जहां है वहीं असाधारण है। प्रेम इस जगत में असाधारण तत्व है। जब दो साधारण जनों के बीच में भी घटित होता है, तब भी असाधारण तत्व है। हीरा कीचड़ में भी पड़ा हो तो भी हीरा है। कीचड़ के कारण हीरे का गुणधर्म कम नहीं हो जाता। वासना भरे हुए दो अंधे अहंकारियों के बीच भी जब प्रेम पड़ता है तो हीरा ही होता है। कीचड़ में सना होता है, मगर कीचड़ से हीरे का क्या बिगड़ता है! पानी में एक डुबकी लगा ली कि सब कीचड़ बह जायेगी। कीचड़ हीरे का स्वभाव नहीं बनती; ऊपर-ऊपर होती है, परिधि पर होती है। हीरे के केंद्र तक व्याप्त नहीं हो सकती।

और इसलिए तुम देखोगे, जब दो साधारण जनों में भी प्रेम घटता है तो उन दोनों साधारण जनों की आंखों में भी असाधारण चमक आ जाती है।

तुमने प्रेमी को चलते देखा? उसकी चाल बदल जाती है। कल तुमने देखा था घसिटता-सा जाता था। चला जाता था दफ्तर किसी तरह--रोता-धोता! अब नहीं रोता-धोता। अब जाता है, रोता-धोता ऐसा नहीं कह सकोगे, अब गाता-नाचता। उसकी आंख में एक नयी रौनक मालूम पड़ती है। उसके चेहरे पर नया रंग मालूम पड़ता है। उसके प्राणों में एक नयी ऊर्जा मालूम पड़ती है। उसके पैरों में नाच, उसके हृदय में एक नयी गुनगुनाहट।

और ध्यान रखना, प्रेमी जब रोता भी है तो भी वह रोना-धोना नहीं है। उसके रोने में भी आनंद ही है। उसके अश्रु भी आनंद-अश्रु हैं। उसके आंसू बड़े बहुमूल्य हैं। तुम रोना-धोना कहकर उन आंसुओं को खराब मत कर दो। उसके

आंसुओं से ज्यादा मूल्यवान इस पृथ्वी पर और क्या है ?

रही यह बात कि साधारण जन भी तो ऐसे ही प्रेम में रोते हैं। विरह में रोते हैं, परेशान होते हैं। यह भी वैसे ही लगता है। कुछ-कुछ तो लगता ही है वैसा। सेली की बात, सेज की बात, पिया की बात, मिलन की बात, महल की बात, आलिंगन की बात--ये सब बातें तो साधारण प्रेमी की ही हैं। साधारण प्रेमी जैसी ही लगती हैं। और परमात्मा नहीं मिलता तो आंसू, विरह, विरह के गीत ! समझने की कोशिश करो।

इस जगत में जब भी परमात्मा घटेगा, उसे प्रगट करने का उपाय कहीं न कहीं, किसी न किसी साधारण जीवन की पद्धति से ही खोजना होगा। और तो कोई पद्धति नहीं।

बुद्ध बोले। बुद्ध ने जो भाषा उपयोग की वह वही तो है जो बाजार में चलती है। तुम यह तो नहीं कहते कि यह तो भाषा बाजार में चलनेवाली, साधारण जनों की भाषा। इसमें बुद्ध परम सत्य को कैसे कह रहे हैं? यह कैसे कहा जा सकता है? यह वही तो भाषा है जिसमें दो आदमी लड़ते हैं, जिसमें दो आदमी प्रेम करते हैं। उसी भाषा में तो उपनिषद रचे जाते हैं। उसी भाषा में तो गुरुग्रंथ रचा जाता है। उसी भाषा में तो बाइबल रची जाती है। यह भाषा तो वही है। ये शब्द तो वही हैं।

यह मेरा हाथ ईश्वर को समझाते समय जो भाव-भंगिमाएं लेता है, ये भाव-भंगिमाएं वे ही हैं, जो मैं तुमसे बात करते समय लूंगा। यही हाथ होगा, यही जबान होगी, यही आंखें होंगी। अगर कोई चुप भी बैठ जाए तो वह भी चुप्पी... साधारण जन भी तो चुप बैठते हैं, वैसी ही चुप्पी होगी। और फिर भी वैसी नहीं होगी। भाषा वही होगी फिर भी उसमें कुछ गरिमा और होगी। शब्द वही होंगे, अर्थ नये होंगे। बुद्ध का अर्थ उसमें समाविष्ट होगा।

यह बात सच है कि जब आंख से आंसू बहेंगे तो वैसे ही आंसू होंगे जैसे साधारण जनों की आंखों से बहते हैं। लेकिन जब धनी धरमदास की आंखों से बहेंगे, ये आंखें और! आंसू तो वही। चखोगे तो वही खारा स्वाद होगा। और आंसू अगर इकट्ठे करके ले गये वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में जांच करवाने तो साधारण आदमी की आंख से गिरे आंसुओं में और इन आंसुओं में कोई फर्क नहीं पाया जायेगा। क्या तुम सोचते हो तुम्हारे खून में और बुद्ध के खून में कोई फर्क होगा; कि तुम्हारी हड्डी में और बुद्ध की हड्डी में कोई फर्क होगा ? तुम्हारी देह जिन तत्वों से बनी है उन्हीं तत्वों से बुद्ध की देह बनी है। फिर भी तो बुद्ध तुम जैसे नहीं हैं, कुछ और घटा है। मकान होगा एक जैसा, भीतर का मेहमान तो बिलकुल बदल गया है।

आंसू तो धरमदास के भी तुम्हारे जैसे हैं। लेकिन क्या तुम यह कहोगे कि वे

तुम्हारे जैसे ही हैं ? उन आंसुओं की अभिव्यंजना अलग है। उन आंसुओं में आकाश उतरा है। उन आंसुओं में परमात्मा के पैरों की पदचाप है।

और प्रगट तो साधारण से ही करना होगा, और तो कोई उपाय ही नहीं है। भाषा बोलो तो साधारण होगी, ना बोलो तो साधारण आदमी की चुप्पी होगी। नाचो तो यही तो पैर नाचेंगे न ! वेश्या के पैरों में और मीरा के पैरों में कुछ भेद तो नहीं है। पैरों में तो भेद नहीं है। पैरों के परीक्षण से तो कोई भी तय नहीं कर सकेगा कि ये मीरा के पैर हैं या वेश्या के पैर हैं। लेकिन जब मीरा नाचती है और वेश्या नाचती है, क्या तुम दोनों के नाच में फर्क नहीं कर पाओगे ? अगर न कर पाओ तो तुम अंधे हो। तो तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ा। तो तुम्हारा जीवन एक अंधेरनगरी है, जिसमें टके सेर खाजा, टके सेर भाजी। सब एक-सा बिक रहा है। तुम्हें कुछ हिसाब नहीं है।

मीरा का पैर, उसमें बहता लहू, हड्डी, मांस, मज्जा वैसे ही है जैसे वेश्या का। लेकिन जो नाच है वह अलग है। उस नाच को कैसे पकड़ें? उस नाच को पकड़ने का कोई भौतिक उपाय नहीं है। उसको तो सूक्ष्म सहानुभूति से भरी आंखें समझ पायेंगी। उसे तो अत्यंत हार्दिकता से कोई देखेगा तो ही पकड़ पायेगा। वह बात बड़ी बारीक और नाजुक भी।

जिस पैर से तुम वेश्यालय जाते हो उसी पैरों से तो मंदिर जाओगे न! दूसरे पैर कहां से लाओगे? दूसरे पैर हैं ही नहीं। लेकिन क्या कोई यह कहेगा कि ये वही पैर लिये मंदिर आ रहे हो जिन पैरों से तुम वेश्यालय जाते थे। इनको तो छोड़कर बाहर आओ। ये पैर कैसे मंदिर ला सकते हैं ? ये तो वेश्यालय ले जाते थे। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं, ये पैर दोनों काम करते हैं। ये वेश्यालय भी ले जाते हैं, ये मंदिर भी ले आते हैं।

यह जबान दोनों काम करती है। यह वासना की भाषा भी बोलती है, करुणा की भाषा भी बोलती है। ये आंसू दोनों काम करते हैं। ये साधारण मोह के भी होते हैं और ये उस परमप्रीति के भी। इस देह में दोनों बातें घटती हैं। इस देह में संसार भी घटता है, इस देह में निर्वाण भी घटता है।

यह जगत एक तरफ नर्क को छू रहा है, एक तरफ स्वर्ग को। इस जगत की सीढ़ी का एक सिरा नर्क में लगा है, एक सिरा स्वर्ग में। यही सीढ़ी नर्क ले जाती है, यही सीढ़ी स्वर्ग ले जाती है। तुम्हारे घर में तुम रोज तो करते हो। उसी सीढ़ी से ऊपर जाते हो, उसी सीढ़ी से नीचे आते। ऊपर जाते वक्त यह नहीं कहते कि यह सीढ़ी कैसे ऊपर ले जायेगी, यही तो मुझे नीचे लायी थी? जो सीढ़ी नीचे लाती है वही ऊपर ले जाती है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। बस दिशा बदल जाती है। धरमदास के

आंसुओं की दिशा अलग है।

पूछा तुमने, 'समझ में नही आता--' समझ में आयेगा नहीं। यह बात शायद समझ की नहीं है। यह बात प्रेम की है। समझ छोड़ोगे तो समझ में आयेगी। समझ से थोड़े ऊपर उठोगे तो समझ में आयेगी। यह बात तर्क की नहीं है। इसीलिए तो तर्क के लिये ईश्वर है ही नहीं। जो तर्क को पकड़कर चलता है वह ईश्वर को कभी अनुभव नहीं कर पायेगा। उसने पहले से ही तर्क को पकड़ने में ही निर्णय ले लिया।

ऐसा ही समझो कि एक आदमी आंखों पर बहुत भरोसा करता है। और भरोसे का कारण भी है, क्योंकि आंखों से इतनी चीजें जानने को मिलती हैं। कितनी चीजें जानने को मिलती हैं! जीवन के जितने अनुभव हैं, वैज्ञानिक कहते हैं उसमें अस्सी प्रतिशत आंख से होते हैं। इसीलिए तो अंधे पर बड़ी दया आती है। इतनी दया गूंगे पर भी नहीं आती। इतनी दया बहरे पर भी नहीं आती, इतनी दया लंगड़े पर भी नहीं आती, जितनी अंधे पर आती है। क्योंकि अस्सी प्रतिशत जीवन से वंचित रह गया बेचारा। अंधे को देखकर अचानक तुम्हारा हृदय कोमल हो जाता है। इसलिए भिखारी अक्सर अंधे होने का ढोंग ज्यादा करते हैं, बजाय कोई और ढोंग करने के। क्योंकि ज्यादा संभावना है तुम्हारा कठोर हृदय थोड़ा पिघले।

मैंने सुना है, एक पुल के पास एक आदमी भीख मांगता था। एक आदमी ने उसे अठन्नी भेंट दी। आदमी कुछ मस्ती में था, लाटरी मिल गयी होगी या कुछ हुआ होगा। उस आदमी ने अठन्नी हाथ में पकड़ ली, उलट-पुलटकर देखी। देनेवाले ने पूछा, क्या देख रहे हो? क्योंकि तुम तो अंधे हो। उसने कहा, क्षमा करिये, वह आदमी जो यहां सदा बैठता है, और अंधे का काम करता है वह आज सिनेमा गया है। मैं तो असल में लंगड़ा हूं। मेरे मित्र की जगह बैठा हूं।

भिखमंगे अंधे का स्वांग रच लेते हैं। सरलता से हृदय प्रभावित होता है। अंधे आदमी को देखकर किसी का भी मन हो जाता है कि इसका हाथ पकड़ लो, इसकी लाठी हाथ में ले लो और रास्ता पार करवा दो।

एक युवक मुझे मिलने श्रीनगर से आया, अंधा युवक। मैंने उससे पूछा तू... आने में तुझे बड़ी तकलीफ हुई होगी। श्रीनगर से इतने दूर आना, इतनी गाड़ियां बदलनी। और तू अंधा है। उसने कहा, इस अंधेपन के कारण मुझे बड़ी सुविधा है। मुझे अड़चन आती ही नहीं। कोई न कोई मुझे उतार देता है गाड़ी से, कोई न कोई मुझे चढ़ा देता है गाड़ी में। अब आप यह देखिये कि वह रिक्शेवाला बाहर खड़ा है, वह मुझे मुफ्त ले आया है स्टेशन से और प्रतीक्षा कर रहा है कि आपसे मिल लूं तो मुझे धर्मशाला तक पहुंचा दे।

अंधे पर एक दया आती है। कारण है। क्योंकि अस्सी प्रतिशत जीवन वंचित

हो जाता है।

तो आंख से हम जीवन के अधिक अनुभव लेते हैं। इससे तुम यह नतीजा मत ले लेना कि सभी अनुभव आंख से लिये जा सकते हैं। फिर तुम संगीत सुनने आंख से मत चले जाना, नहीं तो मुश्किल में पड़ जाओगे। अगर तुमने यह जिद्द की कि मैं तो आंख से ही सुनूंगा तभी मानूंगा कि संगीत होता है, तो फिर संगीत नहीं है। तुम्हारे इसी निर्णय में कि मैं आंख से सुनूंगा तो ही मानूंगा कि संगीत होता है, संगीत को समाप्त कर दिया। संगीत अब है ही नहीं। तुम्हारे लिये जगत ध्वनिशून्य हो गया। क्योंकि संगीत को सुनने का केंद्र कान है, आंख नहीं। न कान से कोई देख सकता है, न आंख से कोई सुन सकता है।

मस्तिष्क बाहर के जगत को जानने का यंत्र है। तर्क--बाह्य को समझने की प्रक्रिया है। प्रेम--आंतरिक को समझने की प्रक्रिया है। जिसने यह तय कर लिया कि हम तो तर्क से ही चलेंगे क्योंकि तर्क ने बहुत कुछ दिया--और मैं भी कहता हूं कि बहुत कुछ दिया। सारे विज्ञान का विकास तर्क का विकास है। आदमी को आज जो चीजें उपलब्ध हैं वे सब विज्ञान से उपलब्ध हैं, सब तर्क से उपलब्ध हैं। इसलिए आदमी कहता है कि मैं तो ईश्वर को भी मानूंगा तो तर्क से मानूंगा। मगर फिर भूल हो रही है। ईश्वर तर्क के द्वार से उपलब्ध नहीं होता। जैसे ध्वनि कान से ऐसे हृदय से ईश्वर; भाव से।

तुम कहते हो, 'समझ में नहीं आता।' समझ में आयेगा ही नहीं। समझ को अलग रख दो तो समझ में आयेगा। एक और समझ है, जो हृदय की है। उस समझ का तुम्हारी तथाकथित बुद्धि की समझ से कोई संबंध नहीं, वह एक और ही समझ है।

'समझ में नहीं आता कि कबीर और धरमदास जैसे परमभक्तों को भी...।'

अब तुम कहते जरूर हो, 'परमभक्त;' लेकिन तुम्हें भक्ति का कुछ पता नहीं है। परमभक्त ही तो परम ढंग से रोयेगा। छोटे-मोटे भक्त छोटे-मोटे ढंग से रोयेंगे। छोटे-छोटे आंसू निकलेंगे, ऐसे कंजूसी से किसी तरह गिरायेंगे। परमभक्त के आंसुओं की बाढ़ आ जायेगी। उसके आंसुओं में उसकी आत्मा होगी। उसके आंसुओं में उसका निवेदन है, उसका अनुभव है। वह कहता है, परमात्मा को इसके सिवाय कहने का और कोई ढंग ही नहीं।

तुमने नहीं किया अनुभव कभी-कभी? जब कोई भी चीज सीमा के बाहर हो जाती है तो आंसुओं के सिवाय कहने का कोई उपाय नहीं होता। तुम बड़े आनंदित हुए हो, आंसू आ जाते हैं। तुम बड़े दुखी हुए हो, आंसू आ जाते हैं। बड़े दुख में भी आंसू आते हैं, बड़े सुख में भी आंसू आते हैं। क्यों? जब भी कोई चीज इतनी बड़ी हो जाती

है कि सम्हाले नहीं सम्हालती भीतर, आंसुओं से बहती है।

आंसू सदा ही दुख के नहीं होते। और अगर तुमने दुख के ही आंसू जाने हैं तो तुमने अभी असली आंसू नहीं जाने। आसुओं का बिलकुल निचला हिस्सा जाना है। अभी तुमने ऊपर के आंसू नहीं जाने। अभी तुमने निम्नतम आंसू जाने हैं। अभी तुमने श्रेष्ठतम आंसू नहीं जाने। अभी तुम आंसुओं की एक और यात्रा है उससे अपरिचित हो। आनंद के भी आंसू हैं, अहोभाव के भी आंसू हैं।

फिर आदमी कहे कैसे? परमात्मा से इतना प्रसाद मिला है उसे कहे कैसे? वाणी कहने में असमर्थ, लेकिन आंखें कह सकती हैं।

तो आंसू परम अभिव्यक्ति भी हैं और आंसू पवित्रता भी हैं।

ये जो तुम्हारी बाहर की आंखें हैं और ये जो बाहर के आंसू हैं, ये भीतर की आंख और भीतर के आंसुओं के प्रतीक हैं। जैसे तुमने सुना है कि एक भीतर की आंख भी होती है, ऐसे ही भीतर के भी आंसू होते हैं। शायद किसी ने तुमसे यह न कहा हो, लेकिन भीतर की आंख होगी तो भीतर के आंसू भी होंगे। यह जिन आंसुओं की चर्चा है धरमदास के वचनों में, ये भीतर के आंसू हैं। जरूरी नहीं है कि धरमदास की ऊपर की आंखें आंसुओं से भरी रही हों। यह एक आंतरिक अनुभव है।

और आंसू अगर तुम चक्षु-विशेषज्ञ से पूछो, आंख के डॉक्टर से पूछो कि आंसू का क्या प्रयोजन है? इसकी क्या अर्थवत्ता है मनुष्य के शरीर में? तो वह कहेगा कि आंसुओं का प्रयोजन है आंखों को स्वच्छ रखना; धूल न जमने देना। आंसुओं के धोते --आंसुओं के द्वारा आंखें धुलती रहती हैं, ताजी रहती हैं। आंसू आर्द्रता है आंखों की। इसलिए जो आदमी रोना भूल जाता है उसकी आंखें कठोर हो जाती हैं।

पुरुषों की आंखें अक्सर कठोर हो जाती हैं, पथरीली हो जाती हैं क्योंकि सारी दुनिया में यह मूढ़ता सिखाया जाती है कि पुरुष को रोना नहीं चाहिये। पुरुष कैसे रो सकता है? यह तो स्त्रैण बात है। प्रकृति भेद नहीं करती। पुरुष की आंख में भी आंसू की ग्रंथि उतनी ही बड़ी है जितनी स्त्री की आंख में है। इसलिए प्रकृति ने तो कोई भेद नहीं किया। नहीं तो प्रकृति देती ही नहीं। जैसे पुरुष को स्तन नहीं दिये क्योंकि उसे दूध पिलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी बच्चे को। उसको गर्भ ही नहीं मिला। वैसे ही आंख में ग्रंथि भी न होती आंसू की, अगर प्रकृति ने भेद किया होता स्त्री-पुरुष की आंखों में। लेकिन जितनी बड़ी ग्रंथि स्त्री कीं आंखों में है उतनी ही पुरुष की आंखों में है। पर स्त्री की आंख में तुम्हें एक ताजगी, एक चमक, एक आर्द्रता मिलेगी। एक भाव मिलेगा। पुरुष की आंखें पथरीली हो जाती हैं; कठोर हो जाती हैं। आंखों को धुलने का मौका नहीं रह जाता।

कभी-कभी रोओ। कभी-कभी रोना बड़ा आनंदपूर्ण है। उसको 'रोना-धोना

कहना ही मत, उसको कहो 'रोना-गाना'। कभी कभी रोओ, गाओ। और कभी ऐसे मौके आते हैं जब पिघलो! नहीं तो तुम पत्थर हो जाओगे।

और जो बाहर की आंख के संबंध में सच है वह भीतर की आंख के संबंध में और भी ज्यादा सच है। वह जो तीसरी आंख है, वह जब तक तुम भीतर न रोओगे, जब तक तुम्हारा हृदय रुदन से न भरेगा तब तक स्वच्छ न होगी।

> याद में उस बुत के रोयीं इस कदर आंखें मेरी
> पुतलियां दोनों नहा-धोकर बरहमन हो गयीं

रोओगे तो ब्राह्मण हो जाओगे।

> तेरे हमनाम को जब कोई पुकारे है कहीं
> जी धड़क जाता है मेरा, कहीं तू हो न हो!

भक्त प्रतिपल तैयार है। हर घड़ी राह देखता है। हर चीज उसे अपने प्यारे की याद दिलाती है। हर चीज, हर इशारा उसे प्यारे की तरफ ले जाता है।

तुमने कभी प्रेम किया? तुमने अगर कभी प्रेम किया तो हर चीज तुम्हें अपनी प्रेयसी की याद दिलाती है, अपने प्रेमी की याद दिलाती है। कोई दूसरी स्त्री निकल जाती है, हवा में लहराता उसका आंचल--और तुम्हें अपनी प्रेयसी की याद आ गयी। कोई पड़ोस में स्त्री बोलती है, उसके कंठ की आवाज--तुम्हें अपनी प्रेयसी की याद आ गयी। अगर तुमने प्रेम किया किसी स्त्री को तो हर स्त्री किसी अर्थ में तुम्हें अपनी प्रेयसी की याद दिलाती है। उसके चलने का ढंग, उसके बोलने का ढंग --कोई न कोई चीज। असल में तुम तत्पर हो। हर बहाने से तुम अपने प्रेमी की याद कर लेते हो।

जिसने परमात्मा को प्रेम किया उसे हर चीज--वृक्षों के पत्ते और फूल और आकाश के तारे और नदियों से बहती हुई धार और पहाड़ों से उतरते हुए झरने--सब किसी न किसी अर्थ में उसे अपने परमात्मा की ही भाव-भंगिमाएं, उसी का आंचल मालूम होते हैं।

> तेरे हमनाम को जब कोई पुकारे है कहीं
> जी धड़क जाता है मेरा, कहीं तू ही न हो!

फिर भक्त की मजबूरियां भी हैं, वे भी समझो। भक्त ने देख लिया उस विराट को और फिर भी बंधा है इस सीमित में। अनुभव कर लिया उस अनंत का, फिर भी अभी जंजीरें पड़ी हैं देह की। अभी जीवन में रुका है।

> जिंदगी रोग हो और मौत भी आये न करीब
> किसी मजबूर को इतना न सताया जाए

तो रोता है। रोना उसकी प्रार्थना भी है। वह रो-रोकर यह कहता है, यह

मामला क्या है ? अब तो मुझे बुला लो, अब तो मुझे छुड़ा लो ।

जिंदगी रोग हो और मौत भी आये न करीब
किसी मजबूर को इतना न सताया जाए

और मैं मजबूर हूं, मेरे किये कुछ हो नहीं सकता । होगा तो तेरे किये होगा। तू करेगा तो होगा।

किसी मजबूर को इतना न सताया जाए

फिर भक्त खुमार में रहने लगता है, एक नशे में रहने लगता है । क्योंकि सब तरफ से उसे परमात्मा घेरे हुए मालूम पड़ता है । हवायें उसकी, रोशनियां उसकी, आसपास हर तरह के स्त्री-पुरुषों में उसकी झलक, पशु-पक्षियों में उसकी झलक । एक खुमार में रहने लगता है, एक नशे में रहने लगता है। उस नशे में रोता है । उस नशे में डोलता है। उस नशे में गाता है ।

लज्जीदा मुझमें है मय दोशीजा का खुमार
कुछ होश में जरूर हूं, फिर भी नशे में हूं

तुम भक्त को उसकी ही भाषा में समझो । तुम्हें भक्त को समझना है तो उसकी शैली, उसका ढंग, उसका रंग सहानुभूति से पकड़ो । तर्क और संदेह और विचार के रास्ते अलग हैं। भाव के जगत में उनकी कोई गति नहीं है ।

परमात्मा दिखाई पड़ जाता है तो भक्त को लगता है, बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि अब तक क्यों नहीं दिखा ? और कितना मैंने गंवाया ! और कल भी दिख सकता था और परसों भी दिख सकता था। क्योंकि जब दिखता है तो पता चलता है वह तो सदा से था, मैं ही शायद आंख बंद किये बैठा था ।

अभी जिंदा हूं लेकिन सोचता रहता हूं खल्वत में
कि अब तक किस तमन्ना के सहारे जी लिया मैंने

कौन-सी चीज मुझे जिलाये रखी परमात्मा के बिना ? उस प्रेमी के बिना कौन-से कारण से मैं जी रहा था? जीने योग्य कुछ भी नहीं था फिर भी जी रहा था। अतीत के लिये भी रोता है भक्त। वे जनम-जनम, वे चौरासी कोटियों की यात्राएं—किसलिए ? 'कि अब तक किस तमन्ना के सहारे जी लिया मैंने ।' कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, सब अकारण मालूम पड़ता है । जो अब तक किया-धिरा, वह सब व्यर्थ मालूम पड़ता है। और अब जो करने योग्य है वह बस के बाहर । वह तो जब वह चाहे, उसकी मर्जी से होगा। 'किसी मजबूर को इतना न सताया जाए !'

और जैसे-जैसे भक्त करीब पहुंचने लगता है परमात्मा के, वैसे-वैसे मिटने लगता है। उसके मिटने से भी उसके आंसू बहते हैं। वे उसके पिघलने की भी खबर लाते हैं। वे खबर लाते हैं कि भक्त अब धीरे-धीरे खो रहा है। आंखें कठोर हों,

आंसुओं से अपरिचय हो तो तुम कभी अहंकार से मुक्त न हो सकोगे ।

मौजे-गिरदाब से बचाये सफीने लेकिन
जाने क्यों डूब गये आते ही साहिल की तरफ

बच गये तूफानों से, आंधियों से, अंधड़ों से । 'मौजे-गिरदाब से बचाये सफीने लेकिन ।' नावें बचकर आ गयीं तूफान से । संसार बड़ा तूफान है। और क्या तूफान होगा ?

मौजे-गिरदाब से बचाये सफीने लेकिन
जाने क्यों डूब गये आते ही साहिल की तरफ

और जैसे ही किनारा आता है, नावें डूब जाती हैं। परमात्मा ऐसा किनारा है जो मझधार जैसा है। जिसमें डूब जाना होता है। उसमें जो डूबते हैं वे ही उसे पाते हैं । और आंसुओं में डूबना न आये तो डूबना आता ही नहीं। आंसुओं में डूबनेवाला ही जानता है कि डूबना क्या है। इसलिए मेरी मानो, भक्तों के रोने को रोना-धोना मत कहो ।

पूछा तुमने 'समझ में नहीं आता कि कबीर और धरमदास जैसे परमभक्तों को भी विरह सताये ।'

और किसको सतायेगा ? उन्हीं को सता सकता है । जिसने चखा है थोड़ा रामरस, उन्हीं को सता सकता है । जिन्हें स्वाद लगा थोड़ा, उन्हीं को सता सकता है ।

'वे साधारण प्रेमीजनों जैसे रोने-धोने के गीत लिखें, यह समझ में नहीं आता।'

इससे सिर्फ एक ही बात जाहिर होती है कि साधारण जनों के प्रेम में भी कुछ असाधारण है । और असाधारण प्रेमियों के प्रेम में भी कुछ साधारण है। दोनों जुड़े हैं । इसलिए तो मैं कहता हूं संभोग से समाधि तक की यात्रा संयुक्त है। संसार से लेकर निर्वाण तक की यात्रा का मार्ग एक ही है, संयुक्त है, जुड़ा है। इस छोर पर संभोग, उस छोर पर समाधि । इस छोर पर संसार, उस छोर पर निर्वाण । इस छोर पर काम, उस छोर पर राम । काम ही राम हो जाता है ।

संसार को और परमात्मा को हमने निरंतर विपरीत देखने की जो आदत बना ली है उससे अड़चन होती है । हमने यह धारणा बिठा ली है । तथाकथित साधु-संत यही समझाते फिर रहे हैं सदियों से, कि परमात्मा और संसार में विरोध है । मैं तुमसे कहना चाहता हूं, उसका यह संसार है, उसमें और उसके संसार में विरोध कैसे हो सकता है ? थोड़ा सोचो तो !

एक संगीतज्ञ में और उसके संगीत में विरोध हो सकता है ? एक चित्रकार में और उसके चित्र में विरोध हो सकता है ? एक मूर्तिकार में और उसकी मूर्ति में विरोध हो सकता है ? एक नर्तक में और उसके नृत्य में विरोध हो सकता है ? एक

गायक में और उसके गीत में विरोध हो सकता है ? अगर गायक और गीत में विरोध हो तो गायक गाये क्यों ? और नर्तक और नृत्य में विरोध हो तो नर्तक नाचे क्यों ?

नहीं, संसार में और परमात्मा में कोई विरोध नहीं। यह उसकी ही भाव-भंगिमा है। और जिस दिन यह तुम्हें समझ में आयेगा तब तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा, यहां साधारण कुछ भी नहीं है। साधारण जन भी असाधारण को छिपाये बैठे हैं। यहां कंकड़-पत्थर हैं ही नहीं, सब हीरे हैं। हीरे भी भूल गये हैं कि हीरे हैं--यह मजबूरी है। लेकिन हैं तो हीरे ही।

मेरे पास कभी-कभी कोई आ जाता है। वह मुझसे कहता है कि आप साधारण जनों को संन्यास देते हैं ? मैं पूछता हूं असाधारण जन कहां से लाओगे ? कौन हैं असाधारण जन ? शायद पूछनेवाला सोचता है कि वह असाधारण है। वह मानकर चलता है कि मैं असाधारण हूं। ये साधारण जन--इनको आप संन्यास दे देते हैं ? मैं उनसे कहता हूं कि तुम एकाध तो ऐसा आदमी लाओ कि जो कहता हो, मैं साधारण हूं--ईमान से कहता हो। ऊपर-ऊपर कहे उसकी फिकर मत करना। ईमान से कहता हो कि मैं साधारण हूं। किसी को यह बात जंचती नहीं कि वह साधारण है। और जंचती नहीं ठीक ही है क्योंकि कोई साधारण है ही नहीं। यहां सभी असाधारण हैं। जब परमात्मा सबमें छाया हो तो कोई साधारण कैसे हो सकता है ?

यह अस्तित्व असाधारण है। इसकी घोषणा करो। और जीवन की छोटी-छोटी चीज में उस परमप्यारे को खोजना शुरू करो, तुम पाओगे। निश्चित पाओगे। अगर धूल के कण-कण में वही है तो आंसुओं की बूंद-बूंद में भी वही होगा।

उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, ऐसी प्रतीति भक्ति है।

आखिरी प्रश्न : भगवान, संन्यास लेने के पहले रोज शराब पिया करता था। यह तो दस साल की आदत थी। उसके साथ-साथ जुआ, धूम्रपान तथा अन्य व्यसन भी जुड़े थे। लेकिन जैसे ही संन्यास लिया, सब अचानक छूट गया। और ध्यान में उतरने के बाद एक ऐसा निर्मल नशा चढ़ा, जो उतरता नहीं। यह सब आपकी करुणा है, अनुकंपा है लेकिन फिर भी पूछना चाहता हूं कि यह सब कैसे हुआ ?

जब होता है तब सभी को ऐसा लगता है, यह कैसे हुआ ? क्योंकि यह तुम्हारे किये नहीं होता। और मैं तुम्हारे करने पर भरोसा भी नहीं करता। संन्यास का अर्थ इतना ही होता है कि मैं तो कर चुका सब, कुछ न हुआ, अब परमात्मा कुछ करे। संन्यास का अर्थ होता है, मैं समर्पित करता हूं। संन्यास का अर्थ होता है, मैं हार गया अपने से। अब तुम लो। और जहां ले जाना चाहो ले चलो। तुम जहां रखोगे, जैसा रखोगे, वैसा रहूंगा। तुम जो खिलाओगे, पिलाओगे, खाऊंगा, पिऊंगा। तुम्हारा

इशारा मेरी नियति होगी। संन्यास का यही अर्थ होता है।

इस घटना के बाद चीजें अपनी आप घटनी शुरू होती हैं।

यही हुआ। तुम दस साल से शराब पीते थे और दस साल से ही छोड़ने की कोशिश भी कर रहे होओगे और नहीं छूटती थी। छोड़ने की कोशिश में भी अहंकार है। समर्पित हुए। देख लिया सब करके, अपने किये कुछ नहीं होता। और एक व्यसन आता है तो दस उसके साथ आते हैं, कोई व्यसन अकेला नहीं होता। कोई बीमारी अकेली नहीं होती। अब जो शराब पी रहा है वह धूम्रपान क्यों न करे? वह सोचता है. जब शराब ही पी रहा हूं, नर्क तो जाना ही है, अब सिगरेट पीने से और क्या फर्क पड़ेगा? और जुआ भी खेल ही लूं। अब जब पाप ही कर रहा हूं तो इसमें भी क्या कंजूसी ? फिर एक व्यसन दूसरे व्यसन से जुड़ा है।

बीमारियां साथ आती हैं, दुर्गुण साथ आते हैं। सद्गुण भी साथ आते हैं। एक सद्गुण आ जाए तो धीरे-धीरे अपने पीछे अपने संगी-साथियों को ले आता है। तुम सत्य बोलना शुरू कर दो-एक छोटा-सा सद्गुण, और तुम पाओगे न मालूम कितनी चीजें उसके साथ आ गयीं। और न मालूम कितनी चीजें उसके कारण विदा हो गयीं। तुम कोई यह एक चीज शुरू कर दो, और तुम हैरान हो जाओगे।

जर्मनी के बहुत बड़े विचारक काउंट केसरलिंग को चीन के उनके एक मित्र ने एक लकड़ी की पेटी भेजी; एक बड़ी बहुमूल्य मंजूषा। प्राचीन, कोई दो हजार साल पुरानी। उस पेटी का बड़ा इतिहास। वह बड़े-बड़े लोगों के हाथ में रही, सम्राटों के हाथों में रही, बड़े कवियों, बड़े मूर्तिकारों के हाथ में रही। उसका इतिहास भी बड़ा पुराना और बड़ा प्राचीन था। सारा इतिहास भी उन्होंने साथ भेजा। और उस पेटी की एक शर्त थी बनानेवाले की--पहले बनानेवाले की शर्त थी--कि पेटी को सदा पूरब की तरफ मुंह करके रखा जाए। और अब तक दो हजार साल तक उसका पालन किया गया है।

पेटी इतनी प्यारी कि जिसके हाथ पड़ी उसी ने शर्त का पालन किया। काऊंट केसरलिंग को उनके मित्र ने लिखा कि यह पहली दफा पश्चिम आ रही है पेटी। यह शर्त पालन की जानी चाहिए। इसका मुंह पूरब की तरफ़ रहे।

काऊंट केसरलिंग ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। इसमें कुछ अड़चन न थी। मैंने अपने कमरे में बीच टेबल पर उसको सजाया। अद्भुत चीज थी। मेरे घर में इतना मूल्यवान कुछ भी नहीं था। उसका मुंह मैंने पूरब की तरफ किया क्योंकि जब शर्त थी तो शर्त पूरी होनी थी। और इतने प्रेम से किसी ने आग्रह किया था। और दो हजार साल तक किसी ने शर्त तोड़ी नहीं थी।

लेकिन तब अड़चन हो गयी। पूरा कमरा उस पेटी की वजह से गड़बड़ मालूम

होने लगा। तो पूरे कमरे का फर्नीचर फिर से जमवाना पड़ा, बदलवाना पड़ा। वह पेटी से मेल खाना चाहिए न! नहीं तो पेटी बिलकूल बेबूझ मालूम पड़े बीच में रखी। उसमें कोई तुक नहीं, बेसुरी मालूम पड़े। और इतनी बहुमूल्य कि कमरे को बदलने जैसा लगा। लेकिन जब कमरे को बदल डाला पूरा, द्वार-दरवाजे तक बदल डाले उस पेटी के साथ तालमेल खाने के लिये, एक स्वर बनाने के लिये। तब हैरानी अनुभव हुई कि वह कमरा पूरे घर में तालमेल खो गया।

केसरलिंग भी एक जिद्दी आदमी था। उसने पूरा मकान बदल डाला। तब पाया उसने कि वह मकान बगीचे साथ बेमेल हो गया।

एक चीज आती, उसके साथ दूसरी चीजें आनी शुरू होती हैं। और उस पेटी ने पूरा का पूरा भवन बदल दिया, बगीचा बदल दिया। सारा रूपांतरण हो गया।

संन्यास एक प्रारंभ है। तुम्हारा यह भाव कि मैं समर्पित हो जाऊं। तुम अपने से हार गये, थक गये, अब तुम कहते हो राम के हाथ में छोड़ दूं। 'हारे को हरिनाम।' उस छोड़ने में ही तुम्हारे जीवन में पहली किरण उतरी तुम्हारे पार से। अब यह किरण बदलाहट शुरू करेगी।

शायद तुम शराब इसीलिए पीते थे... मेरा अनुभव यही है, मेरा अवलोकन यही है कि लोग शराब इसीलिए पीते हैं कि वे परमात्मा को खोज रहे हैं। शराब पीने में और परमात्मा के खोजने में कुछ समानता है। शराब पीकर तुम अपने को भूल जाते हो—थोड़ी देर को सही, मगर अपने को भूल जाते हो। उसी से राहत मिलती है। आत्म-विस्मरण! परमात्मा को पीकर तुम सदा के लिये अपने को भूल जाते हो। शराब छोटी शराब है, परमात्मा विराट शराब है। शराब का पीया फिर जागेगा और अहंकार को फिर अपनी जगह पायेगा; शायद और भी विकृत पायेगा। चिंताएं सब अपनी जगह पायेगा, शायद और भी बुरी हो गयी होंगी, और भी उलझ गयी होंगी क्योंकि समय बीत गया।

लेकिन शराबी भी खोज रहा है किसी न किसी अर्थ में—आत्म-विस्मरण, अनत्ता। शराबी भी चाह रहा है किसी तरह झंझट छूट जाए चिंताओं से। झंझट छूट जाए इस मैं से। उपाय गलत कर रहा है लेकिन आकांक्षा सही है। गलत दिशा में जा रहा है लेकिन खोज जो रहा है वह तो सही है।

शायद संन्यास के साथ ही तुम्हारी दिशा बदल गयी। संन्यास यानी दिशा का रूपांतरण। शराब छूट गयी होगी। चमत्कार न मानो। परमात्मा के लिये कुछ भी चमत्कार नहीं है। तुम छोड़ो भर, और चमत्कार पर चमत्कार होने शुरू हो जाते हैं। तुम उस पर भरोसा भर करो, तुम कहो भर कि तू मुझे अपने हाथ में ले ले और जैसा चाह, जैसा ढालना चाहे, ढाल दे। मैं अड़चन न दूंगा, मैं बाधा न दूंगा। और तुम

हैरान हो जाओगे, जो तुम्हारे किये-किये नहीं हुआ वह तुम्हारे बिना किये होना शुरू हो जाता है। और शराब गयी तो उसके साथ धूम्रपान गया होगा, जुआ गया होगा। वे उसके साथ आये थे। उनका सत्संग था, उनकी मंडली थी। जब मंडली के मालिक ही चले गये, जब गुरु ही चले गये तो शिष्य भी चले गये।

और तुमने लिखा कि ध्यान में उतरने के बाद एक ऐसा निर्मल नशा चढ़ा है जो उतरता ही नहीं। इसी की तुम्हें शराब में तलाश थी। वह उतर-उतर जाता था, अब तुम्हें ठीक शराब मिल गयी। मैं तो शराब ही बेचता हूं।

धीरे-धीरे इस राज का रहस्य भी तुम्हें समझ में आ जायेगा। रहस्य इतना ही है कि तुमने उसे मौका दिया। तुमने परमात्मा को मौका दिया। उसके हाथ में असंभव संभव है। छोड़ना भर सीखो।

रामकृष्ण कहते थे, तुम नाहक पतवारें चला रहे हो। पाल क्यों नहीं खोलते? रखो पतवारें, पाल खोल दो। उसकी हवाएं उस तरफ ले जाने के लिये तैयार हैं। बस यही बात है।

लोग पतवारें चला रहे हैं और जूझ रहे हैं नदी की धार से। और उसकी हवाएं ले जाने को तैयार हैं। तुम पाल खोलो, हवाएं पाल में भर जायेंगी और नाव चल पड़ेगी। और तुम चकित होकर सोचोगे यह क्या हुआ! मैं तो पतवारें चला-चला कर हारा जा रहा था और नाव चलती नहीं थी। भुजाएं मेरी थक गयी थीं। और अब नाव ऐसी भागी जा रही है। कौन इसे ले जा रहा है? उसकी हवाएं इसे ले जा रही हैं। हवाएं अदृश्य हैं, ऐसे ही उसकी अनुकंपा अदृश्य है।

संन्यास ने तुम्हारे जीवन के पाल खोल दिय। अब उसकी हवाएं ले जायेंगी वहीं, जहां तुम सदा जाना चाहते थे लेकिन तुम्हारे कारण नहीं जा पाते थे। संन्यास ने तुम्हारे अहंकार को विसर्जित किया है। और थोड़ा-बहुत बचा हो, उसे भी जाने दो। अहंकार जाए यही सौभाग्य।

आज इतना ही।

बिन दरसन भई बावरी, गुरु द्यो दीदार ॥
ठाढ़ि जोहों तोरी बाट मैं, साहैब चलि आवो ।
इतनौ दया हम पर करौ, निज छवि दरसावो ॥
कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार ।
ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावो ॥
बंदा भूला बंदगी, तुम बकसनहार ।
धरमदास अरजी सुनो, कर द्यो भवपार ॥

मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी ॥
तीरथ बरत कछू नहिं करहूं, वेद पढ़ौं नहिं कासी ।
जंत्र मंत्र टोटका नहिं जानौ, निसदिन फिरत उदासी ॥
यहि घटि भीतर बधिक बसत है, दिये लोभ की टाटी ।
धरमदास बिनवै कर जोरी सतगुरु चरनन दासी ॥

अब मोहिं दरसन देहुं कबीर ॥
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर ।
अमृत भोजन हंसा पावैं, सब्द-धुनन की खीर ॥
जहं देखो जंह पाट पटंबर, ओढ़न अम्बर चीर ।
धरमदास की अरज गोसाईं, हंस लगावो तीर ॥

प्रवचन : ९
दिनांक : ८।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना ।
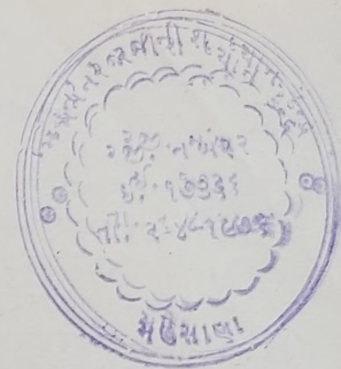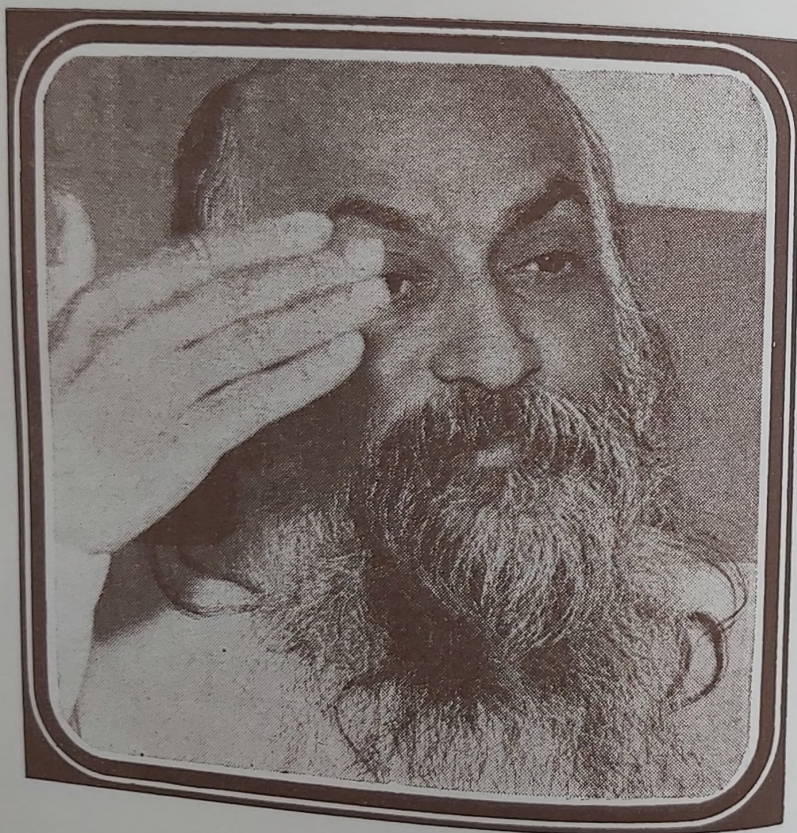
बिन दरसन भई बावरी, गुरु द्यो दीदार

आज के सूत्र अपूर्व हैं। समझ से समझने के काम के नहीं हैं, नासमझी से समझने के काम के हैं। जो नासमझ हैं वे ही समझ सकेंगे। जो समझदार हैं वे चूक जायेंगे। समझ से क्षुद्र बातें समझी जाती हैं। नासमझी से विराट समझा जाता है।

ज्ञान से बाहर की यात्रा होती है, अज्ञान से भीतर की। ज्ञान से पर जाना जाता है। स्व के मार्ग में ज्ञान बाधा हो जाता है। वहां तो चाहिए निर्दोष चित्त, छोटे बच्चों जैसा भाव।

धन्यभागी है वह, जिसे वैसा भाव मिले। न मिले तो उस भाव की तलाश करनी चाहिए। ये सूत्र भावुक हृदय के लिये अपूर्व इशारे हैं। इनमें पूरी मंजिल पूरी हो जाती है।

बिन दरसन भई बावरी

मैं तुझे देखे बिना पागल हुआ जाता हूं।

आश्चर्य है कि मनुष्य परमात्मा को बिना देखे जी कैसे लेता है? एक क्षण भी जीने योग्य नहीं है। जिसने उसे नहीं जाना वह क्यों जी रहा है, यह विचारणीय है, आश्चर्य की बात है। और जिस दिन तुम जानोगे उसे, उस दिन तुम्हें भरोसा न आयेगा कि इस जानने के पहले तुम जी कैसे लिये! किस सहारे जी लिये? किस आधार पर जी लिये? किस हेतु से जी लिये?

लेकिन जब तक हमें उसका दर्शन नहीं मिला है तब तक हमें याद ही नहीं है, स्मरण ही नहीं है कि हम क्या हो सकते हैं! बीज जब तक टूटा नहीं तब तक उसे पता भी कैसे हो कि कौन-सी अनंत संभावनाएं उसके भीतर छिपी हैं। पक्षी जब तक उड़ा नहीं, उसे कैसे पता हो आकाश का आनंद, मुक्ति का आनंद, स्वातंत्र्य का आनंद? जब तक प्रेम न चखा हो तब तक प्रेम के स्वाद का पता भी कैसे लगे!

हां, एक बार झलक मिल जाए फिर पागलपन पैदा होता है। एक बार झलक मिल जाए तो फिर प्यास जगती है। और ऐसी जगती है कि फिर बुझाये नहीं बुझती।

सद्गुरु के संग-साथ, सद्गुरु के पास, सद्गुरु के निकट रहते-रहते कभी सद्गुरु के भीतर जो घटा है, एक पलक को सही, बिजली की तरह शिष्य के सामने भी कौंध जाता है। यही सत्संग का राज है।

सत्संग संक्रामक है। बीमारियां ही नहीं लगतीं एक-दूसरे से, स्वास्थ्य भी लगता है। और संसार ही एक-दूसरे से नहीं लग जाता, सत्य भी लगता है। तुम जरा अपनी जीवन-प्रक्रिया को देखो। कोई धन कमाने निकला था, किसी को धन कमाते देखकर तुम धन कमाने में लग गये हो। कोई पद के लिये आतुर था, उसकी आतुरता तुम्हें भी पकड़ गयी है, तुम भी पद के पीछे चल पड़े हो।

तुम सीखते कहां हो? सीखते किससे हो? जो भी तुम जानते हो जीवन के संबंध में वह आसपास से आता है; किसी से आता है।

सत्संग का अर्थ है किसी ऐसे व्यक्ति के पास होना, जिसकी आंखों में परमात्मा भर गया है। उसके पास रहना काफी है। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। उसके पास उठना, बैठना। यह अवसर जितना मिले उतना अच्छा है। क्योंकि कब, किस क्षण में तुम्हारा हृदय ग्राहक होगा, किस क्षण में जो गुरु में घटा है वह तुममें छलांग लगा जायेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। कभी तुम खुले होते हो, कभी तुम बंद होते हो। कभी तुम लेने को तैयार होते हो, कभी तुम लेने को तैयार नहीं भी होते हो। कभी तुम्हारे मन में हजार-हजार विचारों की तरंगें होती हैं। तब तुम गुरु के पास होकर भी दूर हो। लेकिन कभी ऐसे क्षण भी आ जाते हैं जब विचार की तरंगें नहीं होतीं या बहुत कम होती हैं; न के बराबर होती हैं। उसी क्षण, वह जो गुरु के भीतर उमगा है उसकी कुछ बूंदें तुम्हारे कंठ में भी उतर जाती हैं। उसी क्षण, जो रोशनी गुरु के भीतर जगी है, वह तुम्हारे अंधेरे को भी पार कर जाती है, बिजली तरह कौंध जाती है।

बस, उसके बाद फिर दर्शन की इच्छा जगती है। उसके पहले तो दर्शन सब बातचीत है। जिसे तुमने देखा ही नहीं है, जिसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है उसके लिये तुम प्यासे भी कैसे हो सकते हो? तब तक तुम्हारी सब पूजा और प्रार्थना झूठी है। तब तक तुम जिन मंदिरों में जाते हो, मस्जिदों में जाते हो, गुरुद्वारों में, वह जाना औपचारिक है। एक संस्कार है सामाजिक, तुम उसे पूरा कर देते हो।

मंदिर-मस्जिदों से नहीं होगा, जीवित मंदिर खोजो। पत्थर की दीवालों से नहीं होगा, कहीं जहां परमात्मा अभी भी धड़क रहा हो, किन्हीं आंखों में झांको, जिन आंखों में परमात्मा झांका हो। किन्हीं आंखों में झांको, जो आंखें परमात्मा में झांक चुकी हों। किसी ऐसे के संग-साथ हो लो, सौभाग्य के किसी क्षण में उसका मतवालापन तुम्हें भी पकड़ लेगा। सौभाग्य के किसी क्षण में एक झंझावात की तरह तुम्हारे चारों

तरफ ऊर्जा का प्रवाह होगा। तुम एक अंधड़ में फंस जाओगे। एक अंधड़, जो तुम्हें अनंत की यात्रा पर ले जा सकता है।

तब दर्शन की इच्छा जगती है। गुरु की आंख में झांककर परमात्मा में झांकने की अभीप्सा जगती है। फिर चैन नहीं। फिर बावरापन है।

बिन दरसन भई बावरी

इसका अर्थ समझ लेना। इसका अर्थ यह है कि प्राथमिक घटना घट चुकी है। एक बार झलक मिल चुकी है। अब दर्शन की इच्छा है। थोड़ा-सा स्वाद लग गया है। होंठों ने थोड़ा-सा रस पी लिया है, अब और पीने की इच्छा है। अब बिना पिये नहीं रहा जाता।

मेरा जौके-दीद आज़माके तो देखें
जरा रुख से पर्दा उठाके तो देखें

तब भक्त कहता है, जरा मेरी प्यास को आजमाओ। जरा मेरी अभीप्सा को परखो। यह जो मेरे प्राणों में जल रही है उत्कंठा, जरा इसकी तरफ देखो।

मेरा जौके-दीद आजमाके तो देखें
जरा रुख से पर्दा उठाके तो देखें

परमात्मा को चुनौती देना शुरू करता है भक्त। फुसलाता है, मनाता है, झगड़ता है, पुकारता है। कभी नाराज होकर चुप हो जाता है, नहीं पुकारता। कभी रोता है, कभी पीठ फेर लेता है। ये सारी भक्ति की भाव-भगिमाएं हैं। जैसे प्रेमी झगड़ते हैं, भक्त भगवान से झगड़ता है।

मैं न कहता था, उठाओ तुम न आरिस से नकाब
देख लो वे सुबह के फीके उजाले पड़ गये

कई तरह से फुसलाता है, चुनौती देता है कि तुम्हारी झलक अगर मिल जाए तो चांद-तारे फीके पड़ जाएं। तुम्हारी झलक अगर मिल जाए तो सूरज अंधेरा हो जाए। तुम जरा पर्दा उठाओ।

मुझको यह आरजू कि उठाएं नकाब खुद
उनको यह इंतजार, तकाजा करे कोई

ऐसा दोनों के बीच, सीमा और असीम के बीच, क्षुद्र और विराट के बीच, बूंद और सागर के बीच बहुत गुफ्तगू चलती है, बहुत वार्ता होती है, बहुत चर्चा होती है।

भक्त रोता है। और करे भी क्या? आंसू ही प्रार्थना बन सकते हैं। और भक्त के पास भी है क्या?

आज उस बज्म में तूफान उठाकर उठे
यां तलक रोये कि उनको भी रुलाकर उठे

और जब तक भक्त को अनुभव नहीं होने लगता कि मेरे आंसुओं के उत्तर आने लगे; कि इधर मैं रो रहा हूं, इधर अस्तित्व रोने लगा, तब तक भक्त चैन नहीं लेता।

बिन दरसन भई बावरी

ऐसे पागल तुम हो जाओ तो परमात्मा मिलता है। यह कीमत चुकानी ही पड़ती है। मुफ्त यहां कुछ भी नहीं है। अक्सर लोग संसार की क्षुद्र चीजों के लिये बड़ी कीमत चुकाने को तैयार हैं और परमात्मा के लिये कोई कीमत चुकाने को तैयार नहीं हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, परमात्मा कहां है? हम देखना चाहते हैं। मैं उनसे पूछता हूं, चुकाने की क्या तैयारी है? चुकाने के संबंध में वे कहते हैं, हमने सोचा ही नहीं; हमने विचार ही नहीं किया। हम तो परमात्मा को देखना चाहते हैं, है भी?

मगर मूल्य क्या चुकाओगे? परमप्यारे को खोजने चले हो, जो भी तुम्हारे पास है, सब दे देना होगा। सर्वहारा हो जाओगे तो ही उसे पाओगे। ऐसी घड़ी जरूर आती है जब तुम्हारा रुदन तुम्हारे रोयें-रोयें से होता है तो उस तरफ भी आंसू टपकते हैं। वृक्ष रोते हैं और चांद-तारे रोते हैं। इस जगत में तुम्हारे भीतर उठे प्रश्नों के उत्तर छिपे हैं। यह जगत प्रतीक्षा कर रहा है कि तुम पुकारो तो उत्तर आये। यह जगत तुम्हारे प्रति उपेक्षा भरा हुआ नहीं है।

यही परमात्मा मानने का अर्थ है। परमात्मा मानने का यह अर्थ नहीं होता कि ऊपर कोई एक वृद्ध पुरुष बैठा है, जो सारे जगत को चला रहा है। वे तो बच्चों की कहानियां हैं। आस्तिक भी उनमें उलझे हैं, नास्तिक भी उनमें उलझे हैं। बच्चों की कहानियां हैं।

परमात्मा के मानने का सार-अर्थ क्या होता है? इतना ही अर्थ होता है कि यह अस्तित्व हमारे प्रति उपेक्षा से भरा हुआ नहीं है। यह अस्तित्व हममें रस रखता है; इतना ही अर्थ है। यह अस्तित्व हममें उत्सुक है। यह हमारे विकास में उत्सुक है। यह हमारे चरम उत्कर्ष में उत्सुक है। यह हमें जीवन की परमआनंद की यात्रा पर ले जाना चाहता है।

हमारे प्रति जगह तटस्थ नहीं है--परमात्मा के मानने का इतना ही अर्थ है। अगर हम रोयेंगे तो कोई हाथ इस अस्तित्व से उठेगा हमारे आंसुओं को पोंछने को। मगर रोना आना चाहिए। झूठे आंसुओं से काम नहीं होगा। थोथे आंसुओं से काम नहीं होगा। नकली अभिनय के आंसू काम नहीं करेंगे।

आज उस बज्म में तूफान उठाकर उठे
यां तलक रोये कि उनको भी रुलाकर उठे

तब प्रार्थना पूरी होती है। तब तुमने कीमत चुकाई।

कितने शबे-फिराक बहे अश्क ऐ चमन
रोया हूं किस कदर यह सितारों से पूछिए

चांद-तारे हिसाब रखते हैं। यह अस्तित्व तुम्हारे आंसुओं का हिसाब रखता है। तुम्हारे व्रत-उपवासों का नहीं, लेकिन तुम्हारे आंसुओं का जरूर हिसाब रखता है। तुम्हारे पूजा-पाठों का नहीं, काशी और काबा की यात्रा का नहीं, लेकिन तुम्हारे आंसुओं का जरूर हिसाब रखता है। क्योंकि आंसू आत्मिक हैं। वही तुम्हारे जीवन का पुण्य है।

सम्यक रूप से जिसे रोना आ गया गया उससे परमात्मा ज्यादा देर छिपा नहीं रह सकता। उसे पर्दा उठाना ही पड़ेगा।

बाजी बदी थी उसने मेरे चश्मे-सर के साथ
आखिर को हार-हारकर बरसात रह गयी

इन दो छोटी आंखों से आकाश हराया जा सकता है। इन दो छोटी-सी आंखों के आंसू आकाश से होनेवाली वर्षा को फीका कर सकते हैं।

तुम्हारे इस हृदय में ऐसा सूरज छिपा है कि सारे सूरज फीके हो जाएं। और तुम्हारे इस हृदय में प्रेम की एक ऐसी संभावना छिपी है कि परमात्मा अपने आप खिंचा चला आये। लेकिन तुम अपनी संभावनाओं को जगाओ, उकसाओ।

तुम पत्थर की तरह पड़े हो। इस पत्थर से परमात्मा का मिलना नहीं हो सकता। तुम अतिकठोर हो गये हो। तुम्हारे हृदय ने न मालूम कबसे धड़कना बंद कर दिया है। तुम्हें रोमांच नहीं होता। तुम्हारे जीवन में कोई रहस्य नहीं है। तुम्हारा दर्पण इतनी धूल से जम गया है कि अब इसमें कोई प्रतिबिंब नहीं बनता। यह धूल झाड़ो। आंसू ही इस धूल को बहा ले जा सकेंगे।

और देखना, सस्ता मामला नहीं है। बाजी! दांव! खतरा है। क्योंकि जिस दिन तुम उसे देखोगे, उसके देखने में ही तुम मिट जाओगे और मर जाओगे। तुम तुम रहकर उसे न देख पाओगे। इसीलिए पागल ही उसे देख सकते हैं। क्योंकि अपने को मिटाने की हिम्मत समझदारों में नहीं होती, हिसाब-किताब लगानेवाले दुकानदारों में नहीं होती।

पहले सौ बार इधर-उधर देखा है
जब तुझे डरके एक नजर देखा है

उसके पास जानेवाले को हजार तरह के भय पकड़ते हैं। सबसे बड़ा भय तो

यही पकड़ता है कि मैं मिटा, मैं मिटा। बड़ा भय तो यह पकड़ता है। जैसे कोई दीया, मिट्टी का दीया, छोटी-सी रोशनीवाला दीया सूरज से मिलने जाए तो सूरज के सामने एकदम फीका हो जायेगा, ना-कुछ हो जायेगा। है भी या नहीं, कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

नहीं कि दीया मिट जाता है। दीया है अब भी, उतनी ही रोशनी है, मगर अब इस सूरज के सामने इस रोशनी का क्या मूल्य है? इस रोशनी का क्या अर्थ?

परमात्मा के सामने हम ऐसे ही फीके हो जाते हैं। तो जो जरा भी अहंकार से भरा है वह उससे बचता है। वह भागता है। वह दूर रहता है। वह पीठ किये रहता है। अहंकारी ही नास्तिक हो जाता है।

लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुममें से जो आस्तिक हैं वे आस्तिक हैं। आस्तिक तो मुश्किल से कभी कोई होता है। दुनिया में नास्तिक हैं और झूठे आस्तिक हैं। आस्तिक तो कोई मुश्किल से कभी होता है।

नास्तिक वह है, जिसने पीठ कर ली है। कम से कम ईमानदार है। कहता है, ईश्वर है ही नहीं। आस्तिक वह है, जो उतनी ही पीठ किये हुए है—झूठा आस्तिक, जो तुम्हें दुनिया में मिलेगा, चारों तरफ है। हर बाजार में, हर दुकान में, हर मकान में, हर मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे में। यह जो झूठा आस्तिक है, इसने भी पीठ की है ईश्वर की तरफ। लेकिन यह और भी ज्यादा चालबाज है, यह नास्तिक से ज्यादा चालबाज है। इसने एक झूठा ईश्वर बना लिया है, उसके सामने मुंह किये हुए है। असली की तरफ पीठ किये हुए है, झूठ के सामने मुंह किये हुए है।

तुमने मंदिर-मस्जिदों में जो मूर्तियां बना ली हैं वे तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं। छोटे बच्चे अपने गुड्डा गुड्डियों का विवाह करते हैं और तुम राम-सीता का विवाह करके बारात निकालते हो। क्या फर्क है? तुम्हारे जीवन में प्रौढ़ता कभी आयेगी या नहीं आयेगी? मंदिरों में तुम जिन मूर्तियों को पूज रहे हो वे तुम्हारे हाथ की बनायी हुई मूर्तियां हैं। उसको खोजो जिसने तुम्हें बनाया है। तुम उसकी पूजा कर रहे हो जिसे तुमने बना लिया है। तुम्हारा बनाया हुआ झूठ होगा, कृत्रिम होगा।

उन मूर्तियों को मूर्तिकला कहो तो मैं राजी; धर्म मत कहो। वे मूर्तियां प्यारी हो सकती हैं, सुंदर हो सकती हैं, मगर उनका संबंध सौंदर्यशास्त्र से है, धर्म से नहीं। धार्मिक होने के लिये तो नग्न होकर उसके सामने होना पड़ेगा, जो है।

बड़ी हिम्मत चाहिए। बड़ा पागलपन चाहिए। सब तरह से मिटने की शक्ति चाहिए, साहस चाहिए। और बहुत बार ऐसा लगेगा कि लौट जाएं।

पहले सौ बार इधर-उधर देखा है
जब तुझे डरके एक नजर देखा है

मगर वह एक नजर बस काम कर जाती है। उस एक नजर में ही एक संसार

का अंत हो जाता है और दूसरे जगत का प्रारंभ हो जाता है। उस एक नजर में ही यह मिट जाता है, वह प्रगट हो जाता है। उस एक नजर में ही तुम अचानक पाते हो, इस किनारे पर न रहे, उस किनारे पर हो गये।

मगर बहुत बार पीड़ा भी होती है। बहुत बार आदमी कंपता भी है, डरता भी है। रोज मेरे पास, जो लोग ध्यान में गहरे उतरते हैं, वे रोज आकर यही कहते हैं। जब किसी के जीवन में घटना करीब आने लगती है, वह कंपने लगता है। वह आकर कहने लगता है कि अब मुझे बचाओ। अब तो मुझे लगता है, या तो मैं पागल हो जाऊंगा या मर जाऊंगा। कुछ हो रहा है, जो मेरे बस के बाहर है।

परमात्मा जब होता है तो तुम्हारे बस के बाहर होता है। तुम्हारे बस के भीतर कैसे हो सकता है? तुम उस पर मुट्ठी नहीं बांध सकते। वह तो आता है बाढ़ की तरह। विराट की तो बाढ़ ही होगी। रिमझिम वर्षा नहीं होती, मूसलाधार होती। आता है उमड़ते सागर की तरह। ले जायेगा तुम्हें और तुम्हारा सब।

कई बार तुम्हें लगेगा कि ऐसा क्यों? परमात्मा को तो हमने सोचा था, एक सांत्वना की तरह आयेगा। परमात्मा आता है संक्रांति की तरह; सांत्वना की तरह नहीं। हमने तो सोचा था, परमात्मा आयेगा तो जीवन की जो चीजें हमें नहीं मिल रही हैं, मिल जायेंगी। लेकिन परमात्मा जब आता है तो तुम्हारे पास जो है उसे भी ले लेता है क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं है अभी कि तुम कूड़ा-करकट, इकट्ठा कर रहे हो। उस बाढ़ में तुम भी जाओगे, तुम्हारा कूड़ा-करकट भी चला जायेगा।

यही है आजमाना तो सताना किसको कहते हैं?
अदू के हो लिये जब तो मेरा इम्तहां क्यों हो?

और भक्त बहुत बार सोचता है कि अगर यह आजमाना है, परीक्षा हो रही है तो फिर सताना किसको कहते हैं?

अदू के हो लिये जब तो मेरा इम्तहां क्यों हो?

और भक्त कहता है, जब मैं तुम्हारा हो गया तो मेरा इम्तहान क्यों होता है? लेकिन उसके होते-होते-होते बहुत समय लगता है।

हम इंच-इंच छोड़ते हैं। हममें से बहुत कम इतने साहसी होते हैं जो इकट्ठा छोड़ देते हैं, छलांग लगा जाते हैं। हम फुटकर-फुटकर छोड़ते हैं। जरा-जरा एकेक इंच सरकते हैं, बामुश्किल सरकते हैं। इसलिए इतनी लंबी परीक्षा मालूम होती है।

मगर धनी धरमदास निश्चित पागल रहे होंगे। पागलों का ही यह काम है। उन्हीं का यह धन्यभाग है। सब दांव पर लगा दिया था। कुछ भी बचाया नहीं था। जब तक तुमने कुछ भी बचाया, उतनी ही दीवाल रहेगी। जब तक तुमने कहा कि इतना तो बचा लूं, कभी समय पर, असमय में काम पड़ेगा; उतनी दीवाल रहेगी।

जितना बचाया, वही तुम्हारे और परमात्मा के बीच दीवाल रहेगी।

बिन दरसन भई बावरी गुरु द्यो दीदार

धरमदास कहते हैं, अब और क्या चाहिए? पागल हो गया हूं। सब गंवा बैठा हूं। अब तो दर्शन दो!

जो सब गंवा देता है, सब लगा देता है और झलक नहीं पाता उसकी तकलीफ समझो। तुम तो बिना कुछ लगाये उसकी आकांक्षा करते हो। सब कुछ लगानेवाले को भी एकदम से नहीं मिल जाता। सब कुछ लगानेवाले को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। वे ही प्रतीक्षा के क्षण श्रद्धा के क्षण हैं। तब श्रद्धा बड़ी डगमगाती है। मन हजार तरह की शंकाएं उठाने लगता है कि इधर सब दांव पर लगा दिया है, यहां कुछ मिला भी नहीं। न घर के रहे, न घाट के। संसार भी गया, निर्वाण का कुछ पता नहीं चल रहा है। तो लोग ठीक ही कहते थे कि तुम पागल हो गये हो।

बिन दरसन भई बावरी, गुरु द्यो दीदार

जो सब लगा चुका है उसकी हालत वैसी है--

उसी के दिल से पूछो लज्जतें नाकामयाबी की
सफीना जिसका पानी में रहा टकराकर साहिल से

आते-आते-आते और किनारे से टकरा गये। और सफीना फिर दूर हट गया किनारा से टकराकर। सब जो गंवा चुका है, उसे लगता था आया किनारा, आया किनारा। वह आखिरी परीक्षा की घड़ी है, जब किनारे से सफीना टकराकर फिर दूर हट जाता है। सब दांव पर लगाया हुआ व्यक्ति भी एक चीज अभी बचा रखा है। तुम चौंकोगे। जब मैं कह रहा हूं, सब दांव पर लगा दिया तो क्या बचाया? अगर सब दांव पर लगा दिया यह बात सच है तो फिर कुछ नहीं बचाया। लेकिन फिर भी कुछ बचाया है। कुछ घटनाएं समझोगे, ख्याल में आयेगा।

रिंझाई अपने गुरु के पास था। उसने सब दांव पर लगा दिया था, सब छोड़ दिया था। ऊपर-ऊपर का ही नहीं, भीतर का भी सब छोड़ दिया था। विचारों का भी त्याग कर दिया था। कोई छह वर्ष की लंबी ध्यान की प्रक्रिया के बाद वह घड़ी आ गयी, जब उसे भीतर शून्य का अनुभव हुआ। कुछ नहीं बचा। सन्नाटा छा गया।

वह भागा गुरु के चरणों में गया, उनके चरणों पर गिर पड़ा। और उसने कहा कि मैं शून्य हो गया हूं। गुरु ने कहा, इसको भी छोड़ दे।

मतलब समझे? वह कह रहा है, मैं शून्य हो गया हूं, सब मैंने छोड़ दिया। गुरु कहता, इसको भी छोड़ दे। बस यह एक चीज और बच गयी--यह सब छोड़ने का भाव। एक बहुत धीमी, फीकी, छिपी, सूक्ष्म अहंकार की स्थिति बची रह गयी कि

मैंने सब छोड़ दिया। यह मैं--यह भी जाना चाहिए। सब तो छूटे ही, सब छूटा है ऐसा भाव भी जाना चाहिए। सब छोड़ने के बाद यह भाव पकड़ लेता है। यह आखिरी जकड़ है संसार की।

और जब कोई किनारे से टकराकर फिर धार में उलझ जाता है, उसकी पीड़ा समझो। जिसे एकाध झलक मिल गयी है परमात्मा की और फिर दूरी बढ़ने लगती है, उसकी तकलीफ समझो।

हर शम्त तीरगी है जहाने-हयात में
जैसे गुजरकर आये हैं एक रोशनी से हम

कभी-कभी देखा? बहुत गहरी रोशनी के बाद इतना अंधेरा हो जाता है। रास्ते पर तुम चल रहे हो, कोई तेज कार अपना पूरा प्रकाश तुम्हारी आंखों में फेंकती हुई गुजर जाती है। ऐसे अंधेरा था लेकिन फिर भी तुम चल रहे थे और कुछ-कुछ दिखाई पड़ता था। लेकिन यह कार जो आंखों में तेज रोशनी डालकर गुजर गयी है, यह भयंकर अंधेरे में छोड़ जाती है।

भक्त ही जानता है असली अंधेरे को। तुम तो अंधेरे में चलने के आदी हो तो अंधेरे में तुम्हें थोड़ी-थोड़ी रोशनी है। जब परमात्मा की झलक मिलती है, भक्त एकदम से जैसे अंधा हो जाता है। फिर यहां कुछ भी नहीं सूझता। फिर यहां एक पल ठहरने का कोई अर्थ नहीं मालूम होता। एक सांस लेने का कोई प्रयोजन नहीं मालूम होता।

पर्दे से एक झलक जो वो दिखलाकर रह गये
मुश्ताके-दीद और भी ललचाकर रह गये

तब आंखें और अभीप्सा से भर जाती हैं। 'मुश्ताके-दीद और भी ललचाकर रह गये।'

बिन दरसन भई बावरी गुरु द्यो दीदार
ठाढ़ि जोहों तोरी बांट मैं, साहेब चलि आवो

इस छोटे-से वचन में प्रार्थना का सारा शास्त्र है।

ठाढ़ि जोहों तोरि बाट मैं, साहेब चलि आवो

इस एक वचन को तुमने समझ लिया तो भक्ति के संबंध में समझने को कुछ बचता नहीं। समझो।

ठाढ़ि--पहली तो बात यह है कि भक्त खड़ा हो जाना चाहिए। दौड़ बंद हो जानी चाहिए। दौड़ का अर्थ होता है यह मिल जाए, वह मिल जाए, यह कर लूं, वह कर लूं। आपाधापी! संसार उन लोगों से भरा है जो दौड़ रहे हैं। भागे जा रहे हैं। जो कभी खड़े ही नहीं होते। रात सोते भी हैं तो भी दौड़ जारी रहती है।

शरीर गिर जाता है थककर लेकिन मन दौड़ता रहता है।

जब तक वासना है तब तक दौड़ है। और ध्यान रखना, तुम तो मंदिर में प्रार्थना करते हो तब भी दौड़ जारी रहती है। तुम्हारी प्रार्थना भी वासना का ही एक ढंग है। उसमें भी तुम कुछ मांगते हो—कि नयी दुकान खोली है, सफलता मिले; कि बेटे का विवाह करना है, लड़की मिले; कि बेटा पढ़-लिखकर विश्वविद्यालय से आ गया है, नौकरी मिले। कहीं छिपी हुई—चाहे कहो और चाहे न कहो, छिपी हुई वासना होती है। वही वासना तुम्हारी प्रार्थना की हत्या कर देती है। प्रार्थना का गर्भपात हो गया। प्रार्थना जन्मी ही नहीं। वासना ने गर्दन दबा दी।

वासना यानी दौड़। वासनाग्रस्त चित्त दौड़ता है, प्रार्थना से भरा चित्त ठहरता है। इस संसार में कुछ पाना हो तो दौड़ना जरूरी है और परमात्मा को पाना हो तो ठहरना जरूरी है। इस सूत्र को ख्याल में ले लेना। दौड़ने से वस्तुएं मिलती हैं, ठहरने से वस्तुओं का मालिक मिलता है। दौड़ना संसार की विधि है, ठहरना धर्म की। दौड़े तो संसार में बहुत कुछ पाओगे लेकिन परमात्मा को चूक जाओगे। और सारा जगत मिल जाए, परमात्मा न मिले तो क्या मिला? परमात्मा मिल जाए तो सब मिल गया; सब ना भी मिले तो भी मिल गया। इसलिए हमने भिखारियों को सम्राट कहा है और को सम्राटों को भिखारी जाना है।

ठाढ़ि—तो पहला सूत्र हुआ प्रार्थना का: ठहर जाओ। कुछ न मांगो। कोई विचार नहीं, कोई वासना नहीं।

जोहों तोरी बांट मैं—मांग में आक्रमण है। प्रार्थना में आक्रमण नहीं है, केवल जोहना है—बाट जोहना। जैसे कोई अपने प्यारे की राह देखता है द्वार खोलकर। सिर्फ राह, प्रतीक्षा।

प्रतीक्षा प्रार्थना का दूसरा तत्व है। पहला तत्व: ठहर जाओ; स्थिरता। जिसको कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा है—जिसकी प्रज्ञा ठहर गयी, अडिग हो गयी। निष्कंप हो गया जो। जैसे किसी गृह में, जहां हवा के झोंके न आते हों, दीया जलता है निष्कंप। उसकी लौ कंपती नहीं। ऐसी जिसकी प्राणऊर्जा ठहर गयी।

ठाढ़ि जोहों तोरी बांट मैं...

भेद समझना। मांग नहीं है कोई, सिर्फ प्रतीक्षा है। आओ तो धन्यभाग। न आओ तो कोई शिकायत नहीं। आओ तो स्वागत, न आओ तो प्रतीक्षा जारी रहेगी। अनंत प्रतीक्षा का धैर्य चाहिए तो इस क्षण भी घटना घट जाती है। जिसके पास धैर्य है उसके पास परमात्मा को खींच लेने का चुंबक है।

ठाढ़ि जोहों तोरी बांट मैं, साहेब चलि आवो

और भक्त कहता है, मैं तो तुझे खोजने कहां आऊं? तेरा तो कुछ पता-ठिकाना नहीं। और तू तो विराट है। यूं तो कहो तो सब जगह है और खोजने जाओ तो कहीं मिलता नहीं। मैं तुझे खोजने कहां आऊं? तेरा पता-ठिकाना भी मालूम नहीं, तेरा नाम-धाम भी मालूम नहीं। तुझे पहले कभी देखा भी नहीं। मिल भी जायेगा तो मैं पहचानूंगा कैसे? प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी कि हां, यही तू है? तो मैं तो अवश हूं। तू ही आये तो बात बने।

और ध्यान रखना, भक्तों की यही उद्घोषणा है कि जब तुम तैयार होते हो, वह आता है। मनुष्य को परमात्मा के पास नहीं जाना पड़ता, परमात्मा ही मनुष्य के पास आता है। फूल थोड़े ही जाता है सूरज के पास, सूरज आता है। सूरज की किरण आती है अनंत की यात्रा करके, फूल को खोल जाती है। अगर फूल को जाना पड़े सूरज की यात्रा पर तो असंभव है मामला। यह हो नहीं पायेगा। कब पहुंचेगा? कैसे पहुंचेगा? और फूल अगर सूरज की यात्रा पर जायेगा तो जड़ों से टूट जायेगा, पृथ्वी से उखड़ जायेगा। पहुंचते-पहुंचते मर जायेगा।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा को खोजने जाने में भी अहंकार है। तुम सिर्फ उसे पुकारो कि वह आये। तुम जहां हो वहीं ठहर जाओ। ठहरने का मतलब यह है कि वह आये तो तुम घर में मिल जाओ। अक्सर यह होता है कि परमात्मा आया है लेकिन तुम घर में नहीं थे।

इसे समझना। तुम जहां होते हो वहां तुम होते कहां हो? मंदिर में बैठे माला फेर रहे लेकिन वहां तुम कहां हो? मन तुम्हारा दुकान पर है, खाते-बही कर रहा है, दुकानदारी चला रहा है। तुम दुकान पर भी होते हो, ऐसा भी नहीं है; नहीं तो परमात्मा वहीं आ जाए। परमात्मा तुम्हारी दुकान से थोड़े ही डरता है। जब तुम दुकान पर हो, हो सकता है घर होओ। पत्नी से झगड़ा हो रहा है। जब तुम पत्नी के पास होते हो, वहां भी आ सकता है। परमात्मा को तुम्हारी पत्नी से कोई अड़चन नहीं है। वह कोई भगोड़ा संन्यासी नहीं है। लेकिन जब तुम पत्नी से बात कर रहे हो तब वहां कहां हो? तुम किसी सिनेमा में बैठे हो।

तुम जहां हो वहां नहीं हो, यह मजा है। और परमात्मा तुम्हें वहीं खोज सकता है जहां तुम हो। ठहरने का अर्थ है, तुम जहां हो वहीं हो गये। भोजन कर रहे हो तो वहीं तुम्हारी पूरी चेतना उपस्थित है। दुकान पर बैठे हो तो पूरी चेतना उपस्थित है। मंदिर गये हो तो पूरी चेतना उपस्थित है।

और जिसकी पूरी चेतना कहीं भी उपस्थित हो सकती है, उसे मंदिर जाने की जरूरत नहीं रह जाती। वह जहां है वहीं मंदिर है। उसके पैर जहां पड़ते हैं वहीं तीर्थ बन जाते हैं। वह जहां बैठ गया पालथी मारकर वहीं मंदिर खड़ा हो जाता है। उसकी मौजूदगी मंदिर है।

ठाढ़ि जोहों तेरी बांट मैं, साहेब चलि आवो

तुम आओ, मैं राह देखूं।

और आखिरी बात इस सूत्र की है, जब भी भक्तों ने कोई गहरी बात कही है तो सदा अपने लिये स्त्रीलिंग का प्रयोग किया है--बिन दरसन भई बावरी। मैं पागल हो गयी हूं। धनी धरमदास कह रहे हैं, मीरा नहीं कह रही। मीरा कहे तो चलेगा कि मैं पागल हो गयी हूं। धनी धरमदास कह रहे हैं, बिन दरसन भई बावरी। मैं पागल हो गयी हूं।

ठाढ़ि जोहों तोरी बांट मैं...मैं तेरी राह देख रही हूं।

साहेब चलि आवो--मेरे मालिक, तुम आ जाओ।

भक्त की भावदशा स्त्रैण है। जैसे स्त्री प्रतीक्षा करती है पुरुष की। पुरुष खोजता है। स्त्री पहल नहीं करती प्रेम में, पुरुष पहल करता है। स्त्री को लाख किसी से प्रेम हो जाए तो भी यह उसकी गरिमा और गौरव के खिलाफ है कि वह उसका पीछा करे। वह राह देखती है। वह उस शुभ मुहूर्त की राह देखती है जब पुरुष निवेदन करेगा। वह स्त्रैण लज्जा का हिस्सा है। वह स्त्रैण संकोच का हिस्सा है। और वह संकोच सुंदर है।

स्त्री अनाक्रमक है, पुरुष आक्रमक है। पुरुष खोज पर जाता है। स्त्री राह देखती है। स्त्री ग्राहक है। स्त्री गर्भ है, स्वीकार करती है। और जो भी स्त्री में पड़ जाता है वही जीवंत हो उठता है।

भक्त कहते हैं, परमात्मा को इस तरह पुकारो जैसे कोई स्त्री अपने गर्भ को भरने के लिये आतुर होती है। परमात्मा तुम्हारा गर्भ बन जाए, तुम्हें गर्भित कर दे। तुम जगह खाली करो अपने भीतर। तुम उसे निमंत्रण दो कि मेरे भीतर उतरो, मेरे मेहमान बनो। तुम मेजवान बनो, उसे मेहमान बनने दो।

ठाढ़ि जोहों तेरी बांट मैं, साहेब चलि आवो
दीया खामोश है
लेकिन किसी का दिल तो जलता है!

ऐसा मत समझना कि यह खाली बैठे रहना सिर्फ खाली बैठे रहना है।

दीया खामोश है
लेकिन किसी का दिल तो जलता है!

चले आओ जहां तक रोशनी मालूम होती है।

बड़े चुपके-चुपके पुकार है। शब्द में भी बांधी नहीं जाती, सिर्फ हृदय में उठती एक गूंज है। स्थूल नहीं है, सूक्ष्म है।

इतनी दया हम पर करो, निज छबि दरसावो

कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार
ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावो

यह वचन तो ऐसा अद्भुत है कि मैं ऐसे वचन के करीब सिवाय धनी धरमदास के और किन्हीं के वचनों में नहीं आया। तुम चकित होओगे। तुम इसे ऐसे ही पढ़ जाओगे तो पता भी नहीं चलेगा।

ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावो

धरमदास कहते हैं, ताला भी प्रेम का है और कुंजी भी प्रेम की है। तुम्हारी जिंदगी उलझ गयी है प्रेम के कारण ही और प्रेम के कारण ही सुलझ सकती है। ये बड़े अद्भुत शब्द हैं। प्रेम ने ही उलझाया है, प्रेम ही सुलझायेगा। गलत से प्रेम हो जाए, उलझन हो जाती है। ठीक से प्रेम हो जाए, सुलझन हो जाती है।

वह जो धन के प्रेम में पड़ा है उसकी मुसीबत क्या है? प्रेम ही मुसीबत है, धन थोड़े ही! धन क्या मुसीबत करेगा? धन तो मुर्दा है। धन क्या मुसीबत कर सकता है? धन को तुम छोड़ना चाहो तो धन तुम्हारा पीछा नहीं करेगा। धन तुमसे कहेगा नहीं कि कहां जाते हो? मुझे छोड़कर कहां जाते हो? अदालत में कोई मुकदमा नहीं चलायेगा। धन ने तुम्हें नहीं पकड़ा है, इसलिए सवाल धन का नहीं है।

तुम अगर सांसारिक प्रेम में पड़े हो तो संसार को गालियां मत दो। उलझन तुम्हारे प्रेम की है। अब लोग हैं, संसार से लड़ रहे हैं। वे कहते हैं, हम संसार छोड़कर जायेंगे। संसार छोड़कर चले जाओगे, क्या फर्क पड़ता है? जहां जाओगे वहीं तुम्हारा प्रेम फिर निर्मित हो जायेगा।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जिन्होंने घर छोड़ दिया, पत्नी-बच्चे छोड़ दिये, भाग गये जंगलों में, वहां बैठ गये। वहां शिष्यों से उनका उसी तरह प्रेम हो गया जैसे अपने बेटे-बेटियों से था। अब अगर शिष्य मर जाए तो वे वैसे ही रोयेंगे जैसे बेटे के मरने से रोते थे। क्या फर्क पड़ा? अगर आज शिष्य धोखा दे जाए तो वे उसी तरह दुखी होते हैं जैसे बेटा धोखा दे जाता तो दुखी होते, और कहते, दगाबाज निकल गया। मकान से प्रेम था, अब मकान तो नहीं है, तो आश्रम से प्रेम हो जायेगा। फर्क क्या पड़ता है?

मेरे एक मित्र हैं, मकान बनाने का उन्हें बड़ा शौक। अपना तो बनाते ही, कई मकान उन्होंने बनाये। और सुंदर मकान बनाये। उनको एक ही शौक, एक ही हॉबी--मकान बनाना। मित्रों के भी मकान बनाये। कोई भी बुला लेता उन्हें तो उनका यह आनंद था कि वे मकान बनवाने में सहायता दें। मॉडेल बनायें, चित्र बनायें, खड़े होकर मकान खड़ा करवायें।

फिर वे संन्यस्त हो गये। कोई दस वर्ष बाद मैं उस जगह के करीब से गुजरता

था, जहां वे संन्यासी होकर रहने लगे थे। मैंने अपने ड्राइवर को कहा कि एक दस मील का चक्कर तो लगाना पड़ेगा लेकिन मैं देखना चाहता हूं उनकी हालत क्या है। जरूर वे मकान बनवा रहे होंगे। उसने कहा, आपका क्या मतलब ? वे संन्यासी हो गये हैं। मैंने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है ? वे मकान तो बना ही रहे होंगे।

हम जब पहुंचे तो वे भरी दुपहरी में छाता लिये मकान बनवा रहे थे। मैंने उनसे पूछा, तुम काहे के लिये परेशान हुए हो ? मैं यह जानता था कि तुम यही काम कर रहे होओगे। उन्होंने कहा, यह मकान थोड़े ही है, आश्रम बनवा रहा हूं।

इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम मकान बनवा रहे हो कि आश्रम बनवा रहे हो। वह जो बनाने का मोह है, वह वैसा का वैसा है। ऐसे कोई भाग नहीं सकता; उलझन प्रेम है।

इस जगत में प्रेम ही नर्क है, प्रेम ही स्वर्ग है। प्रेम ही दुख है, प्रेम ही सुख है। प्रेम ही पतन है और प्रेम ही उत्थान है। ये बारी बातें इस छोटे-से वचन में धनी धरमदास ने कह दी हैं--ताला कुंजी प्रेम की।

ताला भी प्रेम का है, जिससे फंस गये हैं; जिससे दरवाजे बंद हो गये हैं; जिससे निकलने के लिये द्वार नहीं मिलता; जिसके कारण कारागृह में पड़ गये हैं; जिसके कारण हाथ में जंजीरें हैं, पैर में बेड़ियां हैं, वह भी प्रेम है। और कुंजी भी प्रेम की है, जिससे यह सब खुलेगा। प्रेम से उलझे हो तो प्रेम से ही खुलेगा।

इसलिए भक्ति का शास्त्र प्रेम का शास्त्र है। यह कहता है, कैसे प्रेम को ताला बनने से बचाओ और कैसे प्रेम की कुंजी बनाओ। कैसे प्रेम से कुंजी ढाली जा सकती है ? ढाली जा सकती है। ठीक दिशा में प्रेम उन्मुख हो जाए, अपने से उपर की तरफ बहने लगे, अपने श्रेष्ठ की तरफ बहने लगे। गुरु की तरफ बहे तो श्रद्धा, और परमात्मा की तरफ बहे तो भक्ति। वह आखिरी है।

शिखर की तरफ आंखें उठ जाएं। अभी तुम्हारी आंखें खाइयों में उलझी हैं, गड्ढों में उलझी हैं। रामकृष्ण कहते थे कि चील आकाश में भी उड़े तो कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसकी नजर तो नीचे लगी रहती है कूड़े-कचरे के ढेर पर, जहां कोई मांस का टुकड़ा पड़ा हो कि मरा हुआ चूहा पड़ा हो। चील आकाश में उड़ती है तो भी नजर कूड़े के ढेर पर लगी रहती है, जहां एक मरा चूहा पड़ा है।

तुम मंदिर में भी जाकर बैठ जाते हो, तुम्हारी नजर कहां होती है ? कूड़े के ढेर पर, जहां कोई मरा चूहा पड़ा है। तुम बैठ जाते गीता पढ़ने कि कुरान पढ़ने, तुम्हारी नजर कहां होती है ? उस नजर का ख्याल करो। नजर आकाश की तरफ उठनी चाहिए। कितने कम लोग हैं, जो आकाश की तरफ आंख उठाकार देखते हैं। उनकी नजर जमीन में गड़ी है। उनकी गर्दन जकड़ गयी है। वे ऊपर की तरफ देख

ही नहीं सकते। बस वे नजर गड़ाकर देखते चले जाते हैं। अगर किसी रात अचानक तारे विदा हो जाएं आकाश से, तुम्हें पता नहीं चलेगा, जब तक कोई तुम्हें बताये न। जब तक तुम सुबह अखबार में न पढ़ो कि तारे खतम हो गये, अब नहीं होते, तब तुम्हें पता चलेगा। नहीं तो तुम नजर गड़ाये जमीन में चले जा रहे हो। तुमने ऊपर की तरफ देखना बंद कर दिया है।

अपने से ऊपर की तरफ देखने में प्रेम कुंजी बन जाता है। अपने से नीचे की तरफ देखने में प्रेम ताला बन जाता है। इस जगत का सारा उपद्रव प्रेम के कारण है। और यहां जो सुलझकर चले गये हैं उन्होंने भी प्रेम की नौका बनायी है और उसी से सुलझकर गये हैं।

यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। महत्त्वपूर्ण इसलिए कि यह इस संबंध में सूचन है कि समस्या में समाधान छिपा है। प्रश्न में उत्तर छिपा है। रोग का ठीक-ठीक अर्थ समझ में आ जाए तो निदान मिल जाता है।

इसलिए भक्ति को मैं कहता हूं, सहजयोग। अब कोई बैठा है पालथी मारकर और प्राणायाम कर रहा है और शीर्षासन कर रहा है, उससे यह पूछो कि शीर्षासन न करने की वजह से तुम दुनिया में उलझे हो, जो शीर्षासन करने से सुलझ जाओगे ? प्राणायाम करने से तुम सुलझ जाओगे ? क्या प्राणायाम न करने के कारण तुम उलझे हो ? कारण तो देखो। तुम्हारे उलझने का कारण क्या है ? जो कारण है उसको सुलझाना पड़ेगा।

प्रेम के कारण उलझे हो। सिर के बल खड़े होने से कुछ भी न होगा। पर के बल तुम खड़े थे, सिर के बल खड़े हो जाओगे। तुम तुम ही रहोगे। सिर के बल खड़े होने से क्या फर्क होनेवाला है ? व्यर्थ की कवायतें और व्यर्थ के अभ्यासों में मत पड़ो।

इसलिए भक्तों ने कहा है, न उन्हें जप में उत्सुकता है, न तप में उत्सुकता है, न तंत्र में, न मंत्र में, न योग में। उनकी उत्सुकता इन सारी बातों में नहीं है, उनकी उत्सुकता तो केंद्रीय एक तत्व में है-- कि यह प्रेम का तत्त्व ठीक दिशा में अग्रसर कैसे हो जाए। यह प्रेम की ऊर्जा संसार से मुक्त होकर आकाश की तरफ कैसे उड़ने लगे। यह पृथ्वी से मुक्त हो जाए और आकाश में पंख खोल दे।

कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार

और धनी धरमदास कहते हैं कि जीवन तो तूने बड़ा प्यारा दिया है।

कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार

बड़ा प्यारा जीवन दिया है।

ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावो

लेकिन हमने ताला बना लिया है, अब तुम किसी तरह बताओ कि हम कैसे कुंजी बना लें।

और अत्यंत होश की जरूरत है, अत्यंत जागरूकता की जरूरत है, तभी प्रेम की कुंजी बन सकती है। अनजाने, मूर्च्छित, बेहोशी में तो प्रेम का ताला ही बनता है। उसी में तुम और उलझते चले जाते हो। ऐसे ही जैसे मकड़ी जाला बुनती है, अपने ही भीतर बुनती है और कभी-कभी खुद फंस जाती है। प्रेम का जाला तुम ही बुनते हो, उसी में तुम उलझ जाते हो। जीवन उसी में समाप्त हो जाता है।

जुस्तजू जिसकी हरम में और बुतखाने में है
नूर उस जलवे का मेरे दिल के काशाने में है

वही छिपा है, मंदिरों में और मस्जिदों में जिसकी पूजा की जा रही है—तुम्हारे भीतर। 'नूर उस जलवे का मेरे दिल के काशाने में है।' वही दीया तुम्हारे भीतर जल रहा है लेकिन उस दीये के आसपास...तुमने प्रेम के साथ जो दुर्व्यवहार किया है, प्रेम के साथ जो तुमने बलात्कार किया है, प्रेम को समझे नहीं और प्रेम के साथ तुमने जो नासमझी की है, उसके कारण सारा अंधकार हो गया है। उस अंधकार की दीवाल को पार करने का मुझे रास्ता बताओ।

बंदा भूला बंदगी....

धनी धरमदास कहते हैं कि मैं तो हजार भूलों से भरा हूं। मैं तुम्हारी सेवा भूल गया हूं। बंदा भूला बंदगी——मैं तुम्हारी प्रार्थना भूल गया हूं।

लेकिन तुम तो करुणावान हो——तुम बकसनहार। तुम तो क्षमा कर सकते हो। मेरी भूलें कितनी ही बड़ी हों, तुम्हारी करुणा तो मेरी भूलों से बड़ी है।

यह भक्त का भरोसा है। इसी भरोसे के सहारे कोई इस यात्रा पर निकल सकता है। जिसे यह भरोसा नहीं है वह यात्रा पर नहीं जा सकता। मेरे पाप बड़े हैं लेकिन तुम्हारी करुणा और बड़ी है। मैं कितने ही बड़े पाप करूं, कितने बड़े कर सकूंगा! मैं ही छोटा हूं।

तुम जरा सोचो। तुम पाप भी क्या कर सकोगे? तुम्हारी सीमा है पाप की भी। परमात्मा की करुणा की कोई सीमा नहीं है। उसकी असीम करुणा के सामने तुम्हारे छोटे-छोटे दो-दो कौड़ी के पाप! इनका क्या मूल्य है?

बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं विचार करता हूं कि मैंने जिंदगी में कितने पाप किये हैं। जो मैंने किये, अगर मैं कठोर से कठोर अदालत के सामने उनको बयान कर दूं तो मुझे ज्यादा से ज्यादा चार या पांच साल की सजा हो सकती है। और जो मैंने नहीं किये, सोचे, अगर वे भी बयान कर दूं और उनके लिये भी दंड मिलता हो, तो समझो पांच साल की और सजा हो सकती है। दस

साल की सजा हो सके, इतनी मेरे पापों की कुल संपदा है। क्या इस क्षुद्र पाप की ढेरी के लिये मुझे अनंत काल तक नर्क में सड़ना पड़ेगा?

ईसाई यही कहते हैं कि अनंत काल तक नर्क में सड़ना पड़ेगा। यह बात जरूर ईसाइयों ने जोड़ी होगी। यह बात जीसस की तरफ से नहीं आयी हो सकती। क्योंकि जीसस तो कहते हैं, वह प्रेम है, करुणा है। परमात्मा यानी प्रेम। तो प्रेम इतना भी नहीं कर सकेगा? यह तो हद हो गयी। यह तो अन्याय हो गया। कितने ही तुमने पाप किये हों, इनके लिये अनंत काल तर्क के लिये नर्क में सड़ना तो निश्चित गुनाह है। इनके लिये जरूरत से ज्यादा दंड हो गया।

तुम्हारे पाप सीमित हैं, तुम्हारा दंड भी सीमित होना चाहिए। तुम्हारे पाप तो सीमित हैं और दंड असीम, अनंत काल के लिये! हिटलर को भी तुम अनंत काल के लिये नर्क में डालो तो अन्याय होगा।

यह करुणावान, प्रेम से भरे परमात्मा के हृदय में यह बात कैसे उठ सकती है? भक्त का भरोसा यह है... इस फर्क को ख्याल में लो। योगी का, त्यागी का, विरागी का भरोसा यह होता है कि मैंने पाप किये हैं, पुण्य करके चुकतारा कर लूंगा। जितने मैंने पाप किये हैं उतने पुण्य कर दूंगा। संतुलन ला दूंगा। तराजू बराबर कर दूंगा।

लेकिन इसमें अहंकार की घोषणा है। इसमें परमात्मा का सहारा नहीं मांगा गया है। त्यागी परमात्मा का सहारा नहीं मांगता। परमात्मा का सहारा मांगने में उसे दीनता मालूम होती है। वह कहता है, मैं ही कर लूंगा। मैंने किये थे पाप, मैं पुण्य करके सब निपटारा कर दूंगा। बुरा किया था, भला करूंगा।

भक्त का भरोसा यह है कि मेरे किये तो जो भी होगा, बुरा ही होगा। मैं ही बुरा हूं। मेरा किया हुआ मेरी बुराई से ही निकलेगा। मैं पुण्य भी करूंगा तो पाप हो जायेगा। मैं अच्छा करने जाऊंगा तो बुरा हो जायेगा। मेरी सामर्थ्य...यह 'मैं' हर चीज को जहर से भर देता है। यह अहंकार हर चीज पर जहर फेंक देता है। यह पुण्य को भी जहरीला कर देता है। मेरे किये क्या होगा?

तो भक्त कहता है, लेकिन मुझे तुम्हारी महाकरुणा का भरोसा है।

बंदा भूला बंदगी, तुम बकसनहार

मेरी आह का तुम असर देख लेना
वो आयेंगे, थामे जिगर देख लेना

भक्त कहता है, फिक्र ना करो, मैं रोऊंगा। बंदगी तो मैं भूल ही गया। प्रार्थना मुझे आती नहीं लेकिन मेरी आह का तुम असर देख लेना। आह तो निकल

सकती है। मेरे हृदय से जो आह उठेगी वही मेरी प्रार्थना है।

मेरी आह का तुम असर देख लेना
वो आयेंगे, थामे जिगर देख लेना

रोऊंगा, पुकारूंगा। उनकी करुणा का भरोसा है।

बंदा भूला बंदगी तुम बकसनहार
धरमदास अरजी सुनो, कर द्यो भवपार

अब मुझे उस तरफ ले चलो। अब मुझे पार करो। 'तुम' करो, कर्ता तुम हो। तुमने भेजा यहां, तुम ही मुझे ले चलो। ऐसा समग्र समर्पण है भक्ति।

मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी

यह भरोसा है। यह श्रद्धा है। इसमें कृत्य से कुछ भी नहीं जोड़ा जा रहा है।

और तुम यह मत समझना कि भक्त पुण्य नहीं करता। इस भ्रांति में मत पड़ जाना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भक्त पुण्य नहीं करता। भक्त ही पुण्य करता है लेकिन कर्ता का भाव नहीं होता।

और तुम्हारा त्यागी क्या खाक पुण्य करेगा! कर्ता का भाव तो सारे पुण्य को मिटा देता है, पुण्य को पाप बना देता है। भक्त ही करता है लेकिन करने पर उसका भरोसा नहीं है। वह यह नहीं कहता कि मेरे किये से मेरी मुक्ति होगी। मेरे किये से ही ती मैं बंधा हूं।

मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी

मेरा तो एक ही भरोसा है कि तेरा भजन करूंगा। तेरा गीत गाऊंगा, तेरा गुण गाऊंगा।

और क्या चीज कुर्बां करूं आप पर?
दिल जिगर आपका, जिंदगी आपकी

सब आपका है--दिल जिगर आपका, जिंदगी आपकी। यह बात भी मैं सोचूं कि कुछ तुझ पर कुर्बान करूं, यह बात भी अहंकार की है। 'त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पयेत्।' लेकिन यह बात ही फिजूल है, तेरी चीज तुझी को भेंट करूं। तेरा दिया हुआ तुझे भेंट करूं। इसमें भी भूल हुई जा रही है। मैं तो तेरी भेंट हूं ही।

और क्या चीज कुर्बां करूं आप पर?
दिल जिगर आपका, जिंदगी आपकी
मैं तो तोरे भज-भरोसे अविनासी
तीरथ बरत कछू नहिं करहूं, वेद पढ़ौं नहिं कासी

काशी नहीं जाऊंगा वेद पढ़ने, और न तीर्थ करूंगा, और न व्रत करूंगा। और इसका मतलब यह नहीं है कि भक्त काशी नहीं जाता। इसको तुम

समझना, नहीं तो भूल होगी। भक्त काशी मजे से चला जाता है लेकिन यह सोचकर नहीं जाता कि काशी जाने से कुछ हो जायेगा। कबीर जिंदगी भर काशी रहे। यह वचन भी पक्का समझो कि काशी में बैठकर लिखा गया है। क्योंकि धनी धरमदास कबीर के चरणों में रहे और कबीर जिंदगी भर काशी रहे। यह वचन काशी में ही लिखा गया है।

लेकिन तुम्हें पता है, तुम्हें कहानी पता है? कबीर जब मरने को हुए और मरणशैय्या पर पड़े थे तब अचानक आंख खोली, अपने भक्तों से कहा, मुझे काशी से बाहर ले चलो। उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं? लोग मरने काशी आते हैं–काशी-करवट! जिंदगी भर काशी रहे, अब कहां जाते हो? कबीर ने कहा, मगहर ले चलो।

मगहर एक छोटा गांव काशी के पास। कहावत है कि मगहर में जो मरता है वह मरकर गधा होता है। इसलिए कबीर ने कहा, मगहर ले चलो। क्योंकि मगहर में जो मरता है वह गधा होता है। और काशी में जो मरता है वह तो सीधा वैकुण्ठ जाता है। तुम मुझे मगहर ले चलो। अगर काशी में मरकर वैकुण्ठ गये तो इसमें उसकी क्या कृपा? खूब मजे की बात कही; इसमें उसकी क्या कृपा? काशी में मरे इसलिए वैकुण्ठ गये। जाना ही...वह तो कानूनी बात हो गयी। कुत्ता भी मरे, गधा भी मरे, वह भी जाता है। तुम मुझे मगहर ले चलो।

नहीं माने, जिद्दी आदमी थे कबीर। भक्त तो बहुत संकोच करने लगे। मगर उन्होंने नहीं माना। उठकर ही खड़े हो गये चलने को तो फिर ले जाना पड़ा। मरे मगहर में जाकर। क्योंकि उन्होंने कहा कि मगहर में मरूं और वैकुण्ठ जाऊं तो उसकी कृपा।

ऐसा नहीं है कि भक्त काशी नहीं जाता; मगर काशी पर भरोसा नहीं है कि काशी के कारण स्वर्ग जाऊंगा। और ऐसा भी नहीं है कि भक्त व्रत नहीं करता, लेकिन व्रत पर उसका भरोसा नहीं है। अगर वह उपवास भी करता है तो उसके कारण दूसरे होते हैं। कभी शरीर की शुद्धि के लिये करता है, कभी रोग के उपचार के लिये करता है, कभी प्रार्थना को पवित्र बनाने के लिये करता है। कभी भूल ही जाता है भजन में और उपवास हो जाता है। याद ही नहीं आती भोजन की। वही असली उपवास है।

उपवास शब्द का भी यही अर्थ है। उपवास शब्द का अर्थ अनशन नहीं है। इसलिए हमारे पास दो शब्द हैं। अनशन का मतलब होता है, जिसने चेष्टा करके भोजन नहीं किया; जिसने रोका। भूख तो लगी थी और भोजन नहीं किया–यह अनशन। इसलिए जो राजनीतिज्ञ लोग उपवास करते हैं उसको उपवास कभी नहीं

कहना चाहिए; वह अनशन है। उपवास जैसे पवित्र शब्द का उपयोग राजनीतिज्ञों के द्वारा भूख-हड़ताल करने के लिये नहीं किया जाना चाहिए। फिर चाहे मोरारजी देसाई करते हों, या कोई और करता है। अनशन है वह। वह जबरदस्ती है।

उपवास शब्द में ही जरा गौर करो। अनशन का अर्थ है, आज नहीं खाऊंगा, यह निर्णय। उपवास का अर्थ है उसके पास—उप वास: परमात्मा के पास होना। उसके पास ऐसे मगन हो गये कि भोजन की याद न आयी। भोजन का समय चूक गया, भोजन का वक्त निकल गया। उसकी मगनता में ऐसे डूबे कि शरीर का स्मरण न रहा, तब उपवास। चेष्टा से नहीं, सहज फलित हो जाए।

तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे घर आ गया, तुमने ख्याल किया? अक्सर ऐसा हो जाता है। प्रेमी घर आ जाए, भूख ही नहीं लगती। कौन फिकर करता है भोजन की! प्रेम इतना पेट भर देता है कि भोजन की कौन फिकर करता है! भूल गये। तो उपवास। अगर प्रेमी घर आ जाए और भोजन का स्मरण न आये, इसको मैं उपवास कहूंगा।

तो परमात्मा का जब स्मरण गहन होता है, उसका वाद्य भीतर बजता है तब कभी-कभी भक्त को उपवास हो जाता है। लेकिन वह इसकी घोषणा नहीं करता और इसको अपने पुण्यों में नहीं गिनता। काशी हो आता है, काशी सुंदर। काबा हो आता है, काबा सुंदर। लेकिन यह उसका भरोसा नहीं है। भरोसा तो उसका एक है—'मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी।' और उसका दूसरा भरोसा नहीं है। इस भरोसे को वह और दूसरे सहारे नहीं देता। यह एक नाव काफी है, और छोटी-छोटी नाव और पच्चीस तरह के उपाय नहीं करता। वह तो वही लोग करते हैं जिन्हें उसका भरोसा नहीं है। वे कहते हैं, यह भी कर लो, वह भी कर लो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। उसने आंख खोली, हाथ जोड़े और कहा, हे अल्लाह! कृपा कर। आकाश की तरफ देखा। फिर जमीन की तरफ देखा, कहा, हे शैतान! कृपा कर। उसकी पत्नी ने कहा, तुम होश में हो कि पागल हो गये? सन्निपात है? मरते समय शैतान की याद कर रहे हो? उसने कहा, पागल, अब आखिरी घड़ी में कौन काम पड़े, किसको पता! दोनों का नाम ले लेना ठीक है। जो भी काम पड़ जायेगा! तो कहने को तो रहेगा, तेरा नाम लिया था। अब मरते वक्त मैं यह झंझट नहीं लेना चाहता कि एक का नाम लूं और हो सकता है दूसरे के हाथ पडूं। दोनों का स्मरण कर लेता हूं।

यह राजनीतिज्ञ का दृष्टिकोण है। यह कूटनीति का दृष्टिकोण है। वह कहता है, यह भी कर लो, यह भी कर लो, यह भी कर लो। इसमें भरोसा नहीं है। भक्त का एक भरोसा है—

मैं तो भजन-भरोसे अविनासी

तीरथ बरत कछू नहिं करहूं, वेद पढ़ौं नहिं कासी

वेद ही तो पढ़ रहे थे काशी में। कबीर के पास कर क्या रहे थे? कबीर यानी वेद। वेद कोई किताब थोड़े ही है! लेकिन धनी धरमदास यह कह रहे हैं कि किताब नहीं पढ़ूंगा। सद्‌गुरु मिल गया हो तो कौन किताब की फिकर करता है! वेद जीवंत मिल गया हो तो मुर्दा वेदों की कौन चिंता करता है! गुरु मिल जाए तो गुरुग्रंथ की कौन फिकर करता है! गुरु न मिले तो गुरुग्रंथ की फिकर की जाती है।

सिक्खों में जिस दिन गुरुओं का होना बंद हो गया उस दिन गुरुग्रंथ हाथ में रह गया। जब तक गुरु होते रहे तब तक गुरुग्रंथ का क्या मूल्य था! किताब का मूल्य तो तभी है जब तुम्हें कोई जीवंत अनुभव देनेवाला न मिल सके। मगर जीवंत का नाम ही तो वेद है। गुरु ही तो असली गुरुग्रंथ है।

तीरथ बरत कछू नहिं करहूं, वेद पढ़ौं नहिं कासी

जंत्र-मंत्र टोटका नहिं जानौ, निसदिन फिरत उदासी

धनी धरमदास कहते हैं, न पढ़ूंगा वेद, न करूंगा तीर्थ-व्रत, न जंत्र-मंत्र-टोटका। क्योंकि ये सब छोटी और ओछी बातें हैं। एक भरोसा तेरे भजन का—एक ओंकार सतनाम! बस एक पर्याप्त है, दो की कोई जरूरत नहीं है। दो का मतलब ही होता है कि तुम द्वंद्व में पड़े हो। तुम्हारे भीतर शकशुबहा है। तुम संदिग्ध हो। तुम सोच रहे हो, इससे न हो तो उससे हो जाए। होशियार आदमी सब तरह के इंतजाम कर लेता है।

म एक घर में मेहमान था। चार बजे रात ट्रेन पकड़नी थी। घर के मालिक ने अपने ड्राइवर को कहा कि ठीक तीन बजे तू कार पोर्च में लाकर खड़ी कर देना। वह मैंने सुना, ठीक। फिर मैंने देखा कि वे एक रिक्शावाले को कह रहे हैं कि तू भी आ जाना तीन बजे। तब जरा मैं हैरान हुआ कि जब कार आ जायेगी तो रिक्शावाला..? और फिर मैंने उनको सुना कि वे अपने नौकर को कह रहे हैं कि तू भी मौजूद रहना, अगर जरूरत पड़े तो सामान सिर पर रखकर ले चलना। स्टेशन पास ही थी, दूर नहीं थी।

मैंने उन्हें पूछा कि मामला क्या है? उन्होंने कहा, भरोसा किसी का नहीं है। यह ड्राइवर को मैं जानता हूं, यह पीकर पड़ जाता है। फिर तीन बजे कि छह बजे, कुछ इसे पता नहीं। फिर इसको हिलाओ, जगाओ, यह गालियां बकता है। वह सुन रहा है अभी, मगर तीन बजे इसका पता नहीं चलनेवाला।

फिर यह रिक्शावाला, यह नंबर दो है। यह इससे बेहतर है मगर इसका भी कुछ पक्का नहीं है। कभी आ जाता है, कभी नहीं भी आता। यह तीसरा मेरा नौकर

है, इसको आप देख ही रहे हैं। जितनी देर आप यहां रहे हैं, यह कभी समय पर इसका कोई पता चलता ही नहीं।

तो फिर मैंने कहा, फायदा क्या? उन्होंने कहा, फायदा-वायदा कुछ नहीं है लेकिन आदमी सब इंतजाम कर लेता है। आखिर में मैं तो हूं ही। आपको सुबह ले चलूंगा। और यही हुआ। आखिर में वही लेकर मुझे स्टेशन पर पहुंचे। वे तीन में से कोई नहीं आया।

मैंने उनसे कहा कि देखें, इनके वर्तन में आपका भी हाथ है। जब ड्राइवर सुनता है कि रिक्शावाले को भी आप कह रहे हैं कि तू भी आ जाना तो वह सोचता है, ठीक है, कोई न कोई तो आ ही जायेगा। और जब आपका नौकर सुनता है कि रिक्शावाला भी आनेवाला है, ड्राइवर भी आनेवाला है तो वह सोचता है, क्या मतलब! कौन तीन बजे रात सर्दी में उठे! कोई न कोई तो आ ही जायेगा। यह आप ही उस उपद्रव के पीछे कारण हैं। न आपका उन पर भरोसा है, न उनका आप पर भरोसा है। भरोसे की यहां कोई बात ही नहीं है।

धनी धरमदास ठीक कहते हैं,

मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी

अब और इससे बड़ा क्या है जिसको मैं पकड़ूं? आखिरी बात पकड़ ली, इसके आगे अब और क्या है?

जंत्र मंत्र टोटका नहिं जानौं, निसदिन फिरत उदासी

यह उदासी शब्द भी समझने जैसा है। इसका ठीक वही अर्थ होता है, जो उपवास का होता है। उपवास का अर्थ होता है, उसके पास होना। उदास का अर्थ होता है: उद् आसीन-उसके पास बैठना। इसका मतलब होता है, सत्संग। मगर इस शब्द का अर्थ बदल गया है। लंबी यात्रा करते-करते इस शब्द का अर्थ बड़ा अजीब हो गया है। लेकिन उसके पीछे भी कारण है। अब तो उदासी का अर्थ होता है, जो बिलकुल उदास है, हताश है। मगर इसके पीछे कारण है। इस अर्थ के पीछे भी कारण है।

जो लोग परमात्मा में डूबे वे संसार के प्रति उदास हो गये। जिन्होंने उसका साथ पा लिया उनका साथ संसार से अपने आप ढीला हो गया। जिन्होंने परम धन पा लिया, संसार के धन पर उनकी मुट्ठी खुल गयी। जिन्होंने उस अविनाशी को देख लिया, फिर यहां देखने योग्य कुछ न रहा।

तो लोगों ने देखा कि वे उदास हो गये। लेकिन असली बात यह थी कि वे उदास नहीं हो गये थे, उन्हें परम धन मिल गया था। वे परम भोग को उपलब्ध हो गये थे। अब जिसको हीरे मिल जाएं वह कंकड़-पत्थरों में रस क्यों रखे?

किसलिए रखे? तो कंकड़-पत्थर में उदास हो गया। तुमको लगता है कि कंकड़-पत्थरों में उदास हो गया क्योंकि कंकड़-पत्थर तुम्हें हीरे मालूम होते हैं। तुम उनको छाती से लगा रहे हो, वह उनको छोड़कर जा रहा है।

बुद्ध राजमहल छोड़ देते हैं। उनका सारथी उनसे कहता है, आप यह क्या कर रहे हैं? सारी दुनिया के लोग राजमहल में किस तरह पहुंच जाएं इस कोशिश में लगे हैं। आप राजमहल छोड़ रहे हैं? आप उदास क्यों हो गये हैं? अभी आपके जीवन में ऐसी कौन-सी दुर्घटना घट गयी है? ऐसा कौन-सा दुख?

बुद्ध कहते हैं, मैं उदास नहीं हो गया हूं, सत्य की खोज में निकला हूं।

इस भेद को समझना। उदास शब्द का मौलिक अर्थ था: उद् आसीन—उदासीन। जो 'उसके' पास बैठने लगा। जो किसी सत्संग में डूबने लगा। बाजार की तरफ उसकी पीठ फिर गयी। दोनों तरफ एक साथ मुंह नहीं हो सकता। संसार की तरफ मुंह होता है, परमात्मा की तरफ पीठ होती है। परमात्मा की तरफ मुंह होता है, संसार की तरफ पीठ हो जाती है। बस इतना ही काफी है। भागने-वागने की कुछ जरूरत नहीं है, सिर्फ पीठ हो जाती है।

फिर उदास प्रेमी भी होते हैं। जिनके जीवन में प्रेम है उन्हें उनकी प्रेयसी मिल जाए, उनका प्रेमी मिल जाए, तो प्रफुल्लित होते हैं। और उनका प्रेमी और उनकी प्रेयसी उन्हें न मिले तो उदास होते हैं।

उदास वही हो सकता है जिसने उत्सव जाना हो।

धरमदास कहते हैं कि मैंने तेरी झलक पा ली। एक झलक मुझे तेरी मिल गयी है। गुरु के द्वारा मिली है अभी। गुरु के माध्यम से मिली है अभी। अभी सीधी नहीं मिली। सीधी की मांग मैं कर रहा हूं। सीधी के लिये मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं—

ठाढ़ि जोहौं तोरी बांट मैं, साहेब चली आवो
बिन दरसन भई बावरी
जंत्र-मंत्र टोटका नही जानौं, निसदिन फिरत उदासी

और जबसे वह एक झलक गुरु में देख ली है तबसे अब चैन नहीं है; तबसे बेचैनी है, तबसे घूम रही हूं—निसदिन फिरत उदासी। फिर स्त्रैण शब्दों का प्रयोग शुरू किया उन्होंने।

न बुतखाने को जाते हैं, न काबे में भटकते हैं
जहां तुम पांव रखते हो वहां हम सर पटकते हैं
यही है जिंदगी अपनी यही है बंदगी अपनी
कि उनका नाम आया और गर्दन झुक गयी अपनी

यहि घट भीतर बधिक बसत है, दिये लोभ की टाटी
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनन दासी

यहि घट भीतर बधिक बसत है--फिर वही कह रहे हैं वे। फिर दोहरा रहे हैं उसी सत्य को--'ताला कुंजी प्रेम की।' प्रेम ही ताला बन गया, प्रेम ही कुंजी बनेगी। इसी घट में परमात्मा बसता है और इसी घट में परमात्मा की हत्या करनेवाला भी बसा हुआ है। हम दोनों हैं--शैतान भी और भगवान भी। हम दोनों हैं--अंधेरा और रोशनी भी।

महावीर ने कहा है, तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र नहीं और तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु भी नहीं। दोनों बसे हैं एक साथ। असल मे दो बसे हैं यह कहना ठीक नहीं, जब तुम्हारे भीतर जीवन-ऊर्जा ठीक दिशा में नहीं बहती तो वही वधिक; और जब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा ठीक दिशा में बहने लगती है तो वही परमप्यारा। भेद नहीं है, ऊर्जा वही है। जहर ही अमृत हो जाता है; पीने का ढंग आना चाहिए। अमृत ही जहर हो जाता है पीने का ढंग न आता हो तो।

यहि घट भीतर बधिक बसत है दिये लोभ की टाटी
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनन दासी
अब मोहि दरसन देहुं कबीर

कबीर शब्द दो अर्थ रखता है। एक तो कबीर धरमदास के गुरु हैं। और कबीर सूफियों के परमात्मा के सौ नामों में एक नाम है। या कबीर! ओ महान! ओ विराट! कबीर का अर्थ होता है, विराट।

कबीर के मरने पर झगड़ा मच गया था कि वे हिंदू थे कि मुसलमान। कौन उनको जलाये? कौन उनको गड़ाये? शिष्यों को इसमें बड़ी उत्सुकता होती है--जलाने-गड़ाने में। मानने और चलने में किसी की कोई उत्सुकता नहीं है कि कौन उनके पीछे चले। कौन गड़ाये, कौन जलाये! बड़ी जल्दी, बड़ा रस! छुटकारा पाने के उपाय!

फिर बड़ी झंझटें मचीं क्योंकि तय होना चाहिए कि वे हिंदू थे कि मुसलमान। यह कुछ तय नहीं था। किसी संत के बाबत तय हो नहीं सकता कि वह हिंदू है कि मुसलमान। कबीर ने तो खूब उलझन में डाल दिया था। यह कबीर शब्द अड़चन डालता था क्योंकि कबीर शब्द अरबी का है। हिंदुओं को यह बड़ी अड़चन की बात थी। उन्होंने बड़ी कहानियां गढ़ीं।

हिंदुओं से ज्यादा सुंदर कहानियां गढ़नेवाले लोग दुनिया में दूसरे हैं ही नहीं। हिंदू शब्दों के मालिक, कथाओं के बड़े कुशल आविष्कारक। उन्होंने एक कहानी गढ़ ली कि कबीर करवीर शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। करवीर: हाथ से बना

हुआ। कर यानी हाथ।

उन्होंने यह कहानी गढ़ी कि गुरु रामानंद सुबह निकले हैं स्नान करने को और एक विधवा ने उनके पैर छुए और उन्होंने अपनी मस्ती में आशीर्वाद दे दिया--'सौभाग्यवती हो, गर्भवती हो।' वह विधवा तो ठिठककर खड़ी हो गयी। उसने कहा, आप यह क्या कहते हैं? मैं विधवा हूं, अब सौभाग्यवती नहीं हो सकती। और जब सौभाग्यवती ही नहीं हो सकती तो गर्भवती तो कैसे हो सकूंगी?

रामानंद निश्चित मुश्किल में पड़ गये होंगे लेकिन अब वरदान दे दिया है तो वरदान तो पूरा करना ही पड़ेगा। ऐसी कहानी हिंदुओं ने गढ़ ली! तो वह जो हाथ उठाकर वरदान दिया था, उसी हाथ के वरदान के कारण यह चमत्कार घटा। वह स्त्री गर्भवती हुई और कबीर पैदा हुए। उस हाथ के आशीर्वाद के कारण पैदा हुए इसलिए उनका नाम करवीर।

मगर यह कहानी बिलकुल झूठी है। इसमें कुछ अर्थ नहीं है। कबीर का नाम तो अरबी से ही आता है। और बड़ा प्यारा नाम है, उसको खराब करते करवीर बनाकर।। 'ओ विराट!' और कबीर थे विराट। उन्होंने विराट को जाना था। जिसने विराट जाना वह विराट हो गया। जिसने प्रभु जाना वह प्रभु हो गया। जो तुम जानोगे वही तुम हो जाते हो। 'जानत तुम्हें तुमहि हुई जाई।'

धरमदास कहते हैं, अब मोहि दरसन देहुं कबीर। तो वे कहते हैं, कबीर, मेरे गुरु में तो तुमको देख लिया। उस झरोखे से तो तुमको देख लिया। अब तुम मुझे सीधा दर्शन दो, ओ विराट! अब तुम मेरी आंखों में सीधे उतरो। बिन दरसन भई बावरी!

सौ सौ उम्मीदें बंधती हैं एकेक निगाह पर
मुझको न ऐसे प्यार से देखा करे कोई

अभी तो कबीर के द्वारा तुमने देखा है, 'मगर सौ-सौ उम्मीदें बंधती हैं एकेक निगाह पर।' कबीर से झांका है तुमने। कितनी उम्मीदें मेरे भीतर बन गयीं, कितनी आशाओं के फूल खिल गये हैं।

अब तुम सीधे मुझे दर्शन दो। अब माध्यम नहीं। कबीर ने झलक दिखा दी, अभीप्सा जगा दी, अब मैं स्वयं तुम्हारे सरोवर से पीना चाहता हूं।

तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर

भक्त का यह अनुभव है। भक्त का भरोसा है: मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी। और भक्त का यह अनुभव है, उस भरोसे से यह अनुभव निष्पन्न होता है: तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं। मेरे काटने से नहीं कटते, तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं। तुम क्या दिखाई पड़ जाते हो कि अचानक पुण्य ही पुण्य के कमल खिल जाते हैं। तुम

क्या दिखाई पड़ जाते हो कि पाप का अंधेरा एकदम विलीन हो जाता है।

तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं निरमल होत सरीर

आत्मा की तो बात ही छोड़ दो, शरीर तक निर्मल हो जाता है। तुम्हारी एक झलक, और सब शुद्ध हो जाता है, सब पवित्र हो जाता है।

अब मोहि दरसन देहुं कबीर

अब वैसा दर्शन हो जाने दो। अभी किरण-किरण उतरी है, अब पूरे-पूरे सूरज का साक्षात्कार हो जाने दो। मुझे अपने में समा लो और तुम मुझमें समा जाओ।

शिकवा करूं तो कैसे, आहें भरूं तो कैसे
अपना बनाके कोई आंखें चुरा रहा है

तुमने अपना भी बना लिया, तुमने कबीर के माध्यम से अपनी छाया भी मुझ पर डाल दी, मुझे लुभा भी लिया, और अब तुम आंखें चुरा रहे हो।

अपना बनाके कोई आंखें चुरा रहा है
शिकवा करूं तो कैसे, आहें भरूं तो कैसे
अमृत भोजन हंसा पावैं सब्द-धुनन की खीर

बहुमूल्य वचन है। हीरों में तौलो, ऐसा वचन है।

अमृत भोजन हंसा पाव सब्द धुनन की खीर

तुम जिस क्षण मुझमें झांकते हो, जिस क्षण तुम्हारा परस हो जाता है .. परमात्मा को पारस कहा है—जिसके परस से लोहा सोना हो जाए। जिस क्षण तुम्हारा पारस-परस मिलता है—अमृत भोजन हंसा पावैं; उस क्षण यह मेरे भीतर छिपा हुआ हंस अमृत का भोजन करता है। उस क्षण मुझे मेरा असली भोजन मिलता है। उस क्षण मेरी भूख मिटती है। उस क्षण तृप्ति बरसती है।

सब्द-धुनन की खीर—और शब्द की ध्वनि पैदा होती है, ओंकार का नाद पैदा होता है। उस जैसी मीठी कोई चीज जगत में नहीं है। वही असली खीर है। जिसको नानक ने, कबीर ने, दादू ने नाम कहा है—'नानक नाम जहाज।' वह जो नाम की नौका है। वह नाम क्या है? उसे वेदों ने ओंकार कहा है: प्रणव। तुम्हारे भीतर एक नाद है। तुम्हारे भीतर प्रतिपल एक वीणा बज रही है लेकिन तुम इतने शोरगुल से भरे हो कि वह वीणा तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती। नक्कारखाने में तूती की आवाज! बाजार में बैठकर कोई धीमे-से वीणा बजा रहा है, और बाजार का उपद्रव, बाजार का शोरगुल! कौन सुने? कहां सुनाई पड़े?

उससे भी बड़ा शोरगुल तुम्हारे भीतर मचा है। और वह धीमा-धीमा जो शब्द तुम्हारे भीतर गूंज रहा है, जो कि तुम्हारे प्राणों का प्राण है, जिसके बिना तुम नहीं हो सकते, जो कि तुम हो—सबद, या ओंकार, या नाम।

धरमदास कहते हैं, सब्द-धुनन की खीर। उसी शब्द की ध्वनि से सबसे मीठी चीज मैंने अनुभव की है। उसका स्वाद अमृत का स्वाद है—अमृत भोजन हंसा पावैं।

जहं देखौं जहं पाट पाटंबर.....

तुम्हारी जब झलक मेरी आंख में पड़ती है तो सारा जगत तुम्हारा पीतांबर बन जाता है।

जहं देखौं जहं पाट पाटंबर, ओढ़न अंबर चीर

और सारा आकाश तुम्हारा ही वस्त्र मालूम होता है। तुमने ही ओढ़ा हुआ है। ये सारे रंग तुम्हारे हैं। ये सारे फूल तुम्हारे हैं। ये सारे चांद-तारे तुम्हारे हैं। यह सारा आकाश तुम्हारा वस्त्र है।

जहं देखौं जहं पाट पाटंबर, ओढ़न अंबर चीर
धरमदास की अरज गोसाईं, हंस लगावो तीर

अब ऐसे थोड़े-थोड़े नहीं चलेगा कि कभी-कभी झलक दो, भोजन दो, थोड़ी-थोड़ी झलक दो और तड़फाओ। अब तो बिलकुल पार लगाओ। अब मुझे ऐसा डुबाओ कि मुझे मेरा पता न मिले। हर बार जब उसका दरस होता है तो ऐसा ही लगता है, पहली बार हुआ।

जैसे मेरी निगाह ने देखा न हो तुझे
महसूस यह हुआ मुझे हर बार देखकर

जब भी तुझे देखा, यही महसूस हुआ कि ऐसा तो कभी न हुआ था, पहली बार हुआ है। फिर निश्चित ही बावलापन बढ़ता है। प्यास सघन होती है। रोआं-रोआं जलता है। हृदय की धड़कन-धड़कन एक ही आकांक्षा और एक ही पुकार से भर जाती है कि अब डुबा लो, अब मिटा लो, अब मुझे अपने में समा लो और मुझमें समा जाओ। बूंद जब तक सागर में गिरकर सागर न हो जाए तब तक यह बावलापन रहता है।

बिन दरसन भई बावरी, गुरु द्यौ दीदार

अब और देर न करो।

ठाढ़ि जोहों तोरी बाट मैं, साहेब चलि आवो
इतनी दया हम पर करौ, निज छबि दरसावो
कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार
ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावो
बंदा भूला बंदगी, तुम बकसनहार
धरमदास अरजी सुनो, कर द्यो भवपार

मैं तो तोरे भजन-भरोसे अविनासी
तीरथ बरत कछू नहिं करहुं, वेद पढ़ौं नहिं कासी
जंत्र-मंत्र टोटका नहिं जानौ निसदिन फिरत उदासी
यहि घटि भीतर बधिक बसत है, दिये लोभ की टाटी
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनन दासी

अब मोहि दरसन देहुं कबीर
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर
अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द-धुनन की खीर
जहं देखौं जंह पाट पाटंबर, ओढ़न अंबर चीर
धरमदास की अरज गोसाईं, हंस लगावो तीर

प्रश्न-सार

- परमात्मा की चाह और परमात्मा के प्यास म क्या फर्क है ?
- न सोचा न समझा न सीखा न जाना
  मुझे आ गया खुद-ब-खुद दिल लगाना
- आप कहते हैं, प्रार्थना मांग नहीं, अहोभाव प्रकट करना है। और धरमदास कहते हैं, 'अर्जी सुनो, कर दो भव पार।' क्या यह प्रार्थना मांग नहीं है ?
- मैं आपकी हो गयी हूं और आपकी विशाल आंखों में डूब जाने को आतुर हो उठी हूं।
- आप इस कदर मेरे भीतर उतर गये हैं कि किन शब्दों में कहूं ?
- भजन क्या होता है ?

प्रवचन : १०
दिनांक : ९।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना।

पहला प्रश्न : आप कहते हैं कि परमात्मा की चाह मात्र बाधा है। और पूर्ण प्यास के बिना परमात्मा से मिलन नहीं हो पाता। परमात्मा की चाह और परमात्मा की प्यास में क्या फर्क है ? कृपा करके समझाइये।

दिव्या, फर्क है दोनों में, और थोड़ा नहीं, बहुत फर्क है। जमीन-आसमान का फर्क है। चाह में आक्रमण है। प्यास में सिर्फ प्यास है। चाह खोजने निकलती है। प्यास प्रतीक्षा करती है। चाह सक्रिय है, प्यास निष्क्रिय है। चाह पुरुष है, प्यास स्त्री है। चाह में थोड़ा न बहुत बलात्कार है। प्यास में सिर्फ आतुर प्रतीक्षा है। चाह का अर्थ होता है, मैं पाकर रहूंगा। जोर 'मैं' पर है, जोर पाने पर है--जोर अपनी शक्ति पर है, जोर अहंकार का है।

प्यास कहती है, मिलो तो मेरा सौभाग्य। मिल जाओ तो मैं धन्यभागी। प्यास में मैं का जोर नहीं है। प्यास में तू महत्वपूर्ण है, मैं नहीं। प्रयत्न महत्वपूर्ण नहीं है, प्रसाद महत्वपूर्ण है। उसकी कृपा होगी तो होगा। चाह का भरोसा अपने पर है, प्यास का भरोसा उस पर है। इसलिए मैं कहता हूं कि चाह बाधा बन जाती है। जो ईश्वर को सक्रिय रूप से खोजने निकलते हैं आक्रमक की तरह, हिंसक की तरह, वे ईश्वर को कभी उपलब्ध नहीं करते। ईश्वर खोजे से नहीं मिलता, स्वयं खो जाओ तो मिलता है।

कबीर ने कहा है, 'हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराई।' खोजता था। खोजते-खोजते, ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मैं खो गया। और जब मैं खो गया तब उससे मिलन हुआ।

चाह में तो मैं बना ही रहेगा। चाह तो मैं का ही विस्तार है। प्यास मैं का बुझ जाना है। प्यास मैं का मिट जाना है। प्यास कहती है, मैं नहीं हूं, तू है। चाह कहती है दुनिया को करके दिखा दूंगा कि मैं कुछ हूं। धन भी मैंने पाया, ध्यान भी पाकर रहूंगा। पद भी मैंने पाया, परमात्मा को भी पाकर मैं रहूंगा। चाह मुट्ठी बांधना चाहती है परमात्मा पर। चाह परमात्मा को भी तिजोड़ी में बंद करना चाहती है, बैंक बैलेन्स में रख देना चाहती है।

प्यास सिर्फ हृदय का खुलना है। आओ तो आओ। न आओ तो रोएंगे। और करने का उपाय क्या है? आओ तो नाचेंगे। न आओ तो शिकायत क्या करें? हमारी पात्रता क्या है? भेद को समझ लेना। भेद बड़ा है। चाह कहती है मिलोगे कैसे नहीं? सब योजना करेंगे, उपाय करेंगे, योग करेंगे, जप, तप, व्रत तीर्थयात्रा करेंगे। जो किया जा सकता है करके दिखाएंगे। सब शर्तें पूरी करेंगे, अपनी योग्यता प्रमाणित करेंगे। मिलोगे कैसे नहीं? मिलना ही पड़ेगा। चाह कहती है, मेरे प्रयास निष्फल नहीं जायेंगे। प्रयास का फल होता है।

चाह पुरुषार्थ का भाव है। चाह परमात्मा का को नहीं मानती। चाह तो परमात्मा को भी अपना एक विषय बनाती है। जैसे कभी धन को बनाया था, पद को बनाया, यश को बनाया, ऐसे परमात्मा को भी। चाह सिकंदर है। विजय-यात्रा पर निकली है, झंडा फहराना चाहती है जगत पर।

प्यास विनम्र है। विजय की यात्रा कहां! हार की आकांक्षा है। उसके चरणों में हार जाऊं। ऐसा हारूं कि कुछ भी बचे नहीं। सब तरह शून्य हो जाऊं। प्यास मिटना जानती है। चाह मिटना नहीं जानती। चाह तो अपने को भरने का उपाय है।

यह भद ख्याल में आ जाए तो मेरे वचनों में तुम्हें विरोधाभास नहीं दिखाई पड़ेगा। मैं निरंतर कहता हूं, चाहोगे, चूकोगे। खोजोगे, कभी न पाओगे। और फिर भी कहता हूं, पूर्ण प्यास चाहिए। गहन अभीप्सा चाहिए। बिना अभीप्सा के कैसे उसका अवतरण होगा? तुम्हें कहीं जाना नहीं है। द्वार-दरवाजे खोलो। प्यास इतना ही करती है, अपने द्वार-दरवाजे खोल देती है। जब सूरज आयेगा तो रोशनी भीतर आयेगी। और जब हवा बहेगी तो हवा की लहरें भीतर आयेंगी। जड परमात्मा आना चाहेगा, प्यास इतना ही कहती है कि तुम मुझे सोया हुआ नहीं पाओगे। जब तुम आओगे, तुम मुझे देहली पर खड़ा पाओगे।

कहा नहीं धरमदास ने! प्रतीक्षा, खड़े रहना, ठहरे रहना। खोजो मत और पा लो। बस प्यास ऐसी हो कि तुम्हारे भीतर प्यास को जाननेवाला कोई न बचे। प्यास ही प्यास रह जाए, इस छोर से उस छोर तक।

फकत दिल ही नहीं है टुकड़े-टुकड़े
जिगर भी पारा-पारा हो गया है

एक-एक रोआं टूट जाए, श्वास-श्वास प्रज्वलित हो उठे।

क्या जानिये यह आह है कि क्या है
कुछ आग सी आई है जुबां पर

कोरे शब्दों से भरी प्रार्थनाओं का कोई मूल्य नहीं है। कुछ आग-सी जबान पर आये। तुम अपने भीतर ही जलने लगो, तड़फने लगो। विरह कीं अग्नि एक-

मात्र यज्ञ है करने योग्य। धोखा देना हो दुनिया को तो फिर बहुत यज्ञ हैं। परमात्मा को पुकारना हो तो एक ही यज्ञ है कि तुम प्रज्वलित हो जाओ। तुम्हारे भीतर आग की लपट उठे; ऐसी उठे कि और सब जल जाए सिर्फ लपट ही बचे।

भक्त अपनी पीड़ा रोता है, अपना विरह रोता है। अपना सौभाग्य गाता है। क्यों? पीड़ा इसलिए कि परमात्मा अभी मिला नहीं, सौभाग्य इसलिए कि कम से कम उसकी प्यास तो मिली। प्यास मिली तो आधा मिलन तो हुआ ही। मिलन तो अभी नहीं हुआ है लेकिन विरह हो गया यह भी क्या कम है! इस दुनिया में असली अभागे तो वे हैं जिन्हें विरह भी नहीं है। मिलन की तो बात दूर। मिलन तो बाद की बात है। विरह की पूर्णता पर मिलन है। इस दुनिया में अधिक अभागे तो वे हैं जिनके मन में विरह का भाव ही नहीं। जिन्हें यह समझ ही नहीं है कि वे कुछ खो रहे हैं।

मैं अर्जे-हाल में कब तक जबां को रोकूं?
तेरी बदलती हुई चितवनों ने क्या न किया

भक्त अपना हाल कह देता है--अर्ज-ए-हाल। भक्त अपनी पीड़ा को निवेदन कर देता है, अपने विरह को रो देता है। लेकिन इनमें सिर्फ दुख का ही भाव नहीं है। यह कोरी शिकायत ही नहीं है। इसमें साथ-साथ एक गीत भी जुड़ा है, एक आनंद का भाव भी जुड़ा है। आनंद इसलिए कि तुमने मुझ पर इतनी कृपा की यही क्या कम है कि मुझे विरह दिया। यहां करोड़ों लोग हैं जिनको विरह नहीं है। तुमने मुझे प्यास दी यही क्या कम है? प्यास है तो सरोवर भी होगा। प्यास है तो तृप्ति भी होगी। प्यास ही नहीं तो कैसा सरोवर, कैसी तृप्ति?

दोनों के भेद को स्पष्ट समझ लेना। चाह से बचना, प्यास में डूबना। प्यास पहुंचाती है, चाह भटकाती है। चाह संसार है, प्यास प्रार्थना है।

दूसरा प्रश्न : न सोचा न समझा न सीखा न जाना
मुझे आ गया खुद-ब-खुद दिल लगाना
जरा देखकर अपना जलवा दिखाना
सिमटकर यहीं आ न जाए जमाना
जबां पर लगी हैं वफाओं की मुहरें
खामोशी मेरी कह रही है फसाना

प्रश्न है भी, प्रश्न नहीं भी है। कुछ पूछा भी है, कुछ कहा भी है। राधा मोहम्मद का प्रश्न है।

न सोचा न समझा, न सीखा न जाना
मुझे आ गया खुद-ब-खुद दिल लगाना

इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है वह खुद-ब-खुद आता है। इस जगत में जो व्यर्थ है वही सीखना पड़ता है। विश्वविद्यालय व्यर्थ को ही सिखाते हैं। सार्थक को सिखाने की कोई जरूरत ही नहीं है।

गणित सिखाये बिना नहीं आता। प्रेम बिना सिखाये आता है। तर्क बिना सिखाये नहीं आता, श्रद्धा बिना सिखाये उतरती है। ज्ञान बिना सिखाये नहीं आता। भक्ति कब अनायास, किस दिशा से आ जाती है कोई भी नहीं जानता। कब बाढ़ की तरह आती है और तुम्हें बहा ले जाती है, कोई भी नहीं जानता। इस जीवन में जो महत्वपूर्ण है वह अनसीखा है। महत्वपूर्ण की तलाश हो तो इस अनसीखेपन के तत्व को समझ लेना।

बच्चा पैदा होता है, श्वास लेना कौन सिखाता है? इसके पहले कभी ली न थी। मां के पेट में बच्चा स्वयं श्वास नहीं लेता। मां की श्वास से ही काम चलाता है। पैदा होने के बाद, जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घड़ी होती है वे दो-तीन क्षण, जब बच्चे की श्वास नहीं होती। मां के गर्भ से बाहर आ गया है और अभी अपनी श्वास ली नहीं। कौन सिखाता है श्वास लेना? और उस श्वास के बिना कोई जीवन नहीं होगा। कभी कोई जीवन नहीं होगा। कहां से आती है श्वास? कैसे भर जाते हैं नासापुट जीवन से? कौन फूंक जाता है? सोचते हो इन जीवन के रहस्यों पर? सिखाया किसी ने भी नहीं। बच्चे ने इसके पहले कभी श्वास ली भी नहीं थी। पुराना कोई अनुभव भी नहीं है। मगर फिर भी घटना घटती है। मां-बाप, चिकित्सक, नर्स अवाक रह जाते हैं क्षण भर को। यह बच्चा चीखेगा, रोयेगा, चिल्लायेगा या नहीं? वह चिल्लाना, रोना-चीखना, सिर्फ श्वास लेने का सबूत है। वह श्वास लेने का पहला उपाय है। वह बच्चे का रो उठना श्वास लेने का पहला उपाय है।

ऐसे ही जिस दिन तुम परमात्मा के लिये रो उठोगे, वह परमात्मा को पाने का पहला उपाय है। मगर तुम्हारे किये करने की कोई बात नहीं है। तुम क्या करोगे?

बच्चा श्वास ले लेता है, जीवन की यात्रा शुरू हो गयी। सबसे महत्वपूर्ण कदम उठा लिया। इससे महत्वपूर्ण कदम अब जिंदगी में दूसरा नहीं होगा। और यह बिना सीखे उठाया। न कहीं स्कूल जाना पड़ा, न किसी से प्रशिक्षण लेना पड़ा। यह अपने से हुआ। यह स्वयंभू है। या कहो परमात्मा से हुआ। परमात्मा का और कुछ अर्थ नहीं होता, जो अपने से हो रहा है उसका नाम परमात्मा है। जो तुम करते हो उसका नाम आदमी है। जो अपने से होता है वही परमात्मा।

फिर एक दिन तुम किसी के प्रेम में पड़ गये। जैसे एक दिन जीवन शुरू हुआ था वैसे एक दिन प्रेम भी शुरू हुआ। वह भी नहीं सीखा। उसके भी कोई विद्यालय

नहीं हैं, पाठशालायें नहीं हैं। वह भी हुआ। और जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, इसी तरह होता रहता है।

तुम जानते हो न! किसी-किसी कवि को हम कहते हैं, वह जन्मजात कवि है। क्या अर्थ? जन्मजात कवि की क्या महिमा? इतना ही कि कविता उसे अपने से हुई है। बाकी तुकबंद हैं, जिन्होंने सीखी है। भाषा सीख सकते हो, व्याकरण सीख सकते हो, छंद के नियम सीख सकते हो। कितनी मात्राएं होनी चाहिए, कितनी नहीं होनी चाहिए, सब सीख सकते हो, मगर तुकबंद रहोगे। काव्य का जन्म नहीं होगा। काव्य का जन्म जन्मजात है। होता है तो होता है, नहीं होता है तो नहीं होता है। उपाय से तुम धोखा दे सकते हो दुनिया को, मगर परमात्मा को धोखा न दे पाओगे।

तुम जरा अपने भीतर तलाश करना, कितनी चीजें अनसीखी हो रही हैं। जो अनसीखा हो रहा है उसमें परमात्मा का हाथ है। जो सीख-सीखकर होता है वह आदमी की बनावट है। आदमी की बनावट से यंत्र बन सकते हैं, जीवन नहीं। आदमी की बनावट से मृत वस्तुएं हो सकती हैं। लेकिन जीवन का प्रवाह आदमी के हाथ में नहीं है। जीवन के प्रवाह का ही नाम तो धर्म है, जो सारे जीवन को सम्हाले हुए है।

रमण महर्षि के पास एक जर्मन विचारक ने कहा कि मैं दूर से आया हूं सत्य को सीखने। आप मुझे सिखाएं। रमण ने उसकी तरफ आंख उठाकर देखा। ऐसे वे ज्यादा नहीं बोलते थे। कम से कम बोलनेवाले आदमी थे। इतना ही कहा कि अगर सीखना है तो कहीं और जाओ। यहां तो अनसीखना हो तो रुको। बड़ी अजीब बात। सीखना हो तो कहीं और जाओ। यहां तो अनसीखना हो, यहां तो सीखे को भी भूलना हो तो रुको।

मैं भी यही तुमसे कहता हूं, गुरु वही है जिसके पास तुम्हारा ज्ञान गल जाए। और जहां तुम्हारा ज्ञान बढ़ता हो वह अध्यापक होगा, शिक्षक होगा, गुरु नहीं है। जहां तुम्हारी जानकरी में और थोड़ा जोड़ हो जाए, तुम कुछ और सीखकर लौटो, समझना वहां शिक्षक था। शिक्षक सिखाता है, शिक्षा देता है। गुरु छीनता है। जो तुमने सीख लिया उसे हटाता है ताकि तुम्हारे भीतर अनसीखे तत्व फिर सक्रिय हो जाएं। दब गये हैं बुरी तरह। तुम्हारी सिखावन में इस तरह दब गयी है तुम्हारी जीवन-ऊर्जा, उसे मुक्त करना है। पत्थरों की तरह तुम्हारा ज्ञान तुम्हारी छाती पर बैठ गया है। उसे हटाना है। तुम्हारी जीवन-चेतना पर शास्त्र लद गये हैं, उन्हें उतारना है। उनके उतरते ही तुम्हारे भीतर वास्तविक प्रज्ञान का जन्म होगा।

ज्ञान बाहर से आता है; प्रज्ञान भीतर से आता है। ज्ञान उधार होता है, प्रज्ञान अपना होता है, निजी होता है। जो निजी है वही सत्य है।

तो राधा, ठीक ही हो रहा है।

न सोचा न समझा न सीखा न जाना
मुझे आ गया खुद-ब-खुद दिल लगाना

सोचते सिर्फ अंधे हैं। आंख जिनके पास है वे सोचते नहीं, चल पड़ते हैं। सोच-विचार अंधे की लकड़ी है। वह उससे टटोलता है। जिसको दिखाई पड़ता है, जो आंख खोलकर देखता है वह लकड़ी लेकर नहीं चलता, वह टटोलता भी नहीं। उसे दिखाई पड़ता है दरवाजा कहां है, निकल जाता है।

सोचना कोई बहुत बड़ी गुणवत्ता नहीं है। असली राज तो बिना सोचे जीवन में गति करने में है।

मेरे पास दो तरह के लोग आते हैं। एक जो कहते हैं, संन्यास लेना है, सोचेंगे, विचारेंगे। उन्हें मैं नहीं दिखाई पड़ रहा हूं। जो कहते हैं सोचेंगे-विचारेंगे, वे आंख बंद किये मेरे सामने बैठे हैं। फिर दूसरा कोई आता है, जो मुझे देखता है और जिसकी आंख से आंसू बहने लगते हैं। और वह कहता है, अगर मैं पात्र हूं तो मुझे संन्यास दे दें। वह यह नहीं कहता कि मैं संन्यास लूंगा या नहीं। वह कहता है, दे दें। अगर मैं पात्र हूं, अगर मुझे योग्य मानें, अगर मेरी कोई संभावना हो, मेरा कोई भविष्य हो, तो मुझे दे दें।

सोचने-विचारने का सवाल कहां है? सोचना-विचारना कायर का लक्षण है। कायर झिझकता है, सोचता-विचारता है। इसलिए सोचने-विचारनेवाले लोग जगत में कुछ कर नहीं पाते। करने का समय कहां है? सोचने-विचारने से फुरसत मिले तब न! निर्णय आये पहले सोचने-विचारने के तब न! और सोचने-विचारने से निर्णय कभी नहीं आता। तुम यह जानकर हैरान होओगे, निर्णय सब हृदय में होते हैं। सोचना-विचारना सिर में होता है। और सिर कोई निर्णय नहीं ले सकता और हृदय कुछ सोच-विचार नहीं कर सकता। हृदय के पास आंखें हैं और सिर के पास अंधापन है। अंधेपन के कारण सिर खूब सोचता-विचारता है। ये दो तरह के लोग।

और एक तीसरे तरह का व्यक्ति भी कभी-कभी आता है। वह मुझे भी उलझन में डाल देता है। क्योंकि उसका हृदय कहता है, तैयार हूं। और उसक, सिर कहता है, अभी सोचूंगा-विचारूंगा। अब मैं किसकी मानूं, किसकी सुनूं? उसके हृदय की सुनूं या उसके मस्तिष्क की सुनूं? उसका हृदय हाथ फैलाये है, उसका मस्तिष्क झिझक रहा है। मैं भी मुश्किल में पड़ जाता हूं, अब किसकी सुनूं? इसके हृदय की सुनूं? इसके हृदय की सुनूं तो इसका मस्तिष्क इन्कार कर रहा है। कह रहा है,'ना'। इसके मस्तिष्क की सुनूं तो इसके हृदय के साथ अनाचार हो रहा है। क्योंकि इसका हृदय मांग रहा है, और हृदय ही मूल्यवान है। हृदय सदा हां कहना जानता

है, हृदय आस्तिक है। और सिर सदा नास्तिक है। जो आदमी सिर से आस्तिक होना चाहता है वह कभी आस्तिक हो ही न पायेगा।

तर्क हां कहता ही नहीं और अगर कभी कहता है तो सिर्फ मजबूरी में कहता है। भेद समझ लेना। मजबूरी में! तर्क नहीं सूझता कुछ तो कहता है, ठीक। लेकिन प्रतीक्षा करता है कि कल अगर कोई तर्क मिल जायेगा तो फिर नहीं पर उतर आऊंगा।

हृदय हां कहता है, मजबूरी में नहीं, अहोभाव में। हृदय को अगर कभी ना कहना पड़ता है तो मजबूरी में। मगर इसी आशा में ना कहता है कि ठीक है, आज मजबूरी है, ना कह रहा हूं, कल जैसे ही सुविधा होगी फिर मेरे हां का फूल खिल जायेगा। हृदय श्रद्धा है। और हृदय को कोई सीखने की जरूरत नहीं, न सोचने की जरूरत है, न जानने की जरूरत है। हृदय जानता है, इसलिए जानने की जरूरत नहीं है। हृदय के तल पर तुम परमात्मा को जानते ही हो। बस इतना ही करना है कि तुम्हें मस्तिष्क से उतरकर हृदय पर आ जाना है। वहां जानना घटा ही हुआ है; सदा से घटा हुआ है, प्रथम से घटा हुआ है। वहां अज्ञान कभी आया ही नहीं। तुम्हारे हृदय पर रोशनी अभी भी है। वहां दीया अभी भी जला है। अंधकार सिर में है। और तुम सिर में बस गये हो। तुम्हें अपने हृदय की गैल ही भूल गयी है। भक्ति का कुछ और अर्थ नहीं है, हृदय की गैल को वापिस खोज लो। सिर से उतरो, हृदय में आ जाओ।

न सोचा न समझा न सीखा न जाना
मुझे आ गया खुद-ब-खुद दिल लगाना

जरा देखकर अपना जलवा दिखाना
सिमटकर यहीं आ न जाये जमाना
जबां पर लगी हैं वफाओं की मुहरें
खामोशी मेरी कह रही है फसाना

खामोशी ही कह सकती है उस फसाने को। शब्द नपुंसक हैं। कहते मालूम पड़ते हैं, कह नहीं पाते। शब्दों के पास पंख नहीं हैं कि उस विराट के आकाश में उड़ जाएं। वहां तो शून्य का पक्षी ही उड़ता है। वहां तो मौन का ही आवागमन है। मौन की ही गति है।

ध्यान रहे, जब तुम्हारे जीवन में प्रेम घटेगा, तुम्हारी जबान लड़खड़ा जायेगी। जब तुम्हारे जीवन में जितना गहरा प्रेम घटेगा उतनी ही जबान चुप हो जायेगी। जैसे-जैसे तुम हृदय के करीब पहुंचोगे वैसे-वैसे सन्नाटे के करीब पहुंचोगे। वैसे ही

वाणी दूर और दूर होती जायेगी। वैसे ही तुम अनुभव करने लगोगे, कुछ है जो न कभी कहा गया है और न कहा जा सकता है। इसीलिए वह जूठा नहीं हुआ है।

परमात्मा न कभी कहा गया है और न कहा जा सकता है, इसलिए परमात्मा जूठा नहीं हुआ है। और जब भी किसी को मिलता है तो जूठन नहीं होता। कबीर को मिले तो जूठन नहीं। धनी धरमदास को मिले तो जूठन नहीं। मुझे मिले तो जूठन नहीं। तुम्हें मिले तो जूठन नहीं। परमात्मा कभी भी जूठा नहीं होता। जब मिलता है, तभी ताजा और नया होता है। उस पर किसी के होंठ कभी लगे ही नहीं। वाणी में वह कभी आया नहीं।

खामोशी मेरी कह रही है फसाना

जो मेरे पास हैं, जो सच में मेरे पास हैं उनकी आंखें धीरे-धीरे खामोश होने ही लगती हैं। धीरे-धीरे वे अपनी चुप्पी से गुफ्तगू करने ही लगते हैं। चुपचाप कहने लगते हैं। जब कुछ कहने योग्य है तब चुपचाप ही कहा जा सकता है। लेकिन फिर भी छिपता कुछ भी नहीं। जब कोई प्रेम से भरता है तो कसे छिपाओगे? जब घर में दीया जला हो तो रोशनी कहां छिपाओगे? जब फूल खिलेगा तो सुगंध को कहां छिपाओगे? सुगंध कुछ कहती तो नहीं। फिर भी पता तो पड़ जाती है। रोशनी कुछ कहती तो नहीं। कोई डुंडी तो नहीं पीटती, फिर भी पता तो पड़ जाती है। जब सुबह हो गयी, सूरज कुछ कहे या न कहे, हजार-हजार पक्षी गीत गाने लगते हैं। हजार-हजार फूल खिल जाते हैं। हजार-हजार आरती के थाल सज जाते हैं।

छिपता नहीं छिपाये से चेहरा अताब का
होता चला गया है रंग गुलाबी नकाब का

वह प्रेम अगर घंटे तो घूंघट तक गुलाबी हो जाता है। घूंघट के भीतर का चेहरा तो गुलाबी होता ही है, घूंघट तक पर आभा पड़ जाती है। आत्मा तो लाल हो ही जाती है।

लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल
लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल

उस प्रेम के रंग में रंगकर तुम्हारी आत्मा तो सुर्ख हो ही उठती है, तुम्हारी देह तक गुलाबी हो जाती है।

छिपता नहीं छिपाये से चेहरा अताब का
होता चला गया है रंग गुलाबी नकाब का

तो राधा कहे कि न कहे, चुप रहे, सदा चुप रहे तो भी मुझे सुनाई पड़ रहा है। तो भी उसका घूंघट लाल हो गया है।

नजर बंद कर वह दिल पे छा रहा है
तजल्ली का मजा अब आ रहा है

जैसे-जैसे परमात्मा तुम्हारे ऊपर छायेगा, जिंदगी में एक नयी बहार, एक नया बसंत! कहने की कोई जरूरत नहीं। वसंत आ गया तो कहने की क्या जरूरत? वसंत कोई विज्ञापन तो देता नहीं। जब आ जाता है तो धड़ल्ले से आ जाता है। चारों तरफ से आ जाता है। हर वृक्ष पर आ जाता है। हर पक्षी के कंठ में आ जाता है। कहां छिपाओगे? वसंत पर कैसे घूंघट डालोगे? जल गयी है प्यार की ज्योति।

जला दी आपने शमे-मुहब्बत खाने-दिल में
मगर न कौन किसके काम आता है जमाने में

बात होने लगी है। परमात्मा ही काम आता है। और तो कोई काम आता भी नहीं। उसी के जलाये यह शमा जलती है। यह जल जाए, शब्दों की कोई जरूरत नहीं। यह कहानी चुप्पी की है। चुपचाप कही जाती है, चुपचाप सुनी जाती है। शब्दों का अगर कोई उपयोग है तो इतना ही है कि तुम्हें मौन को तरफ ले चलें।

मैं इतना बोलता हूं, और सिर्फ इसलिए कि तुम चुप हो जाओ। मेरी दशा कारलाइल जैसी है। कहते हैं कारलाइल ने पचास किताबें लिखी हैं मौन की प्रशंसा में। फिर भी मैं मानता हूं कि पचास किताबें भी मौन की प्रशंसा में कम हैं। पचास हजार भी लिखो तो कम हैं। मौन की प्रशंसा में कितना ही लिखो, कम है। प्रशंसा पूरी हो ही नहीं पाती। इतनी महिमा है मौन की।

शब्दों का एक ही उपयोग है। कबीर भी बोले, और कृष्ण भी बोले और क्राइस्ट भी, और महावीर और मूसा और मोहम्मद--सब बोले। लेकिन सब बोले इस बात को ध्यान में रखकर कि कैसे तुम चुप हो जाओ। बोलना तुम्हारा रोग है। इसलिए बोलने से शुरू करना पड़ता है। बोल-बोलकर ही तुम्हें अबोल की तरफ ले जाना होता है। तुम जहां हो वहीं ही तो यात्रा शुरू करवानी पड़ेगी।

कठिन भी है प्रेम का मार्ग।

जरा देखकर अपना जलवा दिखाना
सिमटकर यहीं आ न जाए जमाना

प्रेमी डरता भी है। जब परमात्मा का थोड़ा-सा जलवा दिखाई पड़ना शुरू होता है तो घबड़ाहट भी होती है। उसकी एक किरण भी इतनी बड़ी है, उस पूरे सूरज का दर्शन कैसे होगा? उस विराट के सामने हाथ-पैर कंपने लगते हैं। कंपकपी छा जाती है।

नरेंद्र ने पूछा है एक सवाल कि जब भी यहां बैठकर आपको सुनता हूं तो कभी-कभी ऐसे क्षण आ जाते हैं कि एक गहरी कंपकपी पैदा होती है। यह क्यों होती

है? वह तभी होती होगी, जब तुम शब्द से छूटकर निःशब्द के करीब आते होओगे। वह तभी होती होगी जब मन से मुक्त होकर थोड़ी देर को समाधि की तरफ सरकते होओगे। वह तभी होती होगी जब संसार भूलता होगा और परमात्मा की तरफ आंख उठती होगी। तभी सब कंप जाता है। तब भीतर एक कंपकपी आ जाती है। रोआं-रोआं कंपने लगता है, एक घबड़ाहट हो जाती है। घबड़ाहट कि मैं मरा। क्योंकि परमात्मा के साथ दो का उपाय नहीं है। तुम मरोगे तो परमात्मा हो सकेगा।

प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाय

परमात्मा के सामने तो मिटना ही होगा। उसी मिटने की जो खबर आती है, मिटने का जो पहला संदेश आता है उसी में सब कंप जाता है।

जरा देखकर अपना जलवा दिखाना

भय भी लगता है प्रेम के मार्ग पर बहुत। घबड़ाहट भी होती है। प्रेम मृत्यु है इसलिए। और जो मरने को तैयार नहीं वह प्रेमी न हो सकेगा। मगर धन्यभागी हैं वे जो इस मृत्यु की यात्रा पर निकलते हैं।

लाख नादानों का वह नादान है
जो फरेबे-आस की खाता नहीं

इस दुनिया में सबसे बड़ा नादान वही है जो प्रेम में नहीं उतरता। उसके जीवन में सभी कुछ रेत ही रेत रह जाता है। मरुस्थल ही मरुस्थल! उसके जीवन में मरुद्यान कभी नहीं उपलब्ध होते।

साधारण जीवन का प्रेम भी उस परम प्रेम की तरफ पहल है, शुरुआत है। प्रेम का फरेब खाना! प्रेम के भ्रम में पड़ना क्योंकि प्रेम ही सत्य है। प्रेम इतना सत्य है कि उसका भ्रम भी सार्थक है। और जगत इतना असत्य है कि उसका भ्रम न भी हो तो भी सार्थक नहीं है। गणित कितना ही तथ्यपूर्ण मालूम पड़े तो भी कहीं न ले जायेगा और प्रेम कितना ही भ्रामक मालूम पड़े तो भी ले जाता है।

जरा अपनी तिरछी निगाहों को रोको
जिगर चोट खाने के काबिल नहीं है

डरता है। भक्त पहले पुकारता है, बुलाता है, तड़फता है, रोता है और जब परमात्मा के पदचाप सुनाई पड़ते हैं, जब उसके स्वर करीब आने लगते हैं तब घबड़ाता भी है। जब उसकी आंख पड़ती जाती है तब घबड़ाता भी है।

जरा अपनी तिरछी निगाहों को रोको
जिगर चोट खाने के काबिल नहीं है

मगर तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। परमातमा का आना शुरू हो जाए तो फिर रुकने का कोई उपाय नहीं है। एक बार उसकी पगचाप सुनाई पड़ जाए फिर

तुम कहीं भी भागो, वह तुम्हें खोज ही लेगा। तुम कितने ही छिपो, वह तुम्हें पुकार ही लेगा।

तीसरा प्रश्न : आप कहते हैं, प्रार्थना मांग नहीं, मात्र अहोभाव प्रगट करना है। और धनी धरमदास कहते हैं, 'अर्जी सुनो, कर दो भवपार।' क्या भवसागर से पार करने की प्रार्थना मांग नहीं है?

हो भी सकती है, नहीं भी हो। आदमी आदमी पर निर्भर है। धनी धरमदास की तो नहीं है, उतना मैं तुमसे पक्का कहता हूं।

तुम करोगे यही प्रार्थना तो मांग होगी। किस होंठ पर शब्द हैं इससे असली निर्णय होता है। शब्दों में अर्थ नहीं होते, होंठों में अर्थ होते हैं। वही शब्द कृष्ण बोलें, वही शब्द तुम बोलो। कितने तोते तो गीता रट रहे हैं! शब्दों वही हैं लेकिन फिर भी वही नहीं हैं। होंठ ही और हो गये। कृष्ण के होंठों पर उन शब्दों में एक स्वर्ण था। तोतों-पंडितों के होंठों पर उन्हीं शब्दों में राख हो जाती है, धूल जम जाती है।

अगर तुम कहोगे, 'अर्जी सुनो कर दो भवपार,' तो इसमें मांग होगी। क्योंकि तुम्हें अभी भव का पता ही नहीं। भवपार की बात उधार होगी। तुम्हें अभी भवपार का ठीक-ठीक अर्थ भी पता नहीं है कि तुम क्या मांग रहे हो। शायद ठीक-ठीक पता हो तो तुम मांगो भी नहीं। तुमने यह शब्द सुन लिया है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं ऐसा आशीर्वाद दें कि आवागमन न हो। मैं उनसे पूछता हूं, तुम्हें ठीक-ठीक पता है? आवागमन न होने का क्या अर्थ होत है? जैसे बूंद सागर में खो जाती है ऐसे खो जाओगे। फिर बचोगे नहीं। फिर बिलकुल नहीं बचोगे। रेखा भी नहीं रह जायेगी। अस्तित्व में कहीं निशान भी नहीं रह जायेगा। तब वे जरा झिझकते हैं। मैं उनसे कहता हूं, फिर से सोचकर कहो। यही तुम चाहते हो? नहीं, वे कहते हैं, हम तो सोचते थे स्वर्ग में रहेंगे कि मोक्ष में रहेंगे। आप कहते हैं बिलकुल रहोगे ही नहीं। उससे तो फिर यहीं बेहतर हैं। अगर यही होना है कि बिलकुल मिट जाना है तो यहां क्या बुरे हैं?

बुद्ध-धर्म का इसीलिए तो इस देश से वृक्ष उखड़ गया। बुद्ध धर्म के उखड़ने की कथा भारत के ऊपर भारी लांछन है। शायद तुमने इस तरह कभी सोचा न हो। बुद्ध में भारत की सबसे बड़ी प्रतिभा प्रगट हुई। और बुद्ध की जीवनधारा भारत में नहीं चल सकी। भारत ने बुद्ध के अस्वीकार में अपनी अपात्रता सिद्ध कर दी। बुद्ध का कसूर क्या था? यहां सब तरह की चीजें चल रही हैं, बुद्ध क्यों न चल सके? बुद्ध का कसूर यही था कि उन्होंने तुम्हारी चीजों को साफ-साफ करके तुम्हारे सामने रख दिया। उन्होंने कहा कि तुम नहीं बचोगे, निर्वाण में तुम नहीं

बचोगे। तुम बिल्कुल नहीं बचोगे। तुम तो पूर्णत: समाप्त हो जाओगे। लोग जाकर पूछते हैं, वे कहते हैं कि देह चली जायेगी वह तो हमें मालूम है लेकिन मैं तो बचूंगा, आत्मा तो बचेगी! बुद्ध ने कहा, आत्मा भी नहीं बचेगी। क्योंकि तुम जिसे आत्मा समझे हो वह तो आत्मा भी नहीं है। वह तो तुम्हारा मन ही है।

लोग बार-बार आकर पूछते हैं, कुछ तो बचेगा! और बुद्ध इस मामले में बिल्कुल ही कठोर थे। वे कहते कुछ भी न बचेगा। मिटने की प्रार्थना है यह। तो लोग कहते, फिर सार क्या? फिर यही बेहतर है, दुख भी है तो ठीक। संसार की पीड़ाएं और कष्ट हों तो ठीक। कम से कम हम हैं तो! तुम जरा सोचो, अगर दो चीजों में चुनना पड़े।

ऐसा समझो कि तुम कारागृह में पड़े हो, हाथ में जंजीरें हैं। भोजन भी ठीक नहीं मिलता। साग-सब्जी में कंकड़ भी होते हैं। दुर्व्यवहार भी किया जाता है। जूतों की ठोकरें भी मारी जाती हैं। कोई स्वतंत्रता नहीं है, कालकोठरी है, अंधकार है। सूरज के कभी दर्शन नहीं होते। चांद-तारे कभी दिखाई नहीं पड़ते। फूल खिलते हैं बाहर दुनिया में या नहीं, अब पता ही नहीं है। उसी बदबू से भरी सीलन भरी कोठरी में तुम जी रहे हो। लेकिन अगर तुम्हारे सामने दो विकल्प हों कि या तो इसी सीलन बदबू-भरी, इसी अपमानित जिंदगी को जिये जाओ या मर जाओ। फांसी या यह कोठरी--तुम क्या चुनोगे? तुम कोठरी चुनोगे। तुम कहोगे कम से कम जिंदा तो हैं। दुख हैं माना मगर कम से कम जिंदा तो हैं।

लोगों को फांसी की सजा होती है। तो वे प्रार्थना करते हैं, अर्जी करते हैं कि हमारी सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए। मिटना कोई चाहता नहीं।

भवसागर से पार होने का मतलब समझते हो? भव यानी होना, बीइंग। भवसागर के पार होने का अर्थ होता है न-होने में उतर जाना। होने से मुक्त हो जाना। तुम्हारी तैयारी है होने से मुक्त हो जाने की? तुम जब कहते हो, आवागमन से मुक्त करवा दीजिये तब तुम्हारा मतलब इतना ही होता है, आने-जाने की झंझट न रहे। कल्पवृक्ष मिल जाए, वहीं आराम से बैठें। मगर आवागमन मिटा कि तुम मिटे। तुम आवागमन में हो। तुम्हारा होना ही आने और जाने के बीच में है। आने-जाने की प्रक्रिया में ही तुम्हारा होना है। आना-जाना गया कि तुम गये। तुम बने आने-जाने से हो। आवागमन तुम्हारा अस्तित्व है।

और बुद्ध ने जब यह बात खोलकर कह दी, जैसी थी वैसी कह दी। जैसी की वैसी कह दी। इसमें जरा भी लीप-पोत न की। इसमें जरा भी ऊपर से शक्कर न लगाई। तुम्हारे भ्रम और तुम्हारे धोखों को किसी तरह का पोषण न दिया। बुद्ध-धर्म इस देश से उखड़ गया। बुद्ध-धर्म के उखड़ जाने ने साबित कर दिया कि यह देश अधार्मिक है। तुम लाख चिल्लाओ कि भारत धार्मिक है, लेकिन बुद्ध का इस

देश से उखड़ जाना तुम्हारे जीवन पर सदा के लिये लांछन हो गया। भारत अधार्मिक है उस दिन से, जिस दिन से बुद्ध-धर्म इस देश के बाहर गया। तुमने अपनी सबसे बड़ी प्रतिभा को इन्कार कर दिया।

तुम दो कौड़ी के पंडित-पुजारियों की पूजा करते हो जिनका कोई मूल्य नहीं है। और तुमने अपनी सबसे बड़ी प्रज्ञा को, इस देश की सबसे बड़ी ज्योति को इन्कार कर दिया! उस ज्योति को दूसरे देशों में जाकर शरण लेनी पड़ी! उस ज्योति के लिये दूसरे देशों में मंदिर बने, तुमने नहीं बनाये। और तुम क्षुद्र-क्षुद्र चीजों के मंदिर बनाते हो। राह के किनारे पत्थरों को रख लेते हो, सिंदूर डाल देते हो और मंदिर शुरू हो जाता है। और बुद्ध के मंदिर तुमने न बनाये? तुम बुद्ध से इतने डर क्यों गये? बुद्ध ने तुम्हारे साथ ऐसा क्या दुर्व्यवहार किया? हां किया। यही कि तुम्हारी झूठी आकांक्षाओं को सहारा न दिया। तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच ली।

तुम जब कहते हो, भवसागर से पार कर दो ऐसी अर्जी करोगे तो मैं मानता हूं कि उसमें मांग होगी। लेकिन धनी धरमदास की बात और। उसमें मांग नहीं है।

मैं निरंतर कहता हूं कि अगर चाह रही तो अड़चन बनी रहेगी। क्योंकि चाह संसार है। तुम कुछ भी चाहो, इससे भेद नहीं पड़ता। जब चाहा, बस तभी संसार शुरू हो गया। अचाह में मुक्ति है। चाह में संसार है।

हसरते-दीदार परदा बन गयी दीदार का
शौक कहता ही रहा जी भरके सूरत देखिये

हसरते-दीदार--वह जो देखने की आकांक्षा थी वही देखने में परदा बन गई।

हरसते-दीदार परदा बन गयी दीदार का
शौक कहता ही रहा जी भरके सूरत देखिये

तुम्हारी पाने की चाह बाधा बन जायेगी। इसलिए तो मैं कहता हूं, परमात्मा के लिये प्यासे होओ, परमात्मा की चाह मत करो। चाह में अहंकार है। प्यास निरहंकार भाव है। चाह विचार है, वासना है। विचार भाव है।

धनी धरमदास तो ठीक ही कहते हैं। तुम्हारा प्रश्न भी विचारणीय है, सम्यक है।

बाकी अभी है तर्के-तमन्ना की आरजू
क्यों कर कहूं कि कोई तमन्ना नहीं मुझे!

अभी एक तमन्ना बाकी है कि तमन्ना से छूट जाऊं। एक चाह बाकी है कि चाह से छुटकारा हो।

बाकी अभी है तर्के-तमन्ना की आरजू
क्यों कर कहूं कि कोई तमन्ना नहीं मुझे

ठीक है बात। अगर इतनी भी आरजू बाकी है कि मेरी चाह मिट जाए, हे प्रभु, मेरी चाह मिट जाए, मेरी चाहत को मिटा दो, तो यह भी चाह है। यही बाधा बन जायेगी।

इसलिए स्मरण रखना, जो मैंने कहा है ठीक ही कहा है। चाह संसार है। इसलिए मोक्ष की कोई चाह नहीं हो सकती। फिर ये धनी धरमदास का क्या करें? वे कहते हैं, 'अर्जी सुनो कर दो भवपार। शब्द तो वही उपयोग करते हैं जो तुम उपयोग करते हो। शब्द और दूसरे हैं भी नहीं। सब शब्द बाजार के हैं।

'अर्जी सुनो कर दो भवपार।' जब धरमदास यह कह रहे हैं कि मेरे होने को मिटा दो। अगर यह अनुभव से, जीवन के प्रति जागरण से, अवलोकन से यह स्थिति बनी है और इसमें कहीं भी छिपी हुई कोई आकांक्षा नहीं है कि रहूं वैकुंठ में, कि रहूं मोक्ष में। इसमें कहीं भी कोई और आकांक्षा नहीं है, इसमें सिर्फ एक निवेदन है कि यह होना कष्टपूर्ण है। कष्ट ही कष्ट है, इस होने को वापिस ले लो।

फर्क समझना। जब तुम चाहते हो वैकुंठ, तब तुम सुख की मांग कर रहे हो। स्वर्ग-सुख की मांग कर रहे हो। और जब तुम जीवन के दुख को सिर्फ देखते हो और कहते हो यह दुख व्यर्थ है। सुख की तुम मांग नहीं कर रहे क्योंकि सुख की मांग के ही कारण तो यह संसार है और यह दुख है। सुख मांगा है इसीलिए तो दुख पा रहे हो। अब तुम सुख नहीं मांगते। अब तुम सिर्फ इतना ही कहते हो, देख लिया यह दुख। इस दुख में कुछ भी सार नहीं है। ले लो वापिस। इसके पीछे कोई भी शर्त नहीं है कि इसके उत्तर में कुछ मुझे देना। इसलिए बुद्ध से जब भी कोई पूछता था कि आपके निर्वाण में क्या होगा? तो वे कहते थे दुख-निरोध। वे कभी नहीं कहते थे, सुख का अनुभव। वे कभी नहीं कहते थे, आनंद की प्रतीति। वे कहते थे, दुख-निरोध। दुख नहीं होगा। इससे ज्यादा नहीं।

बुद्ध बड़े वैज्ञानिक थे। ठीक उतनी ही बात कहते थे जितने से काम चल जाए, रत्ती भर ज्यादा नहीं। क्योंकि तुम बात में से बतंगड बना लेने में बड़े कुशल हो। जरा सी, रत्ती भर कुछ बात निकल जाए, तुम उसी में से रास्ते खोज लोगे। और तुम अपने सारे संसार को वापिस ले आओगे।

स्वर्ग के नाम पर लोग संसार को वापिस ले आये पीछे के दरवाजे से। तुम जरा पुराणों में, शास्त्रों में अपनी स्वर्ग की कल्पना तो देखो। उसमें तुम्हें अपनी सारी चाहत की झलक मिल जायेगी। यहां तक हालतें बिगड़ी हैं कि जिन चीजों को तुम यहां रुग्ण कहो, उनकी भी मांग वहां है।

जब कुरान का जन्म हुआ तो अरबी मुल्कों में होमोसेक्सुआलिटी का बड़ा प्रचार था– अब भी है–समलैंगिकता का। पुरुष पुरुष को प्रेम करने के लिये आतुर

थे। सुंदर युवकों की बड़ी मांग थी, जैसे सुंदर युवतियों की। यह विकृति है। यह रुग्ण दशा है। लेकिन जब कुरान का अवतरण हो रहा था तो किसी कामी ने दिखता है, कुरान में यह बात भी डाल दी कि स्वर्ग में अप्सराएं तो होंगी ही, सुंदर स्त्रियां तो होंगी ही, सुंदर लड़के भी मिलेंगे।

तुम्हारे रोग तक स्वर्ग में पहुंच गये हैं। इस जमीन पर के रोग भी तुम वहां प्रक्षेपित कर लेते हो। शराब पीने के लिये लोग पागल थे। तो बहिश्त में शराब का इंतजाम है। वहां शराब भी मिलेगी। तुम जो यहां चाहते हो वही तुमने वहां चाह लिया है। तो तुम अगर यह कहो, 'अर्जी सुनो कर दो भवपार' तो तुम्हारा मतलब यह होगा, हे प्रभु, अब मुझे स्वर्ग दो। अब बहुत हो गया। जरा मेरी पात्रता तो देखो! इतना पुण्यधर्मी, इतना दानी, इतने व्रत-उपवास! अब मुझे स्वर्ग दो। अब यह संसार मेरे योग्य नहीं। अब मेरे लिये योग्य कोई जगह दो।

लेकिन जब धनी धरमदास कहते हैं, अर्जी सुनो, कर दो भवपार, तो वे इतना ही कह रह हैं, देख लिया सब। चाह दुख है। अब इतना ही निवेदन है–– अर्जी है समझ लेना, निवेदन है। इतना ही विनम्र निवेदन है, सब देख लिया, कुछ कुछ सार नहीं। अब मुझे मिटा दो। अब मेरी मिट्टी को मिट्टी में मिल जाने दो। मेरे आकाश को आकाश में मिल जाने दो। अब मुझे बिखेर दो। जैसा बनाया था एक दिन वैसा ही बिखेर दो। मैं बचूं नहीं।

इन शब्दों का कैसा अर्थ लोगे इस पर सब निर्भर है। धनी धरमदास को मैं जानता हूं। इसलिए उनकी तरफ से तुम्हें आश्वासन दे सकता हूं कि वहां कोई चाहत नहीं है। एक ही चीज अलग-अलग व्याख्याएं ले लेती है।

> चाहा था गुलशन में एक घर बनाना
> मगर बिजलियों को गंवारा नहीं है

यह एक दृष्टि। एक दूसरी दृष्टि––

> बिजलियों रोशनी दिये जाओ
> हम नशेमन तलाश करते हैं

एक दृष्टि : चाहा था गुलशन में एक घर बनाना। कि वसंत आ गया था और फुलवारी में एक घर बना लेते, एक घोंसला बना लेते। मगर बिजलियों को गंवारा नहीं। लेकिन बिजलियां हैं कि नष्ट किये जाती हैं। हम घोंसला बनाते हैं कि जला देती हैं।

एक दूसरी दृष्टि है : बिजलियों, रोशनी दिये जाओ। चमकती रहना, रोशनी देते रहना। हम नशेमन तलाश करते हैं। हम अपना घोंसला खोज रहे हैं।

वही बिजली दुश्मन हो सकती है, वही मित्र। कैसे तुम देखते हो––!

कोई सुख की आकांक्षा कर रहा है इसलिए मांगता है कि भवसागर से छुड़ा दो। भव पार करवा दो। और किसी को दुख दिखाई पड़ गया है, दुख स्पष्ट हो गया है, दुख ही दुख है। वह कहता है कि भवसागर के पार कर दो।

दोनों की बातों में भेद है। शब्द एक है, शब्द पर बहुत मत जाना। शब्द के पीछे खड़े आदमी को गौर से देखना। उस आदमी में ही अर्थ होता है, शब्द में नहीं। शब्द में नहीं, होंठ में अर्थ होता है।

चौथा प्रश्न : मुझे इस जनम में आप मिल गये हो। अब मुझे आपके योग्य पात्र बना लें। भगवान, मरण में भी तो आप मेरे साथ होंगे न? मुझे आपमें ओतप्रोत कर लो, और क्या मांगूं आपसे? मुझमें जो भी कमी हो, बाधाएं हों आपको पाने में, वे सभी दूर कर दो। मेरा सारा अस्तित्व निचुड़कर मेरी दो आंखों में समा गया है। ये दो आंखें आपकी विशाल आंखों में समा जाने को, डूब जाने को आतुर हो उठी हैं। सारा शरीर मस्ती से भर गया है। मैं और क्या कहूं?

पूछा है सरोज ने। उसकी आंखों को इधर मैं देखता रहा हूं। प्रश्न वास्तविक है। उसका सारा अस्तित्व निचुड़कर आंखों में आया है। आ ही जाता है।

जब उसकी दीदार की आकांक्षा जगती है तो भक्त आंख ही आंख हो जाता है। जब उसे सुनने की आकांक्षा जगती है तो भक्त कान ही कान हो जाता है। इससे कम में काम भी नहीं चलता। जब उसे देखना है तो सारी जीवन-ऊर्जा आंख बन जाती है। देखने की आंकाक्षा जितनी प्रबल होगी उतना ही तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर आंखें ही आंखें फैलती जा रही हैं। देह भी आंख हो गयी, मन भी आंख हो गया, आत्मा भी आंख हो गयी।

वे कहते हैं हमें हर वक्त क्यों देखा करे कोई
निगाहे-शौक करती है तकाजा, देखते जाओ

जरा-सी झलक मिल जाए, फिर निगाहे-शौक करती है तकाजा देखते जाओ।

सुना नहीं? धनी धरमदास ने कहा कि अब रात भी आंखों में नींद नहीं। रात भी पलकें खुली रहती हैं कि पता नहीं तेरा दीदार कब हो जाए! तू कब आ जाए? सोएं तो सोएं कैसे? आंख झपकें तो झपकें कैसे? कहीं ऐसा न हो कि मैं सोया रहूं और प्राणप्यारा आये। तो यह तो बड़ी दुर्भाग्य की बात हो जायेगी।

और ऐसा ही हो रहा है। लोग सोये हैं, परमात्मा आता है। परमात्मा रोज आता है। अनेक-अनेक ढंगों में आता है, अनेक रंग-रूपों में आता है। उसके अतिरिक्त और तो कोई है ही नहीं। वही आता है। लेकिन तुम सोये हो। तुम्हारी आंखें बंद हैं। और जो तुम्हारी आंखें खुली भी मालूम पड़ती हैं वे भी बहुत खुली नहीं हैं। वे आंखें भी वही देखती हैं जो उनकी चाह है।

तुमने देखा, एक चमार रास्ते में बैठा रहता है, वह लोगों के चेहरे नहीं देखता, वह सिर्फ जूते देखता। उसकी आंखें हैं, तुम्हारी जैसी ही आंखें हैं, मगर वह लोगों के जूते देखता रहता है। दर्जी तुम्हारा चेहरा नहीं देखता, तुम्हारे कपड़े देखता है। उसकी आंखों ने एक तरह का विशेष ढंग ले लिया है। उसकी आंखें विशेषज्ञ हो गयी हैं। वही देखता है, जो वह खोज रहा है, जो वह तलाश रहा है।

ध्यान रखना, हम वही देखते हैं जो हमारी प्यास है। अगर तुम हीरे खरीदने गये हो तो तुम्हें हीरे की दुकान बाजार में दिखाई पड़ती है। अगर तुम हीरे खरीदने नहीं गये हो, तुम दुकान के सामने से निकल जाते हो...ऐसा नहीं कि तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। है तो दिखाई तो पड़ती ही है मगर कहां दिखाई पड़ती है? एक दफे भी ख्याल नहीं आता। दुकानदार का बोर्ड भी पढ़ते हो, ऐसा नहीं कि नहीं पढ़ते हो, आंख है तो पढ़ ही जाता होगा। मगर कहां होश रहता है? अगर कोई तुमसे पूछे कि उस बोर्ड पर क्या लिखा है? ठीक-ठीक क्या लिखा है? और तुम वर्षों गुजरते रहे हो वहां से। तुम बता न सकोगे। रंग क्या है बोर्ड का? तुम कहोगे कि निकलता तो वहीं से हूं लेकिन कभी ख्याल नहीं किया। देखा तो है मगर ख्याल नहीं किया।

बायजीद अपने गुरु के घर था। गुरु का विशाल आश्रम था। और गुरु के कक्ष में जाने के लिये उसे बीच के एक बड़े हॉल से गुजरना पड़ता था। वह बारह साल तक गुरु के पास था। एक दिन गुरु ने उससे कहा, वह पास ही बैठा था, कि तू जा, जिस हाल से गुजरकर आया है उसमें ताक पर एक किताब रखी है वह तू उठा ला। उसने कहा, आप कहते हैं तो मैं जाता हूं मगर मैंने कभी देखी नहीं। गुरु ने कहा, हद हो गयी! तू बारह साल से यहां आता है, उसी कमरे से रोज गुजरता है। दिन में दस बार गुजरता है, तूने ताक पर रखी किताब नहीं देखीं? बायजीद ने कहा कि मैं आपके पास आता हूं। नजर आपमें उलझी रहती है। ताक मैं है क्या, किसको फिकर? किताबें हैं या नहीं किसको फिकर? देखी जरूर होंगी, लेकिन फिर भी नहीं देखीं। अब जाता हूं, देखकर ले आता हूं।

गुरु ने कहा जाने की जरूरत नहीं। मैं तो सिर्फ इसलिए पूछा था कि तू यहां आता है तो कुछ और भी देखता है या नहीं? तो तू कुछ नहीं देखता। तो तेरे अनुभव की परम घड़ी करीब आ गयी।

हम जो खोजते हैं वही देखते हैं। जब तुम कामातुर होते हो, तुम्हें स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं, अगर स्त्री हो तो पुरुष दिखाई पड़ते हैं। जब तुम कामातुर नहीं होते तब कोई सवाल नहीं उठता। पता भी नहीं चलता कि स्त्री गुजरी कि पुरुष गुजरा।

बुद्ध जंगल में बैठे थे। कुछ युवक शहर से एक वेश्या को लेकर आ गये थे

जंगल में। चांदनी रात थी, पूर्णिमा की रात थी। मजा करेंगे। खूब शराब पी गये। उस वेश्या के सब कपड़े छीन लिये, उसको नग्न कर दिया। लेकिन शराब में इतने धुत हो गये कि वह वेश्या भाग निकली डरकर; उनके ढंग देखकर। जब सुबह थोड़े—चार बजे होंगे, ठंडी हवाएं बहीं, और नगे थे, उघाड़े थे, और शराब में मस्त पड़े थे। थोड़ा होश आया। ठंडी हवाओं ने होश लाया। याद आया कि वेश्या को लेकर आये थे, वेश्या कहां गयी? उसको खोजने लगे। कपड़े तो वहीं पड़े थे। वह वेश्या नंगी ही भाग गयी थी। उसकी खोज में निकले कि गयी कहां होगी नंगी? जायेगी कहां? यहीं कहीं होगी।

उसको तो खोजने निकले, वह तो मिली नहीं लेकिन बुद्ध मिल गये एक वृक्ष के नीचे। वे ध्यान कर रहे थे। उनको ध्यान करते देखकर उन्होंने पूछा, हे भिक्षु, हम एक वेश्या को लाये थे। वह नग्न थी। हम शराब पीकर मस्त हो गये। वह कहां भाग गयी पता नहीं। यहां से जरूर गुजरी होगी। क्योंकि यही एकमात्र रास्ता है। आपको याद है? कोई वेश्या नग्न थी? बड़ी सुंदर स्त्री है। और नंगी स्त्री गुजरे पुरुष के सामने से और पुरुष न देखे!

बुद्ध ने कहा, कोई गुजरा तो जरूर लेकिन स्त्री थी या पुरुष, यह कहना मुश्किल है। कोई गुजरा तो जरूर, सुंदर था कि असंदर, यह भी कहना मुश्किल है। कोई गुजरा तो जरूर क्योंकि मैंने पैर की आवाज सुनी। क्योंकि मैंने कोई प्रतिमा आंख के सामने से जाते देखी। लेकिन वह नग्न थी या नग्न था, वस्त्र पहने थे या नहीं पहने थे, यह जरा कहना मुश्किल है। उन्होंने कहा, आप हमें चकित करते हो। सामने से इतनी सुंदर नग्न स्त्री निकले, आप कर क्या रहे थे? बुद्ध ने कहा, दस साल पहले निकली होती तो मैं उसके पीछे ही चला गया होता। यहां थोड़े ही बैठा रहता! तुम मुझे यहां पाते? वे दिन थे जब मैं पुरुष था तो स्त्री दिखाई पड़ती थी। अब तो मैं देह ही नहीं रहा तो कौन पुरुष, कौन स्त्री? जब तक मैं पुरुष था तो स्त्री दिखाई पड़ती थी। जबसे मैं पुरुष नहीं रहा तो स्त्री कहां से दिखाई पड़े? स्त्री पुरुष को दिखाई पड़ती है, कामातुर पुरुष को दिखाई पड़ती है। स्त्री के गुजरने से स्त्री नहीं दिखाई पड़ती, तुम्हारे भीतर वासना के गुजरने से स्त्री दिखाई पड़ती है। तुम वही देख लेते हो जो तुम्हारी वासना होती है।

सरोज की आंखें सारी ऊर्जा से ओतप्रोत हो गयी हैं। सारी ऊर्जा वहां समा गयी है। यह शुभ हो रहा है। यही लक्षण है। ऐसे ही बढ़ते-बढ़ते कोई एक दिन उसकी परम अनुभूति को, उसके दर्शन को उपलब्ध होता है। ये आंखें पास हों तो कुछ और चाहिए नहीं, फिकर न करो।

और क्या मैकस को साकी चाहिए
तू है, शीशा है, सुराही जाम है

तैयारी हो रही है। जल्दी ही मस्ती परम हो जायेगी।

किसकी चितवन का वह खंजर था
ये अब कहने से क्या!
कर दिये अब जिसने मेरे दिल के टुकड़े, कर दिये

सरोज बही जा रही है। ऐसे ही सबको बहना है। एक-दूसरे से सीखो। एक दूसरे से तरंग लो। एक-दूसरे के पास बैठकर परमात्मा की बातें करो। एक-दूसरे के पास बैठकर मस्त होओ। एक-दूसरे की मस्ती में भागीदार बनो। इसीलिए तुम्हें संन्यास की यात्रा पर भेजा है। तुम्हें एक रंग में रंगा है इसीलिए कि भीतर भी एक रंग आ जाए। बाहर का रंग तो बाहर का ही है। उस पर ही तृप्त मत हो जाना। उससे तो सिर्फ शुरुआत है, अंत नहीं है।

मिलो एक-दूसरे से, चर्चा करो प्रेम की। गीत गाओ, नाचो। रोओ! डूबो एक-दूसरे में। कोई थोड़ा आगे जायेगा, उसके साथ तुम भी आगे जाओगे। चाहता हूं, संन्यासियों की एक इतनी प्रबल ज्वाला बन जाए कि नया व्यक्ति आये तो तिनके की तरह उस ज्वाला में सम्मिलित हो जाए।

दिल में यारों की तरह आंख में आंसू की तरह
तुम मेरे पास रहो फूल की खुशबू की तरह

आकांक्षा तो यही है हरेक की कि जैसे फूल के पास खुशबू है ऐसे परमात्मा हमारे चारों तरफ हो। है ही। सिर्फ हमारे पास संवेदना नहीं है। हम जड़ हो गये हैं। हमारी चमड़ी मोटी हो गयी है।

परमात्मा तो पास ही है। हमें अनुभव नहीं होता। जरा पिघलो। जरा तरल होओ। इधर तुम पिघले कि उधर अनुभव शुरू हुआ।

पूछा है सरोज ने कि जन्म में—इस जन्म में तो आप मिल गये। मरण में भी आप मेरे साथ रहेंगे न?

जन्म और मरण अलग-अलग नहीं हैं। जन्म एक पहलू है, मरण दूसरा पहलू है। जो जन्म में मिल गया वह मरण में भी मिल गया।

मृत्यु है क्या?

सच तो यह है कि एक पहेली है
जिंदगी मौत की सहेली है

साथ-साथ हैं। जीवन में जो पा लिया वह मृत्यु में खोता नहीं। हां अगर मृत्यु में खो जाता हो तो इससे इतना ही सिद्ध होता है कि जीवन में भी पाया नहीं

था, पाने का धोखा खाया था। धन पा लिया जीवन में, मृत्यु में खो जायेगा। वह धोखा था। उसको संपत्ति सिर्फ नासमझ कहते हैं, जाननेवाले उसको विपत्ति कहते हैं। उसको संपदा अज्ञानी कहते हैं, ज्ञानी उसको विपदा कहते हैं। क्योंकि जिंदगी भर गंवाई कमाने में और फिर मौत आयी और सब खो गया।

ध्यान संपदा है। भक्ति संपदा है। कमा ली तो कमा ली, फिर मौत उसे छीन नहीं सकती।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः'

उसे पा लिया फिर, जिसे शस्त्र छेद नहीं सकते और आग जला नहीं सकती।

जिनने मेरे साथ प्रेम का संबंध जोड़ा है वे मृत्यु में भी मुझे इतना ही करीब पाएंगे। सच तो यह है, थोड़ा ज्यादा करीब पाएंगे। क्योंकि अभी तो शरीर की थोड़ी बाधा होती है। फिर वह बाधा भी गयी। फिर दो आत्माओं के बीच मिलने का कोई...न मिलने का कोई कारण नहीं रह गया। शरीर के पीछे से मिलते हैं। यह तो ऐसा ही है कि जैसे हाथ पर दस्ताना पहना हुआ हो किसी से हाथ मिलाते, दस्ताने के पीछे हाथ है। फिर मौत आयी, दस्ताना गिर गया। अब हाथ से हाथ मिलता है। अब आत्मा से आत्मा मिलती है।

खत्म होगा न जिंदगी का सफर
मौत बस रास्ता बदलती है

यह सफर तो चलता रहा, चलता रहेगा। इस सफर में तुम्हें कुछ ऐसा मिल जाए जो मौत न छीन सके तो तुमने कमाई कर ली। तुम खाली हाथ न गये।

इतना मैं कह सकता हूं सरोज, कि फिकर न कर। तेरे हाथ में संपदा आनी शुरू हो गयी है। वह बढ़ती ही जायेगी। यह ऐसी संपदा है जो बढ़ती ही जाती है।

छठवां प्रश्न : जिस दिन आपने नदी नाव-संयोग की चर्चा की उस दिन संसार छूट गया। और जब आपने अपने जन्मदिन पर इस भक्त को अनिमेष नयन से निहारा तब से आपका मोह भी छूट गया। आप इस कदर मुझमें उतर गये हैं कि उसको कहने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं बस आपकी ही हो गयी हूं। और आप मेरे भीतर विराजमान हो गये हैं। किसको धन्यवाद दूं? मैं लायक तो नहीं हूं तो भी आपकी कृपा बरसती रहती है।

पूछा है तरु ने।

मैं देखता रहता हूं किसमें क्या हो रहा है। चुपचाप देखता रहता हूं किसमें क्या हो रहा है। वही मेरा दायित्व है, जिस दिन मैं तुम्हें संन्यास देता हूं उस दिन से मेरे ऊपर आया। उस दिन से मेरी नजर तुम्हारा पीछा करती है।

जो संन्यासी नहीं हैं उनके लिये मैं यह नहीं कह सकता। क्योंकि जिन्होंने

इतनी भी हिम्मत नहीं की कि मेरे साथ पागल हो सकें। जिन्होंने इतनी हिम्मत नहीं की कि दुनिया उनकी हंसी उड़ाये तो मेरे लिये हंसी सह सकें। निश्चित दुनिया हंसी उड़ायेगी। लोग पागल कहेंगे कि दिमाग खराब हुआ। जिनका इतना साहस नहीं है उनके साथ मेरा श्रम करना भी व्यर्थ है। जिनमें इतना साहस नहीं है वे ले भी न सकेंगे, अगर मैं कुछ देना चाहूं। लेकिन जिन्होंने संन्यास लिया है, जिन्होंने मेरे साथ पागल होने की झंझट ली है उनका पीछा तो मेरी नजर करती ही रहती है। तरु ठीक कह रही है।

अगर तुमने मुझे ठीक से समझने की कोशिश की, ठीक से सुना भी तो कई बातें होने लगेंगी जो तुम्हें करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि ठीक-ठीक किसी बात को देख लेना उस बात का हो जाना भी है।

तरु कहती है, जिस दिन आपने नदी-नाव संयोग की चर्चा की...वह दिन मुझे याद है। उस दिन मैंने उसे टूटते देखा। कह रहा था मैं उस दिन कि इस जगत के सारे संबंध नदी-नाव संयोग हैं। नदी नाव के बिना हो सकती है, नाव नदी के बिना हो सकती है। कोई अनिवार्यता नहीं है। ऐसे ही मां, पिता, पत्नी, भाई, बंधु और अंततः गुरु भी नदी-नाव संयोग है। सब संयोग टूट जायेंगे। इसलिए जो व्यक्ति अकेले होने की हिम्मत नहीं रखता वह कष्ट में पड़ जायेगा। अकेले होने का साहस चाहिए और कोई संबंध छोड़कर भाग जाने के लिये नहीं कह रहा हूं। सिर्फ इतना जानना काफी है कि ये संबध बस नाममात्र के हैं। संबंध तो एक ही है जो कभी नहीं टूटेगा; वह परमात्मा से है। वह नदी-नाव संयोग नहीं है।

दुनिया बस इससे ज्यादा नहीं है कुछ
कुछ रोज हैं गुजारने और कुछ गुजर गये हैं

यहां तो सब मिटता ही जा रहा है। पानी पर खींची गयी लकीरें हैं।

ऐ शमा, सुबह होती है, रोती है किसलिए ?
थोड़ी-सी रह गई है, इसे भी गुजार दे

जल्दी ही सब टूट जायेगा। यहां का बनाया हुआ खेल बार-बार मिट जाता है। और मैं तुमसे यह भी नहीं कह रहा हूं कि इस खेल को मिटा दो। इतना ही जान लो कि यह खेल है कि बात समाप्त हो गयी। कई बार ऐसा हो जाता है कि नाटक देखते-देखते तुम इतने तल्लीन हो जाते हो कि भूल ही जाते हो कि नाटक है। तुमने सिनेमागृह में लोगों को रोते देखा होगा। अपने को रोते पाया होगा। और तुम भलीभांति जानते हो मगर भूल गये हो। भलीभांति जानते हो कि परदे पर कुछ भी नहीं है, परदा कोरा है। वहां केवल धूप-छांव का खेल चल रहा है। मगर फिर भी कोई मार्मिक दृश्य देखकर, कोई दुखांत घड़ी आती है और तुम रोने

लगते हो। फिर बाद में तुम भी हंसोगे। और अचानक अगर सिनेमा हॉल में रोशनी हो जाए तो जल्दी से अपने आंसू पोंछ लोगे कि कोई और न देख ले। लोग कहेंगे कि कैसे पागल हो? सिनेमा हॉल का अंधेरा लोगों के लिये बड़ा सहयोगी है। रो भी लेते हैं, हंस भी लेते हैं। प्रसन्न भी हो लेते हैं, भयभीत भी हो लेते हैं; सब चीजों से गुजर जाते हैं। और हर बार जानते हुए, भलाभांति भीतर यह बात तो पता ही है कि परदा खाली है।

जिस व्यक्ति को यह साफ दिखाई पड़ गया है कि संसार केवल धूप-छांव का खेल है, यहां सब संयोग नदी-नाव संयोग। कहीं जाने को नहीं कह रहा हूं, फिर मजे से बैठे रहो सिनेमा हॉल में। कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन फिर न आंसू होंगे, न सुख, न दुख। बाहर की चीज फिर प्रभावित न करेगी। और जब बाहर की चीज प्रभावित नहीं करती तब भीतर की चीज जागती है। जब बाहर के सब प्रभाव समाप्त हो जाते हैं तो सारी ऊर्जा भीतर इकट्ठी हो जाती है। वही ऊर्जा उस परमात्मा तक ले जाने का आधार बनती है। उस तक जाने के लिये ऊर्जा चाहिए। उसी ऊर्जा पर चढ़कर कोई यात्रा कर पाता है।

दो दिन की जिंदगी है रहना नहीं हमेशा
हम खुद हैं एक मुसाफिर दुनिया है एक सराय

समझा, कि हो गया। करने की बात नासमझ करते हैं। समझा, कि हो गया। जो तुम्हारे बीच सर्वाधिक प्रतिभाशाली हैं, वे सुनते-सुनते ही मुक्त हो जायेंगे। जो उतने प्रतिभाशाली नहीं हैं उन्हें कुछ करना होगा। वह प्रतिभा की कमी है।

महावीर ने कहा है कि परमात्मा तक पहुंचने के दो तीर्थ हैं--श्रावक और साधु। या चार--श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी। श्रावक का अर्थ है जो सुनकर ही जान ले। श्रावक यानी जो श्रवण से जान ले। जो गुरु की बात सुने, इधर सुने, उधर हो जाए। साधु का अर्थ होता है, जो सुने, फिर अभ्यास करे। साधु नंबर दो है। मगर मजा यह है कि करनेवाला जीत गया और साधु ऊपर बैठ गया है। और साधु श्रावक से कहता है तुम नीचे हो। असल में श्रावक श्रावक नहीं है और साधु भी साधु नहीं है अब। श्रावक का मतलब यह था, जो सुनकर हो जाए जिसे। बुद्ध ने भी यही कहा है।

बुद्ध का एक श्रावक था विमलकीर्ति। उसकी बड़ी प्यारी कथाएं हैं। वह गृहस्थ ही रहा। उसने कभी घर नहीं छोड़ा, पत्नी नहीं छोड़ी, दुकान नहीं छोड़ी। और बुद्ध के वोधिसत्व भी सारीपुत्र, मौग्दलायन, महाकाश्यप--ऐसे-ऐसे प्रतिभाशाली भिक्षु बुद्ध के विमलकीर्ति से डरते थे।

एक बार विमलकीर्ति बीमार पड़ा तो बुद्ध ने कहा सारिपुत्र को कि जाओ

और विमलकीर्ति को पूछो, क्या बीमारी है, क्या हुआ? कुशल क्षेम पूछकर मुझे खबर कर दो। सारीपुत्र ने कहा, आप कहते हैं तो मैं जाऊंगा, मगर मैं जाना नहीं चाहता। आप मुझे क्षमा करें, किसी और को भेज दें। अगर यह संभव हो किसी और को भेजना तो कोई और ही चला जाए। आप कहेंगे तो जाऊंगा लेकिन मैं जाना नहीं चाहता। बुद्ध ने कहा, क्यों? तो सारीपुत्र ने कहा कि विमलकीर्ति को देखकर मेरे छक्के छूट जाते हैं। मेरी घिग्घी बंध जाती है। वह ऐसे प्रश्न उठा देता है। मैं एक बार बोल रहा था एक सभा में और विमलकीर्ति आ गया। उसके आने से बड़ी अड़चन हो गयी। वह आकर बैठ गया। उसके बैठते ही मैं कुछ का कुछ बोलने लगा। क्योंकि उसकी मौजूदगी ऐसी है। और फिर उसने बीच में उठकर पूछा कि सारिपुत्र, सत्य अगर बोला नहीं जा सकता तो बोल क्यों रहे हो? उसने और फजीहत करवा दी। उससे विवाद भी नहीं किया जा सकता। उसके तर्क भी बड़े प्रखर हैं।

उन्होंने मौग्दलायन से कहा कि मौग्दलायन तू चला जा। मौग्दलायन ने कहा कि आप कहेंगे तो जाना पड़ेगा। मगर किसी और को भेज देते तो अच्छा था। क्योंकि मैं उपवास किये था और विमलकीर्ति आ गया और उसने कहा कि आदमी न देह है न आत्मा है, उपवास कौन कर रहा है? उपवास किसलिए कर रहे हो? उसे देखकर मुझे पसीना छूट जाता है। सिर्फ एक शिष्य मंजुश्री राजी हुआ जाने को; वह भी झिझकते-झिझकते ही गया। कोई जाने को राजी नहीं था तो वह गया। मंजुश्री बुद्ध के भिक्षुओं में सर्वाधिक प्रतिभाशाली भिक्षु था। मगर उसको भी मुश्किल में डाल दिया।

डरते थे, वे ठीक ही डरते थे। क्योंकि उससे कुछ भी बात करनी खतरनाक थी। उसकी प्रज्ञा ऐसी प्रखर थी, वह बुद्ध को सुनकर ही बुद्ध हो गया था। उसने कभी कुछ नहीं किया था। कृत्य करने की जरूरत ही न आयी थी। इधर बुद्ध ने कहा, उधर उसने समझा और बात हो गयी थी।

जब मंजुश्री गया...स्वभावतः तुम किसी बीमार आदमी को देखने जाओ तो उसने जाकर पूछा कि हे विमलकीर्ति, क्या आप रुग्ण हैं? उसने आंख खोली और उसने कहा कि सारा संसार रुग्ण है। तूने बुद्ध को सुना कि नहीं? अरे मूढ़! बुद्ध कहते हैं, जन्म दुख, जीवन दुख, मृत्यु दुख। सारा दुख ही दुख है। और तू इधर पूछने आया कौन रुग्ण है? तू स्वस्थ है?

अब ऐसे आदमी से बीमारी का कुशल-क्षेम पूछने जाना भी कठिन है। लेकिन विमलकीर्ति श्रावक था। सिर्फ सुनकर जाग गया था। अनूठी प्रतिभा रही होगी।

जो तुम्हारे बीच वस्तुतः प्रतिभाशाली हैं वे सुनकर जाग जायेंगे। वे मुझे देखकर जाग जायेंगे। मेरे साथ बैठकर जाग जायेंगे। जो प्रतिभाशाली नहीं हैं उन्हें कुछ करना

पड़ेगा। करना उनकी प्रतिभा को थोड़ा निखारेगा। कुछ धार रखनी पड़ेगी। थोड़ा समय लगेगा।

'नदी-नाव संयोग की चर्चा उस दिन आपने की, संसार छूट गया।' ऐसे ही छूट जाना चाहिए।

'और जब आपने जन्मदिन पर इस भक्त को अनिमेष नयन से निहारा तब से आपका मोह छूट गया।' छूट ही जाना चाहिए।

तुम्हारा मुझसे मोह बन जाए तो यह मोह का नया ढंग हुआ। ध्यान रखना, प्रेम मोह नहीं है। और जहां मोह है वहां प्रेम कहां? प्रेम बड़ी और बात है। प्रेम और ही लोक है। मोह में पकड़ने की इच्छा है। प्रेम में कोई इच्छा नहीं। जैसा है वैसा ठीक है ऐसा प्रेम में भाव है। जो है, सब सुंदर है। जो होगा सुंदर होगा, ऐसी श्रद्धा है। मोह में श्रद्धा नहीं है, मोह में बड़ा संदेह है। मोह कहता है पकड़ रखूं। कहीं मेरा प्रेमी मुझसे छूट न जाए। कहीं मेरा प्रेमी किसी और को प्रेम न करने लगे। कहीं मेरी प्रेमी की नजर से मैं उतर न जाऊं। पकड़ रखूं, बांध रखूं, सब तरफ से घेरा डाल दूं। इसी तरह तो प्रेमी एक-दूसरे के पास जेल खड़ी कर देते हैं। कारागृह बनाते हैं, जंजीरें पहना देते हैं।

जिस दिन पति अपनी पत्नी को गहने पहनाता है, गहने नहीं पहनाता जंजीरें पहना देता है। जिस दिन पत्नी अपने पति के चरण पर अपने हाथ रखती है, चरण नहीं पकड़ती, गर्दन पकड़ लेती है। वहां मोह है। वहां दावा है। प्रेम मोह नहीं है। प्रेम तो निर्मोह दशा है, इसलिए निर्मल है।

गुरु और शिष्य के बीच जो प्रेम है वहां मोह का जरा भी अंश आ जाए तो फिर परमात्मा की तरफ यात्रा जाना मुश्किल हो जायेगी। वहां प्रेम है, अपूर्व प्रेम है, धन्यभाव है। आभार है। मगर कोई मोह नहीं।

अगर ठीक से समझ सको तो ऐसा समझो कि मैंने तुमसे बार-बार कहा है कि गुरु-शिष्य का संबंध इस जगत में सबसे ऊंचा संबंध है। अब तुमसे मैं यह भी कहूं वह सबसे ऊंचा इसीलिए है कि वह नाममात्र का संबंध है। वहां संबंध है क्या? असंबंध है। उसी असंबंध में ही सारा रस है। इसलिए सद्गुरु की परिभाषा मैं करता हूं, जो तुम्हें एक दिन संसार से छुड़ाए और फिर एक दिन अपने से भी छुड़ा दे। तभी तो तुम परमात्मा तक पहुंच पाओगे। नहीं तो संसार से छूटे फिर गुरु से बंध गये। और अक्सर इस दुनिया में गुरु हैं, गुरु नहीं कहना चाहिए उन्हें मगर कहे जाते हैं, जो तुम्हें जकड़ लेंगे। जो तुम पर कब्जा कर लेंगे। जो तुम्हें नई तरह की जंजीरें पहना देंगे धर्म के नाम पर।

गुरु वही है, जो सारी जंजीरें छीन ले और स्वयं जंजीर न बने।

मुझे तुम्हारी जुदाई का कोई रंज नहीं
मेरे खयाल की दुनिया में मेरे पास हो तुम

क्या जुदाई का रंज? अलग होने का कोई डर क्या? मेरे खयाल की दुनिया में मेरे पास हो तुम। और फिर धीरे-धीरे तो खयाल की दुनिया में भी पास नहीं रह जाते, आत्मिक भाव हो जाता है। एकता सध जाती है।

शिष्य और गुरु जहां मिलते हैं वहीं परमात्मा का आविर्भाव है। जहां शिष्य और गुरु दोनों शून्य होकर एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं वहीं पूर्ण का दिया जलता है।

आखरी प्रश्न : भक्त संतों ने भजन की बहुत महिमा गायी है। यह भजन क्या है?

भजन है, भाव का निवेदन। भजन कोई बंधी-बंधाई औपचारिकता नहीं है, निर्बंध भाव का निवेदन है। भजन है हृदय के द्वारा उतारी गयी आरती। बाह्य उपकरणों से नहीं, अंतर-उपकरणों से। भजन है प्यास का गीत।

क्या करे आदमी? विवश है, असहाय है। परमात्मा कहां है, पता नहीं। भजन है कभी रोना, कभी मुस्कुराना। मुस्कुराना उस सबके लिये जो उसने किया है। और रोना उसके लिये, जो अभी होने को है और हुआ नहीं। धन्यवाद उसके लिये जो हुआ है और प्रार्थना उसके लिये जो होना है। तुम जीवित हो यह उसका प्रसाद—इसके लिये धन्यवाद। तुम अभी देह में बंधे हो, यह तुम्हारा कष्ट। इस देह से छुटकारा हो। तुम अभी भव में बंधे हो, यह तुम्हारी पीड़ा। इसकी अर्जी—कि भवसागर से मुझे पार उठा।

और भक्त की यह आस्था है कि मेरे किये कुछ भी न होगा। मेरे किये कभी कुछ नहीं हुआ। मैं हूं ही नहीं। तो तू ही करे तो कुछ हो।

ज्ञानी भजन नहीं गाता। त्यागी भजन नहीं गाता। गायेगा ही नहीं। गायेगा कैसे? त्यागी तप करता है। ज्ञानी ज्ञान संजोता है। व्रती व्रत करता है। उन सब की यह मान्यता है कि हमारे किये होगा। हम करके रहेंगे।

भक्त क्या तप करे? क्या जप करे? भक्त सिर्फ भजन करता है। भजन मतलब स्मरण करता है। वह कहता, तू करेगा तो होगा। जब करेगा तब होगा। हम तब तक प्रतीक्षा करेंगे।

तुमने देखा गांवों में किसानों को? जब ग्रीष्म की भयंकर लू बहती है और जमीन तप-तप कर टूटने लगती है, और वृक्ष सूखने लगते हैं तब तुमने उनकी आंखों को देखा आकाश को निहारते, अषाढ़ कब आयेगा? अषाढ़ के मेघ कब घिरेंगे? तुमने उनकी आंखों को देखा आकाश को देखते? वह भजन है। वैसा ही भक्त आकाश की तरफ देखता है—प्रतीक्षारत। कब उसके अंतर के आकाश में अषाढ़ के मेघ

घिरेंगे! कब घनश्याम का दर्शन होगा? कब वर्षा होगी?

किसान भी कुछ कहता नहीं, देखता है आकाश को। कहने को है भी क्या? उसकी आंखें सब कह रही हैं। भक्त भी कुछ कहता नहीं। कहने को है क्या? ऐसा क्या है जो परमात्मा नहीं जानता है, जो कहना पड़े? उसकी आंखें सब कह रही हैं, उसका हृदय सब कह रहा है। लेकिन कभी-कभी यह भाव गीतों में फूट भी पड़ता है। कभी-कभी यह अनूठे-अनूठे रंगों में व्यक्त भी होता है। कभी आंसू बनकर बहता है। और कभी पैरों में घूंघर बंध जाते हैं और भक्त नाचता है। कभी वीणा को छेड़ता है।

लेकिन यह होना चाहिए अनौपचारिक। सीखा-सिखाया न हो। यह पिटा-पिटाया न हो। यह चला-चलाया न हो। यह लकीर की फकीर आदत नहीं होनी चाहिए कि सीख लिया एक भजन और रोज उसी को घोंकते रहे। उससे कुछ भी न होगा।

कथा है : मूसा एक जंगल से गुजरते थे——यहूदी पैगंबर। उन्होंने एक आदमी को प्रार्थना करते देखा, वे बड़े चौंके। उन्होंने बहुत प्रार्थना करनेवाले देखे थे। मगर यह बड़ी अजीब प्रार्थना कर रहा था। गरीब आदमी था। गड़रिया था। अब गड़रिये की प्रार्थना गड़रिये प्रार्थना थी। उसके ही अंतर का भाव था। वह कह रहा था हे प्रभु, अगर तुम मुझे मिल जाओ ऐसा स्नान करवाऊं तुम्हें, ऐसी मालिश करूं तुम्हारी कि अगर जुएं इत्यादि तुम्हारे शरीर में पड़ गये हो, सबको धो डालूं।

मूसा तो बहुत चौंके कि हद हो गयी। यह आदमी क्या कह रहा है जैसे ईश्वर ने स्नान न किया हो! और यह उनके जुए इत्यादि की बातें कर रहा है? और पैर ऐसे धोकर साफ करूंगा कि बिमाई भी पड़ गयी हों तो ठीक कर दूंगा। मेरे जैसी मालिश कोई कर ही नहीं सकता। और भोजन भी बना दूंगा। और रात बिस्तर भी लगा दूंगा।

आखिर मूसा से न रहा गया, वह बीच में आकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, कि सुन नासमझ! तू यह क्या कह रहा है? यह कैसी प्रार्थना कर रहा है? पहले प्रार्थना करना सीख। आदमी गरीब था, वह गिर पड़ा पैर पर। उसने कहा, मैं तो जानता नहीं, सीखा-पढ़ा भी नहीं। आप मुझे सिखा दें। तो जो मूसा को लगता या प्रार्थना नियमबद्ध जैसी यहूदी करते हैं वह प्रार्थना उसे समझायी कि इस-इस तरह—। उसने फिर दुबारा पूछा कि देखो मैं भूल जाऊंगा, एक दफा और बता दो। फिर मूसा दूसरी दफा बताकर जा रहे थे कि वह भागा फिर आया और उसने कहा कि एक बस--एक दफे और। क्योंकि मैं भूल जाऊगा। ये कठिन शब्द हैं। और अगर-भूल-चूक हो गयी तो——तो फिर बड़ा नुकसान होगा। अब तक अज्ञानी था, जो करता रहा

सो करता रहा। मगर अब--अब भूलचूक नहीं सही जायेगी। अब मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। तुम्हें कहां खोजूंगा?

वह तो मेरी प्रार्थना थी, उसमें कुछ अड़चन ही नहीं थी रोज। अपनी बना लेता था, जो जैसी करनी थी कर लेता था। अब तो एक नियम से चलना होगा। जब मूसा बड़े प्रसन्न भाव से उसको समझाकर तीसरी बार अपने रास्ते पर चले तो उन्होंने आकाश से एक बड़ी गंभीर गर्जना सुनी। ईश्वर बहुत नाराज था। और ईश्वर ने कहा कि सुनो, मैंने तुम्हें दुनिया में भेजा है कि तुम जो मुझसे भटक गये हैं उन्हें मुझसे मिलाना। लेकिन तुम जो मुझसे मिले हुए हैं उनको भटका रहे हो। तुम वापिस जाकर उस आदमी से क्षमा मांगो। वह अकेला है इस प्रांत में जो प्रार्थना जानता है। उसका भाव तो देखो! उसका प्रेम तो देखो! तुमने सब खराब कर दिया। तुम्हारे दो कौड़ी के शब्द अब वह दोहराता रहेगा उधार। अब प्रार्थना कभी नहीं हो सकेगी। तुम जाकर उसके पैरों पर गिरो, और क्षमा मांगो। और आइंदा ख्याल रखो, मेरे किसी भक्त को इस तरह बरबाद मत करना।

यह कहानी बड़ी अद्‌भुत है। वह भजन था जो गड़रिया कर रहा था, मूसा ने उसका भजन खराब कर दिया। भजन कोई विधि नहीं है। भजन अनौपचारिक चर्चा है परमात्मा से; विराट से वार्ता है, गुफ्तगू है। और जो तुम्हारे हृदय का भाव हो वही। कभी चुप तो चुप, कभी बोलना हो तो बोलना। कभी गाना आ जाए तो गाना। कभी नाचना आ जाए तो नाचना। स्मरण करना उसका——किसी बहाने से सही। मगर जो भी तुम करो वह तुम्हारा हो, निजी हो। उसमें तुम्हारा हस्ताक्षर हो। फिर सभी प्रार्थनाएं जिन पर तुम्हारे हस्ताक्षर हैं, पहुंच जाती हैं, और जो उधार हैं, बासी हैं वे यहीं भटकती रह जाती हैं। अगर तुम्हारी प्रार्थनाएं नहीं सुनी गयी हैं तो उसका कुल कारण इतना है कि तुमने प्रार्थना किसी से सीख ली है। सीखने में ही भूल हो जाती है।

न सोचा न समझा न सीखा न जाना
मुझे आ गया खुद-ब-खुद दिल लगाना

प्रार्थना, भजन : खुद-ब-खुद दिल लगाना।

जबां पर लगी हैं वफाओं की मुहरें
खामोशी मेरी कह रही है फसाना

कभी मौन भी हो जाता है। भजन मस्ती है।

तुमने पूछा, 'भक्त संतों ने भजन की बहुत महिमा गायी है, यह भजन क्या है?'

तुम शायद चाहते हो कि मैं तुम्हें एक बंधा हुआ भजन बता दूं कि यह है भजन। मैं यहां तुम्हें परमात्मा से अलग करने नहीं आया हूं। मूसा की भूल मैं न

करूंगा। मैं यहां तुम्हें जोड़ने आया हूं। मैं चाहता हूं तुम जुड़ो। मैं ऐसा न करूंगा। मैं यहां तुम्हें स्वतंत्रता देता हूं। अपने एकांत में बैठकर जो तुम्हारी मौज में आये, करना। बस उसकी याद हो, किसी बहाने सही। सब बहाने हैं और तो, याद असली बात है। बुहारी लगाना और उसकी याद करना; और बुहारी लगाना भजन। भोजन बनाना और उसकी याद करना; और भोजन बनाना भजन। राह चलना और उसकी याद करना; और चलना भजन।

कबीर ने कहा है, चलूं-फिरूं सो परिक्रमा। वह हो गयी परिक्रमा। खाऊं-पिऊं सो सेवा। वह जो मैं खा-पी लेता हूं वह भी उसी को लगाया हुआ भोग है। अब और कहां जाना है? भजन एक सहज स्वाभाविक जीवन है जिसमें परमात्मा की याद थिरकती है। याद थिरकती रहे बस। फिर तुम क्या करते हो इससे बहुत भेद नहीं पड़ता। उस करने में परमात्मा की ज्योति भीतर जलती रहे।

प्रत्येक कृत्य भजन हो सकता है, भाव की बात है।

आज इतना ही।

गांठ परी पिया बोले न हमसे।
माल मुलुक कछु संग न जैहे, नाहक बैर कियो न जग से॥
जो मैं जनितिउं पिया रिसियैहे, नाहक प्रीति लगाती न जग से॥
निमुवासर पिया संग मैं सूतिऊं, नैन अलसानी निकरि गये घर से॥
जस पनिहार धरे सिर गागर, सुरति न टरे बतरावत सब से॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर को पावैं भाग से॥

साहेब मोहिं दरसन दीजे हो, करुना-निधि मिहर करीजो हो।
पपिहा के चित स्वांति बसैं, भावैं नहिं जल दूजा हो।
जैसे काग जहाज चढ़े, वाको और न सूझा हो॥
बार-बार बिनती करूं, मेरी अरज सुनीजे हो।
भवसागर से काढ़िके, अपना करि लीजे हो॥

झरि लागे महलिया, गगन घइराय।
खन गरजे खन बिजुली चमकै, लहर उठे सोभा बरनि न जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसे, प्रेम अनंद होय साध नहाय॥
खुली किवरिया मिटो अंधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया है लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय॥

मंगल

सतगुरु के उपदेश, फिरो धन बावरी।
उठि चलो आपन देस, इहै भल दाब री॥
हम कहि दिया है सनेस, तुम्हारे पीव का।
बिनु समझे नहिं काज, आपने जीव का॥
जुगन जुगन हम आइ कहा समुझाइकै।
बिनु समुझै धनि परिहौं, कालमुख जाइकै॥

प्रवचन : ११
दिनांक : १०।२।१९७८ श्री रजनीश आश्रम, पूना।
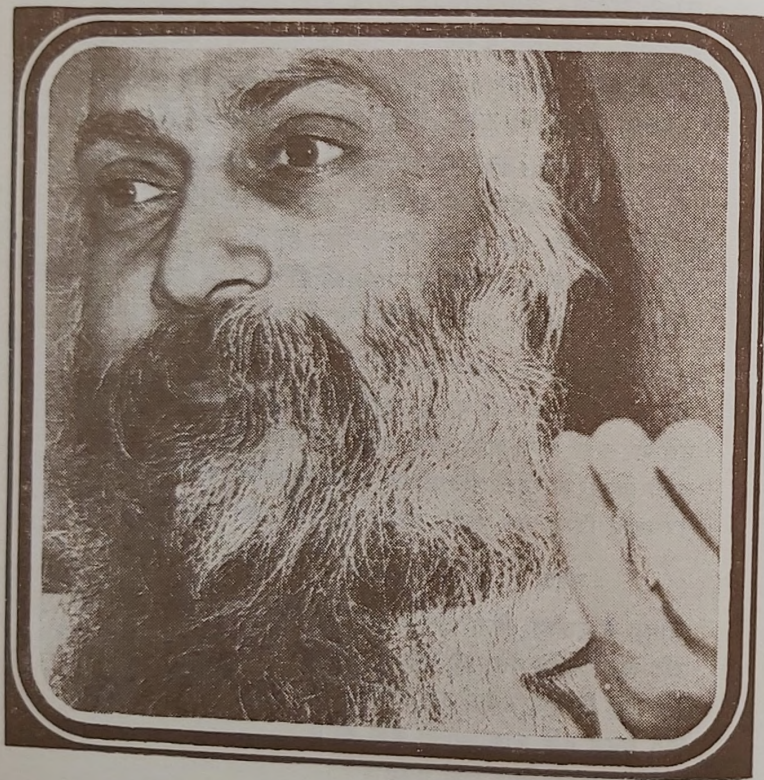
गांठ परी पिया बोले न हमसे

प्रेम के मार्ग पर प्रेम भी है और उससे भी ज्यादा प्रीतिकर भक्त और भगवान के बीच झगड़ा है। जहां प्रेम है वहां झगड़ा भी है। शत्रु ही नहीं लड़ते, मित्र भी लड़ते हैं।

लड़ाई हर हाल में बुरी नहीं होती। शांति भी हर हाल में भली नहीं होती। शत्रुओं के बीच शांति भी कुरूप होती है, मित्रों के बीच झगड़ा भी प्यारा होता है, सुंदर होता है।

प्रेमी का लड़ना प्रेम का अनिवार्य अंग है। मनस्विद कहते हैं, जो प्रेमी लड़ना बंद कर दें, समझना कि प्रेम समाप्त हो गया। जब तक प्रेमी लड़ते रहते हैं,, तब तक समझना कि प्रेम जारी है।

और हर लड़ाई प्रेम को एक नयी ऊंचाई पर ले आती है। एक नया आयाम, एक नया आकाश खुल जाता है। हर लड़ाई के बाद प्रेम फिर ताजा हो जाता है, नया हो जाता है, पुनरुज्जीवित हो जाता है। लड़ाई धूल को झाड़ देती है। दर्पण फिर ताजा हो जाता है। इसलिए प्रेमी लड़ाई का रस जानते हैं।

और भक्त फिर भगवान तो प्रेम की अंतिम घटना है; आत्यंतिक। उसके पार तो फिर और कोई प्रेम नहीं है। वहां झगड़ा भी बड़े अपूर्व रूप में प्रगट होता है।

गांठ परी पिया बोले न हमसे

धनी धरमदास कहते हैं, बड़ी गांठ पड़ गयी है, बड़ा झगड़ा हो गया है, बड़ा मनमुटाव हो गया है। परमात्मा हमसे बोल नहीं रहा है। पीठ किये खड़ा है। रूठ गया है। रूठने के इस तत्व को ठीक से समझो।

तेरे लड़ने में खुला मुझपे तेरे इश्क का हाल
तुझे इतनी थी मुहब्बत, मुझे मालूम न था

लड़ता ही कौन है ? लड़ने योग्य कोई समझता ही कब है ? इतनी झंझट कोई लेता कब है ? जब प्रेम की गहराई होती है। तुम क्रोधित भी होते हो तो

इसीलिए न, कि प्रेम किया ! तुम अपने बेटे पर क्रोधित हो जाते हो; हर किसी पर तो नहीं। बेटे को चाहा है इसलिए।

पश्चिम में एक हवा चली पिछले तीस-चालीस वर्षों में। उसके बड़े दुष्परिणाम हुए। कुछ विचारकों ने समझाना शुरू किया कि अपने बच्चों पर नाराज नहीं होना चाहिए। और यह बात जंचती है कि बच्चों पर नाराज नहीं होना चाहिए। क्योंकि नाराजगी घाव बना देगी। यह नाराजगी का एक पहलू है। नाराजगी जरूर घाव बनाती है अगर ठंडी हो। नाराजगी अगर उष्ण हो तो तो घाव नहीं बनाती, फूल खिलाती है।

यह बात तर्क से ठीक मालूम हुई और पश्चिम में मां-बाप ने बच्चों पर नाराज होना बंद कर दिया। उसके बड़े दुष्परिणाम हुए। जब नाराजगी चली गयी तो प्रेम भी चला गया। एक उपेक्षा आ गयी। ठीक है, जिसको जो करना है, करे। जिसको जो होना हो, हो जाए। नाराजगी के मरने के साथ पश्चिम में प्रेम मर गया। मां-बाप और बच्चों का संबंध दूर का हो गया।

जिस बाप ने अपने बेटे को कभी मारा नहीं वह बेटा अपने बाप को कभी क्षमा नहीं कर पायेगा। लेकिन क्रोध होना चाहिए उष्ण, जीवंत; ठंडा नहीं। ठंडा क्रोध खतरनाक है।

इसे समझना। दुनिया में सदा कहा गया है, क्रोध खतरनाक है, मैं तुमसे कहता हूं, ठंडा क्रोध खतरनाक है, गर्म क्रोध खतरनाक नहीं है। ठंडे क्रोध का अर्थ होता है, उपेक्षा से मारा, उपेक्षा से चोट की : ठंडे क्रोध का अर्थ है, क्रोध में प्रेम की कोई आभा नहीं थी। क्रोध में प्रेम की कोई भनक नहीं थी। क्रोध प्रेमशून्य था।

घृणा, उपेक्षा, इनसे भी क्रोध होता है लेकिन तब क्रोध में सौंदर्य नहीं होता, कुरूपता होती है। प्रेम भी क्रुद्ध होता है; होगा ही। जिसने तुम्हें चाहा है, जिसने तुम्हारे सौभाग्य की कामना की है, तुम्हें गलत जाते देखकर कभी वह रुष्ट भी होगा। अगर उसने चाहा है तो वह इतना भी करेगा; इतनी झंझट भी लेगा।

पश्चिम में मां-बाप और बच्चों की पीढ़ी में जो फासला पैदा हो गया है--जनरेशन गैप, जो पीढ़ियों का दुराव पैदा हुआ उसके पीछे यह गलत धारणा थी कि मां-बाप अपने बच्चों पर क्रोध करें ही नहीं। और आदमी की यह आदत है, जब वह किसी एक बात को पकड़ लेता है तो उसकी अतिशयोक्ति तक चला जाता है, उसके तार्किक अंत तक चला जाता है।

एक मनोवैज्ञानिक की कहानी मैंने सुनी है, एक स्त्री उसके पास आयी है। वह अपने बेटे के संबंध में पूछ रही है क्योंकि बेटा बड़ी झंझटें पैदा कर रहा है। गलत काम कर रहा है, गलत रास्ते पकड़ रहा है, गलत आदतों में पड़ रहा है।

और मनोवैज्ञानिक कहते हैं, क्रोध मत करना तो वह मनोवैज्ञानिक से सलाह लेने आयी है कि अब मैं करूं क्या ? मनोवैज्ञानिक कहता है, क्रोध तो करना ही मत। क्रोध के तो बड़े दुष्परिणाम होंगे। बच्चे के भीतर गांठें पड़ जायेंगी। वह विकृत हो जायेगा। फिर बड़े मानसिक रोग पैदा होंगे बाद में। क्रोध तो करना ही मत।

वह स्त्री भरोसा नहीं कर पाती। वह पूछती है, तुम्हारा बेटा है? तुम ईमानदारी से कह सकते हो कि तुमने कभी अपने बेटे पर क्रोध नहीं किया, या अपने बेटे पर कभी हाथ नहीं उठाया ? वह मनोवैज्ञानिक कहता है, अगर सच ही पूछती हो तो सच यह है--ऐसे तो मैं अपने बेटे पर कभी हाथ नहीं उठाता लेकिन आत्मरक्षा के लिये कभी-कभी उठाता हूं। आत्मरक्षा के लिये!

प्रेम के साथ क्रोध भी महिमावान हो जाता है। यह कीमिया ख्याल में लेना। प्रेम के साथ मिट्टी भी जुड़ जाए तो सोना हो जाती है। और अगर क्रोध को काट डाला तो तुम पाओगे, तुमने पंख काट डाले प्रेम के। जो आदमी क्रोध नहीं कर सकता वह आदमी प्रेम भी नहीं कर सकता।

इसलिए तो तुम्हारे तथाकथित साधु-संत प्रेम शून्य हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने सारी चेष्टा यह की है कि क्रोध न हो पाये। बस किसी तरह क्रोध को रोक लेना है। क्रोध तो रुक गया, साथ ही प्रेम भी रुक गया। कांटे तो नहीं ऊगते अब उनके बगीचे में लेकिन फूल भी नहीं ऊगते। यह कोई सौदा हुआ? कांटों की वजह से फूल न ऊगें, यह कोई समझदारी हुई? हजार कांटे ऊगें, अगर एक फूल भी निकल आता है तो झंझट उठाने जैसी है।

और इसका परम रूप प्रगट होता है भक्त और भगवान के बीच क्योंकि वहां प्रेम की आखिरी ऊंचाई है, आखिरी गहराई है। वहां भी झगड़ा उठता है--कभी भगवान की तरफ से, कभी भक्त की तरफ से।

> गैर को जामे-शराब और हमें साफ जबाब ?
> याद रह जायेगी साकी यह इनायत तेरी

कभी भक्त को लगता है कि सब तरफ बरसा रहे हो, एक मुझे ही तरसा रहे हो ?

> गैर को जामे-शराब और हमें साफ जबाब ?
> याद रह जायेगी साकी यह इनायत तेरी

भूलेंगे नहीं, भूल नहीं पायेंगे यह बात।

> बजाहिर मेरे लब हैं खामोश
> लेकिन बड़ा शोर है मेरी तनहाइयों में

भक्त कहता है, चाहे कहूं और चाहे न कहूं; चाहे चुप रह जाऊं; अशोभन है

यह सोचकर चुप रह जाऊं, तुम से क्या लड़ना यह सोचकर कुछ न कहूं--

बजाहिर मेरे लब हैं खामोश
लेकिन बड़ा शोर है मेरी तनहाइयों में

लेकिन मेरे अंतस से पूछो, वहां बड़ी नाराजगियां हैं, बड़ा शोर है।

यह स्वाभाविक है । क्योंकि भक्त की आकांक्षा क्या है, अभीप्सा क्या है ? कि परमात्मा उसके दिल में बसे। और यह बड़ी मुश्किल से हो पाता है और कभी-कभी हो पाता है। और क्षण भर को होता है, फिर-फिर चूक जाता है। इतनी अभीप्सा कि सब दांव पर लगा दिया है। और बस कभी-कभी किरण मिलती है और वह भी पकड़ पाये इसके पहले खो जाती है। झलक मिलती है। झरोखा खुलता है और बंद हो जाता है। नाराज न हो तो क्या करे ?

मेरे पल्लू में रहो, मेरी निगाहों में फिरो
मैं इसी बात की रखता हूं तमन्ना दिल में

जितनी बड़ी तमन्ना, जितनी बड़ी अभीप्सा, उतने ही विषाद के क्षण भी होंगे। सांसारिक आदमी क्या खाक विषाद जानेगा। उसने पाना ही चाहा क्षुद्र को है, न भी मिला तो उसका विषाद भी क्षुद्र होगा। धन पानेवाले को धन मिला तो विषाद बहुत बड़ा नहीं हो सकता। पद पानेवाले को पद नहीं मिला तो विषाद क्या बड़ा होगा ? जिसे पाने चले थे वही छोटा था। दो कौड़ी की चीज पाते तो कोई आनंद नहीं होनेवाला था; नहीं पायी तो कोई विषाद नहीं हो जायेगा।

लेकिन जो परमात्मा को पाने चला है उसकी कठिनाई समझना; उसके रास्ते के उपद्रव समझाना। उसका अभियान बड़ा है। और जितने ऊंचे शिखर पर चढ़ोगे उतने ही गिरने का डर भी है। गिरे तो बड़ी खाइयों में गिरोगे। सपाट जमीन पर चलनेवाले खाइयों में नहीं गिरते। वे तो शिखरों पर चढ़नेवाले गिरते हैं।

तो भक्त ऊंचाइयां जानता है और नीचाइयां जानता है। भक्त कभी-कभी स्वर्ग को छू लेता है और कभी-कभी नर्क में गिर जाता है। तुमने तो सिर्फ स्वर्ग और नर्क शब्द सुने हैं। न तुमने कभी स्वर्ग को छुआ है और न कभी तुमने नर्क को जाना है। ये शब्द तुम्हारे लिये कोरे शब्द हैं, भाषाकोश में लिखे हैं। भक्त इनका अनुभव करता है। अभी क्षण भर पहले स्वर्ग में उड़ा जाता था और क्षण भर बाद नर्क के गहरे अंधेरे में पड़ जाता है। तुम उसकी पीड़ा समझो। और जिसने स्वर्ग का स्वाद जाना हो उसे नर्क कितना कष्टपूर्ण हो जाता है।

तुम तो दुख में ही जी रहे हो। तुम्हें सुख की कभी कोई अनुभूति नहीं हुई है। इसलिए तुम दुख से आदी हो गये हो। तुम दुख के साथ राजी हो गये हो। दुख तुम्हें काटता भी नहीं है। तुम तो दुख को जिंदगी समझ लिये हो। तुम तो

कहते हो, यही जिंदगी है। और कोई जिंदगी होती कहां है ?

लेकिन जो उड़ा आकाश में और जिसने जाना कि उड़ान संभव है और जमीन बहुत पीछे छूट जाती है। और जिसने खुले आकाश का स्वातंत्र्य देखा, और जिसने चांद-तारों से क्षण भर को सही बातचीत की, वह जब जमीन पर वापिस गिरता है, तुम उसकी पीड़ा न समझ पाओगे।

कदम फलक ही पर अहले तलक के पड़ते हैं
दयारे-इश्क में कोसों जमीं नहीं मिलती

आकाश पर पैर पड़ने लगते हैं। दयारे-इश्क में--उस प्रेम के रास्ते पर।

कदम फलक ही पर अहले तलक के पड़ते हैं

प्रेमियों के पैर आकाश पर पड़ने लगते हैं।

दयारे-इश्क में कोसों जमीं नहीं मिलती

लेकिन जब फिर मिलती है तो उस पीड़ा का तुम सिर्फ अनुमान ही कर सकोगे। उसी पीड़ा में भक्त नाराज होता है। उसी पीड़ा में कभी पूजा का थाल फेंक देता है। कभी आरती के दीये बुझा देता है। कभी मंदिर के द्वार बंद कर देता है।

रामकृष्ण के साथ निरंतर ऐसा हो जाता था। कभी पूजा करते तो करते ही रहते। कब सुबह आयी, कब सांझ हो गयी, पता न चलता। और कभी दो-चार दिन के लिये पट बंद हो जाते तो मंदिर के खुलते ही नहीं।

मंदिर जो कमिटी चलाती थी उसको खबर लगी। रामकृष्ण को तो नौकरी पर रखा था। यह तो संयोग की बात थी कि रामकृष्ण जैसा आदमी मिल गया था। संयोग भी कहना नहीं चाहिए। दक्षिणेश्वर का मंदिर बनाया था एक महिला ने जो शूद्र थी। शूद्र का मंदिर था...धनी थी बहुत--रानी रासमणी। रानी का ओहदा था लेकिन शूद्र थी। तो कोई ब्राह्मण राजी नहीं होता था उसके मंदिर में पूजा करने को। कौन राजी हो शूद्र के मंदिर में पूजा करने को ? शूद्र के मंदिर में तो भगवान भी शूद्र हो जाता है न ! मंदिरों पर निर्भर है। ब्राह्मणों के मंदिर में भगवान ब्राह्मण होता है, शूद्रों के मंदिर में भगवान शूद्र हो जाता है। तुम्हारे साथ भगवान की भी तुम फजीहत करवाते हो।

मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। वहां गणेश-उत्सव पर गणेश का जुलूस निकलता है। सब मोहल्लों में गणेश की झांकियां रखी जाती हैं, फिर सारे मोहल्लों के अलग-अलग लोग अपनी-अपनी झांकियां लेकर विशाल यात्रा में सम्मिलित होते हैं। वहां नियम है, पहले ब्राह्मणों के मोहल्ले का गणेश होता है, फिर दूसरा मोहल्ला, फिर तीसरा ऐसा.... आखिर में चमारों के मोहल्ले का गणेश होता है।

एक बार ऐसा हुआ कि ब्राह्मणों के गणेश को आने में जरा देर हो गयी।

ब्राह्मणों का ही गणेश ! कोई ऐसी जल्दी भी क्या है ? उनकी तो ठेकेदारी है । लेकिन जुलूस में निकालने में देर थी, इतनी देर नहीं की जा सकती थी, सांझ तक जुलूस पूरा हो जाना चाहिए। तो जो पहले आ गया.... चमारों के गणेश पहले आ गये थे तो चमारों के गणेश आगे हो गये। जब ब्राह्मणों के गणेश आये तो ब्राह्मणों ने जुलूस रुकवा दिया और कहा, हटाओ चमारों के गणेश को पीछे। गणेश चमार हो गये चमारों के साथ !

तो रासमणी ने जब मंदिर बनाया तो शूद्र का मंदिर था, कौन ब्राह्मण पूजा के लिये राजी हो ? कोई असली ब्राह्मण ही राजी हो सकता था। रामकृष्ण राजी हो गये। रामकृष्ण पुजारी थे दक्षिणेश्वर में। अठारह रुपये महीना उनकी कुल तनख्वाह थी। उन दिनों लेकिन अठारह रुपये बहुत थे।

जब रानी रासमणी को खबर लगी और कमिटी को पता चला कि यह तो कुछ अजीब-सा आदमी है, कुछ पागल-सा आदमी है। कभी करता है पूजा तो दिन भर करता है। दिन भर करने को कहा किसने ? एक घड़ी भर सुबह कर ली, घड़ी भर शाम कर दी, बस ठीक है। उपचार पूरा हो गया। यह कभी करता है तो सुबह से सांझ हो जाती है, रात भी हो जाती है। ऐसी भी खबरें आयी हैं कि कभी-कभी रात-रात भर भी करता है, सोता ही नहीं। करता ही रहता है। कोई देखनेवाला भी नहीं रहता और यह अकेला ही नाचता रहता। और कभी-कभी दो-चार दिन के लिये दरवाजे पर ताला मार देता है।

पूछा बुलाकर रामकृष्ण को। रामकृष्ण ने कहा, कभी-कभी झगड़ा हो जाता है इसलिए दरवाजा बंद कर देता हूं कि अब रहो ! बैठे रहो भीतर ! अब न कोई आयेगा पूजा को, न कोई करेगा प्रार्थना। नाराज हो जाता हूं, रूठ जाता हूं। कभी-कभी वे भी रूठ जाते हैं। तो मैं पूजा करता हूं सुबह से सांझ तक और एक बार उन होठों पर मुस्कुराहट नहीं आती। नाचता ही रहता हूं, नाचता ही रहता हूं। वे भी रूठ जाते हैं तो मैं भी रूठ जाता हूं। ऐसा कभी-कभी झगड़ा हो जाता है।

यह तो कभी सुना नहीं था लोगों ने। उन्होंने कहा, तुम कहते क्या हो ? पूजा तो नियम से रोज होनी चाहिए। तो रामकृष्ण ने कहा, नियम से पूजा करवानी हो तो किसी और को रख लो। पूजा तो भाव से होगी, नियम से नहीं होगी।

इसको ख्याल में रखना। जो पूजा भाव से करता है वह कभी-कभी नाराज भी हो जायेगा। वह कहेगा, बैठे रहो। आज स्नान नहीं करवायेंगे। आज खड़े ही रहो। आज सुलायेंगे नहीं झूले में, बहुत हो गया झूला झुलाते।

यह जब भाव से उठता है तो इसमें रस है। इसमें अपूर्व रस है । जब यह भाव से उठता है तो यही पूजा है। इससे गहरी और पूजा क्या होगी ? दूसरी तरफ

भी यह बात इसी तरह घटती है। यह आग दोनों तरफ लगती है।

गांठ परी पिया बोले न हमसे

धनी धरमदास कह रहे हैं, बड़ी गांठ पड़ी है। झगड़ा जरा बढ़ गया है। प्यारा बोलता नहीं, पीठ किये खड़ा है।

मेरे रोने पे दुनिया हंस रही है
मुझे हंसने पे रोना आ रहा है

भक्त जब रोता है तो दुनिया हंसती है। दुनिया की समझ में नहीं आती यह क्या बात हो रही है? यह किससे बात हो रही है? तुमने रामकृष्ण को देखा होता काली के सामने खड़े होकर बात करते तो तुम चौंकते । तुम ज्यादा से ज्यादा यही कह सकते थे कि आदमी पागल है। मनोवैज्ञानिक यही कहेंगे, दिमाग खराब हो गया है। रुग्ण चित्त की दशा है, हिस्टेरिकल है। क्योंकि तुम भीतर के तत्व को तो पकड़ नहीं पाओगे। तुम हंसते।

मेरे रोने पे दुनिया हंस रही है
मुझे हंसने पे रोना आ रहा है

और भक्त तुम्हें हसते देखकर और रोता है। यह देखकर रोता है कि तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। तुम बीच में खड़े हो परमात्मा के और तुम्हें पता नहीं है। तुम सागर की मछली जैसे हो। सागर में हो और सागर का पता नहीं है।

इधर झगड़ा भी होता है, राह भी देखी जाती है। झगड़ा भी होता है, शिकायत भी की जाती है।

किसी रात आ जाएं वह चुपके-चुपके
कब आयेगी वह इत्तेफाक की रात?

आते दिखाई नहीं पड़ता परमात्मा। पुकार है, प्रार्थना है, प्यास है। और उसकी तरफ से कोई उत्तर नहीं, कोई प्रतिसवाद नहीं।

बंदा परवर, मैं वह बंदा हूं कि बहरे-बंदगी
जिसके आगे सर झुका दूंगा, खुदा हो जायेगा

तुम अपनी अकड़ में बैठे रहो। मैं जिसके सामने सिर झुका दूंगा, खुदा हो जायेगा।

मिलन के क्षण भी होते हैं—

कहके यह और कुछ कहा न गया
कि मुझे आपसे शिकायत है

वे घड़ियां भी आ जाती हैं जब आमना-सामना होता है।

इन बातों का तर्क से कोई भी संबंध नहीं है। तर्क से सोचा तो चूके। ये बातें अतर्क्य

है। थोड़ा अनुभव, थोड़ा सजाओ पूजा का थाल। थोड़े दीये जलाओ, कभी-कभी डूबो, रोओ, मुस्कुराओ। कभी अनंत के साथ बांधो अपनी गांठ। सगाई ही करनी हो तो उससे ही करनी चाहिए। सात फेरे डालने हों तो उसी से डालने चाहिए। और सब विवाह झूठे हैं, कामचलाऊ हैं। विवाह तो उससे हो जाए, तो ही तुम्हारे जीवन में पहली दफा शाश्वत की थोड़ी-सी धुन उठनी शुरू होगी। तो ही तुम्हारी वीणा छिड़ेगी। तुम्हारे भीतर सोया हुआ नाद जगेगा।

भक्त कहता है :

मान लो तुमसे रूठ जाए कोई
तुम भला किस तरह मनाओगे ?

तुम्हीं से पूछते हैं !

मान लो तुमसे रूठ जाए कोई
तुम भला किस तरह मनाओगे ?

कभी डरता भी है।

और बिगड़ जाए न कहीं
बिगड़ी बात बनाने से

ऐसे सब मौसम आते हैं। सब भाव-भंगिमाएं उठती हैं। भक्ति का शास्त्र विराट है। ज्ञान का शास्त्र एकांगी है, भक्ति का शास्त्र अनेकांगी है; उसके बहुत पहलू हैं।

बुद्धि तो एक ही चाल जानती है—तर्क की चाल। हृदय और बहुत चालें जानता है। उड़ना भी जानता है, छलांग लगाना भी जानता है। अंधेरे में रोशनी पैदा करने की कला हृदय को आती है। जहर से अमृत बना लेने की रसायन हृदय को आती है।

ये थोड़े-से दिन, जो हमने धरमदास के साथ बिताये, बड़े प्यारे थे। यह यात्रा मधुर थी। धनी धरमदास जैसा मार्गदर्शक मिले और यात्रा प्यारी न हो ऐसा तो हो नहीं सकता। लेकिन इसमें वे ही उतर पाये होंगे जिन्होंने अपनी बुद्धि को किनारे रख दिया होगा।

गांठ परी पिया बोले न हमसे
माल मुलुक कछु संग न जैहे, नाहक बैर कियो है जग से

धनी धरमदास कहते हैं, अब मेरी समझ में आ रहा है कि मेरा प्यारा मुझसे क्यों रूठ गया है ! इसीलिए रूठ गया है कि मैंने क्षुद्र बातों पर अपने प्रेम को लुटाया और लगाया। मेरे प्रेम में अपवित्रता है।

माल मुलुक कछु संग न जैहे...

न तो धन जायेगा, न पद जायेगा, न प्रतिष्ठा जायेगी और इसी पर मैंने अपने प्रेम को लगाया। इसके संग-साथ मेरा प्रेम कलुषित हो गया है। मेरे प्रेम में फूलों की ताजगी नहीं है। मेरे प्रेम में पक्षियों के पंख नहीं हैं। मेरे प्रेम में सूरज के किरण की उष्मा नहीं है। क्षुद्र के साथ लगाया, क्षुद्र हो गया।

ध्यान रखना, यह प्रेम का सूत्र है बुनियादी—जिससे प्रेम लगाओगे, प्रेम वैसा ही हो जायेगा। और प्रेम नहीं वैसा हो जायेगा, तुम भी वैसे हो जाओगे क्योंकि प्रेम तुम्हारी आत्मा है।

जिसने धन से प्रेम लगाया, तुम उसके चेहरे पर देखो। वही घिसा-पिटा भाव जैसा चलते-फिरते नोटों में हो जाता है, बहुत दिन चले-फिरे नोट में हो जाता है घिसा-पिटा रंग; वैसा उस आदमी के चेहरे पर हो जाता है। जैसी घिसते-घिसते रुपये में एक तरह की घिनौनी चमक आ जाती है ऐसी घिनौनी चमक उस आदमी के चेहरे पर आ जाती है, जो बस रुपये ही गिनता रहा। तुम जरा गौर से देखो।

जो आदमी पद की ही यात्रा पर रहा है और दूसरों के कंधों पर पैर रखकर चढ़ने की जिसकी आदत है, जिसने आदमियों की सीढ़ियां बनाई हैं उसके चेहरे पर तुम कठोरता पाओगे, पथरीलापन पाओगे। वह हंसेगा भी तो भी उसकी हंसी झूठी मालूम पड़ेगी।

राजनीतिज्ञ हंसते हैं, उनकी हंसी तुम देखते हो ? कैसी झूठी मालूम पड़ती है ! मोरारजी देसाई हंसते हैं, उनकी हंसी देखते ? बड़ा अभ्यास करना पड़ता होगा ऐसा मालूम पड़ता है। और होठों से ज्यादा गहरी जाती मालूम नहीं होती। होठों पर भी मुश्किल से आती मालूम होती है, खींचतान कर लायी गयी होती है। चेष्टा होती है, प्रयत्न होता है, नहीं तो चेहरा पथरीला है। उतना पत्थर होना जरूरी है, नहीं तो पद की यात्रा नहीं होती।

पद की यात्रा के लिये अहंकार चाहिए। अहंकार आदमी के भीतर सारे कोमल तंतुओं को तोड़ डालता है। अहंकार आदमी को जड़ बना देता है। अहंकार आदमी के भीतर से प्रेम के सारे स्रोत सुखा देता है। अहंकार बस एक बात जानता है—और ऊपर, और ऊपर, और ऊपर। और अहंकार सिर्फ लेना जानता है, देना नहीं जानता। अहंकार लोभ है।

धरमदास कहते हैं, मैं जानता हूं कि तुम क्यों रूठ गये। तुम रूठ गये हो क्योंकि मेरा प्रेम अपवित्र है। क्योंकि मैंने प्रेम गलत से लगाया था। गलत की छाया मेरे प्रेम पर पड़ गयी है।

माल मुलुक कछु संग न जैहे...

अब समझ में आ रहा है कि यह कुछ साथ नहीं जायेगा। लेकिन बहुत समय

गंवाया इसी में।

...नाहक बर कियो है जग से

और इधर तुम रूठ गये और इसी माल-मुलुक के लिये मैंने सारे जग से भी झगड़ा लिया। ध्यान रखना, जब तुम धन के पीछे दीवाने हो तो जितने लोग धन के पीछे दीवाने हैं वे सब तुम्हारे दुश्मन, तुम उनके दुश्मन। जब तुम पद के लिये दीवाने हो तो जितने लोग पद के लिये दीवाने हैं वे तुम्हारे दुश्मन, तुम उनके दुश्मन।

राजनीति में दोस्ती होती ही नहीं। दोस्ती दिखावा होती है, दुश्मनी असली होती है। और यह मत सोचना कि जो विरोधी होते हैं राजनीति में वे दुश्मन होते हैं। वे तो होते ही हैं. राजनीतिज्ञ के पास जो निकटतम होता है वह भी उतना ही दुश्मन होता है। क्योंकि उसको भी पद की दौड़ है। वही पद उसे भी चाहिए। राजनीति में दोस्ती होती ही नहीं; हो ही नहीं सकती। दोस्ती तो सिर्फ धर्म जानता है। और अगर धर्म में भी दोस्ती न हो तो समझना कि राजनीति है। फिर वह भी पद की ही दौड़ है। फिर वह भी अहंकार की ही यात्रा है।

धरमदास कहते हैं कि दोहरी झंझट ले ली। इधर तुम नाराज होकर बैठ गये क्योंकि मैंने गलत से प्रेम लगाया। उधर सारी दुनिया से बैर लिया क्योंकि वे भी सब गलत के लिये आकांक्षा से भरे थे।

एक और बात ख्याल में लेना कि जब तुम गलत की आकांक्षा से भरते हो तो प्रतिस्पर्धा होगी, प्रतियोगिता होगी। और जब तुम सही की आकांक्षा से भरते हो तो कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती, कोई प्रतियोगिता नहीं होती। क्यों? क्योंकि गलत की सीमा है और सही की कोई सीमा नहीं है, इसलिए सही में कोई खतरा नहीं है। अगर तुम भगवान को पा लो तो इससे यह नहीं होता कि मैं भगवान को नहीं पा सकूंगा। तुम्हारा भगवान का पा लेना मेरे भगवान के पा लेने में बाधा नहीं बनता। सचाई तो यह है, अगर तुमने भगवान को पा लिया तो मेरे भगवान के पाने में सुगमता हो जाती है। यह भरोसा आ जाता है कि एक आदमी को मिल सका तो मुझे भी मिल सकेगा।

लेकिन धन के मामले में बात दूसरी है। तुमने पा लिया तो मैं चूका। मैंने पा लिया तो तुम चूके। एक आदमी धनी बने तो हजारों को गरीब हो जाना जरूरी है। लेकिन एक आदमी ध्यानी बने तो हजारों लोगों को ध्यान से रिक्त रह जाना आवश्यक नहीं है। सच तो यह है कि एक आदमी के ध्यानी बनने में हजारों लोगों के लिये ध्यानी बनने का मार्ग खुल जाता है।

बुद्ध के पास जो लोग इकट्ठे हो गये वे किसलिए इकट्ठे हो गये थे? महावीर के पास जो लोग इकट्ठे हो गये वे किसलिए इकट्ठे हो गये थे? कबीर और नानक के पास दूर-दूर से चलकर जो लोग आ गये वे किसलिए आ गये थे? ध्यान उपलब्ध हुआ था। ध्यान का धन ऐसा है कि एक को मिले तो सबको मिलने के लिये रास्ता खुल जाता है। लेकिन और धन ऐसे नहीं हैं।

अब किसी को प्रधानमंत्री होना है तो एक ही हो सकता है। साठ करोड़ के मुल्क में एक प्रधानमंत्री! तो निश्चित ही छीना-झपटी होने ही वाली है। गला-घोंट छीना-झपटी होनेवाली है। आगे से छुरे, पीछे से छुरे, सब तरफ से छुरेबाजी होने की है क्योंकि एक ही पहुंच सकता है। एक आदमी साठ करोड़ की दुश्मनी करे, तब प्रधानमंत्री हो सकता है।

इसलिए इस जगत में मित्रता खो गयी है। मित्रता यहां हो ही नहीं सकती। हम बचपन से ही महत्वाकांक्षा का जहर भर देते हैं। छोटा-सा बच्चा स्कूल जाता है, और तुमने उसमें जहर भरना शुरू कर दिया। तुम उससे कहते हो, प्रथम आना अपनी कक्षा में। तुम क्या कह रहे हो तुम्हें पता है? तुम यह कह रहे हो कि जो तीस बच्चे तुम्हारे साथ पढ़ते हैं वे दुश्मन हैं। तुम्हें प्रथम आना है। उनके मां-बाप ने भी कहा है उनको कि प्रथम आना है। तुम तीस बच्चों को लड़ाना शुरू कर रहे हो। तुमने राजनीति शुरू कर दी।

तुम्हारा सारा शिक्षाशास्त्र राजनीति का अंग है। हर बच्चे को तुम विकृत कर देते हो। और फिर बड़ा मजा यह है कि राजनीतिज्ञ समझाते हैं विश्वविद्यालयों में जाकर कि विद्यार्थियों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। और तुम्हारी पूरी शिक्षा राजनीति का ही विस्तार है।

कब वह सौभाग्य का दिन आयेगा जब बच्चे स्कूल में वस्तुतः मित्र हो सकेंगे? वह दिन तभी आ सकता है जब महत्वाकांक्षा न होगी। स्कूल जब कुछ इस तरह की बातें सिखायेंगे जिसमें एक के मिलने से दूसरे की हानि नहीं होती। जब ध्यान सिखायेंगे, जब प्रेम सिखायेंगे, जब परमात्मा सिखायेंगे तो फिर कोई अड़चन न होगी।

धनी धरमदास कहते हैं, दोहरी झंझट कर ली मैंने। इधर तुझे नाराज कर दिया क्योंकि क्षुद्र से प्रेम लगाया, प्रेम तेरे योग्य न रहा, तू पीठ करके खड़ा है। इधर मैं पुकारता हूं और तू देखता नहीं। तेरे-मेरे बीच यह गांठ पड़ गयी। और उधर सारी दुनिया को भी बैरी बना लिया।

माल मुलुक कछु संग न जैहे, नाहक बैर कियो है जग से

जो मैं जनितिउं पिया रिसियैहे, नाहक प्रीति लगाती न जग से

कहते हैं, अगर मुझे पता होता कि तुम रिसिया जाओगे, तुम नाराज हो जाओगे, तुम रूठ जाओगे, तुम पीठ कर लोगे तो मैंने कभी जग से कोई प्रेम न लगाया होता। लेकिन यह तो लगा-लगाकर ही पता चलता है। इसका पता भी तो नहीं

चलता बिना लगाये। इस जिंदगी में कहां-कहां गड्ढे हैं, गिरकर ही पता चलता है।

मेरे पास कोई आ जाता है, वह कहता है मुझे किसी स्त्री से प्रेम हो गया। मैं कहता हूं, गिरो। मैं पूरी सहायता देता हूं कि गिरो। मेरा आशीर्वाद। जितनी जल्दी गिरो, उतनी जल्दी जगो। देर मत करो। क्योंकि गड्ढों का पता गिरकर ही पता चलता है।

कोई कहता है, मुझे किसी पुरुष से प्रेम हो गया है। मैं कहता हूं, जाओ। इस नर्क से गुजरना जरूरी है। शायद तुम्हारी भावनाओं का ख्याल करके मैं इतना साफ कहता भी नहीं कि इस नर्क से गुजरना जरूरी है। तुम्हारी भावनाओं का ख्याल करके कहता हूं कि स्वर्ग है, जाओ।

लेकिन आशा यही रखता हूं कि पीड़ा से ही तुम्हें अनुभव होगा। भटकने से ही तुम समझोगे एक दिन कि यहां के सब प्रेम गड्ढे हैं। यहां कोई प्रेम परिपूर्ति नहीं लाता।

और तब एक दिन तुम्हें धनी धरमदास की बात समझ में आयेगी कि क्षुद्र से प्रेम लगाते-लगाते प्रेम भी क्षुद्र हो गया। अब इसको विराट को कैसे चढ़ायें? अब यही मन, जो किसी पुरुष के चरणों में चढ़ा दिया था, किसी स्त्री के चरणों में चढ़ा दिया था, यही चित्त जो किसी वेश्या के पीछे भागा फिरता था, जो पद के लिये लोलुप था, जिसे रात नींद नहीं आती थी और सोचता था, यह चुनाव तो चूकना ही नहीं है। इसी चित्त को अब परमात्मा के चरणों में किस मुंह से रखें? यह चित्त रखने योग्य नहीं रहा। इसको इतनी जगह रख चुके हैं, इतने चरणों में चढ़ा चुके हैं कि अब यह उन परम चरणों के योग्य नहीं रहा।

इसी पीड़ा में चित्त धुलता है। इसी रुदन में, इन्हीं आंसुओं में चित्त साफ हो जाता है, फिर परमात्मा के योग्य हो जाता है। इस सारे संसार का जो-जो मैल तुम्हारे ऊपर जम जाता है, भक्त कहता है, अगर तुम ठीक से रो पाओ, बह जायेगा।

त्यागी कहता है त्याग करो, योगी कहता है योग करो लेकिन भक्त सुगमतम बात कहता है; भक्त कहता है, आंखों को आंसुओं से भरो। क्योंकि योग के करने में भी हो सकता है, अहंकार मजबूत हो जाए। अक्सर हो जाता है। तुम जैसा तुम्हारे महात्मा को देखोगे दंभ से भरा हुआ, वैसा तुम किसी को न देखोगे। उसकी अकड़ देखो। वह धार्मिक है, महात्मा है। वह अकड़कर चलता है। उसने इतना योग किया, इतना त्याग किया, इतने व्रत किये, अकड़े नहीं तो क्या करे? उसके पास काफी पुण्य की संपदा है।

मगर सब संपदा ठीकरा है। पाप की संपदा तो व्यर्थ है ही, पुण्य की संपदा भी व्यर्थ है। क्योंकि पुण्य से भी अहंकार ही मजबूत होगा। और जहां अहंकार

मजबूत होता है वहां छिपा हुआ पाप है। इसको ख्याल में लेना। भक्त कहते हैं, उसके सामने तो रोओ। उसके सामने तो सब तरफ से दीन हो जाओ। उसके सामने तो अपने को उघाड़ दो, नग्न कर दो। अपने सब घाव दिखा दो। उस परम चिकित्सक को अपने घाव न दिखाओगे तो किसको दिखाओगे?

उसकी मौजूदगी में अगर तुमने अपने को खोल दिया जैसे तुम हो--बुरे-भले, बस उसी खोलने में स्वास्थ्य है। उसी खोलने में तुम पाओगे, घाव भर गये। और तुम्हारे आंसू तुम्हें शुद्ध कर जायेंगे। आंसुओं से ज्यादा पवित्र करनेवाली और कोई गंगा नहीं है। जिनके पास आंसू नहीं हैं वे गंगा जाएं। जिनके पास आंसू हैं, गंगा उनके पास है।

जो मैं जनितिऊं पिया रिसियैहै, नाहक प्रीति लगाती न जग से
निसुवासर पिया संग मैं सूतिउं, नैन आलसानी निकरि गये घर से

एक परम अनुभव की बात कह रहे हैं। कह रहे हैं कि कभी-कभी संग-साथ भी जुड़ जाता है। ऐसा नहीं कि गांठ सदा ही पड़ी रहती है। कभी-कभी वैसे अमूल्य क्षण भी आते हैं जब साथ जुड़ जाता है, जब प्रिय से मिलन हो जाता है। मगर फिर मैं झपकी खा जाती हूं, आंख लग जाती है। और जैसे ही मेरी आंख लग जाती है कि वे घर से निकल जाते हैं। वे तो सिर्फ जागृत चित्त में निवास करते हैं।

परमात्मा सिर्फ जागृत चित्त में ही आवास कर सकता है, सोये हुए चित्त में नहीं। तो जब तुम जागते हो, तब उसे पाते हो करीब। जब तुम सो जाते हो तब वह दूर हो जाता है। जैसे ही तुम्हारी मूर्च्छा आयी, परमात्मा से संबंध टूट गया। जैसे ही मूर्च्छा हटी, संबंध जुड़ गया।

सुरति चाहिए। सुरति यानी होश। सुरति शब्द आया है बुद्ध के स्मृति शब्द से। बुद्ध ने बहुत जोर दिया है 'सम्मा सति : सम्यक स्मृति पर। ठीक-ठीक होश से जियो। वही शब्द--बुद्ध का स्मृति धीरे--धीरे-धीरे-धीरे बदलते-बदलते रूप संतों का सुरति हो गया। सुरति का अर्थ होता है, भीतर रोशनी हो, जागरण हो।

तुम सोये ही सोये हो। तुम सोये ही सुबह उठ आते हो, काम-धाम भी कर लेते हो, बाजार भी हो आते हो, दुकान भी चला लेते हो मगर तुम्हारी नींद नहीं टूटती। यह कौन-सी नींद है? यह नींद है आत्मविस्मरण की। तुम्हें अपनी याद नहीं; और तुम्हें सब याद है। तुम्हें दूसरे दिखाई पड़ते हैं सिर्फ तुम ही तुमको नहीं दिखाई पड़ते। तुम्हारी आंखें दूसरों को देखतीं हैं लेकिन स्वयं को नहीं देख पातीं। भीतर ही नहीं मुड़तीं तो स्वयं को देखें कैसे? तुम बाहर ही बाहर झांकते रहते हो, अपने भीतर टटोलते ही नहीं। तो होश आये कहां से?

धनी धरमदास कहते हैं, निसुबासर पिया संग मैं सूतिउं। चाहती थी कि तुम

जब मिल जाते हो तो रात दिन तुम्हारे साथ सोऊं, तुम्हारे साथ रहूं। तुम्हारी छाया हो जाऊं, तुम्हारे साथ एकात्म हो जाए। मगर एक बड़ी मुश्किल है--

--नैन अलसानी निकरि गये घर से

इधर मेरी आंख झपकी कि तुम नदारद।

जागरण परमात्मा के होने की शर्त है। होश परमात्मा के होने की शर्त है। कहो ध्यान, या जो नाम तुम्हें पसंद हो। लेकिन ध्यान के मंदिर में ही परमात्मा विराजमान होता है। ध्यान के सिंहासन पर ही विराजमान होता है। ध्यान का इससे प्यारा और कोई दृष्टांत नहीं हो सकता।

जस पनिहार धरे सिर गागर, सुरति न टरे बतरावत सबसे

यह ध्यान की परिभाषा है--सुगम, सीधी, साफ, सूक्ष्म। और ध्यान की पूरी आत्मा इसमें समा जाती है।

जस पनिहार धरे सिर गागर...

तुमने कभी देखा, गांव में ग्रामीण स्त्रियां सिर पर गागर रखकर, पानी भर-कर कुएं से लौटती हैं या नदीतट से। हाथ भी नहीं लगातीं, गपशप भी करती हैं, बातचीत करती है, गीत भी गाती हैं, हंसी-ठिठोली भी करतीं हैं, राह पर कोई मिल जाता है उससे भी बातचीत होती है, साथ में चलती सहेलियों से भी बात होती है और गागर सिर पर रखी है। और हाथ का सहारा भी नहीं दिया हुआ है लेकिन भीतर होश बना रहता है कि गागर सिर पर है।

तुमने एक प्रसिद्ध कहानी शायद सुनी हो। एक युवा संन्यासी अपने गुरु के के आश्रम में वर्षों रहा लेकिन ध्यान उपलब्ध न हो सका। गुरु ने कहा, तू ऐसा कर, इस देश का जो सम्राट है, अब तू उसके पास चला जा। वहीं तू सीख सके तो सीख सके। उस युवक ने कहा, आप जैसे परम ज्ञानी के पास रहकर मैं न सीख सका तो एक संसारी सम्राट के पास कैसे सीख सकूंगा? गुरु ने कहा, तू मेरी मान। तूने मेरी अब तक नहीं मानी इसीलिए नहीं सीख सका। अब भी तू नहीं मान रहा है। तू जा।

अब जब गुरु ने ऐसा कहा तो बेमन से वह गया। सोचता तो था कि यहां क्या मिलेगा! इस सम्राट को तो मैं ही कुछ सिखा सकता हूं। इतने दिन वेदपाठ किया, उपनिषद कंठस्थ हैं, गीता याद है, इसको तो मैं ही सिखा दूंगा।

गया सम्राट के पास। जब पहुंचा तो महात्मा आया है दूर आश्रम से, जंगल से--पुरानी कहानी है--तो तत्क्षण उसे ले जाया गया। देखकर तो दंग रह गया। उसकी अपनी धारणाएं ही सत्य सिद्ध हुईं। सोचा मन में कि गुरु को कुछ पता नहीं है। वे जंगल में रहते हैं, उन्हें मालूम नहीं यहां क्या चल रहा है।

सम्राट बैठा था अपने दरबार में। शराब के दौर चल रहे थे, वेश्या नाच रही थी। उस संन्यासी ने कहा, क्षमा करिये, मेरे गुरु ने जिद की इसलिए मैं आ गया हूं। और अभी लौट जाता हूं क्योंकि ऐसी पाप की जगह में मैं खड़ा भी नहीं होना चाहता।

सम्राट ने कहा, आप आ गये, बड़ी कृपा की। पर उन्होंने भेजा है--आपके गुरु ने, उन्हें मैं जानता हूं। उन्होंने भेजा है तो किसी कारण से भेजा है। अब आ ही गये हैं तो रात तो रुक ही जाएं। सुबह फिर बैठकर आराम से बात कर लेंगे और फिर आपको जंगल वापिस पहुंचवा देंगे। रथ जाकर छोड़ आयेगा। उसने भी सोचा कि थका-मांदा है, फिर अब चलना--रात सो जाना ही ठीक है। सुबह रथ पर लौट जायेगा। रात सो गया।

सब तरह से उसका स्वागत किया गया। सम्राट ने खुद बैठकर पंखा झला, जब वह भोजन कर रहा था। अच्छे से अच्छा भोजन। जो श्रेष्ठतम भवन का हिस्सा था उसमें उसे ठहराया गया। सुंदर से सुंदर सेज बिछायी गयी, जैसी सेज उसने देखी भी नहीं थी कभी। उस पर सोया। लेकिन रात भर सो न सका।

सुबह सम्राट ने पूछा, नींद तो ठीक से आयी? उसने कहा, आप मजाक करते हैं। मेरी आंखें देखें, लाल हो रही हैं, सूज गयीं। आपने भी खूब मजाक किया। सम्राट ने कहा, हुआ क्या? उस युवक ने कहा, नींद आती कैसे? सेज तो सुंदर थी और खूब गहरी नींद आ सकती थी मगर मेरी छाती पर ऊपर एक नंगी तलवार लटकी है और कच्चे धागे में बंधी है। उसकी याद नहीं भूली। आंख बंद करूं तो भी दिखाई पड़े। डरा-डरा रहा। कब गिर जाए, कब खतरा हो जाए। उतारने की भी कोशिश की लेकिन इतनी ऊंची टांगी है कि मैं उस तक पहुंच भी नहीं सका। यह भी खूब मजाक रही!

सम्राट ने कहा, जैसे पूरे रात तलवार की याद बनी रही ऐसी ही जब तुम्हें चौबीस घड़ी स्वयं की याद बनी रहेगी तब ध्यान होगा। अब तुम जा सकते हो।

ध्यान का अर्थ होता है, स्वबोध बना रहे।

तो पनिहारिन लाती है पानी, बात भी करती है, मगर ध्यान बना रहता है कि सिर पर गागर है, गिर न जाए। एक भीतरी तल पर सम्हाले रहती है, सम्हाले रहती है, सम्हाले रहती है।

जस पनिहार धरे सिर गागर, सुरति न टरे--

एक क्षण को भूलती नहीं है।

...सुरति न टरे बतरावत सबसे

और सबसे बातचीत करती है। लेकिन बातचीत के बीच में ही, बातचीत की

गहराई में ही सुरति बनी रहती है।

ऐसी जब तुम्हारी याद होगी, स्वस्मरण होगा, तब परमात्मा तुम्हारी तरफ पीठ नहीं करेगा।

गांठ परी पिया बोले न हमसे
निसुवासर पिया संग मैं सूतिउं....

मिलन भी हो जाता है, क्षण भर को झलक भी मिलती है, आकांक्षा भी बंधती है कि साथ ही रहूं अब, साथ ही सोऊं अब, साथ ही उठूं-बैठूं।

...नैन अलसानी निकरि गये घर से

लेकिन इधर जरा-सी झलक लगी कि परमात्मा कब खो जाता है, पता भी नहीं पड़ता।

एक रोशनी सी दिल में थी वह भी नहीं रही
वह क्या गये चरागे-तमन्ना बुझा गये

और उनके जाते ही सब अंधेरा हो जाता है। उनके होते प्रकाश है, उनके जाते अंधेरा है। इसलिए उपनिषद गाते हैं, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय': हमें अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चलो। कुरान कहती है, परमात्मा प्रकाश है। बाइबल भी वही कहती है, वेद भी कहते हैं। सभी ने परमात्मा को प्रकाश के साथ तादात्म्य किया है। क्यों? क्योंकि जहां परमात्मा होता है वहां परमात्मा प्रकाश होता है। एक आभा तुम्हारे भीतर जलती रहती है। स्रोतरहित, 'बिन बाती तेल' तुम्हारे भीतर एक दीया जलता है।

लेकिन जैसे ही तुम्हारी स्मृति चूकी, जैसे ही तुम्हारी सुरति गयी, परमात्मा भी गया। तुम परमात्मा की फिकर न भी करो, अगर सिर्फ सुरति सम्हाल लो तो परमात्मा तुम्हारी फिकर कर लेगा।

इसीलिए तो कुछ धर्म हैं, जो परमात्मा की चिंता ही नहीं करते, सिर्फ सुरति सम्हालते हैं। परमात्मा तो अपने से आ जाता है। इसलिए बुद्ध ने परमात्मा को मानने का कोई जोर नहीं दिया। और बुद्ध ने कहा, तुम मानना भी चाहोगे तो कैसे मानोगे? जब तक देखा नहीं है, मानोगे कैसे? तब तक हजार शंकाएं उठेंगी, हजार संदेह उठेंगे। मन न मालूम कितने-कितने तर्क-वितर्क के जाल खड़े करेगा। देखोगे तो ही मान सकोगे। इसलिए उसकी बात ही मत करो। जो तुम कर सकते हो वह करो।

तुम यह कर सकते हो कि सुरति को जगा सकते हो। ध्यान पैदा कर सकते हो। ध्यान की रोशनी आ जाए, तुम अचानक पाओगे परमात्मा आ गया। तुम्हारे खोजने की जरूरत भी नहीं पड़ती।

जिसके खयाल में हूं गुम उसको भी कुछ खयाल है?
मेरे लिये यही सवाल सबसे बड़ा सवाल है

नहीं, लेकिन इसमें चिंता की कोई जरूरत नहीं है। अगर तुम उसके ख्याल में गुम हो, अगर तुम उसके ख्याल में जगे हो, अगर उसका ख्याल तुम्हारी स्मृति बन गया है, सातत्य सध गया है तो तुम उसकी चिंता छोड़ दो। वह अपने आप अनायास आ जायेगा।

इससे तुम्हें एक बात समझ में आ जायेगी, बुद्ध ने, महावीर ने, पतंजलि ने, कपिल ने--इन महर्षियों ने ईश्वर को मानने की कोई जरूरत नहीं समझी; और फिर भी वे नास्तिक नहीं थे। ईश्वर को नहीं माना और नास्तिक नहीं थे। क्योंकि उन्होंने मौलिक बात स्वीकार की--सुरति। फिर ईश्वर उसका परिणाम है।

दुनिया में ईश्वर को पाने के दो उपाय हैं--एक गलत और एक सही। गलत उपाय है ईश्वर को मानो पहले, फिर खोजो। और सही उपाय है, पहले खोजो फिर मानो। जो मान लेता है पहले, फिर खोजने जाता है वह खोजेगा क्या? खोजने को बचा क्या? वह अपनी ही मान्यता के प्रतिफलन उपलब्ध कर लेगा। तुम्हारा मन जिन बातों को मान लिया है उनके सपने देखने लगेगा।

तुम अगर कृष्ण को मानते हो, धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर कृष्ण की कल्पना प्रगाढ़ होने लगेगी और तुम्हारी कल्पना में कृष्ण के दर्शन होने लगेंगे। यह वास्तविक परमात्मा का अनुभव नहीं है। या तुम राम को मानते हो तो धनुर्धारी राम खड़े हो जायेंगे कल्पना में। लेकिन यह तुम्हारी ही कल्पना का खेल है।

वास्तविक परमात्मा न तो धनुर्धारी है, न मोर-मुगुट बांधे है। वास्तविक परमात्मा तो एक ऐसा अनिर्वचनीय अनुभव है जिसका कोई रूप नहीं, जिसका कोई रंग नहीं, जिसका कोई गुण नहीं। वास्तविक परमात्मा तो तभी अनुभव होता है जब तुम्हारा चित्त सब धारणाओं से शून्य होता है।

सुरति की अवस्था में चित्त सब धारणाओं से शून्य हो जाता है। तुम स्वयं को जगाने की चेष्टा में लगे रहो। चलो तो होशपूर्वक, उठो तो होशपूर्वक।

सूफी फकीर अक्सर अपने शिष्यों को इस बात को समझाने के लिये पहाड़ों की कगार पर ले जाते रहे हैं। और ऐसे रास्तों पर चलाते रहे हैं जहां अगर तुम एक क्षण को भी बेहोश हुए तो गिर ही जाओगे खड्ड में। जहां होश सम्हालकर चलना पड़ता है। और जब तुम होश सम्हालकर चलते हो तो फकीर तुमसे कहता है कि यही होश तुम्हारे जिंदगी भर सम्हला रहे।

तुमने देखा? अगर अचानक कोई आदमी छाती पर एक छुरा लेकर आ जाए तो उस क्षण में सब विचार खो जाते हैं। उस क्षण क्या होता है, जब सब विचार खो जाते हैं? तब एक अपूर्व होश होता है। इस खतरे के कारण तुम तंद्रा में नहीं

रह सकते, मूर्च्छा में नहीं रह सकते। होश आ ही जायेगा।

प्रसिद्ध झेन कथा है, सुरति के संबंध में उपयोगी है। एक सम्राट अपने बेटे को गुरु के पास भेजा—ध्यान सीख आओ। मैं बूढ़ा हो गया हूं, बाप ने कहा, और धन तो व्यर्थ है यह मैंने जिंदगी में जान लिया। मुझसे ज्यादा और कौन जानेगा? जितना धन मेरे पास है, देश में किसी के पास नहीं। पद व्यर्थ है। और कौन जानेगा? मैं सम्राट हूं। मैं तुम्हें धन और पद ही नहीं दे जाना चाहता, मेरे जीते जी मैं देखना चाहता हूं कि मेरा बेटा ध्यान से जुड़ जाए।

अद्‌भुत बाप रहा होगा। जो बाप अपने बेटे को ध्यान से जोड़ना चाहे वही बाप है। बाप जैसा बाप रहा होगा। क्योंकि इससे बड़ी कोई संपदा बाप अपने बेटे को नहीं दे सकता। तुम्हारा तो बेटा ध्यान करने जाने लगे तो तुम उसे रुकावट डालना शुरू कर देते हो। तुम घबड़ाते हो कि कहीं ध्यान इत्यादि में न फंस जाए। पढ़ाई-लिखाई करो। सिनेमा जाए, चलेगा। नाच-गाना सुने, चलेगा। लेकिन ध्यान में न उलझ जाए। क्योंकि घबड़ाहट लगती है कि वह रास्ता तो अगम का रास्ता है, उसमें पता नहीं खो न जाए, कहीं उलझ न जाए।

इधर मेरे पास लोग आ जाते हैं। उनके बाप आ जाते हैं उनके ही पीछे। वे कहते हैं, हमारा बेटा इधर आ रहा है, आप किसी तरह रोकिये। उलझ न जाए। अभी तो संसार में रहना है। अभी-अभी तो उसकी शादी हुई है। अभी-अभी तो नौकरी लगी है, अभी ध्यान की क्या जरूरत? ध्यान तो बुढ़ापे में करना चाहिए।

एक युवक ने संन्यास लिया। इसके पिता कोई पंचहत्तर साल की उम्र के बूढ़े आदमी है। वे मेरे पास आये, उन्होंने कहा कि आप ठीक नहीं करते। युवकों को संन्यास देते हैं! आप इसको...संन्यास इसका वापिस लें। यह किसी और की सुनता नहीं है, आपकी ही सुनेगा। मैं आपसे अर्जी करता हूं कि इसका संन्यास वापिस लें। संन्यास तो बुढ़ापे में लेने की चीज है, उन्होंने कहा।

तो मैंने कहा, ठीक, मैं वापिस लेता हूं। आप संन्यास लेते हैं? आपकी तो उम्र पचहत्तर साल की हो गयी—आप संन्यास ले लो, इसको मैं छुट्टी दे देता हूं। बदले मे कोई तो चाहिए। वे कहने लगे, सोचना पड़ेगा। तो फिर कहा, मुझे भी सोचना पड़ेगा। तुम कहते हो, बुढ़ापे में संन्यास। तुम पचहत्तर के हो गये, बुढ़ापा कब आयेगा? बहानेबाजी कर रहे हो सिर्फ इसको टालने के लिये कि इसका संन्यास हटाने के लिये कि बुढ़ापे में ले लेना; अभी तो छूट। और बुढ़ापा तुम्हारा आ गया है। अगर तुम ईमानदार हो अपने वचन में तो तुम संन्यास ले लो, मैं इसको छुट्टी दे देता हूं।

वे फिर दुबारा नहीं आये। सोचने गये हैं। आज कोई साल भर हो गया।

उनका कोई पता नहीं है। आदमी बहाने करता है, टालता है।

उस बाप ने अपने बेटे को ध्यान करने सीखा और कहा कि जल्दी करना, पूरी चेष्टा लगाना क्योंकि मैं बूढ़ा हुआ हूं। मैं तेरी आंख में ध्यान की झलक देखकर मरना चाहता हूं।

जो उस देश का सबसे बड़ा सद्‌गुरु था उसके पास भेजा। बेटा बड़ा हैरान हुआ क्योंकि वह सद्‌गुरु असल में ध्यान सिखाने का काम ही नहीं करता था। वह तो तलवार चलाने की कला में सबसे ज्यादा निष्णात व्यक्ति था। बेटा जरा हैरान हुआ कि तलवार चलाना सिखाता है यह आदमी, इसके पास मुझे ध्यान सीखने के लिये भेजा जा रहा है। लेकिन पिता भेजते हैं, ठीक ही भेजते होंगे।

जब वह गुरु के पास गया तो उसने कहा गुरु को कि मेरे पिता बूढ़े हैं और उन्होंने कहा, जल्दी सीखकर आ जाना। कितना समय लगेगा? गुरु ने कहा, समय की सीमा हो तो तू अभी लौट जा। क्योंकि यह बात कुछ ऐसी है, कभी क्षण में हो जाता है, कभी वर्षों लग जाते हैं। इसकी भविष्यवाणी नहीं हो सकती। यह सब तुझ पर निर्भर है कि कितना तू श्रम करेगा। और धैर्य तो चाहिए होगा। अनंत धैर्य चाहिए होगा। तो या तो अभी लौट जा, या सब मुझ पर छोड़ दे। बीच का नहीं चलेगा।

बाप ने कहा था, लौटकर तो आना ही मत, जब तक ध्यान न सीख ले। तो झुकना पड़ा गुरु के चरणों में। कहा ठीक है। गुरु ने कहा तो बस तू आश्रम में बुहारी लगाने का काम शुरू कर।

उसकी तो छाती बैठ गयी। पहले तो यह आदमी तलवार चलाना सिखाता है, इसके पास ध्यान सीखने भेजा है। यही कुछ साफ नहीं मालूम पड़ता कि मामला क्या है। अब यह कह रहा है, आश्रम में बुहारी लगाना शुरू कर। सम्राट का बेटा! और बुहारी लगाने से ध्यान कैसे आयेगा?

लेकिन अब बाप ने भेज दिया, समर्पण कर दिया उसने गुरु को तो बुहारी लगानी शुरू कर दी। बुहारी लगा रहा था दूसरे दिन और जैसे तुम लगाओ बुहारी -सोये-सोये, हजार विचारों में खोये-खोये, ऐसा ही लगा रहा था। गुरु पीछे से आया और एक लकड़ी के तलवार से उस पर हमला कर दिया। पीछे से आकर! भारी चोट लगी। चौंककर खड़ा हो गया किंकर्तव्यविमूढ़, कि यह मामला क्या है! उसने पूछा यह बात क्या है? आप होश में हैं? आप मुझे मारे क्यों? गुरु ने कहा, यह तो अब रोज चलेगा। तुझे सावधानी बरतनी पड़ेगी। तू होश रख। यह तो कभी भी मौके-बेमौके चलेगा। यह तो तेरे ध्यान का पाठ है

फिर कठिनाइयां शुरू हुई। लेकिन उन्हीं कठिनाइयों से रास्ता बना। गुरु

कब हमला कर दे, पता न चले। उसकी चाल भी ऐसी धीमी थी कि पैर की आवाज न हो। बुहारी लगा रहा है युवक या खाना खा रहा है या किताब पढ़ रहा है, वह पीछे से आ जाए, इधर-उधर से आ जाए और हमला कर दे। चोट पर चोट पड़ने लगी, घाव पर घाव होने लगे। लाकड़ी की ही तलवार, मगर फिर भी तो चोट तो हो।

धीरे-धीरे होश सम्हालना ही पड़ा। कोई और उपाय न था। किताब भी पढ़ता रहे और ख्याल भी रखे कि आता ही होगा। जस पनिहार धरे सिर गागर! बुहारी लगा रहा है अब, मगर कब आ जाएं गुरुदेव, कुछ पता नहीं। तीन महीने में यह हालत आ गयी कि कितने ही धीमे गुरु आये, वह झट मुड़कर खड़ा हो जाए। तीन महीने में वह वक्त आ गया कि चोट करना मुश्किल हो गयी। उसको कभी बेहोश पाना मुश्किल हो गया।

एक दिन रात सोया था कि नींद में गुरु ने हमला कर दिया। वह तो उठकर बैठ गया। उसने कहा, यह जरा जरूरत से ज्यादा हो गया। अब क्या मुझे सोने भी न दोगे? उसने कहा, अब यह दूसरा पाठ शुरू होता है। अब दिन में तो तू सध गया, अब रात में सधना है।

लेकिन अब शिष्य को भी समझ में तो बात आने लगी थी। ये तीन महीनों में तकलीफ तो बहुत हुई थी लेकिन तीन महीनों में जो जागरण फला था उसका सुख अपूर्व था। ऐसी शांति कभी जानी नहीं थी। ऐसा सन्नाटा! विचार तो कहां खो गये थे पता ही न चलता था। जैसे दीया जग जाए तो अंधेरा खो जाता है ऐसे ही ध्यान जग जाए तो विचार खो जाते हैं। न वासना उठती थी, न चाह उठती थी न चिंता उठती थी। जगह ही नहीं थी, सदा होश सधा था। अब समझ में तो आने लगा था, गुरु जो कर रहा है, ठीक ही कर रहा है। तो अब यह तो कह ही नहीं सकता था कि मुझे सताओ मत। राजी हो गया।

रात हमले शुरू हो गये। वह बूढ़ा कब उठ आता रात में दो-चार-आठ-दस दफा! उसको नींद भी नहीं आती होगी। बूढ़ा आदमी, उसको नींद का कोई कारण भी न था। तीन महीने बीतते-बीतते घावों से भर गया शरीर उस युवक का लेकिन बात फलित हो गयी। तीन महीने पूरे होते-होते नींद में भी जैसे ही गुरु कदम रखे कमरे में कि वह आंख खोल दे। वह कहे कि बस महाराज, मैं जागा हुआ हूं। आप नाहक कष्ट न करें।

तीन महीने पूरे होने पर गुरु एक दिन नकली तलवार फेंककर असली तलवार ले आया। उस युवक ने कहा, आप अब मार ही डालोगे। नकली तो ऐसा था, कि चोट लगती थी, भर जाती थी। यह असली तलवार है। गुरु ने कहा, अब तू जानता है कि नींद में भी घटना घट गयी। अब तू नींद में भी जागा रहता है।

इसी को कृष्ण ने कहा है, 'या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।' यह अर्थ है उस वचन का। जब सब सो जाते हैं तब भी संयमी जागता है। इसका यह मतलब नहीं है कि वह आंखें खोले पड़ा रहता है। आंख लगी रहती है, शरीर सोया रहता है फिर भी भीतर कोई जागता है। भीतर एक जागरण सतत बना रहता है।

गुरु ने कहा, अब तू घबड़ा मत। और उसे बात जचने भी लगी थी। अब इन तीन महीनों में जो घटा था वह इतना गहरा था। स्वप्न तक खो गये थे। विचार खो गये, स्वप्न खो गये, सन्नाटा ही सन्नाटा था। रात और दिन एक अपूर्व शून्यता भीतर जल रही थी। इस शून्यता का आनंद फलने लगा था। पहले तीन महीनों में शांति मिली थी, इन दूसरे तीन महीनों में आनंद की पहली झलक मिलनी शुरू हो गयी थी। झोंका आ जाता था आनंद का, जैसे वसंत आ गया। फूल खिल जाते थे।

असली तलवार! अब तो जागना और भी सजगता का हो गया। तीन महीने गुरु ने असली तलवार लेकर उसका पीछा किया, लेकिन एक भी बार चोट करने का मौका न पा सके। तीन महीने पूरे हो जाने पर एक दिन गुरु बैठा वृक्ष के नीचे किताब पढ़ रहा था। उस युवक को ख्याल आया कि यह बूढ़ा मुझे नौ महीने से सता रहा है। यद्यपि परिणाम भारी हुए हैं इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। जो नौ महीने में मिला है, नौ जन्मों में नहीं मिलता। लेकिन यह मुझे इतना सताता है, कभी मैं भी तो इस पर हमला करके देखूं, यह भी इतने होश में है या नहीं?

ऐसा सोच ही रहा था बुहारी लगाते हुए कि उस बूढ़े ने कहा, सुन, मैं बूढ़ा आदमी हूं, ऐसा करना मत। वह तो बड़ा चौंका। उसने कहा, मैंने कुछ किया नहीं। तूने सोचा, इतना काफी है। तू मेरे पैर को आवाज सुनने लगा नींद में, मेरा कमरे में प्रवेश करना--और तुझे पता चल जाता है। एक दिन तेरे जीवन में भी ऐसी घड़ी आयेगी कि विचार का प्रवेश और उसकी भी पगध्वनि सुनाई पड़ जाती है। तेरे भीतर विचार आया, बस काफी है। अब तुझे कोई उठाकर मुझ बूढ़े आदमी पर हमला करने की जरूरत नहीं है।

गुरु के चरणों में गिर पड़ा युवक। ध्यान की अंतिम घड़ी वही है। वह समाधि है। उस दिन उसके जीवन में पहली दफा समाधि का अनुभव उसे हुआ।

जस पनिहार धरे सिर गागर, सुरति न टरे बतरावत सबसे

तुम भी ऐसे चलो, ऐसे उठो, ऐसे बैठो कि होश सधा रहे। और जरूरत नहीं है कि कोई तुम्हारे पीछे तलवार लेकर पड़े। मौत तो पड़ी ही हुई है तुम्हारे पीछे तलवार लेकर। उतना क्या काफी नहीं है? जरा उसका ही स्मरण करो और होश

सध जायेगा। जिसको मौत की याद साफ होने लगी वह आदमी होश से भर जाता है।

इसीलिए तो लोग मौत को....बात भी नहीं करते मौत की। मौत की चर्चा भी नहीं उठाते। मौत जैसी महत्वपूर्ण दुनिया की घटना, और लोग उसकी बात ही नहीं करते। सब तरह की बातें करतें हैं, मौत को चर्चा के बाहर रखते हैं। मरघट पर भी लोग जाते हैं तो और दूसरी चीजों की बातें करते हैं।

बचपन में मुझे आदत थी। कोई मरे, मैं मरघट जाता था। जो भी मरा गांव में....लोग जानने लगे थे कि अगर कोई भी मरा तो मैं जरूर जाऊंगा मरघट। मेरे घर के लोग भी जानने लगे थे। अगर मैं कहीं दिखाई न पड़ता दो-चार घंटे तो वे समझते कि मरघट पर खोजो।

पर वहां मैं चकित होता। मैं तो देखने जाता मौत। क्योंकि मौत ठीक-ठीक दिखाई पड़ जाए तो ध्यान सुगमता से फल जाता है। लेकिन वहां बैठे लोगों को मैं देखता, वे बातें कर रहे हैं राजनीति की, वे बातें कर रहे हैं बाजार की। इधर लाश जल रही है और वे पीठ किये गपशप कर रहे हैं। वह गपशप तरकीब है इस जलती हुई लाश को न देखने की।

मौत को आदमी भुलाना चाहते हैं। जो मौत को भुलाता है वही सांसारिक है। जो मौत को याद रखता है वही संन्यासी है। और जिसको मौत याद है वह जाग ही जायेगा। और जो जाग गया, परमात्मा उसे उपलब्ध है।

घरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर को पावै भाग से

धरमदास कहते हैं कि कबीर साहब मिल गये। यह परमात्मा का जीता-जागता रूप मिल गया। ये कबीर मिल गये। इनको भाग से पा लिया। इन्होंने ही सिखाया—'जस पनिहार धरे सिर गागर।' इन्होंने जगाया। बड़े भाग की बात। इस जगत में सबसे सौभाग्यशाली वही है जिसे गुरु मिल जाए।

साहब मोहि दरसन दीजे हो, करुनानिधि मिहर करीजो हो
पपीहा के चित स्वांति बसे, भावै नहीं जल दूजा हो

धरमदास कहते हैं, जैसे चातक के मन में बस स्वाति का जल ही बसा है, और कोई जल नहीं भाता, ऐसे ही तुम्हारे अतिरिक्त अब मुझे और कुछ नहीं भाता। अब सारा संसार फीका है।

दिन गुजरा, शाम हुई, अब आगे क्या होगा?
धूप की उम्र तमाम हुई, अब आगे क्या होगा?

लोग तो सोचते ही नहीं आगे की। भरमाये रखते हैं अपने को धूप में। मगर धूप की उम्र तमाम हो जाती है। दिन गुजर जाता है, शाम हो जाती है। जवानी अभी है, कल बुढ़ापा होगा। जीवन अभी है, कल मृत्यु होगी। इसके पहले कि मौत

तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे, तुम जरा विचार कर लो। इस जगत में कुछ भी ऐसा है जिससे तृप्ति हो जायेगी? कोई जल ऐसा है जिससे तृप्ति हो जायेगी? तुम कितने तो घाटों का पानी पी चुके, कहीं तो तृप्ति नहीं हुई। जहां से लौटे, प्यास को वापिस लेकर लौटे। जहां से लौटे, और उदास होकर लौटे।

इस जगत में वह पानी है ही नहीं जिससे तृप्ति हो जाए। तुम्हारे चित्त में चातक कब पैदा होगा? स्वाति के जल की आकांक्षा कब जगेगी? तुम परमात्मा को कब पुकारोगे? इतनी अतृप्तियों के बाद भी तुम्हारे भ्रम नहीं टूटते?

पपीहा के चित स्वांति बसे, भावै नहिं जल दूजा हो

जिसको एक बार यह बात समझ में आने लगी कि यहां सब है तो, मगर कुछ भी तृप्तिदायी नहीं है। धन मिल जाता है और निर्धनता नहीं मिटती। पद मिल जाता है और दीनता नहीं जाती, बनी रहती है। बाहर तुम कितना ही सजा लो, भीतर मौत खड़ी है।

शामिल नहीं हैं जिसमें तेरी मुस्कुराहटें
वह जिंदगी किसी भी जहन्नुम से कम नहीं है

परमात्मा जब तक तुम्हारे भीतर साम्मिलीत न हो जाए, उसकी मुस्कुराहट जब तक तुम्हारे जीवन का अंग न बन जाए तब तक समझना कि तुम नर्क में हो। कितना ही धोखा दो अपने को, नर्क को कितना ही सजा लो, बंदन-वार बांध लो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। तुम अपना समय और अपना जीवन गंवा रहे हो।

जैसे काग जहाज चढ़े, वाको और न सूझा हो

पुराने दिनों में जहाज से यात्रा करनेवाले लोग पक्षियों को साथ लेकर चलते थे। वे पक्षी परीक्षा का काम देते थे। पक्षी को छोड़ते थे, अगर पक्षी चला जाता और लौटता नहीं तो तय हो जाता था जमीन करीब है। अगर पक्षी लौट आता तो तय होता कि अभी जमीन करीब नहीं है, यात्रा और करनी पड़ेगी।

कोलंबस ने तीन महीने यात्रा की। भारत की खोज के लिये निकला था, भूल से पहुंच गया था अमरीका। तीन महीने में सारा भोजन चुक गया। केवल तीन दिन के लिये भोजन और बचा। और जो नब्बे आदमी उसके साथ यात्रा पर थे, वे सब धीरे-धीरे घबड़ा गये थे कि अब मौत के सिवाय कुछ और होना नहीं है। न कोई जमीन दिखाई पड़ती है, न कोई आसार। इस पागल आदमी के चक्कर में हम पड़ गये।

और इस पागल को लोग पागल समझते ही थे कोलंबस को। क्योंकि कोलंबस की यह धारणा थी कि जमीन गोल है। किसी को गोल नहीं मालूम पड़ती थी तब तक। चपटी दिखती है सबको। कोलंबस की धारणा थी जमीन गोल है। और अगर गोल है तो जहां से हम चलेंगे, अगर चलते ही गये, चलते ही गये तो वापिस

अपनी जगह लौट आयेंगे। गोल का मतलब ही यह होता है।

तो उसने कहा, भूलने का तो कोई डर नहीं नहीं है, अगर मिल गया भारत तो ठीक है। नहीं मिला भारत तो वापिस अपनी जगह लौट आयेंगे। बामुश्किल कुछ लोग हिम्मतवर राजी हुए थे उसके साथ जाने को। एक झक्की किस्म की महारानी ने उसे पैसा दे दिया था। मगर लोग समझते थे, यह पागल है और लौटेगा नहीं। घर के लोगों ने भी आखिरी विदा दे दी थी। रो-धो लिया था कि बात खतम हो गयी।

अब तो पक्का हो गया था इन नब्बे साथियों को कि यह बिलकुल पागल है। क्योंकि वे कहते थे, अब हम लौट चलें। आखिर उन्होंने यह तय कर लिया कि अगर यह कल राजी नहीं होता लौटने को तो इसको हम पानी में फेंक दे और हम वापिस लौट चलें।

उसने उनकी बातचीत सुन ली। रात को वे सब इकट्ठे होकर षडयंत्र कर रहे थे। वह सुबह उठा और उसने कहा कि तुम ठीक कहते हो। मैं खुद ही कूद जाऊंगा पानी में, तुम वापिस लौट जाओ। लेकिन एक बात समझ लो, तुम्हारे पास भोजन केवल तीन दिन का बचा है। वापसी की यात्रा तीन महीने की होगी। मर तो तुम जाओगे ही। अब वापिस लौटने का उपाय नहीं है। तुम मेरी मानो, मैं तुमसे कहता हूं कि तीन दिन में हम पहुंच जायेंगे जमीन पर क्योंकि मैंने जो कबूतर छोड़े कल सांझ, वे लौटे नहीं। जमीन करीब होनी चाहिए।

यह सूत्र उन्हीं पुराने समुद्र-यात्रा का स्मरण दिलाता है।

जैसे काग जहाज चढ़ै, वाको और न सूझा हो

जब पक्षी घूमता और कुछ जगह नहीं सूझती जहां उतर जाए, जल ही जल, जल ही जल, वह वापिस जहाज पर चढ़ जाता है।

ऐसे धनी धरमदास कहते हैं कि इस संसार में मैंने मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा। तुम ही मेरे जहाज हो। नानक नाम जहाज। परमात्मा, तुम्हारे सिवा और कोई सहारा नहीं। तुम ही जीवन हो। शेष सब मृत्यु है। जो परमात्मा से जुड़ गया वह महाजीवन से जुड़ गया। जो परमात्मा से बिना जुड़े जी रहा है वह मृत्यु के सागर में डुबकियां खा रहा है। जन्मेगा और मरेगा, मरेगा और जन्मेगा और यह चलता रहेगा। डूबेगा और उबरेगा, उबरेगा और डूबेगा। इस प्रक्रिया का कोई अंत नहीं है।

जहाज चढ़ो। और जहाज उपलब्ध है। और जहाज सदा उपलब्ध है। परमात्मा एक क्षण को भी अनुपलब्ध नहीं है, तुम भर राजी हो जाओ। हमारी हालत ऐसी है जैसे सूरज निकला है और हम आंख बंद किये खड़े हैं और कहते हैं, दुनिया

में अंधेरा है। आंख खोलो। परमात्मा की रोशनी चारों तरफ बरस रही है।

बार-बार बिनती करूं, मेरी अरज सुनीजे हो
भवसागर से काढ़िके, अपना करि लीजे हो

आरजू भी, हसरत भी, दर्द भी, मसर्रत भी
सैकड़ों हैं हंगामे जिंदगी मगर तनहा

यहां सब है और फिर भी तुम अकेले हो। जरा देखो। पत्नी है, बच्चे हैं, पति है, मां है, पिता है, बेटे हैं, बेटियां हैं, सगे-संबंधी हैं, मित्र-प्रियजन हैं, सब है।

आरजू भी, हसरत भी, दर्द भी, मसर्रत भी

सुख भी हैं, दुख भी हैं, सुविधाएं हैं, असुविधाएं हैं, सफलताएं, असफलताएं हैं, यश-अपयश है।

आरजू भी, हसरत भी, दर्द भी, मसर्रत भी
सैकड़ों हैं हंगामे जिंदगी मगर तनहा

शोरगुल खूब, हंगामे खूब, तमाशा चल रहा है, और फिर भी तुम अकेले हो। कब तुम्हें यह बात दिखाई पड़ेगी कि मैं अकेला हूं? परमात्मा के बिना तुम अकेले ही रहोगे। उससे ही संग जुड़े तो अकेलापन मिटता है।

भवसागर से काढ़िके अपना करि लीजे हो

कब तुम प्रार्थना करोगे कि निकाल लो मुझे इस जीवन और मृत्यु के सागर से, इस जन्म-मरण की प्रक्रिया से? भवसागर! भव का अर्थ होता है, होना, न होना। होने-न होने का यह जो सागर है इससे मुझे खींच लो—अपना करि लीजे हो।

कुशल हूं, कुशल चाहता हूं
दिल में लगन है, मिलन चाहता हूं

बस एक ही लगन तुम्हारे भीतर रह जाए——मिलन चाहता हूं।

और तुम सब जगह उसी को खोज रहे हो-अनजाने। जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़े हो या किसी पुरुष के, तो तुमने क्षण भर को उसी को खोजा है। पद की खोज में तुम किसे खोज रहे हो? जीवन को पकड़कर तुम क्या पकड़ रहे हो? तुम सोचते हो, अमृत इस तरह मिल जायेगा। पद की खोज में तुम सोचते हो, इस तरह मैं मृत्यु के पार हो जाऊंगा। धन होगा तो सुरक्षित हो जाऊंगा। लेकिन उसके सिवा उसको पाने का और कोई उपाय नहीं।

इस कायनाते हुस्न में आईना के सिवा
पैदा कहीं हुई न तेरी हमसरीकी बात

उस जैसा यहां कोई है ही नहीं। आईने बहुत हैं यहां। आईनों में कहीं-कहीं उसकी झलक भी पड़ती है।

इस कायनाते हुस्न में आईना के सिवा
पैदा कहीं हुई न तेरी हमसरीकी बात

तुम आईनों में कब तक खोजते रहोगे ? अब मूल की खोज शुरू होनी चाहिए।

झरि लागे महलिया गगन घहराय

जो उसकी तरफ चातक की तरह देखने लगता है, स्वाति की प्रतीक्षा करता है, ध्यानमग्न होकर पुकारता है--पी कहां ? पी कहां ? पपीहे की तरह टेरता है।

नानक के जीवन में उल्लेख है। एक रात वे पुकार रहे हैं परमात्मा को.... पुकार रहे हैं परमात्मा को। आधी रात बीत गयी और नानक की मां ने आकर उनको कहा, कि अब बहुत हो गया, अब तुम सो भी जाओ, अब यह भजन कब तक चलेगा ? नानक ने कहा, मत कहो। मत रोको मुझे। सुनो ! बाहर बगीचे में आम की बाड़ी में पपीहा पुकार रहा है, 'पी कहां ? पी कहां ?' नानक ने कहा, सुनो ! उससे मेरी होड़ बंधी है। जब तक वह चुप नहीं होगा, मैं भी चुप होनेवाला नहीं हूं।

उसी रात नानक के जीवन में क्रांति घटी। पपीहे से होड़ लगाओ। पपीहा नहीं थका, नानक ने कहा अपनी मां को, तो मैं क्यों थकूं ? अभी पपीहे का गीत चल रहा है तो मेरा गीत क्यों रुके ? मैं पपीहे से गया-बीता नहीं हूं।

और जो पपीहा बन गया--पी कहां ? पी कहां ? पुकारा और पुकारा, और पुकारा, और सब पुकार पर दांव लगा दिया उसे पी निश्चित मिलते हैं। वही इस सूत्र की सूचना है।

झरि लागे महलिया--जो चातक बन गया उसके शून्य महल में झर लग जाती है अमृत की। स्वाति बरसती है।

झरि लागे महलिया गगन घहराय

नाद होता अनहद का और अमृत की वर्षा होती। जैसे बादल गरजते हैं ऐसे भीतर ओंकार का नाद गरजता है। एक ओंकार सतनाम । और जैसे वर्षा होती है और भूखी-प्यासी धरती तृप्त होती है ऐसे ही तुम्हारे भीतर अमृत बरसता है। और तुम्हारे भूखे-प्यासे प्राण, जन्मों-जन्मों की भूखी आत्मा तृप्त होती है।

झरि लागे महलिया गगन घहराय
खन गरजे खन बिजुली चमकै--

कभी प्रकाश हो जाता है, कभी नाद हो जाता है।

खन गरजे खन बिजुली चमकै, लहर उठे सोभा बरनि न जाए

और ऐसी मस्ती की लहर आती है कि उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। नाद भी है, प्रकाश भी है। अमृत बरस रहा है।

लहर उठे सोभा बरनि न जाए

ऐसी मस्ती, ऐसी मादकता की लहर आती है कि आदमी डूब ही जाता उसमें, तल्लीन हो जाता है। उसका वर्णन नहीं हो सकता।

सुन्न महल से अमृत बरसे, प्रेम अनंद होय साध नहाय

लेकिन वही नहा सकता है जिसने चातक जैसी साधना की हो। वही नहा सकता है, जिसने 'जस पनिहार धरे सिर गागर,' ऐसा ध्यान संजोया हो। उसको ही साधु कहते हैं।

साधु का अर्थ : जो सरल हो गया। साधु का अर्थ : जिसने अपने चित्त को उसकी तरफ साध लिया। जो काम से विमुख हुआ, राम के सन्मुख हो गया। जिसने संसार की तरफ पीठ कर ली और परमात्मा की तरफ मुंह कर लिया।

और जहां न प्रेम हो और न आनंद हो, जहां प्रेम की जगह सिर्फ द्वेष हो, जहां प्रेम की जगह सिर्फ कठोरता हो, जहां प्रेम की जगह सिर्फ तुम्हारी निंदा हो, जहां प्रेम की जगह तुम्हें पापी ठहराने का प्रयास हो, जहां प्रेम की जगह तुम्हें नर्क भेजने का आयोजन हो, और जहां भीतर आनंद की जगह सिर्फ एक अहंकार हो वहां से बच जाना। वहां से भाग खड़े हो जाना। वहां से जितनी जल्दी दूर निकल जाओ उतना अच्छा है क्योंकि तुम असाधु के पास पहुंच गये हो।

और तुम्हारे तथाकथित साधुओं में सौ में निन्यानबे असाधु हैं। क्योंकि न तो वहां आनंद है, न वहां प्रेम है।

सुन्न महल से अमृत बरसे, प्रेम आनंद होय साध नहाय
खुली किवरिया मिटी अंधियरिया, धन सतगुरू जिन दिया है लखाय

अब किवाड़ खुल गये। पुकारते रहोगे तो खुल ही जाते हैं। यह आश्वासन पक्का। यह गवाही पक्की। इस गवाही के पीछे बुद्ध और महावीर और कृष्ण और कबीर और मोहम्मद और मन्सूर--सबके हाथ हैं। बड़ी लंबी महिमाशाली पुरुषों की कतार है, जो कहते हैं यह आश्वासन पक्का है। यह निरपवाद होता है। तुम पुकारो भर। तुम पूरे प्राण से पुकारो भर।

खुली किवरिया मिटी आंधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया है लखाय

और उसी घड़ी तुम अपने सद्गुरु का धन्यबाद कर पाओगे। उसी घड़ी तुम जानोगे कि तुमने तो कुछ भी नहीं दिया था। तुमने समर्पण के नाम पर दिया क्या था ? तुम्हारे पास देने को क्या था ? जब तुमने गुरु के चरणों में जाकर सिर रखा था तो तुम्हारे सिर में सिवाय भुस के और था क्या ? तुमने दिया क्या था ? लेकिन जो तुम्हें मिल गया है उसका मूल्य नहीं कूता जा सकता।

धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय

उसी घड़ी तुम्हारा सिर चरणों में नहीं रहता, चरणों में एक हो जाता है, लीन हो जाता है, मिल ही जाता है। संद्गुरु के चरण और तुम्हारा सिर तब दो चीजें नहीं रह जातीं।

सतगुरु के उपदेस फिरौ घन बावरी

कहते हैं, लौट आओ पागलो ! लौट आओ अपने घर। फिरो !

सतगुरु के उपदेस फिरो घन बावरी

जाओ, खोजो सतगुरु को। सुनो उसकी बात और लौटो अपने घर की तरफ। बहुत हो गयी भटकन। परदेस में बहुत जी लिये।

उठि चलो आपन देस, इहै भल दाब री

अब अपने घर की तलाश करो। अब लौटो अपने घर।

उठि चलो आपन देस इहै भल दाब री

और सद्गुरु मिल जाए तो अवसर मिला अपने घर लौटने का। क्योंकि कोई मिला जो राह दिखा दे। कोई मिला जो तुम्हें राह सुझा दे। उस अवसर को चूकना मत।

पहले तो सद्गुरु का मिलना मुश्किल। मिल जाए तो तुम चूकने में बड़े कुशल हो। तुम कहते हो, कल करेंगे। तुम कहते हो, अभी जल्दी क्या है ! तुम कहते हो, अभी तो जवान हैं। अभी तो जिंदगी थोड़ी और देख लें। अभी थोड़ा राग-रंग और कर लें। अभी कहां मौत आयी जाती है ! तुम टालने में कुशल हो। तुम स्थगित करने में कुशल हो।

सतगुरु के उपदेस फिरो घन बावरी

लौट चलो। अगर वहां की खबर कोई देनेवाला मिल जाए तो फिर क्षण भर भी सोचना मत, बिचारना मत। फिर यह मत कहना, सोचें, विचारें।

उठि चलो आपन देस इहै भल दाब री

इस अवसर को चूकना मत।

हम कहि दिया है सनेस तुम्हारे पीव का

धनी धरमदास कहते हैं, हमने संदेस कह दिया है तुमसे। तुम्हारे पिया का संदेश तुम तक पहुंचा दिया है। यही सारे सद्गुरु करते रहे हैं।

हम कहि दिया है सनेस तुम्हारे पीव का
बिनु समझे नहिं काज आपने जीव का

अब समझो। अब समझ लो तो तुम्हारे जीवन का काज सध जाए। तुम्हारे जीवन का काम पूरा हो जाए, परिपूर्ति हो जाए। तुम्हारे दुख मिटें। तुम्हारा नर्क मिटे। तुम्हारा विषाद जाए, समाधि फले।

जुगन-जुगन हम आइ कहा समुझाइकै

यह बड़ा प्यारा वचन है। धनी धरमदास यह कह रहे हैं कि जिन्होंने हमसे पहले आकर कहा वे भी हम ही थे।

गुरु अलग-अलग नहीं हैं। रंग अलग हों, ढंग अलग हों, वाणी अलग हो, मगर गुरु अलग-अलग नहीं हैं। कृष्ण ने कहा न, कि आऊंगा ! जब जरूरत होगी तब आऊंगा ! 'संभवामि युगे युगे।' युग-युग में संभव हो जाऊंगा, जब जरूरत होगी। अब लोग सोचते हैं कि कृष्ण उतरेंगे--वही मोर-मुकुट पीतांबर, वही बांसुरी लिये हुए तो गलती में हो तुम। जो भी सत्य को जान लेता है वही कृष्ण है।

जीसस ने कहा है, मैं फिर आऊंगा, लौटूंगा। और ईसाई प्रतीक्षा कर रहे हैं। जो सत्य को जान लेता है वही जीसस है।

और बुद्ध ने कहा है, मैं आऊंगा मैत्रेय के रूप में। लेकिन जो भी तुम्हारा मित्र है—और मित्र कौन? जो तुम्हें अपने देस पहुंचा दे वही मित्र है। बुद्ध उसी में आ गये।

ठीक कहते हैं धरमदास,

जुगन-जुगन हम आइ कहा समुझाइक

इसका यह मतलब मत समझना कि एक ही आदमी बार-बार आता है। अनेक अनेक आदमियों में एक ही सत्य बार-बार आता है। अनेक-अनेक घड़ों में एक ही जल बार-बार भरता है। अनेक-अनेक आंखों में एक ही रोशनी बार-बार पड़ती है। व्यक्ति बदल जाते हैं, सत्य थोड़े ही बदलता है। सत्य एक है, अभिव्यक्तियां अनेक हैं। अनेक-अनेक वीणाओं पर वही गीत फिर-फिर गाया जाता है। वीणाओं के भेद से थोड़े-बहुत भेद पड़ते हैं, मगर गीत वही है, लय वही है, छंद वही है।

जुगन-जुगन हम आइ कहा समुझाइकै

तो जो पहले आये और जो बाद में आयेंगे वे, और जो आज हैं वे सब एक ही धागे से जुड़े हैं। मनके अलग-अलग, मनकों को जोड़नेवाला धागा एक है। कृष्ण और क्राइस्ट एक ही धागे से जुड़े हैं। मोहम्मद और महावीर एक ही धागे से जुड़े हैं। जरथुस्त्र और जीसस एक ही धागे से जुड़े हैं।

इसलिए तुम इन प्रतीक्षाओं में मत बैठे रहो कि कृष्ण आयेंगे तब हम जगेंगे। यह भी तुम्हारी तरकीब है बचने की। अब तुम यह प्रतीक्षा मत करो कि जीसस जब आयेंगे तब जागेंगे।

पृथ्वी कभी भी परमात्मा से खाली नहीं होती। कहीं न कहीं कोई दीया जलता है। आंखवाले खोज लेते हैं और पार हो जाते हैं। और अंधे बैठे प्रतीक्षा करते रहते हैं और अवसर खो देते हैं।

जुगन-जुगन हम आइ कहा समुझाइकै
बिनु समुझे धनि परिहों कालमुख जाइके

और बार-बार यही कहा है कि अगर नहीं समझा सत्य को तो तुम बार-बार मृत्यु के मुंह में पड़ते रहोगे। कितना तो दुख पा लिया, दुख से मन नहीं भरा? अभी और दुख उठाने की इच्छा है? समझो।

धरमदास के ये सूत्र ऐसे थे कि बैठ जाएं तुम्हारे हृदय में तो तुम्हें उड़ा ले चलें आकाश की तरफ, कि तुम्हारे पर फिर जमीन पर दुबारा न पड़ें। मगर तुम इन पर विचार करते मत बैठे रहना। इनका विचार से कुछ संबंध नहीं है। ये विचार नहीं हैं, यह धरमदास ने अपना हृदय तुम्हारे सामने उड़ेला है। यह धनी धरमदास ने अपना सारा सारा धन तुम्हारे सामने बिखेर दिया है। इसे चुन लो, इसे गुन लो, इसे कर लो।

सतगुरु के उपदेश फिरो धन बावरी
उठि चलो आपन देश इहै भल दाव री
हम कहि दिया है सनेस तुम्हारे पीव का
बिनु समझै नहिं काज आपने जीव का
जुगन-जुगन हम आई कहा समुझाइकै
बिनु समुझे धनि परि हौं। कालमुख जाइकै

आज इतना ही।